साहित्य भवन पब्लिकेशन्स

भारत का इतिहास

HISTORY OF INDIA

भारत का इतिहास

(1707 ई.-1947 ई.)

Nutan

उ. प्र. के नवीन एकीकृत पाठ्यक्रमानुसार परीक्षा प्रणाली पर आधारित
बी. ए. द्वितीय वर्ष (द्वितीय प्रश्न-पत्र) हेतु

भारत का इतिहास

(1707 ई.-1947 ई.)

(लघु, अति लघु एवं वस्तुनिष्ठ प्रश्नों सहित)

डॉ. ए. के. मित्तल
(डी. लिट्.)
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, इतिहास-विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
सहायक
डॉ. आर. अग्रवाल
(पी-एच. डी.)

2008

Estd. 1960

साहित्य भवन पब्लिकेशन्स : आगरा

Code : A081

Price : Rs. 105/-

ISBN-81-8017-081-0

Revised Edition : 2008

Published by
Sahitya Bhawan Publications
Hospital Road, Agra-282 003

Printed at
Bhawan Printers, Agra

Note : Due care and diligence has been taken while editing and printing the book, neither the author nor the publisher of the book hold any responsibility for any mistake that may have inadvertently crept in.

भूमिका

आधुनिक भारत के इतिहास के अध्ययन का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विशेष महत्व है, क्योंकि यह वही समय था जब अंग्रेजों द्वारा भारतीयों का शोषण किया जा रहा था तथा भारतीयों ने अपने तन-मन-धन की चिन्ता न करते हुए शोषण तथा शोषक-व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाई। **'फूट डालो और राज करो'** की अंग्रेजी नीति के छलावे में न आकर एक जुट होकर प्रयत्न करते हुए भारतीयों ने अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र कराया। किसी भी देश के इतिहास में उसके स्वतन्त्रता आन्दोलन का विशिष्ट स्थान होता है। उसमें निहित देशभक्तों की सेवा, त्याग और उत्कृष्ट बलिदान की रोमांचक घटनाएं, उस देश की जनता के लिए सदैव प्रेरणा के स्रोत का कार्य करती हैं तथा एकता एवं देशप्रेम की भावनाओं को प्रबल बनाती हैं।

आधुनिक भारत के इतिहास का अध्ययन न केवल युवा वर्ग को स्वतन्त्रता एवं परतन्त्रता के अन्तर को समझाने में सहायक सिद्ध होगा, वरन् उन्हें भारत की एकता व अखण्डता को बनाए रखने हेतु प्रयास करने के लिए भी प्रेरित करेगा। साथ ही यह भी ध्यान रखा गया है कि प्रस्तुत पुस्तक अपने मूल उद्देश्य—विद्यार्थियों को आधुनिक भारतीय इतिहास की समुचित एवं तथ्यों पर आधारित जानकारी उपलब्ध कराने में सफल हो सके।

अन्त में, मैं पुस्तक के प्रकाशक श्री के. एल. बंसल का आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझता हूं, जिनके सतत् प्रयत्नों से पुस्तक का समय से प्रकाशित होना सम्भव हो सका।

लेखक

SYLLABUS

B. A. Part II

Paper II : History of India (1740-1947)

Unit-I	Anglo-French rivalry. The third Battle of Panipat. Clive and Warren Hastings.
Unit-II	The internal administration and reforms of Cornwallis. Wellesley and his subsidiary Alliance. The achievements of Lord Hastings. William Bentinck's reforms. Lord Auckland and first Anglo-Afghan war. Ranjit Singh and the Two Sikh wars.
Unit-III	The administration of Lord Dalhoujee, the administration of Lord Lytton, Lord Ripon and Lord Curzon.
Unit-IV	The government of India Act 1909, 1935.

विषय-सूची

मानचित्रों की सूची

1

औरंगजेब की मृत्यु के समय भारत, उत्तर मुगल कालीन दरबारी राजनीति, नादिरशाह का आक्रमण

[INDIA AT THE DEATH OF AURANGZEB, COURT POLITICS OF THE LATER MUGHALS, INVASION OF NADIRSHAH]

मुगल साम्राज्य के पतन के कारण
(CAUSES OF THE DOWNFALL OF THE MUGHAL EMPIRE)

बावर ने मुगल-साम्राज्य रूपी भवन की आधारशिला रखी, अकवर ने अपनी योग्यता से उसे सुदृढ़ता प्रदान की। शाहजहां के काल में यह अपनी भव्यता की चरम सीमा तक पहुंच गया था लेकिन औरंगजेब के काल में यह भवन डगमगाने लगा था और इसके वाद शीघ्र ही मुगल साम्राज्य रूपी भवन टुकड़े-टुकड़े हो गया।

मुख्य रूप से मुगल साम्राज्य के पतन के निम्नलिखित कारण थे—

(1) स्वेच्छाचारी केन्द्रीभूत शासन—मुगल शासन-व्यवस्था पूर्णरूपेण स्वेच्छाचारी केन्द्रीभूत शासन था। **स्वेच्छाचारी केन्द्रीभूत शासन में सारी शक्तियां सम्राट के हाथ में केन्द्रित होती हैं। शासन का संचालन केन्द्र से होता है।** ऐसी शासन-व्यवस्था में साम्राज्य की सुरक्षा के लिए योग्य एवं कुशल सम्राट की आंवश्यकता होती है। यदि साम्राज्य विशाल हो जाए तो समस्या और अधिक जटिल हो जाती है। अतः अकवर से औरंगजेब तक सभी शासकों में साम्राज्य संभालने की योग्यता थी तथा इन सम्राटों की साम्राज्यवादी नीति के परिणामस्वरूप साम्राज्य विशालकाय हो गया। **औरंगजेब जो स्वयं विलक्षण प्रतिभा का था किन्तु इस विशाल साम्राज्य को संभालने तथा विनाशकारी तत्वों का विनाश करने में असफल रहा।** औरंगजेब के बाद समस्त मुगल शासक अयोग्य थे। उनमें विशाल साम्राज्य को सुरक्षित बनाए रखने की क्षमता नहीं थी। अतः ऐसी परिस्थितियों में मुगल साम्राज्य का पतन अवश्यम्भावी हो गया था।

(2) पश्चात्कालीन मुगल बादशाहों की असहिष्णुता की नीति—मुगल सम्राट अकबर ने धार्मिक सहिष्णुता तथा सुलह-कुल की नीति अपनायी थी लेकिन उसके उत्तराधिकारियों ने इस नीति का धीरे-धीरे पूर्णरूप से त्याग कर दिया। सर्वप्रथम असहिष्णुता की नीति का वीजारोपण जहांगीर के शासनकाल में हुआ। शाहजहां के शासनकाल में यह नीति पहले से अधिक

असहिष्णु हो गयी थी और औरंगजेब के शासनकाल में इस नीति ने उग्र रूप धारण कर लिया था। वी. ए. स्मिथ के अनुसार, "**अकबर ने हिन्दुओं की प्रबल सहायता को जिस चालाकी से प्राप्त किया था वह शाहजहां की गलत नीति तथा औरंगजेब की कट्टरपन्थी नीति से दुर्बल पड़ गयी।**"[1] औरंगजेब अनुदार एवं असहिष्णु सम्राट था और उसकी यही अनुदार नीति मुगल साम्राज्य के लिए घातक बनी। औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था, उसने हिन्दुओं के साथ बड़े अत्याचार किए। औरंगजेब की इस नीति के परिणामस्वरूप मुगल साम्राज्य ने राजपूतों की सहानुभूति तथा सहायता को खो दिया। निःसन्देह राजपूतों, जाटों, सतनामियों तथा सिखों के विद्रोह औरंगजेब की असहिष्णुता की नीति के ही परिणाम थे। असहिष्णुता की नीति ने सिखों को एक सैनिक जाति में बदल दिया जिन्होंने मुगलों से निरन्तर संघर्ष जारी रखा तथा अन्त में पंजाब पर अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। अपनी धार्मिक असहिष्णुता की नीति की प्रेरणा से ही औरंगजेब ने दक्षिणी भारत के शिया राज्यों का उन्मूलन भी किया। इन राज्यों को समाप्त कर देने से दक्षिण में मराठों को अपनी शक्ति को बढ़ाने का सुअवसर मिला। अतः औरंगजेब की असहिष्णुता की नीति के कारण ही मराठों ने हिन्दू स्वराज्य का आन्दोलन आरम्भ किया था और अन्त में मराठे भी विशाल मराठा साम्राज्य को स्थापित करने में सफल हुए। प्रो. विपिन चन्द्रा ने लिखा है, "**औरंगजेब के धार्मिक कठमुल्लापन और हिन्दू शासकों के प्रति नीति ने मुगल साम्राज्य की स्थिरता को गहरा नुकसान पहुंचाया।**"[2]

(3) औरंगजेब द्वारा लम्बे समय तक युद्ध करना—**औरंगजेब ने लगभग पचास वर्षों तक शासन किया। उसने अपने शासन के पहले पच्चीस वर्ष तो उत्तरी भारत में साम्राज्य की सुरक्षा हेतु विद्रोहों के दमन करने में व्यतीत किए।** इन पच्चीस वर्षों के युद्धों में काफी धन-जन की हानि हुई तथा दूसरी ओर मुगल साम्राज्य के शत्रुओं में भी काफी वृद्धि हो गयी थी। अपने जीवन के अन्तिम पच्चीस वर्ष उसने दक्षिण भारत में युद्ध करने में व्यतीत किए। इन युद्धों से भी मुगल साम्राज्य को भारी आघात लगा। यद्यपि इन युद्धों में औरंगजेब को काफी सफलता मिली लेकिन इससे उसे कोई लाभ नहीं हुआ। युद्ध में विजय से साम्राज्य काफी विशाल हो गया जिससे उसे संभालना काफी कठिन हो गया तथा धन और जन की भी अपार हानि हुई। राजकोष रिक्त हो गया, जनता में त्राहि-त्राहि मच गयी। मुगल सैनिकों का भी पतन हो गया। दक्षिण के युद्धों में लगे रहने से उत्तर भारत में उसका राज्य विघटित हो गया। हेग ने लिखा है, "**दक्षिण में उसके सभी अच्छे-से-अच्छे सैनिक लगे रहे और अयोग्य सेनाओं तथा अपर्याप्त धन के सहारे उत्तर के उपजाऊ तथा घनी आबादी के प्रान्तों और बड़े-बड़े नगरों में व्यवस्था बनाए रखने में असफल रहे।**"[3]

औरंगजेब का दीर्घकालीन शासन भी साम्राज्य के लिए विघटनकारी सिद्ध हुआ। औरंगजेब ने नब्बे वर्ष की उम्र तक शासन किया। जब तक उसमें शारीरिक एवं मानसिक शक्ति थी उसने दृढ़ता से शासन किया लेकिन उसकी शारीरिक एवं मानसिक शक्ति के क्षीण हो जाने पर उसके लिए विशालकाय साम्राज्य को चला पाना असम्भव हो गया। औरंगजेब के सन्देहशील

---

1 "The powerful Hindu support of the throne, won so cleverly by Akbar was weakened by the erroneous policy of Shahjahan and still to greater degree by the austere fanaticism of Aurangzeb." —*V. A. Smith*

2 प्रो. विपिन चन्द्रा, आधुनिक भारत, पृ. 81.

3 "The Deccan absorbed all his best troops and incompetent officers, with inefficient forces and funds, were unable to maintain order in the great cities, fertile and populous provinces of the North." —*Sir Woolseley Haig*

स्वभाव के कारण भी मुगल साम्राज्य शीघ्र ही पतन के कगार पर खड़ा हो गया। अविश्वासी स्वभाव का होने के कारण वह महत्वपूर्ण कार्यों को स्वयं करता था जिससे उसके उत्तराधिकारियों को अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने का अवसर नहीं मिला और वे अयोग्य हो गए, अतः औरंगजेब के परलोकवास के वाद योग्य एवं अनुभवी उत्तराधिकारियों के अभाव में विशाल साम्राज्य का सुदृढ़ एवं स्थिर रह पाना असम्भव हो गया।

(4) अमीरों के षड्यन्त्र एवं दलबन्दी—मुगल साम्राज्य के पतन में अमीरों का चारित्रिक पतन भी सहायक सिद्ध हुआ। औरंगजेव के वाद समस्त मुगल वादशाह निर्वल एवं अकर्मण्य थे, अतएव उनके शासनकाल में अमीरों को कुचक्र रचाने तथा अपनी शक्ति को वढ़ाने का अच्छा अवसर मिल गया। जिस अमीर वर्ग की सहायता से वावर ने भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना की तथा उसके पश्चात् अकवर, जहांगीर, शाहजहां एवं औरंगजेव ने मुगल साम्राज्य को शक्ति के ऊंचे शिखर पर पहुंचाया था वही अमीर वर्ग अब आपसी कलह एवं व्यक्तिगत स्वार्थों में लीन हो गया, अतः योग्य वादशाहों के अभाव में अमीरों की दलवन्दी एवं षड्यन्त्र दिन-प्रतिदिन वढ़ते चले गए। पश्चात्कालीन मुगल सम्राटों के शासनकाल में अमीर दो दलों में विभक्त हो गए थे—**एक दल** तूरानी था जिसमें सुन्नी मतावलम्बी थे, **दूसरा** दल ईरानी था जिसमें शिया मतावलम्वी थे। इन दोनों दलों के अमीर साम्राज्य की चिन्ता न कर एक-दूसरे के विरुद्ध षड्यन्त्र करने में लगे रहते थे जिससे मुगल साम्राज्य को अभूतपूर्व क्षति उठानी पड़ी। डॉ. आर. सी. मजूमदार के अनुसार, **"अठारहवीं शताब्दी में अमीरों का जो चारित्रिक पतन हुआ उसका मुगल साम्राज्य को पतनोन्मुख बनाने में बहुत बड़ा हाथ है।"**[1] सर जे. एन. सरकार ने भी लिखा है, **"एक उपजाऊ भूमि और कृपालु ईश्वर की दया वाले देश का उत्पादित धन मुगल अमीरों के कोष में चला जाता था जो ऐसी विलासिता में डूबे हुए थे जिसको फारस एवं मध्य एशिया के सम्राट स्वप्न में भी नहीं देख सकते थे।"**

अतः अन्तिम मुगल शासकों के शासनकाल में ये अमीर काफी शक्तिशाली बन गए थे।**सैय्यद भाइयों ने तो अपनी शक्ति इतनी अधिक बढ़ा ली थी कि वे 'सम्राट निर्माता' बन गए** थे। अतः सिंहासन पर गुड़िया वादशाह विठाए जाने लगे जो केवल नाममात्र के होते थे। अतः अमीरों के हाथों की कठपुतली वनकर पश्चात् कालीन मुगल शासक अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए उनके कृपापात्र वन गए।

(5) उत्तराधिकार के निश्चित नियम के अभाव में ध्वंसात्मक युद्ध—मुसलमानों में उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था। यद्यपि वावर ने ज्येष्ठता के सिद्धान्त का पालन करने का प्रयास किया लेकिन उसकी परम्परा को उसके उत्तराधिकारियों ने नहीं बनाए रखा, अतः सभी शहजादे सिंहासन को पाने के लिए लालायित रहते थे। जहांगीर के शासनकाल में शाहजहां के विद्रोहों ने बड़ा विकृत रूप धारण कर लिया था। शाहजहां द्वारा अपने भाइयों एवं भतीजों का वध करवा कर मुगल सिंहासन को प्राप्त किया गया था। अतः इससे मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगा। औरंगजेव ने भी अपने पिता का अनुकरण किया तथा उसके पुत्रों ने उसका अनुकरण किया, अतः सम्राट की मृत्यु के बाद राजदरबार में सिंहासन प्राप्त करने के लिए विध्वंसात्मक युद्ध होने लगे। इन युद्धों के कारण धन-जन की तो निरर्थक हानि हुई ही साथ में साम्राज्य की प्रतिष्ठा को भी बड़ा धक्का लगा। **अतः उत्तराधिकार**

1 **"The deterioration in the character of nobility during the eighteenth century had a large share in the hastening the Mughal Empire."** —***R. C. Majumdar***

के युद्ध की इस परम्परा का कभी अन्त नहीं हुआ जो अन्ततोगत्वा मुगल साम्राज्य के पतन में सहायक बनी। स्मिथ के अनुसार, "उत्तराधिकार के युद्धों की पुनरावृत्ति के फलस्वरूप जो दीर्घकालीन अव्यवस्था फैली उसका साम्राज्य के विध्वंस करने में बहुत बड़ा हाथ था।"[1]

(6) मुगल सेना का नैतिक पतन—बाबर के समय आयी मुगल सेना का नैतिक स्तर काफी ऊंचा था। उसमें बड़ी-से-बड़ी कठिनाइयों का सामना करने की क्षमता थी। वे अपने स्वामी के लिए प्राण तक न्योछावर करने के लिए तैयार रहते थे परन्तु भारत की जलवायु एवं वातावरण ने उन्हें काफी विलासी बना दिया फलस्वरूप उनका नैतिक पतन आरम्भ हो गया। अब मुगल सैनिक युद्ध में अपनी स्त्रियों को भी साथ ले जाने लगे, अतः धीरे-धीरे मुगल सैनिक अकर्मण्य एवं विलासी बनते गए। उनकी इसी अकर्मण्यता एवं विलासिता ने मुगलों के पतन को और करीब ला दिया। सर वूल्जले हेग ने इस सम्बन्ध में लिखा है, **"साम्राज्य के विच्छिन्न होने में सेना का नैतिक पतन एक प्रधान तत्व था।"**[2]

दूसरी ओर मुगल सेना में लागू मनसबदारी की प्रथा भी मुगल साम्राज्य के पतन में सहयोगी बनी। केन्द्रीय शक्ति के शिथिल हो जाने पर मनसबदार काफी शक्तिशाली बन गए अतः बादशाहों को भी मनसबदारों से भय बना रहता था। इसी कारण नादिरशाह के आक्रमण के समय यदि मनसबदार एकजुट होकर बादशाह के प्रति स्वामिभक्ति का परिचय देते तो सम्भवतः मुगल साम्राज्य का पतन इतनी शीघ्र नहीं होता। अठारहवीं शताब्दी के दौरान मुगल सेना में अनुशासन और लड़ने के लिए उत्साह की कमी थी। धन के अभाव में बड़ी फौज रखना कठिन था। सैनिकों को महीनों तक वेतन नहीं मिलता था चूंकि वे केवल भाड़े के सैनिक होते थे, इसलिए हमेशा असन्तुष्ट रहते थे, वे बगावत के लिए उतारू रहते थे।

(7) आर्थिक विपन्नता—यद्यपि मुगलकाल का मध्यान्ह भारतीय इतिहास का गौरवमय काल माना जाता है लेकिन आर्थिक दृष्टि से मुगल शासन काल का पश्चात्काल काफी विपन्न हो गया था। जहांदार शाह के समय में तो धनाभाव के कारण शाही कारखानों के सोने तथा चांदी के बर्तनों को बेचकर सैनिकों का वेतन चुकाना पड़ा था। सर जे. एन. सरकार आर्थिक दशा के विषय में अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से लिखते हैं कि **"एक दिन जब शहजादियां भूख से तड़प रही थीं तो वे परदे की कठोर प्रथा को तोड़कर महल से नगर की ओर दौड़ पड़ी थीं, किन्तु किले का द्वार बन्द होने के कारण वे सारे दिन एवं सारी रात चौकीदार की कोठरी में बैठी रहीं जहां से वे जबरदस्ती अपने कक्षों को भेज दी गयीं।"**[3] मुगल साम्राज्य के पतन के लिए आर्थिक विपन्नता एक प्रमुख कारण थी। जनता की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा किए बिना साम्राज्य का सुरक्षित रहना सम्भव न था। 17वीं व 18वीं सदी में किसानों की स्थिति निरन्तर बिगड़ रही थी। अधिक-से-अधिक कर वसूल करने के प्रयास में उन्हें एक प्रकार से लूटा जाता था। वाणिज्य एवं व्यापार का उत्पादन आवश्यकतानुसार नहीं हो रहा था। उत्पादन की अपेक्षा शासक वर्ग की आशाएं तथा उनकी मांगें अधिक थीं।[4] अतः साम्राज्य का पतन होना स्वाभाविक ही था।

---

1 "The prolonged anarchy involved in the repeated wars of succession was a potent factor in bringing about the ruin of the imperial fabric." —*V. A. Smith*

2 "The demoralisation of the army was one of the principal factors in the disintegration of the empire." —*Woolseley Haig*

3 सरकार, जे. एन., मुगल साम्राज्य का पतन, भाग 2, पृ. 27.

4 सतीशचन्द्र, मध्यकालीन भारत, पृ. 11.

(8) प्रान्तपतियों के विद्रोह—**मुगल साम्राज्य जब जर्जरित होकर पतन के कगार पर खड़ा था तो इसका फायदा उठाकर प्रान्तपति भी अपनी-अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने में लग गए।** निजामुलमुल्क ने दक्षिण में जाकर अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया तथा वह मराठों से मिलकर मुगल साम्राज्य के विरुद्ध षड्यन्त्र करने में लग गया। अलीवर्दी खां ने बंगाल में तथा सुजात खां ने अवध में अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली थी। रुहेल अफगानों ने रुहेलखण्ड में अपनी सत्ता स्थापित करके विदेशी आक्रमणकारियों को मुगल साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध में मदद की। मुगलों की गिरती हुई दशा का लाभ उठाकर सिखों ने पंजाव में तथा मराठों ने महाराष्ट्र में अपनी शक्ति वढ़ानी आरम्भ कर दी।

(9) नादिरशाह एवं अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण—अपनी आन्तरिक दुर्वलता के कारण मुगल साम्राज्य अत्यन्त जर्जरित एवं विशृंखलित हो गया था। ऐसी स्थिति में विदेशी आक्रमणकारियों ने भी लाभ उठाने की कोशिश की। अतः मुगल साम्राज्य की जो शेष बची हुई शक्ति, प्रतिष्ठा एवं धन था, उसे 1739 ई. के नादिरशाह के आक्रमण ने इस तरह नष्ट कर दिया कि जिसकी पूर्ति फिर कभी न हो सकी। नादिरशाह ने मुहम्मदशाह को हरा कर दिल्ली में कत्लेआम किया और लगभग सत्तर करोड़ के प्रसिद्ध मयूर सिंहासन तथा भारी धन-सम्पदा लूट कर अपने देश वापस लौट गया। इसके बाद नादिरशाह के सेनापति अहमदशाह अव्दाली ने सात बार भारत पर आक्रमण कर मुगल साम्राज्य को बिल्कुल छिन्न-भिन्न कर दिया। प्रो. विपिन चन्द्रा के अनुसार, **"नादिरशाह और अहमदशाह अव्दाली द्वारा आक्रमणों ने, जो साम्राज्य की कमजोरी के परिणाम थे, साम्राज्य को धनहीन बना दिया, उत्तर भारत में व्यापार और उद्योग को बरवाद कर दिया तथा साम्राज्य की सैनिक शक्ति नष्ट कर दी।"**[1]

(10) यूरोपवासियों का आगमन—यद्यपि यूरोपवासी भारत में काफी समय से व्यापार कर रहे थे तथा उन्होंने अपनी अनेक व्यापारिक कोठियां भी स्थापित कर ली थीं, लेकिन मुगल साम्राज्य की जर्जरित अवस्था से उनके मन में भी भारत में साम्राज्य स्थापित करने का बीज अंकुरित होने लगा। अतः इन विदेशी व्यापारियों ने पहले देशी राज्यों के झगड़ों में भाग लेना तथा उनकी सहायता करना आरम्भ किया तथा वाद में अपना स्वतन्त्र साम्राज्य स्थापित करने के प्रयास में लग गए। **ईस्ट इण्डिया कम्पनी धीरे-धीरे एक व्यापारिक संस्था से राजनीतिक संगठन में परिवर्तित होने लगी और अब अंग्रेज ऐसे अवसर की प्रतीक्षा करने लगे जबकि उन्हें भारत में अपने पैरों को अच्छी तरह जमाने का अवसर प्राप्त हो जाए।** यह अवसर 1757 ई. के प्लासी के युद्ध के रूप में आया जवकि अंग्रेजों ने बंगाल में अपनी स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना कर ली। 1764 ई. में अंग्रेजों ने वक्सर की लड़ाई में शाह आलम को पराजित करके बंगाल, विहार तथा उड़ीसा की दीवानी भी प्राप्त कर ली और 1803 ई. में अंग्रेजों ने दिल्ली पर भी अधिकार कर लिया और मुगल सम्राट को अपने संरक्षण में ले लिया।

(11) मुगलों द्वारा सामुद्रिक शक्ति की अवहेलना—मुगल शासकों ने प्रारम्भ से ही सामुद्रिक शक्ति को बढ़ाने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। चूंकि अंग्रेजों की नौ-शक्ति बड़ी प्रवल थी, अतः अंग्रेजों को भारत में अपने पैर जमाने में अधिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। भारत में राष्ट्रीयता की भावना का सदैव अभाव रहा है। केवल सम्राट अकवर ने राष्ट्रीयता की भावना को पैदा करने का प्रयत्न किया था। लेकिन उसके बाद हिन्दू एवं मुस्लिम जनता में पृथकत्व की खाई निरन्तर वढ़ती चली गयी जिसके कारण वे अंग्रेजों के विरुद्ध संयुक्त

1 प्रो. विपिन चन्द्रा, आधुनिक भारत, पृ. 12.

मोर्चा वनाकर युद्ध न कर सके और अंग्रेजों से पराजित हो गए। डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव के अनुसार, **"मुगल सम्राट जनता के हृदय में ऐसे विचार उत्पन्न नहीं कर सकते थे जैसे शिवाजी ने महाराष्ट्र की जनता के हृदय में कर दिए थे और जिन विचारों के कारण महाराष्ट्र की जनता उनके साथ हो गयी थी। विदेशी सत्ता तभी तक रह सकती है जब तक वह शक्तिशाली रहे और जब मुगल सरकार स्वयं दुर्बल हो गयी तो उसका पतन स्वाभाविक था।"**

निष्कर्ष
(CONCLUSION)

यद्यपि अनेक विद्वान केवल औरंगजेव को मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी मानते हैं लेकिन मात्र औरंगजेव ही नहीं वरन् अन्य अनेक कारणों से भी मुगल साम्राज्य का पतन अवश्यम्भावी हो गया था। **प्रो. इरफान हवींब ने लिखा है कि** औरंगजेब के शासनकाल में सतनामियों, जाटों, बुन्देलों तथा रुहेलों के विद्रोह औरंगजेब की धर्मान्ध नीति के कारण नहीं हुए वरन् इन विद्रोहों के पीछे आर्थिक शोषण का कारण निहित था। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि औरंगजेव मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी नहीं था। वास्तव में उसके दीर्घकालीन युद्धों से मुगल साम्राज्य को जन-धन की जो हानि हुई उसकी पूर्ति न हो सकी। उसके दक्षिण विजय अभियान से उत्तर भारत में अराजकता का दौर फैल गया। मुगलों की मनसबदारी प्रथा ने सैनिक दृष्टि से मुगलों का ह्रास कर दिया था और अन्त में **अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति के कारण जर्जरित मुगल साम्राज्य के शीघ्र पतन में देर न लगी।**

अतः स्पष्ट है कि मुगल साम्राज्य का पतन और विघटन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा संगठनात्मक कारणों के फलस्वरूप हुआ। प्रो. विपिन चन्द्रा के अनुसार, **"मुगल साम्राज्य के पतन की सबसे दुखद बात यह हुई कि उसकी जगह पर एक विदेशी शक्ति आई जिसने अपने हितों का ख्याल करके देश के शताब्दियों पुराने सामाजिक-आर्थिक ढांचे को हटाकर उसकी जगह एक औपनिवेशिक ढांचे को रखा।"**[1]

औरंगजेब के पश्चात् मुगल-साम्राज्य का विघटन
(DISINTEGRATION OF MUGHAL EMPIRE AFTER THE DEATH OF AURANGZEB)

3 मार्च, 1707 ई. को अहमदनगर में औरंगजेब की मृत्यु के साथ ही भारतीय इतिहास में एक नवीन युग का आविर्भाव हुआ। उसकी मृत्यु के पश्चात् के मुगल शासक जर्जरित साम्राज्य को ठोस आधार देने में सफल न हो सके। उनकी निर्बलता का स्पष्ट संकेत दरबार में बढ़ जाने वाली गुटबन्दी से प्राप्त होता है। इसका लाभ देशी-विदेशी शक्तियों को मिला तथा भारत के भिन्न-भिन्न भागों में अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गए। नादिरशाह के आक्रमण ने इस जर्जरता को और भी अधिक स्पष्ट कर दिया। नई परिस्थितियों ने भारत के लिए अनेक समस्याएं उत्पन्न कर दीं, जिसका लाभ अंग्रेजों ने उठाया और एक समय ऐसा आया जबकि भारत से मुगल शासन का अन्त हो गया।

उत्तरकालीन मुगल सम्राट
(LATER MUGHALS)

औरंगजेव की मृत्यु के साथ ही उसके पुत्रों के बीच उत्तराधिकार का युद्ध आरम्भ हो गया। औरंगजेव के तीन पुत्रों—मुहम्मद मुअज्जम, मुहम्मद आजम एवं कामबख्श के मध्य

1 प्रो. विपिन चन्द्रा, आधुनिक भारत, पृ. 12.

हुए संघर्ष में विजयश्री ने मुहम्मद मुअज्जम का वरण किया। **अपने दोनों प्रतिद्वन्द्वियों को पराजित कर वह 63 वर्ष की आयु में बहादुर शाह प्रथम के नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ।** उसने अत्यन्त उदार नीति का परिचय देते हुए मुगलों की कैद में 1689 ई. से पड़े शिवाजी के पौत्र शाहू को छोड़ दिया और उसे महाराष्ट्र जाने की अनुमति दे दी। राजपूतों को उनके प्रदेश लौटा दिए किन्तु बहादुरशाह सिखों से मित्रतापूर्वक व्यवहार न कर सका। इसका सबसे वड़ा कारण यह था कि सिख नेता **बन्दा बहादुर** ने पंजाव में मुस्लिम सत्ता को चुनौती देने का अभियान जारी रखा। 27 फरवरी, 1712 ई. में बहादुरशाह प्रथम की मृत्यु हो गई। उसके विषय में सर सिडनी ओवन ने लिखा है, **"यह अन्तिम मुगल सम्राट था जिसके विषय में कुछ अच्छे शब्द कहे जा सकते हैं, इसके पश्चात् मुगल साम्राज्य का द्रुत गति से पतन मुगल सम्राटों की राजनीतिक तुच्छता एवं शक्तिहीनता का स्पष्ट संकेत था।"**

बहादुरशाह प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसके चार पुत्रों—**जहांदारशाह, अजीम-उस-शान, जहानशाह एवं रफी-उस-शान** के मध्य उत्तराधिकार का संघर्ष आरम्भ हो गया। इस संघर्ष में जहांदारशाह विजयी हुआ, किन्तु उसकी सफलतां के पीछे दरवार में ईरानी दल के नेता जुलफिकार खां का महत्वपूर्ण हाथ था, किन्तु जहांदार शाह को शीघ्र ही अजीम-उस-शान के पुत्र फर्रुखसियर ने सैय्यद वन्धुओं की सहायता से गम्भीर चुनौती दी और 11 फरवरी, 1713 ई. में जहांदारशाह को मारकर सत्ता पर अधिकार कर लिया। फर्रुखसियर ने सैय्यद बन्धुओं को अपना वजीर एवं मीर वख्शी वनाया किन्तु सैय्यद बन्धुओं का शासन में अत्यधिक हस्तक्षेप वढ़ जाने से उसने सैय्यद वन्धुओं को मार्ग से हटाने का असफल प्रयत्न किया। **सैय्यद बन्धुओं ने सम्राट की हत्या करवाकर (28 अप्रैल, 1719 ई.) एक के बाद एक शासक दिल्ली के तख्त पर आसीन किए।** रफी-उद-दरजात ने 28 फरवरी से 4 जून, 1719 ई. तक, रफी-उद-दौला ने 6 जून से 17 सितम्बर, 1719 ई. तक, मुहम्मदशाह ने सितम्वर 1719 ई. से अप्रैल, 1748 ई. तक सम्राट का पद संभाला। इन सभी के ऊपर सैय्यद बन्धुओं का प्रभाव था, किन्तु मुहम्मदशाह ने तूरानी अमीरों के प्रभाव में आकर सैय्यद वन्धुओं की हत्या करवा दी। मुहम्मदशाह के शासनकाल की अन्य महत्वपूर्ण घटनाएं निजाम-उल-मुल्क द्वारा दक्षिण में, सआदत खां द्वारा अवध में, मुरशिदकुली खां द्वारा बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा में स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करना एवं 1739 ई. में नादिरशाह का आक्रमण थीं। इस प्रकार इस विदेशी आक्रमण के आघात के परिणामों से **अहमदशाह** (1748-1754 ई.) एवं **आलमगीर द्वितीय** (1754-59 ई.) मुगल सत्ता के पतन को बचा न सके। इस पर अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण तो अत्यन्त घातक सिद्ध हुए, उसका उत्तराधिकारी **शाह आलम द्वितीय** (1759-1806 ई.) तो अव नाममात्र का ही शासक रहा। वास्तविक सत्ता तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों में आ गई, वह भी 1858 ई. में प्रत्यक्ष रूप से उस समय अंग्रेजों के अधीन हो गई जबकिं **अन्तिम मुगल सम्राट बहादुरशाह द्वितीय को रंगून में निर्वासित कर दिया गया और भारत में ब्रिटिश सरकार का वास्तविक शासन घोषित कर दिया गया।**

इस प्रकार स्पष्ट है कि उत्तरकालीन मुगल सम्राटों की निर्बलता का लाभ दरबारी गुटों ने उठाया और सत्ता के वास्तविक नियन्त्रक वे ही बने रहे क्योंकि सम्राट को तख्त पर विठाना या उतारना अव उनके हाथों में था। **इस दरबारी गुटबन्दी में निःसन्देह सैय्यद बन्धुओं की महत्वपूर्ण भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता।**

सैय्यद बन्धुओं की उत्तरकालीन मुगल राजनीति में भूमिका
(THE ROLE OF SAYYAD BROTHERS IN LATER MUGHAL POLITICS)

विलियम इरविन के अनुसार, "मुगल दरबार अनेक दलों का जमघट था जिसमें तूरानी, ईरानी, अफगानी एवं हिन्दुस्तानी दल अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। इन दलों का नेतृत्व अमीरों द्वारा किया जाता था।" डॉ. सतीश चन्द्र के अनुसार, "अमीरों द्वारा धर्म एवं जाति की दुहाई केवल अपने निजी प्रयोजन के लिए नहीं दी जाती थी, वास्तविक दल प्रायः धर्म और जाति के बन्धनों से ऊपर होते थे।[1] इन चारों दलों में हिन्दुस्तानी दल के नेता सैय्यद बन्धुओं ने 1713 ई. से 1721 ई. तक मुगल दरवार की राजनीति को अपने व्यक्तित्व से प्रभावित किए रखा। यही कारण है कि सतीश चन्द्र ने 1713 ई. से 1721 ई. तक के समय को 'सैय्यद बन्धु युग' की संज्ञा दी है।[2]

अब्दुल्ला खां एवं हुसैन अली खां को सैय्यद बन्धु के नाम से जाना जाता है। ये दोनों भाई अपने को मेसोपोटामिया के बसैत बंश का वंशज मानते थे। ये दोनों अबुल फराह नामक व्यक्ति के वंशज थे जो कि मुगलों के भारत आगमन से पूर्व भारत आया था और मेरठ व सहारनपुर के क्षेत्र पर बस गया था। बारह गांव बसाने के कारण उन्हें सैय्यद कहा जाने लगा, शनैः-शनैः सैय्यदों ने अपने वैवाहिक सम्बन्ध भारतीय अमीरों के साथ स्थापित कर लिए और अब वेश-भूषा, भाषा-शैली एवं सांस्कृतिक दृष्टि से वे पूर्ण भारतीय बन गए थे। इन्होंने शनैः-शनैः भारतीय राजनीति में भी अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था, सैय्यद बन्धुओं के पिता सैय्यद मियां ने बीजापुर एवं अजमेर में सूबेदार के पद को सुशोभित किया था। सैय्यद मियां ने कालान्तर में राजकुमार मुअज्जम का साथ दिया था।

अपने पिता की इसी नीति को आगे वढ़ाते हुए दोनों भाइयों—अब्दुल्ला खां एवं हुसैन अली खां ने औरंगजेव की मृत्यु के पश्चात् होने वाले उत्तराधिकार के युद्धों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बहादुरशाह प्रथम के पश्चात् मुगल सम्राट जहांदारशाह को अजीम-उस-शान के पुत्र फर्रुखसियर का साथ देते हुए चुनौती दी और 11 फरवरी, 1713 ई. को जहांदारशाह को मारकर फर्रुखसियर को मुगल सम्राट बना दिया। फर्रुखसियर सैय्यद बन्धुओं का ऋणी था, अतः उसने अब्दुल्ला खां को अपना प्रधानमन्त्री (वजीर) बनाया। उसने उसे नवाब कुत्व-उल-मुल्क, जफर जंग, यार-ए-वफादार, सिपहसालार एवं सैय्यद अब्दुल्ला खां बहादुर की उपाधियों से विभूषित किया। यही नहीं, हुसैन अली को भी मुख्य सेनापति बना दिया। उसे भी उमाद-तुल-मुल्क एवं फिरोज जंग सिपहसालार की उपाधियों से विभूषित किया।

नई विजारत के लिए संघर्ष
(COURT POLITICS)

फर्रुखसियर द्वारा उसके ऊपर किए गए सैय्यद बन्धुओं के अनुग्रहों का इस प्रकार ऋण चुकाना प्रसिद्ध लेखक खाफी खां की दृष्टि से एक भयंकर भूल थी। कुछ भी हो यह तो स्वीकार करना ही होगा कि सैय्यद बन्धुओं का इतने महत्वपूर्ण पदों पर आसीन होना तूरानी एवं ईरानी सरदारों या दरबारियों के लिए ईर्ष्या का विषय बन गया। तूरानी गुट का समर्थन प्राप्त

1 "Slogans of race and religion were raised by individual nobles only to suit their conveniene and that the actual groupings cut across ethnic and religious divisions." —Satish Chandra, *Parties and Politics at Mughal Court (1707-40)*, pp. 257-58.

2 सतीश चन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ. 86.

करने वाले एवं फर्रुखसियर के कृपापात्र मीर जुमला ने सैय्यद बन्धुओं का विरोध करना आरम्भ कर दिया। मीर जुमला ने फर्रुखसियर पर इतना अधिक प्रभाव स्थापित कर लिया कि सम्राट ने घोषणा की कि **"मीर जुमला के शब्द एवं हस्ताक्षर मेरे शब्द एवं हस्ताक्षर होंगे।"** इसका सीधा अर्थ था विजारत के पद के नियमों का सीधा अतिक्रमण। सैय्यद बन्धुओं ने सम्राट के इस निर्णय का विरोध करते हुए कहा कि **"कोई मनसब प्रदान करना, पदोन्नति अथवा नियुक्ति के लिए वजीर का परामर्श आवश्यक है।"** निःसन्देह फर्रुखसियर एवं सैय्यद बन्धुओं के मध्य मतभेद का बीजारोपण हो गया। घटनाचक्र ने उस समय और भयंकर रूप धारण कर लिया जवकि हुसैन अली को दक्षिण का सूवेदार वना दिया गया। हुसैन अली अपने भाई अव्दुल्ला खां को दरवार के षड्यन्त्रों के वीच में अकेला नहीं छोड़ना चाहता था, अतः हुसैन अली ने अपने नायब को अपने प्रतिनिधि के रूप में दक्षिण की सूबेदारी चलाने की आज्ञा सम्राट से मांगी, किन्तु मीर जुमला के प्रभाव से प्रभावित फर्रुखसियर ने इस मांग को अस्वीकार कर दिया। हुसैन अली को दक्षिण जाने की आज्ञा दे दी गई। हुसैन अली ने कहा, **"वह (फर्रुखसियर) कृतज्ञता नहीं जानता, निष्ठा को नहीं समझता तथा अपने वचन में केवल अस्थिर ही नहीं है, अपितु उसको तोड़ने में भी उसे शर्म नहीं है।"**[1] यह मतभेद इतना वढ़ गया कि अव सैय्यद वन्धुओं ने दरवार में आना ही वन्द कर दिया। अव उन्होंने अपनी सुरक्षा की ओर ध्यान देना आरम्भ कर दिया। अन्ततः राजमाता ने मध्यस्थता कर मतभेदों को दूर करने का प्रयत्न किया। यह निश्चित हुआ कि हुसैन अली स्वयं दक्षिण जाएगा, किन्तु जुमला को भी पटना जाना होगा। सम्राट इस समझौते से सन्तुष्ट न था, अतः उसने गुजरात के सूबेदार दाऊद खां को हुसैन अली को मारने की गुप्त आज्ञा दे दी। चालाक हुसैन अली को इस गुप्त आज्ञा का पता चल गया और उसने शीघ्र ही दाऊद खां को युद्ध में मार डाला।

फर्रुखसियर ने अब मराठा शासक शाहू एवं कर्नाटक के जागीरदारों को यह गुप्त संदेश भेजे कि हुसैन अली की आज्ञा को नकारें। हुसैन अली को इस बात का पता चल गया और उसने तुरन्त शाहू से सन्धि कर ली। 1719 ई. में दोनों के बीच हुई इस सन्धि के अनुसार उसने मराठों को अनेक रियायतें दीं और यह आश्वासन ले लिया कि दिल्ली में चल रहे सत्ता संघर्ष में मराठे हुसैन अली का साथ देंगे। इसी बीच दिल्ली दरवार में अब्दुल्ला खां को वजीर के पद से हटाने के षड्यन्त्रों ने जोर पकड़ लिया। हुसैन अली ने मराठा सेना लेकर दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। अब्दुल्ला खां ने भी महत्वपूर्ण सरदारों को अपनी ओर कर लिया। **सम्राट व सैय्यद बन्धुओं के मध्य भयंकर संघर्ष छिड़ गया। इस संघर्ष में सैय्यद बन्धु विजयी हुए। सम्राट ने अपनी अभिभावकता सैय्यद बन्धुओं को सौंप दी, किन्तु सैय्यद बन्धु इससे सन्तुष्ट न हुए और 28 अप्रैल, 1719 ई. को उन्होंने फर्रुखसियर की हत्या कर दी। अब दिल्ली की सत्ता पर उनका पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो गया।**

सैय्यद बन्धुओं की विजारत

सैय्यद बन्धुओं ने फर्रुखसियर की हत्या करने के पश्चात् रफी-उद-दरजात को सम्राट वनाया किन्तु शीघ्र ही क्षय रोग से उसका निधन हो गया। तदुपरान्त रफी-उद्दौला सम्राट बना किन्तु शीघ्र ही उसका भी निधन हो गया, अतः अब सैय्यद बन्धुओं ने जहानशाह के 18-वर्षीय पुत्र मुहम्मदशाह को सम्राट बनाया। सैय्यद बन्धुओं ने राजकीय कार्यों में अपना पूर्ण प्रभुत्व कायम कर लिया था। नया सम्राट तो नाममात्र को ही था। खाफी खां के अनुसार,

1 उद्धृत, डॉ. सतीश चन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ. 90.

"सैय्यद बन्धुओं के व्यक्तियों ने सम्राट को एक प्रकार से कैद ही कर रखा था क्योंकि वे हर स्थिति में उसे घेरे रहते थे।" राजमाता ने भी इसी बात को स्वीकार किया था, **"सम्राट को केवल नमाज पढ़ने की अनुमति है।"**

सैय्यद बन्धुओं की यह नई विजारत हिन्दुओं के समर्थन पर आधारित थी। उन्होंने रत्नचन्द्र नामक व्यापारी को राजा की उपाधि से विभूषित कर राज्य के अधिकार प्रदान कर दिए। खाफी खां लिखता है कि **"रत्नचन्द्र को दीवानी एवं कानून सम्बन्धी अधिकार प्राप्त थे। यही नहीं, उसका हस्तक्षेप नियुक्ति सम्बन्धी कार्यों में भी था।"** आमेर का जयसिंह एवं जोधपुर का अजीत सिंह सैय्यद बन्धुओं के अभिन्न मित्र बन गए। मराठों ने उनका समर्थन किया। जजिया कर समाप्त कर दिया गया। अहमदनगर के सूबेदार ने वहां गौ हत्या निषिद्ध कर दी। इस व्यवस्था से अन्य पदाधिकारियों का महत्व कम हो गया। सैय्यद बन्धुओं ने तूरानी एवं ईरानी गुटों के महत्व को प्रायः कम कर दिया, इसी बीच सैय्यद बंन्धुओं के खिलाफ चिनकिलिच खां के नेतृत्व में गुटवन्दी प्रारम्भ हो गई। **चिनकिलिच खां को जिसे इतिहास में निजामुलमुल्क के नाम से भी जाना जाता है, तुरन्त मालवा का सूवेदार बनाकर दिल्ली से दूर कर दिया गया।** निजामुलमुल्क ने अव विद्रोह कर असीरगढ़ एवं बुरहानपुर के दुर्गों पर अधिकार कर लिया। शीघ्र ही वह दक्षिण का नायब सूवेदार वन बैठा।

दिल्ली दरवार में भी ऐतमादुद्दौला, सआादतअली खां एवं हैदर खां ने षड्यन्त्र कर 8 अक्टूबर, 1720 ई. को हुसैन अली की हत्या कर दी। इरविन ने इस पर लिखा है, **"भारतीय करबला में दूसरे यजीद ने दूसरे हुसैन को शहीद कर दिया।"** 13 नवम्बर, 1720 ई. को हसनपुर में अव्दुल्ला खां भी बन्दी बना लिया गया और 11 अक्टूबर, 1722 ई. में उसकी हत्या कर दी गई। इस प्रकार सैय्यद बन्धुओं की विजारत का अन्त हो गया।

सैय्यद बन्धुओं के पतन के कारण

सैय्यद बन्धुओं का काल मुगल साम्राज्य के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रारम्भ में ऐसा लगता था कि उनकी नीतियां मुगल साम्राज्य के लिए अत्यन्त लाभकारी होंगी और उनका शासन सफल रहेगा किन्तु ऐसा न हुआ। अनेक कारणों से उनको असफलता का सामना करना पड़ा। **संक्षेप में, सैय्यद बन्धुओं के पतन के कारणों को निम्नवत् इंगित किया जा सकता है :**

1. विरोधी गुटों द्वारा सैय्यदों की नीतियों का गलत प्रचार करना—सैय्यद बन्धुओं ने उच्च वर्ग के अमीरों के साथ-साथ सभी वर्गों से सहयोग लेने का प्रयत्न किया। उन्होंने मराठों एवं राजपूतों से मित्रता कायम की, उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता की नीति का अवलम्बन करने का प्रयास किया। यह प्रयास ईरानी एवं तूरानी दलों को उचित नहीं लगा। उन्होंने सैय्यदों की धार्मिक सहिष्णुता का गलत रूप से प्रचार करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने उन पर मुगल विरोधी होने का आरोप लगाया। डॉ. सतीश चन्द्र के अनुसार, **"उन्हें सैय्यदों के विरुद्ध संघर्ष को मुगल एवं हिन्दुस्तानियों के बीच संघर्ष का स्वरूप देने का अच्छा अवसर प्राप्त हो गया। निःसन्देह यह सैय्यदों के विरोध को तीव्रगामी बनाने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ।"**[1]

2. फर्रुखसियर की निर्मम हत्या—अपनी शक्ति को स्थापित करने के लिए सैय्यदों ने फर्रुखसियर की हत्या कर दी थी, किन्तु राजनीतिक दृष्टि से यह उनके लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुई। इरविन के अनुसार, **"फर्रुखसियर को हटाया जाना आवश्यक था, किन्तु उसे हटाने**

1 डॉ. सतीश चन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ. 131.

के लिए जो तरीका अपनाया गया वह उचित नहीं था, निःसन्देह उसकी निर्मम हत्या आवश्यक नहीं थी।"[1] उनके इस कार्य ने फर्रुखसियर के समर्थकों को अपना विरोधी बना लिया। साथ ही अब उन अमीरों से उनका सीधा विरोध हो गया जो कि फर्रुखसियर के कारण उनका विरोध नहीं करते थे। वास्तव में इस प्रकार के अमीरों को सैय्यदों का विरोध न करने का प्रमुख कारण यह था कि वे फर्रुखसियर के विरोधी थे। फर्रुखसियर की हत्या होते ही यह ढाल समाप्त हो गई।

3. सैय्यद बन्धुओं द्वारा अपनी शक्ति का सही मूल्यांकन न करना—सैय्यद बन्धुओं ने सदा ही अपनी शक्ति को अंसीमित समझा। उन्होंने शत्रुता की शक्ति का सही मूल्यांकन नहीं किया। यह उनके लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ।

4. राजपूतों व मराठों से समय पर सहायता न मिलना—सैय्यद वन्धुओं ने मराठों व राजपूतों से मित्रता की थी किन्तु राजपूतों व मराठों को सैय्यदों की नीतियों से कोई सरोकार न था। डॉ. सतीश चन्द्र के अनुसार, **"अपने संकुचित दृष्टिकोण के कारण राजपूत राजाओं ने सैय्यदों को अपेक्षित सैनिक सहायता दी औरं अपनी स्थानीय समस्याओं में ही उलझे रहे।"**[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि सैय्यद बन्धुओं के पतन में केवल उनका व्यक्तिगत योगदान नहीं था, अपितु इसके लिए मुगल साम्राज्य का तत्कालीन स्वरूप एवं मराठों व राजपूतों के प्रति अपनाई गई उनकी नीतियां भी उतनी ही उत्तरदायी थीं।

सैय्यद बन्धुओं के शासन का महत्व

यह ठीक है कि सैय्यद वन्धुओं की विजारत स्थायी सिद्ध न हो सकी और उसका पतन हो गया। साथ ही यह भी मानना पड़ता है कि फर्रुखसियर की हत्या कर उन्होंने उसके साथ पाप किया था किन्तु इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उनका शासन धार्मिक सहिष्णुता की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। डॉ. सतीश चन्द्र के अनुसार, **"सैय्यदों ने रूढ़िवादी एवं संकुचित नीतियों को त्यागकर एक राष्ट्रीय राज्य की ओर प्रगति करने का मार्ग दिखाया।"** निःसन्देह सैय्यद बन्धुओं की धार्मिक नीति का अनुसरण यदि उनके उत्तराधिकारियों ने किया होता तो भारत का इतिहास आज कुछ और ही होता। जहां तक फर्रुखसियर की हत्या का प्रश्न था, यह नहीं भूलना चाहिए कि वे सम्राट के षड्यन्त्रों से अत्यन्त निराश हो चुके थे, बार-बार सम्राट के षड्यन्त्रों ने उन्हें अपनी सुरक्षा के लिए सम्राट की हत्या के लिए प्रेरित किया।

प्रान्तीय राज्यों की स्थापना

(FOUNDATION OF PROVINCIAL STATES)

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् शक्तिशाली मुगल साम्राज्य निरन्तर पतन की ओर अग्रसर होता गया। निरन्तर क्षीण होती मुगल शक्ति का मुगलों के अनेक सूबेदारों ने लाभ उठाया व अपने-अपने स्वतन्त्र राज्यों की उन्होंने स्थापना की। **औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् स्वतन्त्रता की घोषणा करने वाले प्रमुख राज्यों का वर्णन निम्नवत् है :**

अवध (Oudh)—मुगल दासता का जुआ अपने कन्धे से उतारने वाला पहला राज्य अवध था। **अवध को स्वतन्त्रता दिलाने का साहसिक कार्य मुहम्मद अमीन ने किया।** मुहम्मद अमीन प्रारम्भ में मुगल दरबार में तूरानी दल का नेता था तथा स्वयं सैय्यद होते हुए भी उसने मुगल दरबार से सैय्यद प्रभाव को कम करने में वादशाह मुहम्मदशाह की सहायता की थी। उसके इसी कार्य

1 -इरविन, लेटर मुगल्स, पृ. 395.

2 सतीश चन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ. 133.

से प्रसन्न होकर उसे मुहम्मदशाह ने 'सादत खां बहादुर' की उपाधि दी तथा आगरा का सूबेदार भी बना दिया। मुहम्मद अमीन आगरा की सूबेदारी के काल में जाटों एवं राजपूतों का विद्रोह न दबा सका, अतः सम्राट ने उसे आगरा के स्थान पर अवध का सूबेदार नियुक्त कर दिया। अवध का सूबेदार बनना मुहम्मद अमीन के लिए वरदान प्रमाणित हुआ। 1724 ई. तक मुहम्मद अमीन ने अवध में अपनी सत्ता को सुदृढ़ कर लिया तथा अपने भतीजे सफदरजंग को अपना सहायक नियुक्त किया। तत्पश्चात् मुहम्मद अमीन ने अवध का कार्यभार सफदरजंग पर छोड़ दिया व स्वयं दिल्ली जाकर वहां की राजनीति में भाग लेने लगा।

1739 ई. में भारत पर नादिरशाह ने आक्रमण किया। मुहम्मद अमीन इस समय नादिरशाह से मिल गया तथा उसने मुहम्मद शाह और निजामुल-मुल्क को बन्दी बनाने में नादिरशाह की सहायता की, किन्तु बाद में मुहम्मद अमीन ने स्वयं भी 19 मार्च, 1739 ई. को आत्महत्या कर ली। मुहम्मद अमीन के पश्चात् सफरदजंग अवध का सूबेदार बना। मुहम्मद अमीन व सफदरजंग नाममात्र के लिए ही मुगल सम्राट के अधीन थे। 1754 ई. में सफदरजंग की मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् शुजाउद्दौला अवध का नवाब बना।

हैदराबाद (Hyderabad)—हैदराबाद में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना निजामुल-मुल्क ने की थी। निजामुल-मुल्क, जिसका वास्तविक नाम चिनकिलिच खां था, मुगल शासन में एक मनसबदार था। निजामुल-मुल्क औरंगजेब के अत्यन्त निकट था तथा उसने औरंगजेब को दक्षिण के अभियान में महत्वपूर्ण सहायता की थी। फर्रुखसियर के पतन के समय उसे मालवा का सूबेदार नियुक्त किया गया था मालवा में रहकर उसने अपनी शक्ति में वृद्धि की। सैय्यद बन्धुओं के पतन के पश्चात् 1722 ई. में मुगल सम्राट ने निजाम को वजीर नियुक्त किया। 1724 ई. तक निजाम ने सम्राट के वजीर के रूप में अनेक कार्य किए, किन्तु अत्यधिक विरोध होने के कारण 1724 ई. में निजाम पुनः दक्षिण भारत आ गया। **निजाम द्वारा वजीर का पद त्यागने के कारण मुगल सम्राट अत्यधिक क्रोधित हुआ तथा उसने मुबारकखां को निजाम पर आक्रमण करने के लिए भेजा।** 11 अक्टूबर, 1724 ई. को निजाम तथा मुबारिक खां के मध्य शकरखेड़ा नामक स्थान पर युद्ध हुआ। निजाम ने इस युद्ध में मुबारिक खां को परास्त कर उसकी हत्या कर दी। विवश होकर मुगल सम्राट ने 20 जून, 1725 ई. को निजाम को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया था, किन्तु उसने सदैव स्वतन्त्रता का ही आचरण किया। नादिरशाह के आक्रमण के समय निजाम मुगल सम्राट की सहायतार्थ दिल्ली आया। नादिरशाह के आक्रमण के पश्चात् निजाम पुनः दक्षिण भारत लौट आया। इरविन ने लिखा हैं, **"निजाम-उल-मुल्क दक्षिण का सर्वेसर्वा था। वह स्वेच्छा से जागीरें तथा उपाधियां प्रदान करता था और नियुक्तियों के सम्बन्ध में भी उसे पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। यदि उसके पूर्ण सत्ताधारी होने में किसी बात में कमी थी तो यह कि उसके नाम का ख़ुतबा नहीं पढ़ा जाता था और सिक्कों पर उसका नाम नहीं लिखा जाता था।"**

फर्रुखाबाद तथा कटेहर (Farukhabad & Katehar)—मुहम्मद खां नामक व्यक्ति ने फर्रुखाबाद तथा कानपुर एवं अलीगढ़ के मध्य के क्षेत्र पर स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। इस प्रकार रोहिला नेता दाऊद खां ने कटेहर में व उसके पुत्र मुहम्मद खां ने रुहेलखण्ड में स्वतन्त्र शासन करना आरम्भ कर दिया।

मालवा (Malwa)—औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मालवा का सूबेदार गिरधर बहादुर को बनाया गया था। **इसी समय मराठों ने मालवा पर आक्रमण कर मालवा के विभिन्न स्थानों को मुगल सत्ता से मुक्त कराया।**

गुजरात (Gujrat)—गुजरात में मुगलों के सूबेदार के रूप में अभयसिंह शासन कर रहा था। मराठों ने गुजरात पर भी आक्रमण किए व 1735 ई. तक गुजरात पर मराठों का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो गया।
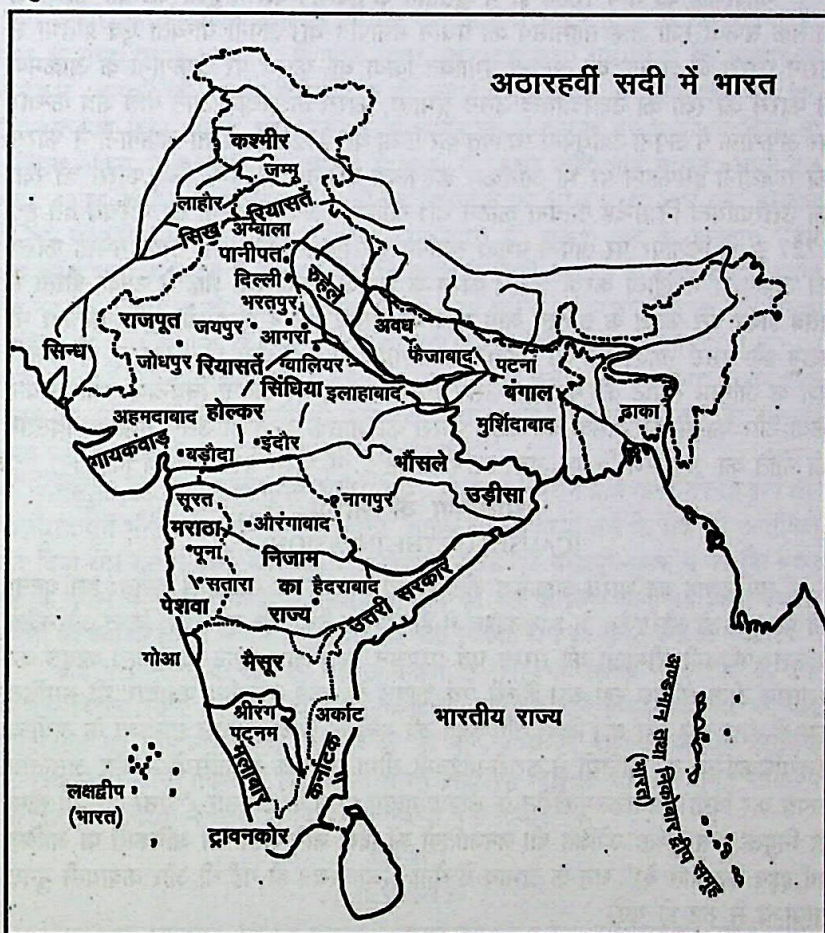
बंगाल (Bengal)—बंगाल का सूबेदार मुर्शिद कुली खां था। मुर्शिद कुली खां एक योग्य व्यक्ति था। उसने बंगाल में कुशलतापूर्वक शासन किया। 1727 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् मुर्शिद कुली खां का दामाद शुजाउद्दौला बंगाल का सूबेदार बना। शुजाउद्दौला ने बंगाल व उड़ीसा में स्वतन्त्र शासन की स्थापना की। शुजाउद्दौला के शासनकाल में बंगाल व उड़ीसा नाममात्र के लिए ही मुगलों के अधीन थे। शुजाउद्दौला की मृत्यु 1739 ई. में हुई। उसके पश्चात् उसका पुत्र सरफराज ख़ां बंगाल, उड़ीसा व बिहार का सूबेदार बना। सरफराज एक अयोग्य व्यक्ति था, अतः नायव सूबेदार अलीवर्दी खां सरफराज को परास्त कर बंगाल, उड़ीसा व बिहार का सूबेदार बन गया।

इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक अनेक राज्य शनैः-शनैः अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करते जा रहे थे जिससे मुगल साम्राज्य तीव्र गति से पतन की ओर अग्रसर हो रहा था।

नादिरशाह का अभियान (1738-39 ई.)
(INVASION OF NADIRSHAH)

नादिरशाह का जन्म 1688 ई. में खुरासान के तुर्कमान वंश में हुआ था। वह फारस के शासक सफवी रजा शाह तहमासप का प्रधान सेनापति था। अपनी योग्यता एवं प्रतिभा से उसने फारस के शासक को अत्यन्त प्रभावित किया था, फारस पर अफ़गानों के आक्रमण से फारस की रक्षा का उत्तरदायित्व उसने संभाला, फारस के अधीन आने वाले क्षेत्र कन्धार पर अफगानों ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। 1722 ई. में तो अफगानों ने फारस की राजधानी इसफहान पर भी अधिकार कर लिया था। नादिरशाह के लिए फारस की रक्षा का उत्तरदायित्व निःसन्देह अत्यन्त कठिन था। नादिर ने अपनी प्रतिभा का परिचय देते हुए 1727 ई. में निशापुर पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। शनैः-शनैः उसने समस्त फारस को अफगानों से खाली करवा लिया। **फारस के शासक सफवी रजा शाह ने उसकी वीरता से प्रसन्न होकर उसे फारस के लगभग आधे राज्य का शासन भार दे दिया और पूर्ण स्वतन्त्रता भी प्रदान की।** इससे नादिरशाह की महत्वाकांक्षा जाग्रत हो गई। जैसे ही 1736 ई. में सफवी वंश के अन्तिम सम्राट की मृत्यु हुई उसने समस्त फारस पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया और फारस का शासक बन बैठा। फारस का शासक बनते ही उसने साम्राज्य विस्तार की नीति का अनुसरण किया। अतः उसने 1738 ई. में भारत पर आक्रमण किया।

आक्रमण के कारण
(CAUSES OF THE INVASION)

नादिरशाह का भारत आक्रमण कोई अप्रत्याशित घटना नहीं थी। वस्तुतः इस घटना की पृष्ठभूमि तो औरंगजेब के शासनकाल में ही लगभग तैयार हो चुकी थी, किन्तु औरंगजेब ने उत्तर-पश्चिमी सीमाओं की सुरक्षा एवं प्रशासन पर विशेष ध्यान दिया था। काबुल का प्रशासन ठीक से चल रहा था। दिल्ली एवं काबुल के मध्य राजकीय पत्राचार भी समुचित रूप से ठीक चल रहा था। किन्तु औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल साम्राज्य के अयोग्य उत्तराधिकारियों की नीतियों ने उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त के निवासियों में घोर असन्तोष उत्पन्न कर दिया। सियारुलमुतखैरीन के लेखक गुलाम हुसैन के अनुसार, **"उत्तर-पश्चिमी सीमा पर नियुक्त सेना पूर्णतः उपेक्षित थी। जनजातियों को दिया जाने वाला धन अधिकारी या आश्रित वर्ग हड़प कर जाते थे।"** धन के अभाव में सेना अव्यवस्थित हो गई थी और कबायली मुगल साम्राज्य से रुष्ट हो गए।

उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त के निवासियों का असन्तोष निःसन्देह नादिरशाह के लिए अत्यन्त लाभप्रद हो सकता था। नादिरशाह के लिए कन्धार को जीतना अत्यन्त आवश्यक था क्योंकि कन्धार कभी भी उसके साम्राज्य की शान्ति को खतरा उत्पन्न कर सकता था। दूसरा बिना कन्धार पर अधिकार किए वह सफवी वंश का पूर्ण उत्तराधिकारी भी नहीं बन सकता था। इधर वह तुर्कों के विरुद्ध संघर्ष जारी रखना चाहता था। अतः इसके लिए उसे पर्याप्त धन की आवश्यकता थी। प्रोफेसर सतीश चन्द्र के अनुसार, **"तुर्कों के विरुद्ध युद्ध जारी रखने के लिए आवश्यक धन भारत पर आक्रमण करके ही प्राप्त किया जा सकता था, क्योंकि भारत में सोने-चांदी व हीरे-जवाहरात एवं अतुल धनराशि की ख्याति उस समय की पश्चिमी एशिया में पूर्ववत् थी।"**[1] इस प्रकार नादिरशाह का भारत पर आक्रमण करने का प्रमुख कारण उसकी

1 प्रो. सतीश चन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ. 212.

राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति थी। डॉ. सतीश चन्द्र के अनुसार, **"नादिरशाह के सम्मुख तैमूर एवं बाबर का उदाहरण था एवं मुगल दरबार की कमजोरी किसी से छिपी न थी, अतः भारत पर विजय कार्य कठिन नहीं था।"**[1]

नादिरशाह को अपने उक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भारत आक्रमण का बहाना भी मिल ही गया। उसने 1730 ई. में मुगल सम्राट मुहम्मदशाह को पत्र लिखा कि कन्धार के अफगान शासकों को काबुल में शरण न दी जाए। मुगल सम्राट ने नादिरशाह को पूर्ण आश्वस्त कर दिया, किन्तु जब 1737 ई. में नादिरशाह ने कन्धार पर आक्रमण किया तो कतिपय अफगानों ने गजनी एवं काबुल में शरण ली। इधर नादिरशाह ने पुनः अपने दूत मुगल सम्राट के पास भेजे। उसने मांग की कि अफगानों को शरण न दी जाए तथा हरजाने के रूप में नादिरशाह को 1 करोड़ रुपया दिया जाए। डॉ. सतीश चन्द्र के अनुसार, **"इस एक करोड़ रुपए के सन्दर्भ में यह कहा गया कि हुमायूं ने ईरानी सहायता के बदले प्रतिवर्ष रुपया देने का वचन दिया था जो मुगल बादशाह ने नहीं दिया था।"**[2] नादिरशाह के दूत एवं उसके साथियों के साथ अत्यन्त ही दुर्व्यवहार किया गया। मुगल सैनिकों ने जलालाबाद में दूत की हत्या भी कर दी। नादिरशाह इस व्यवहार से अत्यन्त रुष्ट हुआ, उसने लगभग 1 वर्ष तक उत्तर की प्रतीक्षा की और किसी भी प्रकार का उत्तर न पाने पर घोषणा की कि **"उसका मुख्य उद्देश्य मराठों से मुगल साम्राज्य की रक्षा करना है।"**[3]

वस्तुतः यह घोषणा तो मुगल अमीरों एवं वज़ीरों का समर्थन प्राप्त करने की योजना थी। बाजीराव एवं भौंसले के अभियानों ने दिल्ली, बंगाल एवं अयोध्या तक के क्षेत्र को आतंकित कर दिया था। रुस्तम अली के अनुसार, **"निजामुल-मुल्क एवं बरहानुल-मुल्क ने जो कि मुगल दल के प्रधान थे ईरानी बादशाह को नवीन साम्राज्य की नींव के लिए आमन्त्रित किया क्योंकि मुगलों की कमजोर स्थिति में भौंसले व मराठों की सत्ता स्थापित होने का खतरा उन्हें हो गया था।"**[4]

यदि परीक्षण किया जाए तो इस आमन्त्रण का कोई भी उल्लेख नादिरशाह के पत्रों में नहीं मिलता। यदि रुस्तम अली का उक्त कथन सही भी मान लिया जाए तो भी यदि नादिरशाह को निमन्त्रण न भी मिलता तो भी नादिरशाह की राजनीतिक एवं आर्थिक आवश्यकताएं इतनी प्रबल थीं कि उसका भारत आक्रमण निश्चित था। इसे मुगल साम्राज्य की जर्जरित अवस्था ने और अधिक अवश्यम्भावी बना दिया।

घटनाएं
(EVENTS)

11 जून, 1738 ई. को नादिरशाह ने गजनी को जीता तथा 29 जून को उसने काबुल पर अधिकार कर लिया। काबुल के शासक नासिर खां ने नादिरशाह के सम्मुख घुटने टेक दिए। तदुपरान्त लाहौर का पतन हुआ। अब नासिर खां एवं लाहौर के गवर्नर का समर्थन प्राप्त कर नादिरशाह दिल्ली की ओर बढ़ा। मुगल सम्राट 80,000 सैनिकों, निजा-मुल-मुल्क, खान दौरान एवं कमरुद्दीन के साथ नादिरशाह से लोहा लेने के लिए दिल्ली से चल पड़ा। दोनों सेनाओं के मध्य 24 फरवरी, 1739 ई. को करनाल नामक स्थान पर भयंकर युद्ध हुआ। **यह युद्ध इतिहास में करनाल के युद्ध के नाम से जाना जाता है।** यह युद्ध मात्र 3 घण्टे

1 वही।
2 वही, पृ. 214.
3 फ्रेजर, नादिरशाह, पृ. 138.
4 रुस्तम अली, तारीखे हिन्दी, पृ. 559.

चला। युद्ध में मुहम्मदशाह पराजित हुआ। खान दौरान दिवंगत हो गया। सआदत खां को बन्दी बना लिया गया। निजा-मुल-मुल्क ने नादिरशाह से मित्रता कर ली। 20 मार्च, 1739 ई. को नादिरशाह दिल्ली पहुंचा और अपने नाम का उसने खुतवा पढ़वाया। अपने नाम के सिक्के जारी करवाए। इस प्रकार मुगल सत्ता के स्थान पर फारसी सत्ता स्थापित हुई। नादिरशाह लगभग 2 माह तक दिल्ली में रहा और दो माह के पश्चात् उसने मुहम्मदशाह को पुनः मुगल सम्राट घोषित किया और 5 मई, 1739 ई. को दिल्ली से प्रस्थान किया, किन्तु मुगल सम्राट की पुत्री का विवाह नादिरशाह के पुत्र नासिरुल्लाह मिरजा से हुआ।

नादिरशाह के आक्रमण के परिणाम
(RESULTS OF THE INVASION OF THE NADIRSHAH)

नादिरशाह केवल लगभग 2 माह तक दिल्ली में रहा किन्तु उसके आक्रमण के अत्यन्त गम्भीर परिणाम निकले जो कि इस प्रकार हैं :

1. आर्थिक क्षति—नादिरशाह के आक्रमण का सबसे गम्भीर परिणाम आर्थिक क्षेत्र में दृष्टिगोचर हुआ। नादिरशाह अपने साथ लगभग 30 करोड़ रुपया नकद एवं सोना, चांदी, हीरे, जवाहरात, 100 हाथी,7,000 घोड़े, 10,000 ऊंट, संगतराश, राज, लोहार एवं बढ़ई, आदि ले गया। पंजाब के गवर्नर ने उसे 20 लाख रुपया प्रतिवर्ष देना स्वीकार किया। थट्टा का उपयोगी प्रान्त एवं बन्दरगाह उसे प्राप्त हुए। डॉ. सतीशचन्द्र के अनुसार, **"स्वयं बादशाह मुहम्मदशाह को कोहिनूर हीरा एवं अन्य राजसी हीरे-जवाहरात देने पड़े। वह तख्ते ताऊस (मयूर-सिंहासन) को भी साथ ले गया।"**[1]

नादिरशाह द्वारा की गई इस लूट-खसोट ने भारतीय व्यापार एवं वाणिज्य पर गम्भीर प्रभाव डाला। मुगलों का पीढ़ियों से संचित खजाना रिक्त हो गया। जर्जरित आर्थिक स्थिति ने सामन्तों में जागीरों के लिए संघर्ष को बढ़ा दिया।

2. जागीरों के लिए संघर्ष में वृद्धि—जर्जरित आर्थिक स्थिति ने धनाभाव को स्पष्ट कर दिया। धनाभाव की पूर्ति के लिए कृषकों से अधिकाधिक कर वसूलने की नीति अपनाई गई। इस वसूली ने सैन्य अभियान का रूप धारण कर लिया। अतः अब वसूली के इस अभियान ने एक संघर्ष को जन्म दे दिया। यह संघर्ष जागीरों की प्राप्ति के लिए संघर्ष था। कालान्तर में यह संघर्ष विजारत के लिए संघर्ष के रूप में सामने आया।

3. उत्तर-पश्चिमी सीमा का असुरक्षित होना—नादिरशाह के आक्रमण ने भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा को असुरक्षित बना दिया। सिन्धु नदी के चार प्रदेश अब भारत के हाथ से निकल गए। आने वाले वर्षों में उत्तर-पश्चिम से अनेक आक्रमण भारत में हुए।

4. सांस्कृतिक पतन—नादिरशाह के आक्रमण का प्रभाव सांस्कृतिक क्षेत्र में भी पड़ा। भारत में नादिरशाह के 2 माह के आततायी शासन में लूट-पाट, कत्लेआम का जो दौर चला उससे अराजकता फैल गई। ईरान व भारत के मध्य सांस्कृतिक सम्बन्धों में दरार पड़ गई। डॉ. सतीश चन्द्र के अनुसार, **"हो सकता है कि यातायात की सुविधाएं कम होने के कारण भारत के थल मार्ग के विदेशी व्यापार में कमी आ गई हो।"**[2]

5. सामरिक प्रभाव—नादिरशाह के आक्रमण का भारत पर सामरिक प्रभाव भी पड़ा। नादिरशाह ने अपने भारत अभियान में हल्की तोपों, जजायत एवं रहकला एवं शीघ्र चलने वाली बन्दूकों का प्रयोग किया था। इन सामरिक शस्त्रों की ओर यद्यपि मराठों ने विशेष ध्यान

1 डॉ. सतीश चन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ. 219.
2 डॉ. सतीश चन्द्र, उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, पृ. 222.

नहीं दिया किन्तु रुहेलों ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। कालान्तर में रुहेलों ने मराठों का सामना करने के लिए इन सामरिक शस्त्रों का प्रयोग किया। **निःसन्देह पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठों की पराजय का यह एक महत्वपूर्ण कारण सिद्ध हुआ।**

6. मुगल साम्राज्य का पतन—नादिरशाह के आक्रमण का मुगल साम्राज्य के पतन में कितना उत्तरदायित्व था? इस सन्दर्भ में इतिहासविदों में मतभेद है। मुगल साम्राज्य के पतन के लिए नादिरशाह के आक्रमण के उत्तरदायित्व का दावा करने वाले विद्वानों का तर्क है कि इस आक्रमण से साम्राज्य की शक्ति का खोखलापन स्पष्ट हो गया। सुदूर स्थित राज्यपालों ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। सिन्धु नदी के पश्चिम के क्षेत्र मुगल साम्राज्य से अलग हो गए। काबुल एवं अफगानिस्तान भी मुगल साम्राज्य से निकल गया।

किन्तु दूसरी ओर डॉ. सतीश चन्द्र का मानना है कि मुगल साम्राज्य के पतन के लिए नादिरशाह के आक्रमण को प्रमुख कारण नहीं माना जा सकता। डॉ. सतीश चन्द्र के अनुसार, **"यह कहना कि इसके बाद सूबेदार स्वतन्त्र हो गए तथा मुगल साम्राज्य की वास्तविक कमजोरी का रहस्य मराठों को मालूम हो गया ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। मराठों ने तो मुगल साम्राज्य की कमजोरी सबसे पहले समझ व परख ली थी। निजाम व बंगाल के सूबेदार जिस प्रकार शासन चला रहे थे उस पर आक्रमण का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।"**

इस प्रकार मुगल साम्राज्य के पतन के लिए नादिरशाह के आक्रमण को प्रमुख कारण नहीं माना जा सकता किन्तु इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि नई परिस्थितियों में विजारत की समस्या पुनः उठ खड़ी हुई।

7. यूरोपीय व्यापारियों की भारत में रुचि बढ़ जाना—नादिरशाह के आक्रमण का एक अन्य महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि अब मुगल साम्राज्य की कमजोरियों से अवगत होकर यूरोपीय व्यापारियों ने भारतीय राजनीति में रुचि लेना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार एक नए युग का बीजारोपण हो गया जिसकी परिणति वेलेजली द्वारा मराठों की पराजय के रूप में हुई।

नादिरशाह के आक्रमण के पश्चात् मुगल साम्राज्य
(MUGHAL EMPIRE AFTER THE INVASION OF NADIRSHAH)

नादिरशाह का आक्रमण मुगल साम्राज्य के लिए निःसन्देह एक भयंकर झटका था। नादिरशाह ने दिल्ली से लौटते समय मुहम्मदशाह को पुनः सम्राट के पद पर बैठा दिया था, किन्तु अब मुहम्मदशाह की स्थिति दरबार में पहले से निर्बल हो चुकी थी। उसके उत्तराधिकारी अहमदशाह एवं आलमगीर द्वितीय तो अत्यन्त दुर्बल सिद्ध हुए। वे 1748, 1749, 1752, 1756-57 एवं 1759 में उत्तर-पश्चिम की ओर से हुए अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों का सामना करने में असमर्थ रहे। शाह आलम द्वितीय (1759-1806 ई.) एवं उसके उत्तराधिकारी तो दरबारी अमीरों, मराठों एवं अंग्रेजों के हाथ के खिलौने बने रहे। राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त चतुर अंग्रेजों ने अस्ताचल की ओर जाते हुए मुगल साम्राज्य को उस समय ग्रस लिया जबकि 1803 ई. में उन्होंने दिल्ली पर अधिकार कर लिया किन्तु 1858 ई. तक वे द्वैध शासन बनाए रहे। **1858 ई. में पूर्ण सत्ता अपने हाथ में लेकर ब्रिटिश सरकार ने इस द्वैध शासन का भी अन्त कर दिया और अन्तिम मुगल सम्राट बहादुर शाह द्वितीय 'जफर' को रंगून निर्वासित कर दिया।**

प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. उत्तर मुगलकालीन युग पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए।
2. उत्तर मुगलकालीन राजनीति में सैयद बन्धुओं की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

3. सैय्यद बन्धुओं द्वारा विजारत के लिए किए गए संघर्ष का उल्लेख करते हुए उनके पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए।
4. सैय्यद बन्धुओं की विजारत का संक्षिप्त परिचय देते हुए उसके महत्व को इंगित कीजिए। साथ ही यह भी बताइए कि उनका पतन क्यों हुआ?
5. नादिरशाह के आक्रमण के कारण, घटनाओं एवं परिणामों पर प्रकाश डालिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नई विजारत के लिए संघर्ष पर प्रकाश डालिए।
2. सैय्यद बन्धुओं की उत्तरकालीन मुगल राजनीति में भूमिका की विवेचना कीजिए।
3. सैय्यद बन्धुओं के पतन के क्या कारण थे?
4. प्रान्तीय राज्यों की स्थापना पर प्रकाश डालिए।
5. नादिरशाह के आक्रमण के प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. नादिरशाह किस वंश का था :
   (अ) तुर्कमान (ब) मुगल (स) लोदी (द) तुगलक
2. नादिरशाह का जन्म किस वर्ष हुआ था?
   (अ) 1680 (ब) 1685 (स) 1688 (द) 1690
3. नादिरशाह के आक्रमण के समय मुगल शासक था :
   (अ) फर्रुखसियर (ब) मुहम्मदशाह (स) अहमदशाह (द) आलमगीर-II
4. सैय्यद बन्धुओं में एक अब्दुल्ला खां था। दूसरे का नाम था :
   (अ) महबूब ख़ां (ब) सैय्यद खां (स) हुसैन अली (द) अहमद शाह
5. अवध को मुगल दासता से मुक्त करने वाला व्यक्ति था :
   (अ) सैय्यद खां (ब) हुसैन अली (स) महबूब खां (द) मुहम्मद अमीन

[उत्तर—1. (अ), 2. (स), 3. (ब), 4. (स), 5. (द)।]

निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य दर्शाइए :

1. मुगलों के पतन के लिए औरंगजेब भी आंशिक रूप से उत्तरदायी था।
2. मुहम्मद मुअज्जम बहादुरशाह के नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ।
3. सैय्यद बन्धुओं ने सम्राट फर्रुखसियर की हत्या करवा दी।
4. नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण नहीं किया था।
5. सैय्यद बन्धु बसैत वंश के थे।

[उत्तर—1. सत्य, 2. सत्य, 3. सत्य, 4. असत्य, 5. सत्य।]

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :

1. सैय्यद बन्धुओं नें.....................ई. में फर्रुखसियर की हत्या करवा दी।
2. मुहम्मदशाह ने मुहम्मद अमीन को.....................की उपाधि दी थी।
3. बंगाल का सूबेदार.....................था।
4. नादिरशाह फारस के शासक का.....................था।
5. फारस के शासक का नाम.....................था।

[उत्तर—1. 1719 ई., 2. सादत खां बहादुर, 3. मुर्शिद कुली खां, 4. सेनापति, 5. रजा शाह।]

2

पानीपत का तृतीय युद्ध
[THE THIRD BATTLE OF PANIPAT]

1761 ई. में अहमदशाह अब्दाली, जो कि अफगान देश के कबीले का नेता था ने भारत पर पांचवीं बार आक्रमण किया। अब्दाली का यह आक्रमण विशेषकर मराठा साम्राज्य के विरुद्ध था।

पानीपत के तृतीय युद्ध के कारण
(CAUSES OF THE THIRD BATTLE OF PANIPAT)

पानीपत के तीसरे युद्ध के कारण निम्नलिखित थे :

(1) नादिरशाह के आक्रमणों द्वारा अब्दाली के आक्रमणों का मार्ग प्रशस्त—1739 ई. में नादिरशाह ने भारत पर सफल आक्रमण किया था। इस समय अहमदशाह अब्दाली उसका सेनापति बनकर आया था। इस समय अब्दाली ने मुगल सम्राट की शक्तिहीनता, अयोग्यता और मुगल साम्राज्य की ह्रासोन्मुखी हीन दशा को स्वयं देख लिया था अतः उसने यह अनुभव कर लिया था कि मूढ़, अकर्मण्य, मात्र कठपुतली मुगल सम्राट और जर्जरित, विशृंखलित मुगल साम्राज्य किसी भी प्रकार के सशक्त आक्रमण का सामना नहीं कर सकता। इससे अब्दाली भारत पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित हुआ। अतः नादिरशाह के आक्रमण से अब्दाली के लिए भारत अभियान का मार्ग प्रशस्त हो गया।

(2) मुगल दरबार का आन्तरिक संघर्ष—मुगल दरबार में ईरानी तथा हिन्दुस्तानी अमीरों के संकीर्ण दलों में परस्पर ईर्ष्या-द्वेष तथा प्रतिद्वन्द्विता थी। उनमें सत्ता, अधिकार और धन प्राप्ति के लिए परस्पर संघर्ष हो रहा था। **अतः मुगल साम्राज्य का बादशाह एकता के अभाव के कारण विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करने में असमर्थ था।** इन आन्तरिक दूषित दलबन्दियों और प्रबल प्रतिद्वन्द्विता ने विदेशियों को भारत पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया।

(3) मुगल साम्राज्य का निरन्तर विघटन—विभिन्न आन्तरिक मतभेदों एवं अयोग्य मुगल सम्राट के कठपुतली बन जाने से प्रभावशाली अमीरों और जमींदारों में प्रान्तीय सूबेदारों और शासकों में केन्द्रीय सत्ता से पृथक् होकर स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की प्रवृत्ति ने जन्म ले लिया था। **फलतः अवध, बंगाल, बुन्देलखण्ड, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, मालवा तथा दक्षिण के अनेक प्रान्त मुगल साम्राज्य से पृथक् होकर स्वतन्त्र हो गये थे।** इसी विघटनकारी प्रवृत्ति ने मुगल साम्राज्य को पतन के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया था जिसके कारण विदेशी आक्रमणकारियों का इस पतनोन्मुखी साम्राज्य पर आक्रमण करने हेतु उत्साह बढ़ गया था।

(4) मराठा-मुगल सन्धि (1752 ई.)—मराठों ने अपने राजनीतिक एवं आर्थिक लाभ के लिए दिल्ली वादशाह के वजीर सफदरजंग के माध्यम से अप्रैल 1752 ई. में मुगलों से सन्धि कर ली थी। इस सन्धि के द्वारा मुगल वजीर को अपने सैन्य बल को बनाए रखने तथा मुगल साम्राज्य की सुरक्षा का उत्तरदायित्व मराठों के कन्धों पर आ पड़ा था। 1752 ई. की इस सन्धि ने मुगल दरवार के अमीरों, सूबेदारों तथा अब्दाली के प्रति मराठा दृष्टिकोण को अत्यधिक प्रभावित एवं परिवर्तित किया। जव मराठों ने धन के लोभ में मुगल वजीर का समर्थन किया और उसके अस्तित्व को सुदृढ़ वनाए रखा, तब वजीर के विरोधी, मराठों के भी विरोधी बन गए। **मराठों ने एक मुगल सम्राट को हटाकर दूसरे को राजसिंहासन पर आसीन करने पर जोर दिया अर्थात् दिल्ली में होने वाली समस्त राजनीतिक क्रान्तियां और परिवर्तन मराठों के सैन्य बल की सहायता से हो रहे थे।** मराठों का यह राजनीतिक हस्तक्षेप लूटपाट एवं बड़ी-बड़ी धन की मांगों तक वढ़ गया था। ऐसी स्थिति में मुगल दरवार के विभिन्न मुस्लिम अमीर मराठों के इस अनैतिक हस्तक्षेप से छुटकारा पाने के लिए अहमद शाह अब्दाली को निमन्त्रण देने लगे थे।

(5) नजीबखां का अब्दाली को आमन्त्रण तथा अब्दाली की सहायता—उत्तर प्रदेश के दोआव में सहारनपुर का शासक नजीब, अफगान शासक अव्दाली से सम्बन्धित था। वह दिल्ली दरवार में मराठा समर्थक वजीर इमाद-उल-मुल्क तथा अन्य सरदारों का विरोधी था। 1752 ई. में मराठों ने रुहेलखण्ड तथा दोआव क्षेत्र में काफी लूटपाट मचायी जिसके कारण नजीव खां मराठों का कट्टर विरोधी हो गया अतः उसने मराठों को उत्तर भारत से खदेड़ने के लिए अब्दाली को आमन्त्रित ही नहीं किया अपितु भारत में अब्दाली के आने पर उसने मराठों के विरुद्ध विभिन्न रूप से सहायता और सहयोग भी दिया।

(6) मराठों की विस्तारवादी नीति—पेशवा वालाजी राव ने अपने सैनिकों की मदद से कर्नाटक में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था तथा दिल्ली पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर मुगल साम्राज्य के रक्षक के रूप में पंजाब तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमा क्षेत्र तक मराठा साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। उसका अप्रत्यक्ष लक्ष्य इन प्रदेशों में हिन्दू प्रभुत्व और प्रभाव को पुनः प्रतिष्ठित करना था। उसने मुगल सम्राट को अपने सैन्य बल पर अवलम्वित कर दिया था। पेशवा की पंजाव पार राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा के कारण अब्दाली से उसका सीधा संघर्ष हो गया। अतः मराठों की साम्राज्यवादी नीति ने ही उन्हें अब्दाली के विरुद्ध पानीपत के विनाशकारी युद्ध में ला खड़ा कर दिया।

(7) अहमदशाह अब्दाली की राजनीतिक महत्वाकांक्षा—अहमदशाह अव्दाली महत्वाकांक्षी विजेता था। उसने भारत के वाहर एक विशाल प्रदेश पर अपना कव्जा कर लिया था। इस विशाल विजित प्रदेश पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए उसे एक विशाल सेना की आवश्यकता थी और इस विशाल सेना के लिए उसे धन की आवश्यकता थी। अतः इस धन की उपलब्धि हेतु उसने भारत के सम्पन्न एवं समृद्ध प्रदेशों को लूटना चाहा क्योंकि इससे उसके राज्य की सीमा भी बढ़ती और उसकी धनलिप्सा तथा राजनीतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति होती।

(8) मराठों की अस्थिर एवं परिवर्तनशील राजनीति—उत्तरी भारत में मराठा राजनीति का सबसे बड़ा दोष यह था कि मराठे अपनी नीति को अपने हित के लिए निरन्तर परिवर्तित करते रहे। उन्होंने सम्राट, वजीर, रुहेले, अवध के सूबेदार, पंजाब में मुगल अधिकारियों, राजपूतों एवं जाटों के प्रति कोई ठोस, सुदृढ़ एवं स्पष्ट नीति नहीं अपनायी थी। उन्होंने अनेक

इलाकों में खूब लूटपाट मचायी तथा अनेक नरेशों से बलपूर्वक धन वसूल किया। दिल्ली की राजनीति में भी उन्होंने अवांछनीय हस्तक्षेप किया। इससे मराठों ने राजपूतों, जाटों, अवध के नवाव तथा रुहेलों की सहानुभूति खो दी। वे सव मराठों के घोर शत्रु हो गए और मराठों के विनाश के अवसर खोजने लगे।

(9) मराठा विरोधियों द्वारा अब्दाली को भारत आक्रमण का निमन्त्रण—मराठों के बढ़ते हुए राजनीतिक हस्तक्षेप एवं फैलते हुए प्रभुत्व के विरोध में रुहेला शासक नजीबुद्दौला और अवध के नवाव शुजाउद्दौला ने अहमद शाह अब्दाली को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया था। यही नहीं, वादशाह आलमगीर द्वितीय ने भी अब्दाली को लिखा कि वह भारत आकर उसे वजीर के पंजे से मुक्त करा दे। अतः अब्दाली ने इन निमन्त्रणों को स्वीकार करके भारत पर आक्रमण किया।

(10) युद्ध का तात्कालिक कारण—अहमदशाह अब्दाली ने अफगान रुहेला शासक नजीबुद्दौला को मुगल सम्राट के मीरवख्शी के पद पर नियुक्त किया था। वह अब्दाली का प्रतिनिधि था और दिल्लीं में उसे सर्वोच्च सत्ता प्रदान की गयी थी परन्तु मराठों ने दिल्ली पर आक्रमण करके उसे समझौता करने के लिए वाध्य किया। अन्त में उसे मराठों के सैनिक दवाव के कारण अपमानित होकर दिल्ली छोड़नी पड़ी। **इसके अतिरिक्त मराठों ने पंजाब की राजनीति में सक्रिय हस्तक्षेप कर पंजाब के सूबेदार अब्दाली के पुत्र तैमूर शाह और उसके सेनापति जहांखां को परास्त कर पंजाब से खदेड़ दिया और लाहौर व सरहिन्द को अपने अधिकार में ले लिया व अदीनावेग को अपनी ओर से लाहौर का सूबेदार नियुक्त किया।** इस प्रकार मराठों ने 1757 ई. में अब्दाली द्वारा दिल्ली व् पंजाब में स्थापित उसकी सर्वोच्च सत्ता को उलट दिया। इसी बीच दिल्ली में आलमगीर द्वितीय की हत्या कर दी गयी और मराठों ने हत्यारे का साथ दिया और नए बादशाह को समर्थन दिया। उपर्युक्त घटनाओं से अब्दाली मराठों से अत्यन्त चिढ़ गया था। अन्त में मराठों को दण्डित करने तथा उन्हें उत्तर भारत से भगाने के लिए अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया।

युद्ध की प्रमुख घटनाएं
(MAIN EVENTS OF BATTLE)

अहमदशाह अब्दाली ने 60 हजार सैनिकों के साथ भारत पर आक्रमण के लिए प्रस्थान किया। जून 1760 ई. में वुलन्दशहर के पूर्व में 40 किमी दूर अनूपशहर में पहुंच गया और यहां उसने अपना शिविर लगाया। यहां पर उसकी सेना के लिए धन एवं खाद्यान्न का भारी अभाव हो गया। उसके भारवाहक पशु बड़ी संख्या में मर गए। **अतः वह मराठों से समझौता कर अफगानिस्तान लौट जाना चाहता था, लेकिन नजीबुद्दौला नहीं चाहता था कि वह वापस लौट जाए।** अतः उसने अब्दाली की सहायता की। यहीं से अब्दाली सेना लेकर आगे बढ़ा और 25 अक्टूवर तक वह सोनीपत पहुंचा। तीन दिन में जमुना नदी पार कर 31 अक्टूबर को वह पानीपत से दक्षिण में 18 किमी दूर संभलका पहुंचा और 1 नवम्बर, 1760 को उसने पानीपत के समीप अपना सैनिक शिविर स्थापित कर लिया।

उधर सदाशिवराव भाऊ के नेतृत्व में मराठा सेना कुंजपुरा पर अधिकार कर 25 अक्टूबर को आगे वढ़ी और भाऊ अपनी सेना सहित 29 अक्टूवर, 1760 ई. को पानीपत पहुंच गया। पानीपत करनाल से 30 किमी दूर दक्षिण में और जमुना नदी से पश्चिम में दस किमी दूर है। इस समय पानीपत नगर की आवादी में मुसलमानों का वाहुल्य था।

इस प्रकार मराठा एवं अफगान दोनों सेनाएं पानीपत पहुंच गयीं। मराठों का सैनिक शिविर पानीपत शहर के उत्तर-पश्चिम एवं दक्षिण में था। इस शिविर के पश्चिम में शाह नहर थी। मराठा शिविर लगभग 4 किमी चौड़ा एवं दस किमी लम्बा था। इसके पीछे पानी की बाहुल्यता एवं सुरक्षा के लिए शाह नहर थी। अब्दाली ने अपना शिविर मराठों के शिविर के दक्षिण में लगभग 5 किमी दूर लगाया। उसने भी खाइयां खोदकर तथा पेड़ों को काटकर उनकी लकड़ी से अपने शिविर को सुरक्षित कर लिया। मराठों के पास इब्राहिम गार्दी के नेतृत्व में 200 भारी तोपें थीं। अब्दाली के पास ऐसी भारी तोपें नहीं थीं परन्तु उसके पास दो हजार हल्की तोपों का तोपखाना भी था।

युद्ध से पूर्व सैनिक झड़पें और मराठों की क्षति—अब्दाली और भाऊ दोनों की सेनाएं आमने-सामने खड़ी थीं। 1 नवम्बर, 1760 ई. से ही दोनों ओर से सैनिक झड़पें होने लगी थीं। 19 नवम्बर, 1760 ई. को अफगान एवं मराठा सैनिकों में पहली मुठभेड़ हुई। इस दिन इब्राहिम गार्दी के बन्धु फतेह अलीखां ने कुछ तोपों और सैनिकों को लेकर अकस्मात् अब्दाली के शिविर पर आक्रमण कर दिया पर वह परास्त होकर लौट आया। इसके तीन दिन बाद 22 नवम्बर की सन्ध्या को अब्दाली का वजीर वलीखां अपने कुछ सैनिकों को साथ लेकर मराठों के शिविर के पास पहुंच गया और वहां वह बावड़ी का निरीक्षण करने लगा। मराठों ने उसे पहचान कर उस पर आक्रमण कर दिया। नवम्बर की इन विजयों के बाद मराठों का मनोबल काफी ऊंचा हो गया।

लेकिन दिसम्बर में परिस्थितियां बदल गयीं। 7 दिसम्बर को मराठा सैनिक अपनी कुछ तोपों को दूसरे स्थानों पर व्यवस्थित करने के लिए ले जा रहे थे परन्तु सन्ध्या के समय नजीबुद्दौला के भाई सुल्तान खां ने अपने 15,000 सैनिकों के साथ इन मराठों पर आक्रमण कर दिया और उनको मराठा शिविर तक खदेड़ दिया। इस बीच दुश्मन की गोली लग जाने से मराठा सेनानायक बलवन्तराव मेहेन्दले की मृत्यु हो गयी। बलवन्तराव की मृत्यु से मराठों को भारी क्षति हुई तथा मराठा शिविर में निराशा छा गयी। सदाशिवराव भाऊ ने 55-वर्षीय गोविन्दपन्त को निचले दोआब में नियुक्त किया था ताकि वह दोआब में से बुन्देलों से धन एवं अन्न को एकत्र करके भाऊ को भेजे। **अतः गोविन्द पन्त ने दिल्ली के पूर्वी क्षेत्रों, सिकन्दराबाद एवं अन्य क्षेत्रों से जितना हो सके भाऊ को धन भेजा तथा साथ-ही-साथ अपनी सैनिक टुकड़ियों के साथ उसने जलालाबाद, गाजियाबाद, आदि क्षेत्रों में शत्रु के लिए अनेक परेशानियां उत्पन्न कर दीं जिसके परिणामस्वरूप अब्दाली के शिविर में खाद्यान्न नहीं पहुंच पाया और उसके सैनिकों की दशा दयनीय हो गयी।** अब्दाली भाऊ की साहसिक योजना तथा गोविन्दपन्त की सैनिक सरगरमी से भयभीत हो गया। अतः उसने मराठों की इन गतिविधियों को समाप्त करने के लिए अताई खां तथा करीम खां के नेतृत्व में बारह हजार सैनिक भेजे। 16 दिसम्बर को इस सेना की मुठभेड़ नरोशंकर की मराठा सैनिक टुकड़ी से हुई जिसमें मराठा सैनिक परास्त हुए। 17 दिसम्बर को भी एक अन्य मराठा सैनिक टुकड़ी को मार डाला गया। इसके बाद जलालाबाद में गोविन्दपन्त से टक्कर हुई। इस टक्कर में भी अफगान सैनिकों ने मराठा सैनिकों को परास्त कर दिया। गोविन्दपन्त को गोली लग जाने से उसकी मृत्यु हो गयी।

अपनी मृत्यु से पूर्व गोविन्दपन्त ने 4,20,000 रुपए एकत्रित करके दिल्ली के मराठा अधिकारी नरोशंकर को पानीपत में भाऊ के पास भेजने को दिए थे। इसमें से प्रथम किस्त जिसके 1,10,000 रुपए भाऊ को मिल गए थे। शेष धन राशि अब्दाली के हाथ लगी। इसके

बाद जनवरी के दूसरे सप्ताह में बीस हजार मराठा सैनिकों का अफगान सैनिकों द्वारा कत्लेआम किया गया जो कि पास के जंगल में लकड़ी एवं घास-चारा लेने गए थे। अब भाऊ की स्थिति बहुत गम्भीर हो गयी थी। अब्दाली ने पानीपत से दिल्ली व दक्षिण जाने वाले मार्ग बन्द कर दिए थे अतः भाऊ के शिविर में खाद्यान्न एवं घास-चारे का अभाव हो गया था। जनवरी 1761 ई. को तीव्र भूख से संतप्त दुःखी तथा असन्तुष्ट मराठा सैनिकों ने भाऊ से निवेदन किया कि भूख के कष्ट से मरने की अपेक्षा शत्रु से लड़कर मरने दें।

पानीपत का युद्ध (14 जनवरी, 1761)—अतः 14 जनवरी, 1761 ई. को प्रातः नौ बजे पानीपत का युद्ध आरम्भ हो गया और साढ़े तीन बजे तीसरे पहर समाप्त हो गया। इस **युद्ध में तीन दौर हुए—प्रथम दौर में जो कि प्रातः नौ बजे से दोपहर के बारह बजे तक चला, मराठों का पलड़ा भारी था। मराठों ने घमासान युद्ध करके अफगान सैनिकों के छक्के छुड़ा दिए। युद्ध का दूसरा दौर बारह बजे से ढाई बजे तक चला, इस दौर में मराठों का प्रबल प्रहार क्षीण हो गया और आमने-सामने घमासान युद्ध हुआ। अन्तिम दौर जो ढाई बजे से लगभग साढ़े तीन बजे तक चला, मराठों के लिए घातक सिद्ध हुआ और अन्त में वे परास्त होकर भाग गए।**

ऐसा अनुमान किया जाता है कि पानीपत के युद्ध में मराठों के तीस सहस्र सैनिक मारे गए और घायल हुए तथा अब्दाली के 20 सहस्र सैनिकों के अतिरिक्त अनेक घायल सैनिक कड़ाके की तेज ठण्ड में रणक्षेत्र में और आस-पास के इलाकों में मर गए। युद्ध के दूसरे दिन 15 जनवरी को अब्दाली ने पानीपत नगर की ओर बढ़ने और कत्लेआम के आदेश दिए। **फलतः पानीपत एवं उसके आस-पास के ग्रामों में लगभग 50 सहस्र लोगों का नृशंसता से कत्ल कर दिया गया।** इसके साथ ही मराठा शिविर में लूट हुई, इसमें अब्दाली को लगभग एक लाख भार वाहक पशु जिनमें 3,000 ऊंट और 300 हाथी भी थे हाथ लगे। इसके अतिरिक्त तोपें, बन्दूकें, भाले, तलवारें, ढालें और भारी मात्रा में युद्ध की सामग्री हाथ लगी। मीर तकी मीर ने 'मीर की आप बीती' में लिखा है कि **"दुर्रानी (अब्दाली) सिपांही जो महज फकीर थे, मालामाल हो गए।"**

रणक्षेत्र एवं मराठा शिविर से बचे हुए शेष सैनिक, उनके साथी और अनेक मराठा स्त्रियां जिनकी संख्या लगभग 20 हजार थी, भरतपुर में जाट नरेश सूरजमल के यहां पहुंचे जहां सूरजमल एवं उसकी किशोरी रानी ने उनके साथ अच्छा व्यवहार किया, उन्हें विशेष रूप से भोजन व वस्त्र दिए। अनेक का उपचार किया। पेशवा बाजीराव को, जब वह पूना से उत्तरी भारत आ रहा था, पानीपत के युद्ध में मराठा पराजय की खबर एक व्यापारी के पत्र से मिली, **"दो अमूल्य मोती टूट गए हैं, सत्ताईस स्वर्ण मुद्राएं खो गयी हैं, तथा नष्ट हुए चांदी एवं तांबे के सिक्कों की तो गणना ही नहीं की जा सकती है।"**[1]

पानीपत के तृतीय युद्ध के परिणाम
(RESULT OF THE THIRD BATTLE OF PANIPAT)

पानीपत के तृतीय युद्ध का भारतीय इतिहास में बड़ा महत्व है। इस युद्ध ने भारत में पूर्ण राजनीतिक परिवर्तन कर दिया। **पानीपत के तृतीय युद्ध के निम्नलिखित परिणाम हुए :**

(1) भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में मराठों के प्रभाव की समाप्ति—पानीपत के युद्ध ने निश्चय ही भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में मराठा प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचायी। मराठे अब निःशक्त समझे जाने लगे। इस युद्ध में मराठा जनसंख्या का अत्यधिक भाग नष्ट हो गया। जे. एन. सरकार

1 ग्राण्ट डफ, हिस्टरी ऑफ दि मराठाज, पृ. 62.

के अनुसार, **"इस युद्ध के कारण सम्पूर्ण मराठा जाति पर विपत्ति टूट पड़ी। पूरे महाराष्ट्र में ऐसा एक भी घर नहीं था जिसमें एक सदस्य की तथा कुछ में घर के प्रधान की क्षति पर शोक न मनाया गया हो।"** अतः पानीपत की तीसरी लड़ाई में हार जाने के पश्चात् पंजाब, दोआब, इत्यादि प्रदेश मराठों के आधिपत्य से पूर्णतः निकल गए और इस लड़ाई के वाद उत्तर भारत के भागों पर मराठा आधिपत्य धीरे-धीरे समाप्त हो गया।

(2) **मराठा सैन्य बल की अजेयता का खण्डन**—पानीपत के युद्ध से पूर्व मुगल सम्राट, प्रान्तीय सूबेदार, राजपूत, जाट तथा बुन्देले, आदि मराठों के सैन्य बल को अजेय मानते थे और उनसे सहायता की याचना करते थे, परन्तु पानीपत की पराजय से मराठों की सैनिक अजेयता का खण्डन हो गया। मराठों की सेना की अजेय शक्ति एवं धाक के प्रति इन जातियों के विश्वास एवं आस्था की समाप्ति हो गयी।

(3) **मराठा सहयोग मण्डल का अन्त और छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों का निर्माण**—पानीपत की लड़ाई का एक परिणाम यह हुआ कि पेशवा के प्रभुत्व का अन्त हो गया। अतः मराठा संघ और उसके सामन्त सदस्यों तथा अन्य सेनापतियों की शक्ति विघटित हो गयी, उनकी एकता और संगठन शिथिल हो गए तथा मराठा सामन्तों के आन्तरिक कलह में अधिक वृद्धि हो गयी। फलतः थोड़े ही समय में मराठा सामन्तों एवं सेनापतियों—सिन्धिया, होल्कर, भौंसले, गायकवाड़, पवार, आदि ने अपने छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिए। कुछ समय वाद पेशवा की केन्द्रीय शक्ति से भी वे स्वतन्त्र हो गए।

(4) **मुगल साम्राज्य का पतन**—यद्यपि अब्दाली ने शाह आलम द्वितीय को सम्राट मान लिया था परन्तु पानीपत के युद्ध के वाद नजीबुद्दौला दिल्ली का वास्तविक स्वामी बन गया तथा साम्राज्य की सर्वोच्च सत्ता और अधिकार उसने अपने हाथों में ले लिए। उसने बादशाह शाहआलम को दिल्ली में प्रवेश तक नहीं करने दिया। **दिल्ली के दक्षिण में सूरजमल जाट सबसे शक्तिशाली शासक था, उसने आगरा एवं मेवाड़ प्रदेश पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था**, नजीबुद्दौला से युद्ध करता हुआ वह मारा गया लेकिन सूरजमल का उत्तराधिकारी उसका पुत्र भी काफी शक्तिशाली प्रमाणित हुआ और उसने दिल्ली को घेर कर नजीबुद्दौला की शक्ति को नगण्य कर दिया। अतः दिल्ली में केन्द्रीय सत्ता की ऐसी दुर्दशा की स्थिति में मुगल बादशाह शाहआलम कभी मराठों की शरण में तथा कभी अंग्रेजों की शरण में इधर-उधर घूमता रहा। शाहआलम के शाही वंश के सदस्यों को अपने जीवन-निर्वाह हेतु बाद में पूर्णरूपेण महादजी सिन्धिया पर ही अवलम्बित रहना पड़ा। अतः इससे सम्राट की गौरव, गरिमा, प्रतिष्ठा, और सम्मान का अन्त हो गया।

(5) **अब्दाली की शक्ति का ह्रास**—अहमद शाह अब्दाली अपनी पानीपत विजय की सफलता का भोग करने में असमर्थ रहा। क्योंकि इस समय उसके विरुद्ध अफगानिस्तान एवं अन्य प्रदेशों में विद्रोह हो जाने से उसकी आर्थिक एवं सैनिक स्थिति डावांडोल हो जाने से उसे भारत से अपने देश को प्रस्थान करना पड़ा। फलतः उसके हाथ से सरहिन्द, पंजाब एवं सिन्ध पर स्थायी रूप से अधिकार करने का सुअवसर निकल गया। परिस्थितियां शीघ्र ही उसके प्रतिकूल हो गयीं तथा घटनाएं इतनी तीव्र गति से हुईं कि अब्दाली का भी अस्तित्व समाप्त हो गया। पानीपत की विजय उसके लिए विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं हुई।

(6) **सिखों, निजाम तथा हैदरअली का उत्कर्ष**—पानीपत के युद्ध का एक अप्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि मराठा, अब्दाली एवं मुगल जो कि पंजाब पर अपना आधिपत्य स्थापित

करने वाली प्रमुख शक्तियां थीं आपसी संघर्ष में समाप्त हो गयीं, अतः इस रिक्त स्थान की पूर्ति सिखों ने की। पंजाव में सिखों ने एक होकर मुगल सत्ता एवं अब्दाली की प्रभुता के विरुद्ध तीव्र विद्रोह करके अपनी सम्प्रभुता स्थापित कर ली। इसी प्रकार पानीपत के युद्ध के वाद यदि उत्तर में सिखों का उत्कर्ष हुआ तो दक्षिण में मराठों के शत्रुओं का उत्कर्ष हुआ। इनमें निजाम-उल-मुल्क तथा हैदरअली प्रमुख थे।

(7) ब्रिटिश राजसत्ता का उत्कर्ष—पानीपत के युद्ध ने अंग्रेजों को उनके शक्तिशाली एवं विश्वासघाती मराठा पड़ोसियों के आतंक व नियन्त्रण से मुक्त कर दिया। अतः इस युद्ध ने अंग्रेजों की सम्प्रभुता और सैन्य बल के प्रसार का मार्ग प्रशस्त किया, भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के द्वार को खोल दिया। इस युद्ध में मराठों एवं मुसलमानों ने एक-दूसरे को शक्तिहीन करके ब्रिटिश सत्ता का सामना करने हेतु स्वयं को असमर्थ कर दिया। निःसन्देह पानीपत की तीसरी लड़ाई भी अपनी पिछली दो लड़ाइयों की भांति भारत के इतिहास में निर्णायक रही। इस लड़ाई ने भारत में हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का अन्त करके ऐसे साम्राज्य की नींव डाली जो हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों के लिए असहनीय हो उठा। **वास्तव में 1757 ई. के प्लासी के युद्ध ने भारत में अंग्रेजी प्रभुसत्ता के बीज बो दिए थे और पानीपत के तृतीय युद्ध ने उस बीज को फलने-फूलने का अवसर प्रदान किया। इस प्रकार पानीपत की लड़ाई से आरम्भ हुआ भारतीय इतिहास का एक नया अध्याय पानीपत की लड़ाई से ही समाप्त हो गया और इस तीसरी पानीपत की लड़ाई ने पुनः एक नए इतिहास को जन्म दिया। सम्प्रभुता के संघर्ष में अंग्रेज एक नवीन भागीदार के रूप में प्रविष्टि हेतु आए और उन्हें सफलता मिली, इस प्रकार भारतीय इतिहास में एक नवीन मोड़ आया।**

पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठों की पराजय के कारण
(REASONS OF FAILURE OF MARATHAS IN THIRD PANIPAT BATTLE)

पानीपत के तृतीय युद्ध में अहमदशाह अब्दाली की विजय तथा मराठों की पराजय के निम्न कारण थे :

(1) मराठों की दोषपूर्ण सैन्य व्यवस्था—पानीपत के युद्ध के समय मराठों की पूर्व प्रचलित (शिवाजी के समय की) सैन्य व्यवस्था में काफी परिवर्तन हो गए थे। मराठा सेना में अनेक दोष एवं दुर्वलताएं आ गयी थीं **जिनमें से प्रमुख दोष निम्न थे :**

(i) शिवाजी के समय में मराठा सेना में हल्की एवं फुर्तीली पैदल सेना तथा तीव्रगति के अश्वारोही सैनिक थे, लेकिन वालाजी राव के समय में मराठा सेना का यह रूप वदल गया था, अव इस सेना में गैर-मराठी भाड़े के सैनिक भी भर्ती कर लिए गए थे। **अतः देशी-विदेशी सैनिकों के मिश्रण से सेना का स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय तथा संगठन ढीला-ढाला हो गया था।**

(ii) **मराठा तोपों की व्यवस्था ठीक नहीं थी, वे बहुत भारी थीं।** कभी-कभी तो एक तोप को खींचने के लिए लगभग 200 बैलों की आवश्यकता होती थी। इन भारी तोपों के गोले व वारूद की भी भारी कमी थी। पानीपत के युद्ध के दिन के पहले ही मराठों ने अपनी सुरक्षा हेतु की गयी गोलावारी में अपना अधिकतर गोला-वारूद समाप्त कर दिया था। युद्ध के समय इनका अभाव खलने लगा। मराठों के तोपखाने की तुलना में अब्दाली की सेना में सैकड़ों हल्की चौड़ी नाली वाली वन्दूकें थीं जो तेज दौड़ने वाले ऊंटों पर लादी गयी थीं। इनको चलाने के लिए 4,000 वन्दूकची ऊंटों पर सवार थे। इसके अतिरिक्त अब्दाली के पास 40 छोटी तोपें भी थीं। युद्ध के दौरान ऊंटों पर लदी हल्की तथा चौड़ी नाल वाली वन्दूकों को रणभूमि

में तीव्र गति से इधर-उधर ले जाया गया तथा उनसे चारों ओर मराठा सेना पर गोला-बारी की गयी।

(iii) **बालाजी विश्वनाथ द्वारा जागीरदारी प्रथा का पुनः प्रचलन करना भी मराठों की पराजय का एक कारण बना** क्योंकि इससे सामन्तों का उदय हुआ और ये सामन्त परस्पर ईर्ष्या-द्वेष रखते थे तथा राष्ट्रीय संकट के समय ये विभिन्न सामन्तों की सेनाएं एक ही सेनापति के अनुशासन एवं नियन्त्रण में युद्ध करने में असमर्थ थीं।

(iv) युद्ध के समय मराठा सैनिक धोती, सादे कुर्ते, पगड़ी या साफा पहने हुए थे। उनके पास भाले, तलवार या कटार होती थी। **उनकी शारीरिक सुरक्षा की व्यवस्था नहीं थी।** इसके विपरीत अब्दाली के सैनिकों ने मोटे कपड़े के पायजामे, लौह कवंच तथा शिरस्त्राण पहन रखे थे जिससे उनके ऊपर मराठों के भालों अथवा तलवारों की शीघ्रता से कोई असर नहीं होता था। अब्दाली के सैनिक श्रेष्ठ हथियारों से भी सुसज्जित थे। अब्दाली की सेना के पास पर्याप्त बन्दूकें थीं। अतः मराठों के शस्त्र लूटमार करने के लिए तो उपयुक्त थे परन्तु खुले मैदान में युद्ध करने के लिए उपयोगी नहीं थे।

(v) **खाद्यान्न का भीषण अभाव** भी मराठों की पराजय का एक प्रमुख कारण रहा। भूख तथा कड़ाके की ठण्ड के कारण अनेक मराठा सैनिक बीमार एवं क्षीणकाय होकर मर गए थे। रणभूमि में अब्दाली के युद्धरत प्रत्येक सैनिकों के पास भुना हुआ मांस और चमड़े के थैले में पानी था जबकि मराठा सैनिकों को युद्ध से दो दिन पूर्व से भोजन नहीं मिला था।

(vi) पेशवाओं के शासनकाल में शिवाजी के समय के दृढ़ सैनिक नियमों, श्रेष्ठ सिद्धान्तों, नैतिक आदर्शों, कठोर अनुशासन, इत्यादि सब समाप्त हो गए थे। अब **मराठा सैनिकों में उद्दण्डता एवं अनुशासनहीनता आ गयी थी।** मराठा सैनिक शिविरों में स्त्रियों को ले जाना स्वीकृत शिष्टाचार बन गया था। पानीपत के मराठा शिविर में अनेकानेक स्त्रियां रखैलें, पत्नियां, नृत्यांगनाएं तथा परिचारिकाएं थीं जो मराठा की पराजय का एक कारण बनीं।

(vii) मराठों की पराजय का एक कारण यह भी था कि **उनकी सेना में श्रेष्ठ एवं कुशल सेनापति का अभाव था।** सदाशिवराव भाऊ एक सुयोग्य, वीर सेनापति होते हुए भी अब्दाली की तुलना में कम योग्य था। भाऊ की तुलना में अब्दाली अधिक प्रतिभाशाली तथा उच्च व्यक्तित्व वाला सेनापति था। अब्दाली की सेना में जहांखां, शाह पसन्द खां, अतई खां, करीमदाद खां, बज़ीर खां, वली खां, जैसे कुशल एवं अनुभवी सेनापति एवं नजीबुद्दौला जैसे चालाक कूटनीतिज्ञ थे। अफगान सेनापतियों की तुलना में वृद्ध मल्हारराव, अन्ताजी मानकेश्वर, पीलाजी जाधव, सन्ताजी वाघ, यशवन्तराव पंवार, आदि निम्न स्तर के सेनापति थे।

(viii) **मराठों का छापामार युद्ध केवल दक्षिण के पठार के पर्वतीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त था।** पर्वतीय एवं सघन वन वाले क्षेत्रों में ही छापामार युद्ध सफलतापूर्वक लड़ा जा सकता था। उत्तरी भारत के चौड़े मैदानों में यह प्रणाली प्रभावी सिद्ध नहीं हो सकती थी।

(2) **मराठों की पराजय के लिए सदाशिवराव भाऊ का उत्तरदायित्व**—मराठों की पराजय का एक प्रमुख कारण सदाशिवराव भाऊ की विवेकहीन दूषित सामरिक नीति, उसका कठोर अहंकारी स्वभाव तथा त्रुटिपूर्ण सैनिक नेतृत्व था। उसकी अनेक भूलों से मराठों की पराजय अवश्यम्भावी हो गयी थी।

(i) भाऊ की पहली भूल यह थी कि उसने दिल्ली पर अधिकार करके वहां से निरन्तर खाद्य-सामग्री प्राप्त करने के लिए दिल्ली में पर्याप्त सेना सुरक्षा एवं व्यवस्था के लिए नहीं रखी

जिसका परिणाम यह हुआ कि अब्दाली और नजीब ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया और **दिल्ली से पानीपत जाने वाले मराठों के रसद मार्ग को काट दिया।**

(ii) भाऊ ने दिल्ली से आगे बढ़कर कुंजपुरा **पर अधिकार कर** अब्दाली के विशाल खाद्यान्न भण्डार पर अपना आधिपत्य तो स्थापित कर लिया था लेकिन **इसकी सुरक्षा के लिए उसने पर्याप्त सैनिक नहीं रखे** जिससे अब्दाली ने पुनः अपने भण्डार पर अधिकार कर लिया।

(iii) भाऊ ने कुंजपुरा की ओर प्रस्थान करने से पूर्व **स्त्रियों, बच्चों तथा असैनिकों को पीछे दिल्ली या भरतपुर भेज देने का कोई प्रयास नहीं किया।** इससे युद्ध के दौरान ये स्त्रियां एवं बच्चे भार बन गए और मराठे सेनानायक निश्चिन्त तथा निर्भय होकर युद्ध नहीं कर सके।

(iv) भाऊ जब पानीपत के शिविर में ठहरा हुआ था तब अब्दाली ने दिल्ली के रसद मार्ग काट दिए थे अतः उस समय **भाऊ ने अब्दाली के प्रमुख शत्रु सिखों से सम्पर्क स्थापित करके उनसे सहायता एवं सहयोग प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया।**

(v) पराजय होने पर सेना के सुरक्षित और व्यवस्थित रूप से पीछे हटने के लिए भी भाऊ ने **कोई निर्दिष्ट योजना नहीं बनायी थी।** सच तो यह है कि भाऊ ने किसी प्रकार की रणनीति या दांव-पेंचों का प्रयोग ही नहीं किया।

अतः उपर्युक्त दोषों एवं भूलों के कारण भाऊ पानीपत में मराठों की पराजय के लिए काफी उत्तरदायी था।

(3) दोषपूर्ण मराठा राजनीति—पेशवा बालाजी राव की अदूरदर्शिता और स्वार्थपरता की नीति के कारण उत्तर भारत के समस्त शक्तिशाली शासकों की सहानुभूति एवं सहयोग को मराठों ने खो दिया था। उत्तरी भारत में वार-वार सेनाएं भेजकर पेशवा ने वलपूर्वक शासकों से चौथ, सरदेशमुखी, खण्डगी, आदि के रूप में धन वसूल किया। राजपूत नरेशों को इस वात की आशा थी कि मराठे मुस्लिम शासकों से उनकी रक्षा करेंगे परन्तु मराठों ने ऐसा नहीं किया अपितु राजपूतों से अधिकाधिक धन वसूल किया। जाटों के प्रति भी मराठों की यही नीति रही अतः राजपूत एवं जाट मराठों से घृणा करने लगे थे।

मराठों ने अपनी धन वसूल करने की नीति से **अवध के नवाब शुजाउद्दौला को अपना शत्रु बना लिया था।** अतः शुजाउद्दौला भी मराठों के विरुद्ध अब्दाली से जा मिला। नजीवुद्दौला भी मराठों का पहले से ही कट्टर शत्रु था। लेकिन मराठा राजनीति का यह दोष था कि उन्होंने अपनी संकटापन्न स्थिति को तथा परिस्थिति व मांग को देखकर शत्रु पक्ष से समझौता नहीं किया। **पेशवा सरकार में वास्तविक राजनीति और कूटनीति का सर्वथा अभाव था।** उत्तरी भारत में स्वयं जाकर वहां की समस्याओं का समाधान करने में पेशवा असफल रहा। उत्तरी भारत में मराठों के सामने कई बार सन्धि एवं समझौतों के प्रस्ताव आए लेकिन मराठों ने इन्हें ठुकरा दिया।

(4) मराठों द्वारा सुरक्षा की अपर्याप्त व्यवस्था—मराठों की एक बड़ी भारी भूल यह थी कि उन्होंने उत्तरी भारत में अपने अधीनस्थ प्रदेशों की सुरक्षा के लिए पर्याप्त सेना नहीं रखी। इस भूल को मराठे 1751 ई. से ही करते चले जा रहे थे। इसी के दुष्परिणाम पानीपत में मराठों की पराजय थी। मुगल दरवार में नियुक्त पेशवा के वकील तापूजी महादेव हिंगणे ने 1751 ई. में ही दिल्ली में एक शक्तिशाली मजवूत मराठा सेना रखने पर वल दिया था। इसके लिए उसने पेशवा से प्रार्थना भी की, पर पेशवा ने इसकी उपेक्षा की। **चार वर्ष बाद उत्तर भारत में नियुक्त मराठा अधिकारी गोविन्दपन्त ने भी पेशवा से यह दृढ़ प्रार्थना की कि वह उत्तरी भारत में**

मराठों की श्रेष्ठ एवं नियन्त्रित 20 हजार की सेना रखे। पर यह निवेदन भी ठुकरा दिया गया। अतः दिल्ली में मराठों की पर्याप्त एवं शक्तिशाली सेना न होने पर अब्दाली ने दिल्ली पर सरलता से अधिकार कर लिया। इसके बाद मराठा सैनिकों ने दिल्ली से दूर पंजाब तथा सीमान्त क्षेत्र तक मराठा साम्राज्य का विस्तार किया लेकिन उस क्षेत्र में भी अपना प्रभुत्व बनाए रखने के लिए पेशवा ने शक्तिशाली सेना की नियुक्ति नहीं की। अतः ऐसी नीति का परिणाम मराठों के लिए विनाशकारी हुआ क्योंकि जैसे ही अब्दाली ने भारत पर आक्रमण हेतु पंजाब में प्रवेश किया इधर-उधर नियुक्त मराठा सैनिक टुकड़ियां अफगानों द्वारा परास्त कर दी गयीं। मराठे अब्दाली की सेना का सामना नहीं कर सके। इसके बाद विभिन्न युद्धों में मराठों की निरन्तर पराजय होती गयी जिसका अन्तिम चरण पानीपत की पराजय थी।

(5) **नजीबुद्दौला की मराठों से शत्रुता**—मराठों की नजीब से शत्रुता भी उनके लिए विनाशकारी सिद्ध हुई। नजीब मराठों का घोर शत्रु होने के कारण पानीपत का युद्ध होने से बहुत पहले ही मराठा विरोधी गतिविधियों में सतत् संलग्न रहा तथा अब्दाली को निरन्तर मराठों की सैनिक और राजनीतिक गतिविधियों की सूचनाएं भेजता रहा। **उसने मराठों के साथ विश्वासघात करके अब्दाली और मराठों के बीच प्रस्तावित सन्धि की शर्तों को बार-बार अपने प्रभाव एवं दबाव से अब्दाली द्वारा अस्वीकृत करवा दिया।** घोर शत्रुता के कारण नजीबुद्दौला ने दोआब और दिल्ली से मराठों को रसद प्राप्त होने के सभी मार्ग कटवा दिए परन्तु दूसरी ओर वह अब्दाली को पर्याप्त खाद्यान्न एवं यथेष्ट धन से निरन्तर सहायता देता रहा। प्रतिहिंसा से प्रेरित होकर नजीबुद्दौला ने कूटनीति से शुजाउद्दौला को अब्दाली के पक्ष में कर लिया तथा नजीबुद्दौला एवं शुजाउद्दौला दोनों अपनी-अपनी सेनाओं सहित अब्दाली से जा मिले। इससे अब्दाली की सेना लगभग दुगुनी हो गयी जो कि मराठों के विनाश का कारण बनी।

(6) **मराठों की तुलना में अब्दाली श्रेष्ठ सेनापति**—पानीपत के युद्ध में भाऊ की तुलना में अब्दाली अधिक श्रेष्ठ सेनापति था। मराठों की पराजय का एक प्रमुख कारण अब्दाली का श्रेष्ठ सेनानायकत्व था। **वह अपने समय का योग्य रणनीतिज्ञ तथा भाऊ की तुलना में अधिक वीर, साहसी, सुयोग्य एवं अनुभवी था। अब्दाली को विभिन्न देशों की रण-प्रणालियों का और सैन्य संचालन का श्रेष्ठ अनुभव था।** पानीपत के रणक्षेत्र में भी उसके व्यूह-रचना श्रेष्ठ थी। उसने विभिन्न सैनिक दलों में पूर्ण सहयोग और समन्वय स्थापित किया था जिससे कि वे मराठा सैनिकों से डटकर युद्ध कर सकें। इसके अतिरिक्त, अब्दाली ने सबसे बड़ी कुशलता का काम यह किया कि उसने दस सहस्त्र सैनिक सेना के पीछे सुरक्षित रूप से खड़े रखे थे। जब मराठों के प्रबल प्रहार से उसकी सेना विचलित हो गयी, तब उसने इन ताजे सैनिकों को युद्ध में झोंक दिया। अतः इससे विजयश्री मराठों के पास जाते-जाते अब्दाली के पास चली गयी। अब्दाली युद्ध का निरीक्षण और संचालन स्वयं घूम-घूम कर करता रहा और सैनिकों को प्रेरित करता रहा लेकिन भाऊ ने ऐसा नहीं किया।

(7) **मुस्लिम अमीरों द्वारा अब्दाली की सहायता**—अवध के सूबेदार शुजाउद्दौला, अफगान शासक नजीबुद्दौला एवं अन्य प्रभावशाली अमीर मराठों के विरुद्ध होकर अपनी सेनाओं सहित अब्दाली से जा मिले और उन्होंने युद्ध में सक्रिय भाग लिया। इस समय उत्तरी भारत के सभी मुसलमान शासकों और अधिकारियों ने इस्लाम के नाम पर अब्दाली का साथ दिया।

इस प्रकार पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठों की पराजय के कारण निःसन्देह मराठों का दोषपूर्ण सेनानायकत्व, गलत सैन्य संचालन, धन एवं अन्न का अभाव तथा भारतीय

मुसलमानों द्वारा अव्दाली को सहयोग, इत्यादि थे। वास्तव में अब्दाली की उत्तम युद्ध नीति तथा दांव-पेंच ने मराठा जीत के अवसर कम कर दिए।

प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. पानीपत के तृतीय युद्ध के कारणों व परिणाम का वर्णन कीजिए।
2. पानीपत के युन्ध के कारणों पर प्रकाश डालिए।
3. पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठों की पराजय के कारण वताइए।
4. पानीपत के तृतीय युद्ध में अहमद शाह अव्दाली की विजय के कारणों पर प्रकाश डालिए।
5. पानीपत के युद्ध के प्रमुख कारणों व घटनाओं का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. पानीपत के तृतीय युद्ध के कारण वताइए।
2. पानीपत के तृतीय युद्ध के प्रमुख घटनाएं वताइए।
3. पानीपत के तृतीय युद्ध के प्रभावों पर प्रकाश डालिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. दुर्रानी कहा जाता है :
   (अ) नजीव खां (व) नजीवुद्दौला
   (स) अहमदशाह अव्दाली (द) मुहम्मदशाह
2. पानीपत का तृतीय युद्ध किस वर्ष हुआ था?
   (अ) 1526 ई. (व) 1556 ई. (स) 1576 ई. (द) 1761 ई.
3. पानीपत का तृतीय युद्ध अहमदशाह अव्दाली ने किससे लड़ा था?
   (अ) सिक्खों से (व) जाटों से (स) मराठों से (द) बंगाल के नवाव से
   [उत्तर—1. (स), 2. (द), 3. (स)।]

निम्नलिखित वाक्यों में सत्य/असत्य दर्शाइए :

1. पानीपत के तृतीय युद्ध का तात्कालिक कारण तैमूर शाह व जहां खां को पंजाव से निष्कासित करना था।
2. तैमूर शाह अहमदशाह अव्दाली का पुत्र था।
3. अहमदशाह अव्दाली नादिरशाह का पुत्र था।
4. नजीव खां ने अहमदशाह अव्दाली की सहायता की थी।
5. नजीव खां युद्ध के समय मुगल शासक था।
   [उत्तर—1. सत्य, 2. सत्य, 3. असत्य, 4. सत्य, 5. असत्य।]

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :

1. अहमदशाह अव्दाली की सहायता .... ने की।
2. पानीपत का युद्ध .... जनवरी 1761 ई. को हुआ।
3. इस युद्ध में मराठा सेनापति .... था।
4. इस युद्ध में विजय से अव्दाली के सैनिक .... हो गए।
5. मराठा .... युद्ध में निपुण थे।
   [उत्तर—1. नजीवुद्दौला, 2. 14, 3. सदाशिरावभाऊ, 4. मालामाल, 5. छापामार।]

3

आंग्ल-फ्रांसीसी प्रतिस्पर्धा एवं क्लाइव

[ANGLO-FRENCH RIVALRY AND CLIVE]

फ्रांसीसियों का भारत में आगमन
(ADVENT OF THE FRENCH IN INDIA)

यूरोप के प्रमुख देशों में भारतीय व्यापार की जो प्रतिस्पर्धा हो रही थी उसमें फ्रांसीसी सबसे पीछे आए। यद्यपि 1611 ई. में फ्रांसीसियों की पहली कम्पनी स्थापित हुई थी, जिसका एकमात्र उद्देश्य मेडागास्कर में उपनिवेश स्थापित करना था, परन्तु कई कारणों से वह कम्पनी सफल न हो सकी। अन्त में फ्रांसीसी सम्राट लुई चौदहवें (Louis XIV) के मन्त्री कोलवर्ट के अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप 1664 ई. में **फ्रांसीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनी** की स्थापना की गयी। इस कम्पनी पर फ्रांसीसी सरकार का पूर्ण नियन्त्रण था। 1667 ई. में फ्रांसिस केरन (Francis Caron) की अध्यक्षता में एक अभियान दल भारत पहुंचने में सफल रहा। 1668 ई. में इस अभियान दल ने सूरत में अपना पहला कारखाना स्थापित किया। 1669 ई. में फ्रांसीसियों ने भारत के पूर्वी तट पर स्थित **मसौली पट्टम** नामक स्थान पर एक फैक्टरी लगायी और फ्रांसिस मार्टिन को भारत में स्थित इन उपर्युक्त दो फ्रांसीसी बस्तियों का अध्यक्ष बना दिया।

फ्रांसीसी शक्ति का विस्तार (Expansion of the French Power)—फ्रांसिस मार्टिन ने पद संभालते ही भारत में फ्रांसीसी शक्ति का विस्तार करना आरम्भ कर दिया। फ्रांसिस मार्टिन के नेतृत्व में फ्रांसीसियों ने तंजौर के शासक से मद्रास से लगभग 15 मील दक्षिण में स्थित एक स्थान प्राप्त किया और 1679 ई. में वहां पाण्डेचेरी की स्थापना की जो शीघ्र ही भारत में फ्रांसीसी बस्तियों का केन्द्र वन गया। अतः फ्रांसिस मार्टिन भारत में फ्रांसीसी बस्तियों का वास्तविक संस्थापक था। **बंगाल में फ्रांसीसियों ने मुगल गवर्नर शाइस्ता खां से भूमि प्राप्त करके** 1690-92 ई. **में चन्द्रनगर की प्रसिद्ध वस्ती की स्थापना की।** इसी वीच डचों एवं फ्रांसीसियों के मध्य संघर्ष आरम्भ हो गया। अतः 1693 ई. में पाण्डेचेरी पर डचों ने अधिकार कर लिया। इस वस्ती पर पांच वर्ष तक डचों का अधिकार रहा तथा सन् 1697 ई. में **रिजविक की सन्धि** (Treaty of Rizwick) के अनुसार पाण्डेचेरी पुनः फ्रांसीसियों को प्राप्त हो गयी। मार्टिन को पुनः इस बस्ती का गवर्नर बनाया गया और 1706 ई. में मृत्यु तक मार्टिन ने पाण्डेचेरी को इतना समृद्धशाली बना दिया था कि कलकत्ता उससे काफी पीछे रह गया।

1706 ई. से 1720 ई. तक लगभग चौदह वर्षों तक फ्रांसीसी कम्पनी भारत में अधिक सफल नहीं रही। फ्रांसीसियों को सूरत तथा मसौली पट्टम में स्थित अपनी फैक्टरियों को बन्द

करना पड़ा। इसका मुख्य कारण फ्रांस की आन्तरिक अव्यवस्था थी। 1720 ई. के पश्चात् फ्रांसीसी कम्पनी ने पुनः प्रगति की। 1720 ई. से 1742 ई. **तक पाण्डेचेरी के नए गवर्नर लिनायर (Linair) और ड्यूमा (Dumas) के नेतृत्व में फ्रांसीसी कम्पनी ने विशेष उन्नति की।** इस काल में फ्रांसींसी कम्पनियों ने मालावार के तट पर माही (Mahi), कारोमण्डल तट पर कारीकल में अपनी वस्तियां स्थापित कीं। 1742 ई. तक फ्रांसीसियों का मुख्य उद्देश्य केवल भारत में व्यापार करना था, लेकिन 1742 ई. के वाद फ्रांसीसी कम्पनी के उद्देश्य बदल गए वह अव साम्राज्यवादी वन गयी क्योंकि इसी वर्ष डूप्ले फ्रांसीसी कम्पनी का गवर्नर बनकर आया और उसके नेतृत्व में फ्रांसीसियों ने अपनी शक्ति का ख़ूव विस्तार किया। अतः इसी साम्राज्यवादी नीति के कारण फ्रांसीसियों एवं अंग्रेजों में संघर्ष होना आवश्यक हो गया।

भारत में अंग्रेजों का आगमन
(ADVENT OF THE BRITISH IN INDIA)

अन्य यूरोपीय जातियों के समान अंग्रेज भी पूर्वी देशों के बीच व्यापार करने के इच्छुक थे। इंगलैण्ड की वह प्रथम यूरोपीय शक्ति थी जिसने 1582 ई. में अन्तरीप (केप) की परिक्रमा करते हुए आगे वढ़कर सागर में पुर्तगाली एकाधिकार को भंग किया। इस अभियान के अध्यक्ष एडवर्ड फेंटन थे। पी. ई. राबर्ट्स के अनुसार, **"थॉमस स्टीफन प्रथम अंग्रेज था जिसे भारतवर्ष की भूमि पर वसने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। 1579 ई. में वह गोवा स्थित जेसूत कॉलेज का प्राध्यक्ष (रेक्टर) नियुक्त हुआ।"**[1]

1583 ई. में फिच और न्युवरी नामक दो अंग्रेज व्यापारी लीड्स (हीरे-जवाहरात का विक्रेता) तथा स्टोरी (चित्रकार) के साथ स्थल मार्ग से भारत के लिए इंगलैण्ड से रवाना हुए। ओर्मुज पहुंचने पर पुर्तगालियों ने उन्हें गिरफ्तार करके गोवा भेज दिया। कैद से मुक्त होने के पश्चात् स्टोरी तो पादरी बन गया तथा न्युवरी की मृत्यु हो गयी। लीड्स मुगल सेना में चला गया, किन्तु फिच वंगाल, बर्मा, मलाया तथा श्रीलंका की सफल यात्रा करके 1591 ई. में इंगलैण्ड पहुंच गया। इंगलैण्ड पहुंचकर फिच ने भारत की विशाल सम्पत्ति, उसके गौरव तथा अन्य अनेक आकर्षणों का वर्णन किया, इससे अंग्रेजों को पूरब की ओर व्यापार करने की प्रेरणा मिली।

1588 ई. में अंग्रेजी सेना द्वारा स्पेन के जहाजी बेड़े को पराजित कर देने से रानी एलिजावेथ का साहस वढ़ा तथा अंग्रेजी जनता में भी वीरता एवं साहस की भावना जाग्रत हुई। अतः सरकार की ओर से कुछ व्यापारियों को अन्तरीप (केप) के रास्ते समुद्र-यात्रा करने की अनुमति मिल गयी।

अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना—सरकारी आदेश मिल जाने पर अनेक अंग्रेज नाविकों ने सामुद्रिक यात्राएं कीं। 1561 ई. के बीच जेम्स लंकास्टर **कुमारी अन्तरीप** (Cape of Good Hope) और **पेनामा** पहुंचा। 1599 ई. में बेंजामिन ऊड के अधीन जहाजों का एक बेड़ा पूर्व की ओर रवाना हुआ। 1599 ई. में लन्दन का एक व्यापारी जॉन मिल्डेनहौज स्थल मार्ग से भारत आया तथा पूर्व में सात वर्ष रहा, लेकिन इंगलैण्ड की व्यापारिक समृद्धि हेतु सवसे महत्वपूर्ण कदम 31 दिसम्बर, 1600 ई. को उठाया गया। इस स्मरणीय दिन एक सौ व्यापारियों ने लन्दन में **ईस्ट इण्डिया कम्पनी** की स्थापना की। उन्होंने इस कम्पनी का नाम **'द गवर्नर एण्ड कम्पनी ऑफ मर्चेण्ट्स ऑफ लन्दन ट्रेडिंग इनटू द ईस्ट इण्डिया'** (The Governer

1 पी. ई. रॉवर्ट्स, ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास, पृ. 14.

and Company of Merchants of London Trading into the East India) रखा। इंगलैण्ड की महारानी एलिजावेथ प्रथम ने भी इन व्यापारियों को अपना पूर्ण समर्थन एवं सहयोग दिया और कम्पनी को पन्द्रह वर्षों के लिए पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने का एकाधिकार प्रदान किया। **इंगलैण्ड के इतिहास में इस कम्पनी की स्थापना एक महत्वपूर्ण घटना है, क्योंकि इसी के प्रयास के फलस्वरूप आगे चलकर भारत में विशाल भारतीय साम्राज्य की स्थापना हुई।**

अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी का विकास
(EXPANSION OF EAST INDIA COMPANY)

प्रारम्भिक कठिनाइयां तथा प्रयास (Early Problems and Efforts)

. 1600 ई. में **ईस्ट इण्डिया कम्पनी बनी।** प्रारम्भिक वर्षों में इस कम्पनी को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। आरम्भ में अंग्रेज व्यापारियों ने जेम्स लंकास्टर तथा मिडल्टन की अध्यक्षता में पहली दो यात्राएं पूर्वी द्वीपों (गर्म मसालों के द्वीपों) की ओर कीं लेकिन डच लोग पहले ही वहां अपना अधिकार बनाए हुए थे अतः अंग्रेजों को यहां सफलता नहीं मिली। अतः अंग्रेज व्यापारियों ने भारत की ओर अपना ध्यान लगाया। विलियम हॉकिन्स के नेतृत्व में तीसरी व्यापार यात्रा ने सूरत में अपना डेरा डाल दिया।

मुगल राजसभा में हॉकिन्स—1609 ई. में हॉकिन्स (Hawkins) को अंग्रेज कम्पनी के लिए व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त करने हेतु मुगल सम्राट् जहांगीर के पास राजदूत बनाकर भेजा गया। सम्राट् जहांगीर हॉकिन्स से काफी प्रसन्न हुआ। उसने हॉकिन्स को **इंगलिश खां** की उपाधि देकर आर्मिनिया की एक स्त्री के साथ उसका विवाह कर दिया। हॉकिन्स पर बादशाह की कृपादृष्टि देखकर पुर्तगाली काफी अप्रसन्न हुए, अतः उन्होंने शाही दरबार के अमीरों को अपनी ओर मिलाकर अंग्रेजों को निकाल वाहर करने करने का षड्यन्त्र रचा और सफल भी हो गए। अतः सम्राट् जहांगीर ने अंग्रेजों को किसी भी प्रकार की व्यापारिक सुविधा देना अस्वीकार कर दिया। हॉकिन्स निराश होकर सूरत वापस आ गया और 1612 ई. में इंगलैण्ड वापस चला गया।

अंग्रेजों का पुर्तगालियों से संघर्ष—हॉकिन्स के इंगलैण्ड वापस जाने से पूर्व ही कुछ अंग्रेज व्यापारी भारत आ चुके थे, अतः पुर्तगालियों ने उनका भी दृढ़तापूर्वक विरोध किया। 1611 ई. में एक पुर्तगाली वेड़े ने सर हेनरी मिडल्टन को ताप्ती नदी के मुहाने में प्रवेश करने से रोका। 1612 ई. में टामस वेस्ट **स्वेली होल** (Swally Hole) में कम्पनी का जहाज लेकर उतरा। अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित पुर्तगालियों ने उस पर आक्रमण कर दिया, लेकिन पुर्तगालियों को पराजय का मुंह देखना पड़ा।

वास्तव में '**स्वेली होल का युद्ध** (Battle of Swally Hole) भारतीय युद्धों में झड़यार और प्लासी के युद्धों के समान ही भाग्य निर्णायक संग्राम था। इसने अंग्रेजों को भारत में पैर रखने की जगह दिला दी। इस विजय से भारतीय व्यापारियों की नजरों में अंग्रेजों के सम्मान में वृद्धि हो गयी और उनके लिए व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त करने का मार्ग भी प्रशस्त हो गया। **मुगल सम्राट् जहांगीर ने एक आदेश द्वारा अंग्रेजों को सूरत में स्थायी रूप से एक कारखाना स्थापित करने की आज्ञा दे दी।** अतः अब धीरे-धीरे अंग्रेज भी भारत के आन्तरिक भागों में व्यापार करने लगे और यहां पर बसने भी लगे।

सर टॉमस रो—टॉमस रो के आगमन से पूर्व अंग्रेज पुर्तगालियों पर एक विजय तो प्राप्त कर चुके थे। इंगलैण्ड के शासक जेम्स प्रथम (James I) ने 1613 ई. में सर टॉमस रो को मुगल सम्राट् जहांगीर के दरवार में भेजा। सर टॉमस रो का व्यक्तित्व अत्यन्त ही आकर्षक था और उसने मुगल दरवार में शीघ्र ही अपना स्थान वना लिया। **उसने नूरजहां के भाई आसिफ खां जैसे प्रभावशाली दरवारी से मित्रता कर ली और इस मित्रता के बल पर ही उसने शहजादा खुर्रम (वाद में शाहजहां) से एक आदेश जारी कराकर अंग्रेजों के लिए सूरत, आगरा, अहमदाबाद तथा भड़ौंच में कारखाने बनाने की अनुमति प्राप्त कर ली।** इस प्रकार रो का मुगल दरबार में राजदूत बनकर जाना भारत के आन्तरिक प्रदेशों में कम्पनी के विकास के इतिहास में महत्वपूर्ण घटना थी।

1619 ई. से 1650 ई. तक कम्पनी का विकास
(GROWTH OF COMPANY FROM 1619 TO 1650)

सर टॉमस रो के मिशन के पश्चात् 17वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक अंग्रेजों ने भारत में धीरे-धीरे अपने पैर जमाने आरम्भ कर दिए। 1611 ई. में डचों की देखा-देखी अंग्रेजों ने भी गोलकुण्डा के प्रधान वन्दरगाह **मसौली पट्टम** (Masauli Pattam) में अपना एक कारखाना खोल दिया। 1622 ई. में पुर्तगालियों को सामुद्रिक युद्ध में हराकर अंग्रेजों की शक्ति की धाक फारस की खाड़ी में भी जम गयी।

1626 ई. में मसौली पट्टम से थोड़ा दक्षिण में स्थित अमर गांव (Amar Gaon) नामक स्थान पर उन्होंने कारखाने स्थापित किए। 1633 ई. में अंग्रेज उड़ीसा में भी स्थापित हो गए और उन्होंने वहां पर हरिहरपुर (Hariharpur) तथा वालासोर (Balasore) नामक स्थान पर अपने कारखाने स्थापित कर दिए। 1634 ई. में अंग्रेजों को यहां सभी प्रकार के करों से मुक्ति मिल गयी जिससे यहां उनकी स्थिति डच, इत्यादि प्रतिस्पर्धियों की अपेक्षा कहीं अधिक दृढ़ हो गयी। इस वीच अंग्रेजों को अनुभव हो चुका था कि सुदूरपूर्व के साथ व्यापार करने के लिए आवश्यक कपड़ा भारत के दक्षिणी प्रदेशों में अधिक सस्ते दामों पर मिल सकता है, इसलिए 1639 ई. में मसौली पट्टम के समीप एक किलेबन्द कारखाना बनाने की अनुमति स्थानीय शासक से ली गयी। यह किलेवन्द कारखाना ही वाद में विकसित होकर सेण्ट जॉर्ज दुर्ग बना और 1652 ई. में कारोमण्डल तट पर अंग्रेजों का प्रधान केन्द्र वन गया, यही स्थान 1652 ई. में पूर्वी प्रेसीडेन्सी की राजधानी वनाया गया। 1650-51 ई. में बंगाल में हुगली में एक वस्ती बनायी गयी तथा देश के आन्तरिक भागों में पटना और कासिम बाजार में कारखाने खोले गए। थोड़े ही समय में पूर्वी तट का व्यापार बड़ी तेजी से विकास करने लगा क्योंकि कारोमण्डल तट के कपड़े तथा वंगाल की खांड और शोरा की मांग बहुत अधिक थी। मुगल दरवार में भी कम्पनी की स्थिति में सुधार होने लगा। **इस दिशा में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक 'सर्जन' डॉ. बाउटन ने, जो मुगल दरबार में राजकीय चिकित्सक नियुक्त किया गया था, कम्पनी की बहुत सेवा की।**

1650 ई. से 1700 ई. तक कम्पनी का विकास
(GROWTH OF THE COMPANY FROM 1650 TO 1700)

गृह सरकार से सहयोग तथा प्रोत्साहन—इंगलैण्ड में गृह-युद्ध आरम्भ हो जाने के कारण भारत में अंग्रेजी हितों को पर्याप्त आघात पहुंचा, किन्तु क्रॉमवैल (1649-58 ई.) तथा चार्ल्स द्वितीय के शासन काल में कम्पनी को पर्याप्त राजकीय सहयोग प्राप्त हुआ। इस शासन काल

में कम्पनी खूब चमकी। अव भारतीय व्यापार का उत्तरदायित्व कम्पनी पर ही न रह गया, प्रत्युत एक राष्ट्रीय समस्या बन गया। क्रॉमवैल ने 1651 ई. में नेविगेशन ऐक्ट द्वारा डचों के साथ लड़ाइयां लड़कर (1652-54 ई. में) पुर्तगाल के साथ सन्धि करके तथा 1657 ई. में अधिकार-पत्र (चार्टर) द्वारा कम्पनी की स्थिति को काफी सुदृढ़ बना दिया। नेविगेशन ऐक्ट के द्वारा क्रॉमवैल ने यह नियम वनाया कि इंगलैण्ड में वाहर से माल या तो अंग्रेजी जहाजों में ही आ सकता है या उन देशों के जहाजों में जहां उस माल का उत्पादन हुआ हो। इससे अंग्रेजों के जहाजी व्यवसाय को काफी प्रोत्साहन मिला।

1657 ई. में क्रॉमवैल की मृत्यु के वाद चार्ल्स ने भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अपना संरक्षण प्रदान किया। 1661 ई. से 1685 ई. तक के काल में उसने कम्पनी को पांच अधिकार-पत्र प्रदान किए जिससे वह व्यापारिक संस्था से एक राज्य शक्ति बन गयी। अव कम्पनी को सिक्के ढालने, दुर्ग वनाने, सेना रखने तथा सन्धि विग्रह जैसे राजसी अधिकार प्राप्त हो गए। **कैथेरीन ऑफ ब्रेगेन्जा के साथ चार्ल्स द्वितीय के विवाह के फलस्वरूप उसे दहेज के रूप में मुम्बई मिल गया था।** अतः 1668 ई. में चार्ल्स ने केवल 10 पौण्ड वार्षिक किराए पर इसे कम्पनी को दे दिया। शीघ्र ही मुम्बई सूरत से भी वड़ा व्यापारिक केन्द्र बन गया क्योंकि मराठों के आक्रमणों एवं लूटमार के कारण सूरत अधिक सुरक्षित स्थान नहीं रह गया था।अतः 1687 ई. **में राजधानी सूरत से हटाकर मुम्बई लायी गयी।**

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीति में परिवर्तन तथा मुगलों से सम्बन्ध

17वीं शताब्दी के अन्त तक कम्पनी की भारत में व्यापार करने की नीति में परिवर्तन होने लगा। अव एक शान्तिपूर्ण व्यापारिक संस्था राज्य विस्तार द्वारा अपनी धाक जमाने के लिए उत्सुक एक शक्ति के रूप में परिवर्तित हो गयी। इसका पहला कारण तो यह था कि मुगलों एवं मराठों के पारस्परिक संघर्षों से अंग्रेज यह समझ गए थे कि वे मुगलों द्वारा प्रदान सुरक्षा पर पूर्ण रूप से निर्भर नहीं रह सकते। अतः कम्पनी के विभिन्न अधिकारी अव कम्पनी के डाइरेक्टरों को लिखने लगे कि "**अब समय आ गया है कि जब आपको तलवार हाथ में लेकर व्यापार संभालना चाहिए।**" धीरे-धीरे संचालकों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर इसका समर्थन किया। कम्पनी की नीति में परिवर्तन का दूसरा कारण सर जोशुआ चाइल्ड की महत्वाकांक्षी योजनाएं थीं। सर जोशुआ चाइल्ड 1681 ई. में कम्पनी का गवर्नर हुआ और 1699 ई. में उसकी मृत्युपर्यन्त, उसके साम्राज्य विस्तार के विचार कम्पनी की नीति निर्धारित करने में सवसे अधिक प्रभाव डालते रहे।

इस प्रकार की नीति का अनुकरण करने पर अंग्रेजों का मुगलों के साथ संघर्ष होना अनिवार्य था। सर जोशुआ का विचार था कि मुगल साम्राज्य समाप्त हो रहा है, अतः आत्मरक्षा का विस्तार दोनों ही दृष्टियों से डचों को समाप्त कर आगे वढ़ना कम्पनी के लिए वड़ा अच्छा अवसर है। उसकी नीति थी कि भारतीय समुद्र तट पर अंग्रेज एक ऐसी शक्ति बन जाए जिसकी सब धाक मानें और जो आक्रमणों का प्रतिरोध करने में समर्थ हों। इसके लिए कारखानों की किलेबन्दी करना, नए दुर्ग बनाना और स्थायी सेना रखना आवश्यक था।

विरोधी कम्पनी की स्थापना—ईस्ट इण्डिया कम्पनी की निरन्तर वढ़ती हुई शक्ति तथा व्यापार से इंगलैण्ड के अनेक व्यापारी उससे ईर्ष्या करने लगे। इंगलैण्ड में 1688 ई. की शानदार क्रान्ति के वाद सत्ता में ह्विग दल का अधिकार हो गया। इस दल ने हाउस ऑफ कॉमन्स से यह प्रस्ताव पारित करा दिया कि ईस्ट इंडीज से व्यापार करने का सभी

इंगलैण्डवासियों को अधिकार है। **परिणामस्वरूप इंगलैण्ड के शासक विलियम तृतीय ने अपनी आर्थिक कठिनाइयों के समाधान के लिए 1698 ई. में पूर्व के साथ व्यापार करने के एकाधिकार को नीलाम कर दिया।** एक नयी कम्पनी उसे 20 लाख पौण्ड देने को तैयार हो गयी, जबकि पुरानी कम्पनी केवल 7 लाख पौण्ड देने को तैयार थी। फलस्वरूप ब्रिटेन की संसद ने पूरब के साथ व्यापार करने का एकाधिकार **'न्यू कम्पनी'** को दे दिया किन्तु पुरानी कम्पनी इतनी आसानी से अपने विशेषाधिकारों को छोड़ने को तैयार नहीं थी।

दोनों कम्पनियों का विलय—इंगलैण्ड की सरकार ने नयी कम्पनी को तीन वर्ष के अन्दर अपना कार्य समेट देने के लिए कहा। इन तीन वर्षों में दोनों कम्पनियां एक-दूसरे के साथ होड़ लगाकर कार्य करने लगीं। पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता से दोनों कम्पनियों को हानि उठानी पड़ी। इसी बीच इंगलैण्ड का स्पेन के साथ उसके उत्तराधिकार के युद्ध को लेकर युद्ध आरम्भ हो गया। अत: 1702 ई. में दोनों कम्पनियों को संगठित होने के लिए वाध्य किया गया। 1708-09 ई. में **अर्ल ऑफ गोडोल्फीन** (Earl of Godolphen) की एक रिपोर्ट के आधार पर इंगलैण्ड की संसद् ने एक ऐक्ट के द्वारा औपचारिक रूप से दोनों कम्पनियों का आपस में विलय कर दिया। **इस सम्मिलित कम्पनी का नाम 'यूनाइटेड ईस्ट इण्डिया कम्पनी'** (United East India Company) रखा गया।

यूनाइटेड ईस्ट इण्डिया कम्पनी का विकास (1700-1740 ई.)
(GROWTH OF UNITED EAST INDIA COMPANY)

दोनों कम्पनियों के एकीकरण के उपरान्त अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने तीव्र गति से प्रगति करना प्रारम्भ किया। 1707 ई. में औरंगजेव की मृत्यु हो गयी, जिसने मुगल साम्राज्य में अशान्ति एवं अराजकता फैल गयी। अत: अंग्रेजों ने अशान्ति एवं अराजकतापूर्ण राजनीतिक स्थिति का लाभ उठाकर अपनी शक्ति एवं साधनों में खूव वृद्धि की। मुम्वई, कलकत्ता तथा मद्रास उनके व्यापार के मुख्य केन्द्र वन गए। साथ ही इंगलैण्ड में भी कम्पनी के समर्थकों की संख्या में वृद्धि होनें लगी। 1711 ई. में इंगलैण्ड की संसद् ने कम्पनी के व्यापार की अवधि 1763 ई. तक तथा वाद में 1799 ई. तक वढ़ा दी।

राजदूत के रूप में 'सरमैन' (1714 ई.)—यद्यपि मुगल सम्राटों के फरमानों का महत्व दिन-प्रतिदिन घटता जा रहा था, परन्तु उनको प्राप्त करने की प्रथा जारी थी। 1714 ई. में मुम्वई, कलकत्ता तथा मद्रास प्रेसीडेन्सियों ने मिलकर सर जॉन सरमैन की अध्यक्षता में एक प्रतिनिधिमण्डल मुगल सम्राट फर्रुखसियर के दरवार में भेजा। इस प्रतिनिधिमण्डल में विलियम हैमिल्टन नामक एक डॉक्टर भी था। **डॉ. हैमिल्टन ने सम्राट को एक असाध्य रोग से छुटकारा दिलाया था। मुगल सम्राट इससे इतना प्रसन्न हुआ कि उसने तीन फरमान जारी किए जो अंग्रेजों के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुए।** ये फरमान हैदराबाद, गुजरात तथा वंगाल के प्रान्ताध्यक्षों के नाम जारी किए गए थे, क्योंकि अंग्रेजों की वस्तियां इन्हीं प्रान्तों में पड़ती थीं। इन फरमानों के अनुसार कम्पनी को वंगाल में तीन हजार रुपए वार्षिक कर के बदले बिना किसी अन्य करों के व्यापार करने की अनुमति मिल गयी, कलकत्ता के पास भूमि किराए पर लेने का अधिकार मिल गया, हैंदराबाद प्रान्त में कम्पनी को मद्रास के किराए को छोड़कर अन्य सब करों से छूट मिल गयी और मद्रास की सीमा आस-पास के कुछ और गांवों को मिलाकर वढ़ा दी गयी, सूरत के वन्दरगाह को केवल दस हजार रुपए वार्षिक कर के बदले चुंगी करों

से मुक्त कर दिया गया। इसके साथ-साथ कम्पनी की टकसाल में ढले सिक्के समस्त साम्राज्य में मान्य ठहराए गए।

सरमैन द्वारा प्राप्त की गयी इन सुविधाओं से कम्पनी की शक्ति और समृद्धि तत्काल बढ़ने लगी। इन फ़रमानों से मिले हुए अधिकारों को कम्पनी वहुत बुद्धिमानी से बढ़ने लगी और वड़ी तत्परता से काम में लाने लगी। इतिहासकार ओर्मे ने इन्हें **'मैग्नाकार्टा'** की संज्ञा दी। इतिहासकार सरकार एण्ड दत्त के अनुसार, **''इस प्रतिनिधिमण्डल से भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के इतिहास में एक नए युग का प्रारम्भ होता है उससे कम्पनी के लिए महत्वपूर्ण सुविधाएं प्राप्त कीं।''**

18वीं शताब्दी में कर्नाटक की राजनीतिक दशा
(POLITICAL CONDITION OF KARNATAK)

दक्षिणी भारत में पूर्वी तट का क्षेत्र कारोमण्डल तट के नाम से जाना जाता था। इसी क्षेत्र के उत्तर में कर्नाटक प्रान्त था। इस प्रान्त के प्रवन्ध के लिए औरंगजेब के समय में पहले जुल्फिकार अली खां को और वाद में दाऊद खां को नियुक्त किया गया था। 1710 ई. में सादुल्ला खां को वहां का प्रवन्धक नियुक्त किया गया। सादुल्ला ने इस पद पर 1732 ई. तक कार्य किया। 1732 ई. में उसकी मृत्यु हो जाने पर उसका भतीजा दोस्त अली स्वतः ही वहां का नवाव बन गया। उसने अर्काट को अपनी राजधानी बनाया और स्वतन्त्र शासक की भांति शासन करने लगा। यह अर्काट राज्य जो कि कर्नाटक के नाम से भी प्रसिद्ध है, समुद्र के किनारे अंगोल से दक्षिण में जिंजी तक एक पतली पट्टी के रूप में फैला हुआ था। इसके पश्चिमी भाग में पहाड़ियां थीं तथा दक्षिण में विजयनगर राज्य के अवशेषों पर स्थापित तीन छोटे-छोटे मराठे राज्य त्रिचनापल्ली, तंजौर तथा मदुरा थे।

त्रिचनापल्ली में वहां के भूतपूर्व नायक की पत्नी राज्य कर रही थी। दोस्त अली के वड़े पुत्र सफदर अली तथा चांदा साहव ने 1736 ई. में इस पर आक्रमण किया और अपने राज्य में मिला लिया। मदुरा को भी इसी तरह अपने राज्य में मिला लिया गया लेकिन तंजौर को नहीं जीता जा सका तथापि तंजौर को बुरी तरह लूट लिया गया। इससे मराठे उत्तेजित हो गए। दूसरी ओर यह क्षेत्र दक्षिण के सूबेदार निजा-मुल-मुल्क का सामन्त क्षेत्र माना जाता था परन्तु अब उसके आधिपत्य से भी मुक्त हो गया था। अतः निजा-मुल-मुल्क के लड़के नासिर जंग ने भी मराठों को इस पर आक्रमण करने के लिए उकसाया। इन सवके अतिरिक्त पेशवां की भी इस क्षेत्र में कई वर्ष की चौथ बकाया थी। **इन सबके फलस्वरूप 1740 ई. में फतेसिंह व राघोजी भौंसले के नेतृत्व में पेशवा की सेनाएं इस क्षेत्र में गयीं।** दोस्त अली ने दामलचेरी दर्रे पर उनका रास्ता रोकने के लिए अपना मोर्चा जमाया परन्तु वे सेनाएं एक अन्य स्थान से पहाड़ी क्षेत्र पार कर गयीं और इसने दोस्त अली पर पीछे से जाकर आक्रमण किया जिससे दोस्त अली अधिकांश सेना सहित मारा गया। मराठों ने अब अर्काट पर आक्रमण किया। यहां पर सफदर अली स्वयं को नवाब घोषित कर राज्य कर रहा था। अतः इस आक्रमण से सफदर अली को बाध्य होकर एक करोड़ रुपया देना पड़ा तथा हिन्दू राज्यों की छीनी हुई भूमि वापस लौटाने का आश्वासन देना पड़ा। परन्तु त्रिचनापल्ली चांदा साहव के अधीन था। चांदा साहब ने त्रिचनापल्ली देने से इन्कार कर दिया, अतः 1741 ई. में मराठों ने त्रिचनापल्ली पर आक्रमण कर दिया और उसे जीतकर गूटी के सामन्त मुरारी राव के नियन्त्रण में छोड़कर चांदा साहब को कैद करके सतारा ले गए।

इन युद्धों में सफदर अली की शक्ति काफी क्षीण हो गयी। अतः चचेरे भाई मुर्तजा अली ने परिस्थितियों का लाभ उठाकर उसकी हत्या कर दी और वह स्वयं नवाव वन गया परन्तु सेना ने इसका विरोध किया, फलस्वरूप वह अपनी जागीर वैलूर भाग गया। इसके वाद सफदर अली के अल्पवयस्क पुत्र को नवाव घोषित करके एक कामचलाऊ मन्त्रिमण्डल वनाया गया। 1742 ई. में **निजा-मुल-मुल्क ने उस पर आक्रमण करके अर्काट को जीत लिया और अपने सेवक अनवर अली को वहां का नवाब वनाया तथा मराठा सेनाओं को परास्त करके त्रिचनापल्ली को भी उसके अधिकार में दे दिया।** इस प्रकार अनवर अली वहां का नवाव वन गया परन्तु अभी भी राज्य के कई किलों पर सफदर अली के वंशजों का अधिकार था। अतः सम्पूर्ण राज्य अशान्ति का केन्द्र वन गया और इसी समय **यहां पर अंग्रेजों एवं फ्रांसीसियों के प्रथम युद्ध का आरम्भ हो गया।**

दक्षिण भारत में अंग्रेजों एवं फ्रांसीसियों के मध्य संघर्ष
(ANGLO-FRENCH CONFLICT IN SOUTH INDIA)

व्यापार से प्रारम्भ होकर अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी कम्पनियां भारत की राजनीति में अपरिहार्य रूप से उलझ गयीं। जव मुगल सत्ता क्षीण हो गयी तथा दक्षिणी सूवे भी कम्पनियों की रक्षा करने में असमर्थ हो गए तो कम्पनियों ने अपनी रक्षा के लिए स्वयं ही तलवार उठा ली। आरम्भ में इन दीनों ही कम्पनियों का उद्देश्य मात्र व्यापार करना था तथा भारतीय राजनीति से काफी दूर थे, लेकिन औरंगजेव की मृत्यु के वाद भारत की राजनीतिक स्थिति निरन्तर खराव होती चली गयी। सम्पूर्ण भारत छोटे-छोटे राज्यों में वंटने लगा। किसी भी देश की आन्तरिक दुर्वलता सदैव उसकी बाहरी दुश्मनों को सुअवसर प्रदान करती है। यही वात भारत के साथ भी हुई। चूंकि दोनों ही कम्पनियां व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करना चाहती थीं अतः 17वीं तथा 18वीं शताव्दी से आंग्ल-फ्रांसीसी शाश्वत शत्रु वन गए और ज्यों ही यूरोप में उनका आपसी युद्ध आरम्भ होता, संसार के प्रत्येक कोने में जहां ये दो कम्पनियां राज्य करती थीं, आपसी युद्ध आरम्भ होते थे। भारत में एंग्लो-फ्रेंच युद्ध ऑस्ट्रिया के उत्तराधिकार के युद्ध से आरम्भ हुआ था, उस समय फ्रांसीसियों का मुख्यालय **पाण्डेचेरी** में था तथा मसौली पट्टम, कारीकल, माही सूरत एवं चन्द्रनगर में उनके उपकार्यालय थे। दूसरी ओर अंग्रेजों की मुख्य वस्तियां मद्रास, मुम्वई और कलकत्ता में थीं तथा अनेक उपकार्यालय थे। अंग्रेजों एवं फ्रांसीसियों का भारत में संघर्ष कर्नाटक से प्रारम्भ हुआ था।

कर्नाटक का प्रथम युद्ध
(FIRST KARNATAK WAR)

युद्ध के कारण (Causes of the War)

कर्नाटक उस समय हैदरावाद सूवे का अंग था यहीं अंग्रेजों एवं फ्रांसीसियों का युद्ध हुआ था। इस युद्ध के निम्न कारण थे :

(1) **व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता** (Commercial Rivalry)—अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों की व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता इस युद्ध का पहला कारण था क्योंकि दोनों कम्पनियां एक-दूसरे के व्यापार को हानि पहुंचाकर अधिक-से-अधिक लाभ उठाकर धनी होने का प्रयास कर रही थीं। अतः ऐसी परिस्थितियों में दोनों के मध्य संघर्ष होना अनिवार्य था।

(2) 1740 **ई. के यूरोपीय युद्ध का प्रभाव** (Effect of the European War of 1740)—1740 ई. में ऑस्ट्रियन उत्तराधिकार का युद्ध शुरू हुआ। इस युद्ध का प्रभाव भारत

स्थित अंग्रेजों एवं फ्रांसीसियों पर भी हुआ। यूरोपीय अंग्रेज और फ्रांसीसी एक-दूसरे के विरुद्ध लड़ रहे थे अतः भारत में वे एक-दूसरे के विरुद्ध लड़ पड़े। फ्रांसीसी दार्शनिक वाल्टेयर (Voltaire) का इस सम्बन्ध में कथन है, **"अपने देश में छोड़े गए तोप के प्रथम गोले ने अमरीका तथा एशिया में हमारे सारे तोपखानों में माचिस लगा दी।"**

युद्ध की घटनाएं (Events of the War)

फ्रांसीसी सेनापति डूप्ले की कूटनीतिक चाल—1744 ई. के ऑस्ट्रिया के उत्तराधिकार के युद्ध का समाचार भारत पहुंचा। उस समय भारत में फ्रांसीसी वस्ती के केन्द्र पाण्डेचेरी का गवर्नर डूप्ले था। दूसरी ओर, मद्रास की अंग्रेजी वस्ती का गवर्नर मोर्स था। डूप्ले फ्रांसीसी जलशक्ति की निर्बलता से परिचित था अतः उसने अंग्रेजी गवर्नर मोर्स के सम्मुख प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि अंग्रेजी तथा फ्रांसीसियों को भारत में तटस्थता की नीति का अनुकरण करना चाहिए परन्तु इससे पहले ही अंग्रेज गवर्नर को यह सूचना प्राप्त हो चुकी थी कि इंगलैण्ड से कमाण्डर वार्नेट (Com. Barnett) की अध्यक्षता में एक जहाजी बेड़ा उसकी सहायता के लिए प्रस्थान कर चुका है। इसी कारण गवर्नर मोर्स ने डूप्ले को किसी भी प्रकार का आश्वासन नहीं दिया। मद्रास तथा पाण्डेचेरी की बन्दरगाहें कर्नाटक राज्य में आती थीं। डूप्ले ने अंग्रेजों की ओर से निराश होकर कर्नाटक के नवाव अंनवरुद्दीन (Anwaru-Din) से निवेदन किया कि वह अपने राज्य में किसी प्रकार का युद्ध न होने दे। अनवरुद्दीन के आदेश पर अंग्रेज भी शान्त हो गए क्योंकि वे नवाव को क्रुद्ध नहीं करना चाहते थे। इस कूटनीति का सहारा लेकर डूप्ले ने भारत में फ्रांसीसी वस्तियों की उस समय रक्षा कर ली जवकि फ्रांसीसी जलशक्ति वहुत निर्वल थी।

मद्रास पर फ्रांसीसियों का अधिकार (1746 ई.)—मारीशस (Mauritious) एक अन्य फ्रांसीसी वस्ती थी। उसका गवर्नर लावूर्दोने (La Baurdonnes) था। डूप्ले ने उसे सहायता देने के लिए लिखा। जुलाई, 1744 ई. तक वह अपनी सेना सहित भारत के कारोमण्डल तट तक पहुंच गया। उसने कमाण्डर वार्नेट के उत्तराधिकारी पेटन (Peyton) को, जो कि एक अयोग्य अधिकारी था, जल युद्ध में पराजित करके लंका की ओर भगा दिया। अब फ्रांसीसियों के लिए कोई बाधा नहीं थी। अतः डूप्ले तथा लावूर्दोने ने मद्रास पर आक्रमण कर दिया और सितम्बर 1746 ई. में उस पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

डूप्ले तथा लावूर्दोने में पारस्परिक मतभेद—इतिहासकार रॉबर्ट्स के अनुसार डूप्ले तथा लावूर्दोने अधिक समय तक पारस्परिक सहयोग से कार्य न कर सके। डूप्ले मद्रास को अपने अधिकार में लेना चाहता था जवकि लावूर्दोने का विचार था कि मद्रास से फिरौती लेकर उसे पुनः अंग्रेजों को वापस कर दिया जाए। अन्त में लावूर्दोने ने चार लाख पौण्ड की विशाल राशि को रिश्वत के रूप में स्वीकार करके मद्रास अंग्रेजों को वापस कर दिया और स्वयं वहां से चल दिया। मद्रास को वापस करना डूप्ले की इच्छा के विरुद्ध था इसलिए लावूर्दोने के जाते ही उसने मद्रास पर आक्रमण करके पुनः उस पर अधिकार स्थापित कर लिया। उसने क्लाइव सहित अनेक अंग्रेजों को बन्दी वना लिया।

अडियार का युद्ध (Battle of Adyar)—कर्नाटक का नवाव अनवरुद्दीन अभी तक शान्त था। इसका कारण यह था कि डूप्ले ने उसे आश्वासन दिया था कि वह मद्रास पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त उसे सौंप देगा। मद्रास विजय करने के उपरान्त डूप्ले ने अपने आश्वासन का पालन नहीं किया, अतः अनवरुद्दीन के पुत्र महफूज खां (Mahfooz Khan) ने विशाल सेना की सहायता से फ्रांसीसियों पर आक्रमण कर दिया। मद्रास के निकट अडियार अथवा

सेण्ट थोम नामक स्थान पर युद्ध में फ्रांसीसियों ने अपनी थोड़ी-सी सुरक्षित सेना की सहायता से नवाब की विशाल सेना पर विजय प्राप्त की। इस विजय के फलस्वरूप फ्रांसीसियों की विशेषकर डूप्ले की ख्याति काफी वढ़ गयी।

अंग्रेजों द्वारा पाण्डेचेरी पर अधिकार करने के प्रयत्न—मद्रास तथा सेण्ट थोम की विजयों से उत्साहित होकर फ्रांसीसियों ने जव पाण्डेचेरी के दक्षिण में स्थित अंग्रेजों की एक अन्य वस्ती फोर्ट सेण्ट डेविड (Fort St. David) पर अधिकार करने का प्रयास किया, परन्तु डेढ़ वर्ष के घेरे के उपरान्त भी डूप्ले इस पर अपना अधिकार स्थापित नहीं कर सका। इसका कारण यह था कि इस बीच इंगलैण्ड से अंग्रेजों के लिए सहायता पहुंच चुकी थी। अतः इस सहायता से उत्साहित होकर अंग्रेजों ने उत्तर में आगे वढ़कर पाण्डेचेरी का घेरा डाल दिया, परन्तु अंग्रेजों के भी प्रयास असफल रहे। अन्त में उन्हें विवश होकर सेण्ट डेविड ही वापस आना पड़ा।

युद्ध का अन्त तथा एक्स-ला-शापैल की सन्धि (1748 ई.) (End of the War and the Treaty of Aix-la-Chappelle)

इधर भारत में दोनों ही पक्ष युद्ध में व्यस्त थे कि यूरोप में 1748 ई. में दोनों देशों के वीच एक्स-ला-शापैल की सन्धि हो गयी और यूरोप में युद्ध समाप्त हो गया। परिणामस्वरूप उन्हें भारत में भी युद्ध समाप्त करना पड़ा। इस सन्धि के अनुसार अंग्रेजों को भारत में मद्रास तथा फ्रांसीसियों को उत्तरी अमेरिका में लुईस वर्ग (Louis Berg) पुनः प्राप्त हो गए।

कर्नाटक युद्ध का महत्व (Significance of the War)—वाहरी रूप से प्रथम कर्नाटक युद्ध का विशेष महत्व नहीं है। सत्य तो यह है कि **यह युद्ध अंग्रेजों एवं फ्रांसीसियों के आन्तरिक कारणों का फल था और भारतीय राजनीति से उनका कोई सीधा सम्वन्ध नहीं था।** इस युद्ध से भारत की राजनीतिक सीमा में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। युद्ध के अन्त में दोनों पक्ष पूर्ववत् वने रहे। फिर भी भारतीय इतिहास में इस युद्ध का विशेष महत्व है। **इस युद्ध ने भारतीय नरेशों की दुर्वलता को प्रकट कर दिया।** इस युद्ध से जल शक्ति का महत्व भी स्पष्ट हो गया तथा यह वात स्पष्ट हो गयी कि भली-भांति प्रशिक्षित यूरोपीय सेना अनुशासनहीन विशाल भारतीय सेना से अधिक श्रेष्ठ एवं सफल होती है। परिणामस्वरूप अब फ्रांसीसी तथा अंग्रेज, आदि विदेशी शक्तियों ने यहां पर अपना साम्राज्य स्थापित करने का दृढ़ निश्चय किया।[1] इस युद्ध ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि भारतीय राज्य-व्यवस्था कितनी जर्जर हो चुकी थी। इस प्रकार इस युद्ध ने डूप्ले के प्रयोगों व क्लाइव की विजयों के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया।

कर्नाटक का दूसरा युद्ध (1748 ई.—1754 ई.)
(SECOND KARNATAK WAR)

कारण (Causes)

(1) इस युद्ध का वास्तविक कारण अंग्रेजों व फ्रांसीसियों की पिछली शत्रुता थी। दोनों एक-दूसरे की शक्ति को नष्ट करना चाहते थे। प्रथम कर्नाटक युद्ध के अचानक समाप्त कर दिए जाने से दोनों ही निराश हो गए थे।

---

1 **"It (First Karnatak war) demonstrated the overwhelming influence of sea power, it displayed the superiority of European methods of war over those followed by Indian armies and it revealed the political decay that had eaten into the heart of Indian State."** —*Dodwell*

(2) 1748 ई. में हैदरावाद के निजाम आसफ जाह निजा-मुल-मुल्क का देहावसान हो जाने पर उसके पौत्र मुजफ्फरजंग तथा दूसरे पुत्र नासिरजंग के मध्य उत्तराधिकार का युद्ध आरम्भ हो गया।

(3) ठीक इसी समय कर्नाटक में भी इसी प्रकार का संघर्ष कर्नाटक के तत्कालीन नवाव अनवरुद्दीन तथा भूतपूर्व नवाब दोस्त अली के दामाद चांदा साहब के मध्य आरम्भ हो गया था। इन उत्तराधिकार के झगड़ों में दोनों ही शक्तियों ने खुलकर भाग लिया। फ्रांसीसियों ने चांदा साहब तथा मुजफ्फरजंग का समर्थन किया तथा अंग्रेजों ने नासिरजंग एवं अन्वरुद्दीन का साथ दिया। इस प्रकार एक बार पुनः फ्रांसीसी एवं अंग्रेज भारत में संघर्षरत हो गए।

(4) तंजौर की समस्या ने ऐंग्लो-फ्रेन्च शत्रुता को और बढ़ा दिया। 1738 ई. में पाण्डेचेरी के फ्रांसीसी गवर्नर ड्यूमा ने तंजौर में होने वाले उत्तराधिकार के युद्ध में भाग लेकर अपनी सहायता के वदले कारीकल की वस्ती प्राप्त कर ली थी। 1749 ई. में पुनः तंजौर में उत्तराधिकार का युद्ध आरम्भ हो गया। अव की वार अंग्रेजों ने उसमें भाग लेकर देवी कोटाई नामक स्थान प्राप्त कर लिया। इसके कारण.फ्रांसीसी अंग्रेजों से क्रुद्ध हो गए तथा उन्होंने अंग्रेजों का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया।

घटनाएं (Events)

(1) **चांदा साहब की विजय**—डूप्ले चांदा साहव तथा मुजफ्फरजंग से सन्धि करने के उपरान्त अपने समर्थकों को सिंहासन पर बैठाने के लिए प्रयास करने लगा। अव तीनों ने संगठित रूप से कर्नाटक के नवाव अनवरुद्दीन पर आक्रमण कर दिया। 3 अगस्त, 1749 ई. को वेलोर के निकट अम्वर के युद्ध में अनवरुद्दीन मारा गया तथा उसका पुत्र मुहम्मद अली भाग गया। शेष सम्पूर्ण कर्नाटक पर चांदा साहव का अधिकार हो गया। चांदा साहव ने फ्रांसीसियों की इस सहायता से प्रसन्न होकर उन्हें पाण्डेचेरी के निकट विशाल क्षेत्र पुरस्कार में दे दिया।

(2) **हैदराबाद में फ्रांसीसी प्रभाव**—कर्नाटक में फ्रांसीसी प्रभाव को कम करने के उद्देश्य से अंग्रेजों ने हैदरावाद से नासिरुद्दीन को आमन्त्रित करके उसको कर्नाटक पर आक्रमण करने हेतु भड़काया। 1750 ई. में नासिरुद्दीन ने कर्नाटक पर आक्रमण कर दिया। मुजफ्फरजंग को कुछ फ्रांसीसी अधिकारियों ने धोखा दिया अतः नासिरज़ंग ने उसे बन्दी वना लिया। इन कठिन परिस्थितियों में भी डूप्ले ने साहस नहीं छोड़ा। उसने नासिरजंग के सैनिक अधिकारियों को लालच देकर अपनी ओर मिला लिया। इन सैनिक अधिकारियों ने 1750 ई. के अन्तिम दिनों में नासिरजंग की हत्या कर दी। **अतः मुजफ्फरजंग को हैदराबाद का नवाब घोषित कर दिया गया।** वास्तव में यह डूप्ले की महान् कूटनीतिक सफलता थी। मुजफ्फरजंग को हैदरावाद के सिंहासन पर आसीन करने के उद्देश्य से डूप्ले ने एक योग्य एवं अनुभवी फ्रांसीसी सेनापति बुस्से (Busse) को उसके साथ भेजा परन्तु मुजफ्फरजंग की मार्ग में ही हत्या कर दी गयी। अतः बुस्से ने नासिरजंग के छोटे भाई सलावतजंग को हैदरावाद के सिंहासन पर आसीन कर दिया। सलावतजंग ने इस सहायता के उपलक्ष में उत्तरी प्रदेश फ्रांसीसियों को दे दिया, अतः 1751 ई. को सम्पूर्ण दक्षिण में फ्रांसीसियों का प्रभाव स्थापित हो गया था।

(3) **त्रिचनापल्ली का घेरा**—इस समय तक डूप्ले के समस्त प्रयास सफल रहे थे। इसी समय मद्रास में नया गवर्नर साण्डर्स नियुक्त हुआ जो योग्य एवं दूरदर्शी व्यक्ति था। उसने मुहम्मद अली की सहायता करने के उद्देश्य से मई 1751 ई. में त्रिचनापल्ली की ओर एक

सेना भेज दी। **फ्रांसीसियों ने भी चांदा साहब की रक्षा हेतु सेना भेज दी।** अल्पकाल में ही सम्पूर्ण कर्नाटक युद्ध-क्षेत्र बन गया। त्रिचनापल्ली का घेरा और भी लम्बा हो गया। इसी वर्ष तंजौर के शासक तथा मुरारी राव नामक मराठा सरदार एवं मैसूर शासक अंग्रेजों से आ मिले जिससे समस्या और भी अधिक उलझ गयी।

(4) **अर्काट का घेरा**—त्रिचनापल्ली का घेरा चल ही रहा था कि इसी बीच रॉबर्ट क्लाइव नामक साहसी अंग्रेज युवक ने गवर्नर साण्डर्स को कर्नाटक की राजधानी अर्काट पर आक्रमण करने का परामर्श दिया। उसका परामर्श तुरन्त ही स्वीकार कर लिया गया। क्लाइव का उद्देश्य अनवरुद्दीन का ध्यान त्रिचनापल्ली से हटाने का था। अब क्लाइव 200 अंग्रेज तथा 300 भारतीय सिपाहियों के साथ कर्नाटक की ओर चल दिया और अगस्त 1751 ई. में वह अर्काट पर विजय प्राप्त करने में सफल हो गया। **चांदा साहब को जब इसका समाचार मिला तो उन्होंने अपने पुत्र रजाखां के नेतृत्व में एक विशाल सेना अर्काट की ओर भेजी।** रजाखां ने क्लाइव को अर्काट में घेर लिया परन्तु क्लाइव भी 53 दिन तक भूख का सामना करता हुआ डटा रहा। इसी बीच एक अंग्रेजी सेना मेजर लॉरेन्स की अध्यक्षता में वहां पहुंच गयी। रजाखां को विवश होकर अपना घेरा उठाना पड़ा। अर्काट की विजय से क्लाइव की ख्याति चारों ओर फैल गयी।

इसके बाद क्लाइव और लॉरेन्स आगे बढ़े और उन्होंने चांदा साहब तथा फ्रांसीसी कमाण्डर लॉ (Law) को 1751 ई. में पराजित करके त्रिचनापल्ली पर अधिकार कर लिया। चांदा साहब भाग गया तथा फ्रांसीसी बन्दी बना लिए गए लेकिन शीघ्र ही चांदा साहब को भी पकड़कर उनका वध कर दिया गया। अब चांदा साहब के स्थान पर मुहम्मद अली कर्नाटक का नवाब बना।

(5) **डूप्ले की फ्रांस वापसी**—ऐसी परिस्थितियों में भी डूप्ले ने साहस नहीं छोड़ा, उसने शीघ्र ही मराठों तथा मैसूर के शासक का समर्थन प्राप्त कर लिया तथा तंजौर के शासकों को तटस्थ रहने का परामर्श दिया और जनवरी 1753 ई. में अपने पास से साढ़े तीन लाख पौण्ड खर्च करके त्रिचनापल्ली का पुनः घेरा डाल दिया। **1753 ई. में साल भर कभी अंग्रेजों की जीत हुई तो कभी फ्रांसीसियों की।** इधर फ्रांस की सरकार ने डूप्ले को वापस बुलाने का निर्णय कर लिया क्योंकि वह अपनी आन्तरिक समस्याओं के कारण डूप्ले की निरन्तर युद्ध करने की नीति से तंग आ चुकी थी। अतः डूप्ले को 1754 ई. में फ्रांस वापस जाना पड़ा। उसका उत्तराधिकारी बनकर गाडह्यू (Godheau) आया। गाडह्यू ने आते ही अंग्रेजों से सन्धि-वार्ता आरम्भ कर दी।

(6) **पाण्डेचेरी की सन्धि** (Treaty of Pandecherry)—1755 ई. में दोनों पक्षों में पाण्डेचेरी की सन्धि हो गयी और युद्ध समाप्त हो गया। इस सन्धि के अनुसार अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी दोनों ही कम्पनियों ने आश्वासन दिया कि वे भारतीय राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगी। दोनों ही पक्षों ने एक-दूसरे के विजित प्रदेशों को वापस कर दिया। वुस्से का हैदराबाद में रहना स्वीकार कर लिया गया। इसके अतिरिक्त दोनों पक्षों ने भारतीय शासकों द्वारा प्रदत्त पदवियों एवं उपाधियों का परित्याग कर देने का भी आश्वासन दिया। **यह सन्धि स्थायी मानी जाएगी यदि यूरोप में दोनों देशों की सरकारें इस सन्धि को स्वीकार कर लें।** लेकिन दोनों ही देशों की सरकारों ने इस सन्धि की शर्तों को स्वीकार नहीं किया क्योंकि 1755 ई. में फ्रांस तथा इंगलैण्ड के मध्य सप्तवर्षीय युद्ध प्रारम्भ हो गया था, अतः दोनों शक्तियां पुनः संघर्षरत हो गयी थीं। पाण्डेचेरी सन्धि की कटु आलोचना की जाती है। प्रायः

यह कहा जाता है कि फ्रांसीसी गवर्नर गाडह्यू ने फ्रांसीसी हितों को न्यौछावर करके डूप्ले की सफलताओं को समाप्त कर दिया। स्वयं डूप्ले ने कहा था, **"गाडह्यू ने अपने देश की बरबादी तथा राष्ट्र के अपमान पर हस्ताक्षर किए हैं।"**[1]

मिल ने इस सन्धि के विषय में कहा, **"इस सन्धि द्वारा प्रत्येक वह वस्तु जिसे प्राप्त करने के लिए फ्रांसीसी प्रयत्नशील थे, अंग्रेजों ने प्राप्त कर ली।"**

कर्नाटक का तीसरा युद्ध (1756 ई.—1763 ई.)
(THIRD KARNATAK WAR)

कारण (Causes)—पाण्डेचेरी की सन्धि अस्थायी सिद्ध हुई। 1756 ई. में यूरोप में अंग्रेजों एवं फ्रांसीसियों के मध्य सप्तवर्षीय युद्ध आरम्भ हो जाने से भारत में भी दोनों पक्षों में युद्ध आरम्भ हो गया।

घटनाएं (Events)

(1) **बंगाल पर अंग्रेजों का अधिकार**—भारत में अंग्रेजी प्रभाव को समाप्त करने के उद्देश्य से फ्रांसीसी सरकार ने अपने एक योग्य सेनापति काउण्ट-डी-लाली (Count-de-lale) को एक विशाल सेना के साथ भारत भेजा। लाली अप्रैल 1758 ई. में भारत पहुंच सका। उसके आने से पूर्व ही अंग्रेज बंगाल पर विजय प्राप्त कर चुके थे तथा उनकी स्थिति सुदृढ़ हो चुकी थी। 1757 ई. में क्लाइव ने वाट्सन के सहयोग से बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला पर प्लासी के युद्ध में विजय प्राप्त करके बंगाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था।

(2) **फ्रांसीसियों की फोर्ट सेण्ट डेविड पर विजय**—फ्रांसीसी सेनापति लाली ने आते ही अंग्रेजों के फोर्ट सेण्ट डेविड को घेर लिया और जून 1758 ई. में उस पर अधिकार कर लिया। उसके उपरान्त उसने तंजौर का घेरा डाल दिया तथा वहां के राजा से 56 लाख रुपया प्राप्त करने का प्रयास किया (फ्रांसीसी कम्पनी को तंजौर के शासक ने 56 लाख रुपया देना था) यह घेरा काफी लम्बा हो गया था अतः अंग्रेजों ने इसका लाभ उठाया। एक अंग्रेजी वेड़ा बंगाल से यहां पहुंच गया। अतः लाली को वाध्य होकर तंजौर का घेरा उठाना पड़ा जिससे फ्रांसीसी प्रभाव को भारत में हानि हुई।

(3) **मद्रास का घेरा**—सेनापति लाली ने अब मद्रास पर आक्रमण करने की सोची। इस कार्य के लिए उसने हैदराबाद से सेनापति बुस्से को बुला लिया लेकिन बुस्से को बुलाना लाली की महान् भूल थी, क्योंकि बुस्से के हैदराबाद से हट जाने पर कर्नल फोर्ड ने उत्तरी सरकार पर अधिकार कर लिया और डर के कारण निजाम सलामतजंग भी अंग्रेजों से जा मिला। इधर फ्रांसीसियों ने मद्रास का घेरा डाल दिया परन्तु कोई विशेष सफलता नहीं मिली। इसी बीच वर्षा ऋतु समाप्त हो गयी और अंग्रेजी जहाजी बेड़ा भी मद्रास आ गया। अन्त में लाली को विवश होकर यह घेरा भी उठाना पड़ा। आर. सी. मजूमदार के अनुसार, **"इस अपमानजनक असफलता ने भारत पर फ्रांसीसियों के भाग्य का सब प्रकार से द्वार बन्द कर दिया।"**

(4) **वान्दिवाश का युद्ध** (War of Wandewash)—मद्रास के घेरे के एक वर्ष बाद तक अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों के बीच छोटी-मोटी झड़पें होती रहीं जिसमें फ्रांसीसियों की स्थिति निरन्तर खराब होती रही। 1759 ई. के अन्त में एक योग्य तथा अनुभवी अंग्रेजी सेनानायक सर सयी कूक (Sir Syea Cook) एक विशाल सेना के साथ मद्रास पहुंचा।

1 **"Godheau had signed the ruin of the country and the dishonour of the nation."** —*Dupleix*

1760 ई. में अंग्रेजी सेना ने फ्रांसीसी सेनाओं को मद्रास तथा पाण्डेचेरी के मध्य स्थित वान्दिवाश नामक स्थान पर बुरी तरह पराजित कर दिया। फ्रांसीसी सेनापति बुस्से को बन्दी बना लिया गया। वास्तव में वान्दिवाश का युद्ध निर्णायक युद्ध था। इस युद्ध के सम्बन्ध में मालेसन का कथन है कि **"इस युद्ध ने उस भवन को जिसे मार्टिन ड्यूमा तथा डूप्ले ने बनाया था, धूल-धूसरित कर दिया, लाली की आशाओं पर पानी फेर दिया तथा पाण्डेचेरी के भाग्य का निर्णय कर दिया।"**[1]

(5) पेरिस की सन्धि (Treaty of Paris)—1763 ई. में यूरोप में फ्रांसीसियों एवं अंग्रेजों के मध्य सन्धि हो गयी। इसके फलस्वरूप भारत में भी दोनों पक्षों के मध्य युद्ध समाप्त हो गया। पाण्डेचेरी, चन्द्रनगर, आदि फ्रांसीसियों को लौटा दिए गए, परन्तु साथ में यह शर्त लगा दी गयी कि अब फ्रांसीसी भारत में सेना नहीं रखेंगे। इसके उपरान्त भारत में फ्रांसीसियों ने अंग्रेजों का विरोध करना छोड़ दिया तथा व्यापार पर ही अपना ध्यान लगाया।

इस प्रकार पेरिस सन्धि के उपरान्त भारत में फ्रांसीसी राज्य स्थापित करने के सारे स्वप्न समाप्त हो गए और अंग्रेजों के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया क्योंकि पुर्तगालियों एवं डचों को वे पहले ही पराजित कर चुके थे।

अंग्रेजों की सफलता तथा फ्रांसीसियों की असफलता के कारण

फ्रांसीसियों की असफलता तथा अंग्रेजों की सफलता के अनेक कारण थे जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित थे :

(1) व्यापारिक श्रेष्ठता तथा सन्तोषजनक आर्थिक स्थिति (Commercial superiority and better finance position)—अंग्रेजों की सफलता का सबसे प्रमुख कारण यह था कि फ्रांसीसी कम्पनी की अपेक्षा अंग्रेज कम्पनी की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। युद्ध काल में भी अंग्रेजों ने अपने व्यापार की ओर पूरा ध्यान दिया और इस प्रकार वे अपने युद्धों पर व्यय करने के लिए धन कमाते रहे तथा वे दूसरों पर निर्भर नहीं रहे। साथ ही कम्पनी ने इंगलैण्ड की सरकार को विशाल धनराशि ऋण के रूप में दी तथा जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। एक अनुमान के अनुसार सन् 1736 ई. से 1756 ई. के बीच 21 वर्षों में अंग्रेज कम्पनी ने फ्रांसीसी कम्पनियों की अपेक्षा $3\frac{1}{2}$ गुना अधिक व्यापार किया। फ्रांसीसी अधिकारियों ने इस तथ्य की अवहेलना कर दी। **परिणामस्वरूप फ्रांसीसी कम्पनी की आर्थिक स्थिति निरन्तर खराब होती चली गयी।** धन के अभाव के कारण सैनिकों को वेतन नहीं दिया जा सका और इसी धन के कारण डूप्ले तथा लाली को व्यर्थ की अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। उन्होंने अनके आवश्यक योजनाओं का परित्याग धनाभाव के कारण किया। इस प्रकार धनाभाव के कारण फ्रांसीसियों के मार्ग में अनेक बाधाएं उत्पन्न हो गयीं।

(2) अंग्रेजी कम्पनी का स्वरूप (Nature of the East India Company)—अंग्रेजी कम्पनी एक प्राइवेट कम्पनी थी, इसी कारण इसके सदस्यों में इसके कल्याण के लिए सदैव विशेष रुचि और उत्साह रहता था। इसके कर्मचारी भी अत्यन्त उत्साह और लगन से कार्य करते थे, क्योंकि उनकी स्वयं की नौकरी कम्पनी की समृद्धि पर निर्भर करती थी। इसके विपरीत, फ्रांसीसी एक सरकारी संस्था थी जिससे इसके कर्मचारी उतनी लगन एवं निष्ठा से

1 "The battle of Wandewash shattered to the ground the might fabric which Martin Dumas and Dupleix had contributed to erect, and sealed the fate of Pondecherry."
—*Malleson*

कार्य नहीं करते थे जितनी कि अंग्रेज कर्मचारी करते थे। इसके अतिरिक्त फ्रांसीसी कम्पनी को ब्याज एक निश्चित दर पर ही मिलता था, इस कारण वे भी कम्पनी के कार्यों में कोई रुचि नहीं लेते थे। इसके साथ-साथ अंग्रेजी कम्पनी पर उसकी सरकार की नीति-परिवर्तनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था, क्योंकि वह एक निजी कम्पनी थी, परन्तु फ्रांसीसी कम्पनी पर उसकी सरकार की नीति-परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता था, क्योंकि वह सरकारी कम्पनी थी।

(3) **अंग्रेजी कम्पनी को सरकारी सहायता** (English Company was backed by English Govt.)—यद्यपि अंग्रेजी कम्पनी एक निजी कम्पनी थी परन्तु वह आवश्यकता के समय जनता तथा सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त कर लेती थी। कम्पनी ने इंगलैण्ड की सरकार को ऋण दे रखा था जिससे इंगलैण्ड की सरकार कम्पनी की ऋणी थी। इसके अतिरिक्त, इसके अनेक संचालक तथा हिस्सेदार संसद् सदस्य थे तथा अनेक उच्च पदों पर आसीन थे। इसके विपरीत, फ्रांसीसी कम्पनी में ऐसे कोई उच्च पदों पर आसीन सदस्य नहीं थे तथा फ्रांसीसी सरकार ने भी फ्रांसीसी कम्पनी को किसी प्रकार की सहायता नहीं दी।

(4) **बंगाल विजय** (Conquest of Bengal)—अंग्रेजों की बंगाल विजय उनकी सफलता का एक बड़ा कारण था। न केवल इससे अंग्रेजों की प्रतिष्ठा बढ़ी अपितु इससे बंगाल का अपार धन एवं जनशक्ति भी उन्हें मिल गयी। इतिहासकार डॉडवैल के अनुसार, "**अनेक ऐसे कठिन अवसरों पर जब अंग्रेज सैनिक विद्रोह करने को तत्पर हो जाते थे, उन्हें बंगाल से रसद प्राप्त हो जाती थी जिससे मद्रास का युद्ध चलता रहता था।**"[1]

फ्रांसीसियों के पास इस प्रकार का कोई प्रदेश नहीं था। उन्होंने दक्षिण में ही अपना एक केन्द्र बनाया जो कि उनकी भूल थी। डॉ. स्मिथ का इस सम्बन्ध में कथन है कि "**यदि नेपोलियन अथवा सिकन्दर होता तो भी वह दक्षिण से प्रारम्भ होकर भारत में उस शक्ति के विरुद्ध अपना साम्राज्य स्थापित नहीं कर सकता था जिसके पास बंगाल हो।**"[2] मेरियट (Marriot) ने ठीक ही लिखा है कि "**डूप्ले ने मद्रास में भारत की चाबी खोजने का निष्फल प्रयत्न किया। क्लाइव ने यह चाबी बंगाल में खोजी और उसे मिल गयी।**"[3]

(5) **डूप्ले को वापस बुलाना** (Recall of Dupleix)—फ्रांसीसी सरकार की एक भयंकर भूल यह थी कि उसने 1754 ई. में डूप्ले को फ्रांस वापस बुला लिया। यथार्थ में कर्नाटक में फ्रांसीसियों की पराजय का उत्तरदायित्व डूप्ले पर नहीं था। वह एक योग्य एवं निःस्वार्थ व्यक्ति था, जिसने भारत की स्थिति का भली प्रकार अध्ययन कर लिया था। यदि उसे भारत में कुछ समय और रहने दिया जाता तो सम्भवतः फ्रांसीसियों की स्थिति को सुधार देता। ऐसे योग्य व्यक्ति की अनुपस्थिति में फ्रांसीसियों के लिए सफलता प्राप्त करना असम्भव हो गया।

(6) **अंग्रेज अधिकारियों का पूर्ण सहयोग** (Co-operation among English Officers)—अंग्रेज अधिकारियों में तथा सेनापतियों में योग्यता के अतिरिक्त एकता भी थी। उन्होंने अपनी योग्यता और एकता के बल पर ही सफलता प्राप्त की। इधर फ्रांसीसी अधिकारियों में पारस्परिक एकता का सर्वथा अभाव था। उनके जल सेना और थल सेना के अधिकारियों ने सम्भवतः कभी भी सहयोग से कार्य नहीं किया। लाबूर्दोने, डूप्ले और बाद में लाली तथा डिएक के पारस्परिक मतभेदों के कारणों से फ्रांसीसी हितों को बड़ी हानि उठानी पड़ी।

1 H. H. Dodwell, *The Cambridge History of India*, Vol. V, p. 182.
2 V. A. Smith, *Oxford, History of India*, p. 482.
3 J. A. R. Marriot, *The English in India*, p. 65.

(7) लाली का उत्तरदायित्व (Responsibility of Lally)—फ्रांसीसियों के पतन के लिए सेनापति लाली भी वहुत कुछ सीमा तक उत्तरदायी था। वह क्रोधी स्वभाव का तथा कटुभाषी व्यक्ति था, इसके कारण चारों ओर उसके शत्रु-ही-शत्रु हो गए। कोई भी फ्रांसीसी अधिकारी उसके वाद सहयोग से कार्य नहीं कर सकता था।

(8) श्रेष्ठ अंग्रेजी जल सेना (Naval Superiority of the British)—इस समय अंग्रेजों की जल-शक्ति अजेय थी और यही उनकी सफलता का मुख्य कारण था। इसका सभी जल मार्गों पर अधिकार था और वे भी फ्रांसीसियों की अपेक्षा कहीं अधिक शीघ्रता से भारत को सहायता भेज सकते थे। फ्रांसीसियों की अनेक स्थलीय सफलताएं जल सेना के अभाव में निरर्थक हो गयीं। इस विषय में डॉडवैल का कथन उल्लेखनीय है। उनके शब्दों में, **"समुद्री शक्ति का प्रभाव ही मुख्य कारण था जो अंग्रेजी सफलता का कारण बना।"**[1]

(9) यूरोपीय राजनीति (European politics)—जिस समय भारत में फ्रांसीसी तथा अंग्रेज युद्ध चल रहा था उस समय फ्रांस अनेक देशों के साथ युद्ध में उलझा हुआ था इसी कारण वह भारत की ओर विशेष ध्यान न दे सका। इंगलैण्ड एक पृथक् द्वीप होने के कारण यूरोपीय युद्धों से वचा रहा इसी कारण अंग्रेज अपने जन तथा धन की रक्षा कर सके जिससे वे भारत की ओर अधिक ध्यान दे सके। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार, **"यूरोप में असफल रहने के कारण फ्रांसीसी भारत में भी असफल रहे।"**

(10) विलियम पिट की नीति (Policy of W. Pitt)—इंगलैण्ड का युद्ध मन्त्री विलियम पिट भी अंग्रेजों की सफलता के लिए उत्तरदायी था, उसने अपनी नीति से फ्रांस को यूरोप में इस प्रकार व्यस्त रखा कि वह भारत की ओर ध्यान ही न दे सका। 1758 ई. में युद्ध मन्त्री का दायित्व संभालते ही पिट ने इस प्रकार के क्रान्तिकारी परिवर्तन किए कि फ्रांस यूरोपीय मामलों में उलझ कर रह गया।

बंगाल की स्थिति
(CONDITION OF BENGAL)

बंगाल भी मुंगल साम्राज्य का एक प्रान्त था। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् समस्त मुगल साम्राज्य छिन्न-भिन्न होकर छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों में परिवर्तित हो गया। बंगाल में भी यही हुआ। मुगल साम्राज्य की कमजोरी का लाभ उठाकर 1740 ई. में अलीवर्दी खां बलपूर्वक बंगाल पर अधिकार कर स्वयं वहां का नवाव बन गया। अलीवर्दी खां कुशल और योग्य शासक था। अपने शासनकाल में वह निरन्तर मराठा आक्रमणकारियों से लड़ता रहा। अन्त में 1751 ई. में काफी धन देकर उसने मराठों से सन्धि कर ली और इसके बाद अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में उसने शान्ति स्थापित करने की चेष्टा की लेकिन वह असफल रहा। अलीवर्दी खां का कोई पुत्र नहीं था। तीन पुत्रियां थीं अतः उसने अपनी सबसे छोटी बेटी के पुत्र सिराजुद्दौला को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया, लेकिन इसका यह कार्य दो बड़े दामादों को पसन्द नहीं था। परिणामस्वरूप उसके शासनकाल में ही दरवार में षड्यन्त्र होने लगे। 10 अप्रैल, 1756 ई. को अलवर्दी खां की मृत्यु हो गयी।

सिराजुद्दौला तथा बंगाल की गद्दी—अलीवर्दी खां की मृत्यु के पश्चात् सिराजुद्दौला बंगाल की गद्दी पर बैठा, लेकिन गद्दी पर बैठते ही उसे चारों ओर परेशानियों ने घेर लिया। अलीवर्दी

1 "The principal cause which had contributed to this complete victory was certainly the relentless pressure of sea power."
—H. H. Dodwell, *The Cambridge History of India*, Vol.V, p. 164.

खां के तीन पुत्रियां थीं और उसके तीनों ही दामाद उसके शासनकाल में ही मर गए थे। उसकी वड़ी पुत्री घसीटी बेगम पूर्णिया के गवर्नर से व्याही गयी थी। घसीटी बेगम का पुत्र शौकतजंग नवाबी का उम्मीदवार था, उसे अपनी मां तथा उसके दीवान राजबल्लभ का समर्थन प्राप्त था। अलीवर्दी खां की सवसे छोटी पुत्री जो कि पटना के गवर्नर की विधवा थी, का पुत्र सिराजुद्दौला था। अलीवर्दी खां मरते समय सिराजुद्दौला को अपना उत्तराधिकारी वना गया था। अतः गद्दी पर बैठते ही सिराजुद्दौला को घसीटी बेगम, शौकतजंग तथा राजबल्लभ के सम्मिलित षड्यन्त्र का सामना करना पड़ा। इसके अतिरिक्त जगत सेठ तथा कलकत्ते का प्रमुख सिक्ख व्यापारी अमीचन्द भी सिराजुद्दौला के विरुद्ध थे किन्तु इन सबसे बढ़कर सिराजुद्दौला के सम्मुख सबसे कठिन समस्या अंग्रेजों के कुचक्र एवं षड्यन्त्र के रूप में विद्यमान थी।

सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के कुचक्र—अलवर्दी खां के शासनकाल से ही अंग्रेजों द्वारा बंगाल को लूटने की योजना आरम्भ हो चुकी थी। वास्तव में पूर्वी प्रान्तों में वंगाल अधिक उपजाऊ प्रान्त था जिससे अंग्रेज उस पर वरावर नजर लगाए थे। इसी समय बंगाल में उस समय के विदेशी ईसाई कुछ हिन्दुओं के साथ मिलकर मुसलमान शासकों के विरुद्ध विद्रोह करने तथा उनके राज्य को नष्ट करने की साजिशें कर रहे थे। **कलकत्ता का प्रसिद्ध सिक्ख व्यापारी अमीचन्द्र भी अंग्रेजों की मदद कर रहा था।** एक अंग्रेज षड्यन्त्रकारी कर्नल स्कॉट ने अमीचन्द्र की मदद से गुप्त रूप से वड़े-वड़े हिन्दू रांजाओं एवं रईसों को अपनी ओर मिला लिया। कर्नल स्कॉट ने अपने झूठे-सच्चे वायदे करके नवाब के अनेक दरवारियों एवं सम्बन्धियों की नियति को भी डावांडोल कर दिया। उधर कलकत्ते में अंग्रेजों तथा चन्द्रनगर में फ्रांसीसियों की किलेबन्दियां बरावर जारी थीं। यद्यपि अलीवर्दी खां को इन बातों का थोड़ा-सा भेद मालूम हो गया था। **नवाब ने इसके लिए कठोर कदम उठाने का प्रयास किया लेकिन इस समय वह काफी बूढ़ा हो चुका था अतः वह कुछ भी नहीं कर पाया।** अपने अन्तिम समय में उसने सिराजुद्दौला को अंग्रेजों से सतर्क रहने की चेतावनी अवश्य दी।

सिराजुद्दौला के गद्दी पर वैठते समय **ईस्ट इण्डिया कम्पनी की साजिशें भीतर-ही-भीतर फैल चुकी थीं।** उधर अंग्रेज व्यापारी प्रारम्भ से ही सिराजुद्दौला के लिए सिरदर्द का कारण बने थे। नवाब कई कारणों से अंग्रेज व्यापारियों से नाराज था क्योंकि अंग्रेज शाही फरमानों द्वारा मिली सुविधाओं का दुरुपयोग कर रहे थे तथा विना चुंगी दिए ही व्यापार कर रहे थे तथा देशी व्यापारियों को भी दस्तक देकर निःशुल्क व्यापार करने के लिए प्रोत्साहित कर रहे थे। इससे नवाव को आर्थिक क्षति हो रही थी। **नवाब का अंग्रेजों से नाराज होने का कारण अंग्रेजों द्वारा नवाब के विरुद्ध षड्यन्त्र थे।** वंगाल के दरवार में उत्तराधिकार को लेकर जो साजिशें चल रही थीं उनमें अंग्रेज भी शामिल थे। सिराजुद्दौला के गद्दी पर बैठने के बाद भी अंग्रेज यह आशा रखते थे कि उनका षड्यन्त्र सफल होगा और बंगाल की गद्दी पर वे उस व्यक्ति को बिठाएंगे जो उनके नियन्त्रण में हो।

उस समय एक परम्परा थी कि प्रत्येक नए नवाब के गद्दी पर बैठते समय सभी मातहत राजा, अमीर एवं विदेशी राज्यों के प्रतिनिधि दरवार में हाजिर होकर नजीरें (भेंट) पेश करते थे। इसका अर्थ यह था कि वे नए नवाब को स्वीकार करते हैं **लेकिन सिराजुद्दौला के गद्दी पर बैठने के समय अंग्रेज कम्पनी की ओर से कोई नजीरें पेश नहीं की गयीं।** इसके अतिरिक्त उस समय अंग्रेज लोग नवाब के उन दरवारियों को कलकत्ता में अपनी कोठियों में पनाह देते थे जो कि नवाब के खिलाफ वगावत करते थे। इन सब बातों की सूचनाएं नवाब सिराजुद्दौला

तक पहुंचती रहीं लेकिन वह वर्दाश्त करता रहा। **इसी वर्ष यूरोप में सप्त-वर्षीय युद्ध प्रारम्भ होने की आशंका उत्पन्न हो गयी। इसी कारण अंग्रेजों ने अपनी बस्तियों में दुर्ग बनाने आरम्भ कर दिए लेकिन नवाब की आज्ञा नहीं ली।**

सिराजुद्दौला के कार्य
(WORKS OF SIRAJ-UD-DAULAH)

आन्तरिक समस्याओं का समाधान—ऐसी परिस्थितियों में बंगाल की राजनीतिक स्थिति अत्यन्त गम्भीर हो गयी लेकिन **सिराजुद्दौला ने बुद्धिमानी और दूरदर्शिता से काम लिया।** सर्वप्रथम वह आन्तरिक कलह का समाधान कर देना चाहता था अतः उसने अपनी बड़ी मौसी घसीटी वेगम की जागीर जब्त कर ली और उसे नवाव के महल में नजरबन्द कर दिया तत्पश्चात् पूर्णिया के गवर्नर शौकतजंग का दमन करने का निश्चय किया और राजमहल की पहाड़ियों की ओर एक विशाल सेना लेकर चल दिया। **शौकतजंग ने भयभीत होकर उसे नवाब स्वीकार कर लिया और अनेक मूल्यवान भेटें देकर उसे प्रसन्न कर दिया।** घसीटी वेगम को, दीवान राजवल्लभ का कुटुम्व और उसका लड़का कृष्णबल्लभ खजाना लेकर अंग्रेजों की शरण में कलकत्ता चला गया। सिराजुद्दौला ने कलकत्ता के अंग्रेज गवर्नर को लिखा कि वह दीवान राजवल्लभ के कुटुम्व को उसे सौंप दे किन्तु अंग्रेजों ने उसकी बात न मानी। अतः सिराजुद्दौला का अंग्रेजों के साथ संघर्ष अनिवार्य हो गया। इसी बीच शौकतजंग ने मुगल सम्राट से बंगाल की नवावी की सनद प्राप्त कर ली। वहां नवाव के सेनापति मीरजाफर और जगत सेठ आदि से इस सम्वन्ध में निर्णय हो रहा था कि मीरजाफर ने गुप्त रूप से समाचार पाकर उस पर धावा बोल दिया। युद्ध में शौकतजंग वुरी तरह से परास्त हुआ और मारा गया। अव सिराजुद्दौला ने अंग्रेजों की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया।

सिराजुद्दौला एवं अंग्रेज—सिराजुद्दौला अंग्रेजों की ओर से पहले से ही सावधान था। अंग्रेजों के माल पर चुंगी माफ थी, अतः अंग्रेज लोग देशी व्यापारियों से रिश्वत लेकर अपने हस्ताक्षरों की एक पर्ची उन्हें दे दिया करते थे कि उक्त व्यापारी हमारा माल ले जा रहा है। नवाब के कर्मचारी देशी व्यापारियों से इस प्रकार की पर्चियां देखकर चुंगी नहीं ले पाते थे। अंग्रेजों के इस प्रकार के कार्य से बंगाल के नवाव को भारी हानि हो रही थी। यह हानि अलीवर्दी खां के समय से चली आ रही थी। सिराजुद्दौला को इस हानि का ज्ञान था अतः वह अंग्रेजों के इस कार्य को रोकना चाहता था। **उधर अंग्रेजों एवं फ्रांसीसियों को इस बात का विश्वास हो गया था कि यूरोप में दोनों जातियों के बीच युद्ध छिड़ने वाला है जिससे भारत में भी उनमें युद्ध छिड़ जाएगा।** अतः अंग्रेज एवं फ्रांसीसी दोनों बंगाल में अपनी किलेवन्दी करने लगे तथा सैनिक संख्या वढ़ाने लगे। नबाव सिराजुद्दौला की दृष्टि में ये कार्य अनुचित थे। उसमें अंग्रेजों एवं फ्रांसीसी दोनों को किलेवन्दी रोक देने के लिए आज्ञा दी। फ्रांसीसियों ने तो नवाब की आज्ञा मान ली किन्तु अंग्रेजों ने नवाब के आदेश की कोई चिन्ता नहीं की तथा उन्होंने किलेवन्दी तथा देशी व्यापारियों को पर्ची देकर उनसे रिश्वत लेना जारी रखा।

सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के बीच संघर्ष—सिराजुद्दौला ने अंग्रेजों को उसी समय किलेबन्दी वन्द करने की आज्ञा दे दी थी, जिस समय कि वह शौकतजंग को दबाने के लिए पूर्णिया की ओर जा रहा था. लेकिन मार्ग में ही उसे यह सूचना मिली कि अंग्रेज उसकी आज्ञा मानने के लिए तैयार नहीं हैं। सिराजुद्दौला इससे वहुत क्षुब्ध हुआ। वह शीघ्र ही राजमहल से मुर्शिदाबाद लौट आया और 24 जून 1756 ई. को **अंग्रेजों की कोठी घेरने के लिए उसने एक**

सेना कासिम बाजार भेज दी। किलेवन्दी एवं तोपों के बावजूद कासिम बाजार की कोठी सिराजुद्दौला की सेना के सामने टिक न सकी। अंग्रेज अफसर वाट्सन ने हार मानकर कोठी को सिराजुद्दौला के सुपुर्द कर दिया। इसके बाद सिराजुद्दौला ने कलकत्ता पर आक्रमण किया। यहां के अंग्रेज अधिकारी भी सिराजुद्दौला की सेना के सामने नहीं ठहर सके, वे फोर्ट विलियम के किले को छोड़कर भाग गए। **कुछ अंग्रेज व्यापारियों ने आत्म-समर्पण कर दिया तथा बहुत-से गिरफ्तार कर लिए गए।**

कालकोठरी की दुर्घटना (Black Hole event)—कलकत्ता की इस छोटी-सी लड़ाई के साथ कालकोठरी की दुर्घटना भी सम्मिलित है। लगभग सभी अंग्रेज इतिहासकार अपनी जाति की इस हार के साथ एक भयंकर हत्याकाण्ड का जिक्र करते हैं। अंग्रेजी कोठी के अन्दर एक अंधेरी कोठरी थी, जो अंग्रेजी व्यापारियों की ही वनायी हुई थी और जिसमें कम्पनी के अफसर भारतीय अपराधियों या कर्जदारों को वन्द कर दिया करते थे। अंग्रेज लेखकों का कहना है कि 20 जून की रात को नवाव के सैनिकों ने 146 अंग्रेज कैदियों को एक छोटी-सी कोठरी में जो 18 फीट लम्वी तथा 14 फीट 10 इंच चौड़ी थी, बन्द कर दिया। अधिक गर्मी एवं स्थान की कमी के कारण 124 व्यक्ति दम घुट जाने के कारण मर गए, उसमें से केवल 22 व्यक्ति वचे। **यह दुर्घटना ब्लैक हॉल के नाम से विख्यात है।**

लेकिन इस दुर्घटना के विषय में काफी विवाद है, आधुनिक इतिहासकार इस घटना को कपोल कल्पित मानते हैं। क्षेत्रफल के अनुसार भी 146 व्यक्तियों को इतने छोटे कमरे में वन्द करना सम्भव नहीं था। इसके अतिरिक्त, तत्कालीन किसी पत्र अथवा साहित्य में भी इसका उल्लेख नहीं मिलता है, यदि इस घटना को सत्य मान भी लिया जाए, तो भी व्यक्तिगत रूप से सिराजुद्दौला को इसके लिए जिम्मेदार नहीं माना जा सकता।

कलकत्ता पर अंग्रेजों का आक्रमण—अंग्रेजों का यह आक्रमण धोखेबाजी से किया गया। अंग्रेजों ने नवाव को धोखा देने के उद्देश्य से अत्यन्त ही दीन और नम्र शव्दों में इस आशय की प्रार्थना सिराजुद्दौला के पास भेजनी शुरू की कि हमें फिर से वंगाल में व्यापार करने की अनुमति दी जाए लेकिन यह प्रार्थना नवाव को धोखे में रखने की एक चाल थी। इसी बीच मद्रास से क्लाइव तथा वाट्सन के नेतृत्व में क्रमशः एक थल और एक जल सेना पहुंच गयी। इस सम्मिलित सेना ने तुरन्त ही कलकत्ता पर आक्रमण कर दिया। कलकत्ता की सुरक्षा की जिम्मेदारी मानिकचन्द्र पर थी परन्तु वह तो पहले से ही अंग्रेजों से मिला हुआ था अतः उसने कभी भी ईमानदारी से युद्ध नहीं किया, फलतः कलकत्ता और हुगली पर शीघ्र ही अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया। **ऐसी स्थिति में नवाब सिराजुद्दौला को 9 फरवरी, 1757 ई. को अंग्रेजों के साथ अलीनगर की सन्धि करनी पड़ी।** इस सन्धि के अनुसार अंग्रेजों को पुरानी व्यापारिक सुविधाएं लौटा दी गयीं और उनको एक भारी धनराशि हर्जाने के रूप में मिली। **सिराजुद्दौला ने अलीनगर की अपमानजनक सन्धि को निम्न कारणों से स्वीकार कर लिया :**

(1) पहला कारण तो यह था कि सिराजुद्दौला को इस बात की सूचना मिल गयी थी कि उसका दरबार षड्यन्त्रों का अड्डा बन गया है तथा उसके अपने ही आदमी उसे धोखा दे रहे हैं।

(2) इसके अतिरिक्त उस समय अपनी स्थिति को कमजोर देखकर उसने अलीनगर की सन्धि करना ही उचित समझा।

वास्तव में, **अलीनगर की सन्धि अंग्रेजों के लिए बड़ी लाभकारी सिद्ध हुई।** अव उनकी स्थिति अत्यन्त दृढ़ हो गयी थी तथा किलेवन्दी करने में उन्हें रोकने वाला भी कोई नहीं था।

अंग्रेजों द्वारा चन्द्रनगर पर अधिकार—इसी समय यूरोप में सप्त-वर्षीय युद्ध (Seven-years war) आरम्भ हो गया था। अंग्रेजों ने चन्द्रनगर पर आक्रमण कर दिया। इस समय सिराजुद्दौला को फ्रांसीसियों की मदद करनी चाहिए थी लेकिन सिराजुद्दौला राजनीतिक कूटनीतिज्ञता के अभाव में ऐसा नहीं कर सका। वह असमंजस में पड़ा रहा कि उसे अंग्रजों का विरोध करना चाहिए अथवा नहीं। इसी समय क्लाइव ने चन्द्रनगर की वस्ती पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। **वास्तव में यह नवाव की भूल तथा क्लाइव की महान् कूटनीतिज्ञता थी,** क्योंकि चन्द्रनगर की विजय ने अंग्रेजों की प्रतिद्वन्द्वी शक्ति फ्रांसीसियों का पूर्णतया अन्त कर दिया था तथा दूसरी ओर फ्रांसीसियों द्वारा भी सिराजुद्दौला की सहायता का द्वार वन्द कर दिया गया। इस प्रकार सिराजुद्दौला परिस्थितियों की गम्भीरता को समझने में असफल रहा।

बंगाल में अंग्रेजी शासन की स्थापना (1757-1772 ई.)

उस समय वंगाल में काफी गड़वड़ी मची हुई थी। दरवार में नवाव के विरुद्ध षड्यन्त्र रचे जा रहे थे। अंग्रेजों ने नवाव के प्रमुख व्यक्तियों के साथ मिलकर षड्यन्त्र और विश्वासघात का एक जाल विछाया। सिराजुद्दौला के स्थान पर मीरजाफर को नवाव वनाने का षड्यन्त्र रचा गया। इस षड्यन्त्र में शामिल होने वाले व्यक्तियों में प्रमुख थे मीर जाफर (प्रधान सेनापति), मानिक चन्द्र, अमीचन्द्र, जगत सेठ (एक वड़ा साहूकार)। इन सवने मिलकर एक गुप्त सन्धि की तथा यह निर्णय किया कि मीर जाफर को वंगाल का नवाव बनाया जाएगा।

प्लासी का युद्ध
(BATTLE OF PLASSEY)

युद्ध के कारण (Causes of the Battle)—सिराजुद्दौला के सिंहासन पर आसीन होते ही अंग्रेजों से उसके सम्वन्ध कटुतापूर्ण होते चले गए और जून, 1756 ई. **तक इन कटुतापूर्ण सम्बन्धों में निरन्तर वृद्धि होती चली गयी।** इस शत्रुता के उत्पन्न होने के प्रमुख कारण निम्न थे :

(1) सिराजुद्दौला का अनिश्चित उत्तराधिकार और राज्य में आन्तरिक कलह—अलीवर्दी खां की तीन पुत्रियां थीं, पुत्र नहीं था। सिराजुद्दौला उसकी सवसे छोटी बेटी का पुत्र था अतः अलीवर्दी खां द्वारा सिराजुद्दौला को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने से उसकी अन्य पुत्रियां एवं उनके पुत्र नाराज थे। अलीवर्दी खां की मृत्यु के वाद उसकी एक पुत्री घसीटी बेगम तथा शौकतजंग अपनी-अपनी दलीलें पेश करने लगे। बंगाल के कुछ दरवारियों ने भी उनको समर्थन देना प्रारम्भ कर दिया। इसके परिणामस्वरूप सिराजुद्दौला की स्थिति अत्यन्त अनिश्चित तथा शिथिल हो गयी। अंग्रेज दीर्घकाल से बंगाल पर अपनी दृष्टि लगाए हुए थे अतः अव उन्होंने भी वंगाल में व्याप्त इस आन्तरिक कलह का फायदा उठाने का प्रयत्न किया।

(2) सिराजुद्दौला के विरोधियों द्वारा अंग्रेजों की सहायता—अलीवर्दी खां के जीवन में ही यह अफवाह व्याप्त थी कि अंग्रेज सिराजुद्दौला के विरुद्ध घसीटी बेगम का समर्थन कर रहे हैं। उस समय अंग्रेजों ने निःसन्देह ही इस अफवाह का खण्डन किया था परन्तु सत्यता यह है कि अंग्रेजों का अलीवर्दी खां की मृत्यु के उपरान्त भी घसीटी बेगम के दीवान राजवल्लभ के साथ यह व्यवहार चल रहा था। परिणामस्वरूप सिराजुद्दौला के हृदय में अंग्रेजों के विरुद्ध शंकाएं उत्पन्न होने लगीं।

(3) सिराजुद्दौला द्वारा किलेबन्दी पर प्रतिबन्ध—अलीवर्दी खां के समय में अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों ने जो किलेबन्दी करनी प्रारम्भ कर दी उसे अलीवर्दी खां ने बन्द करवा दिया था किन्तु उसकी मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर उत्पन्न हुए आन्तरिक कलह का लाभ उठाकर अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों ने पुनः अपनी-अपनी वस्तियों की किलेबन्दी प्रारम्भ कर दी थी। सिराजुद्दौला ने सभी यूरोपीय जातियों को अपनी-अपनी किलेबन्दी को समाप्त कर देने का आदेश दिया। फ्रांसीसियों ने तो उसके आदेशों का पालन किया परन्तु अंग्रेजों ने उसके आदेशों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जिसके कारण अंग्रेजों एवं सिराजुद्दौला के मध्य विरोध बढ़ गया।

(4) अंग्रेजों द्वारा व्यापारिक सुविधाओं का दुरुपयोग—मुगल सम्राट फर्रुखसियर ने ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को मात्र तीन हजार रुपए वार्षिक कर के बदले में बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा प्रदेशों में निःशुल्क व्यापार करने की अनुमति दे दी थी किन्तु कम्पनी के कर्मचारियों ने इन सुविधाओं का अनुचित प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने अपने **'दस्तक'** अथवा **'अनुमति पत्र'** भारतीय व्यापारियों को रिश्वत लेकर वेच दिए। परिणामस्वरूप भारतीय व्यापारी भी अव सम्पूर्ण प्रदेश में मुक्त व्यापार करने लगे। सिराजुद्दौला के लिए यह स्थिति असहनीय थी क्योंकि इससे उसके राजकोष को भारी हानि उठानी पड़ रही थी।

(5) सिराजुद्दौला का कासिम बाजार, कलकत्ता पर अधिकार तथा ब्लैक होल की घटना—अंग्रेजों से अत्यन्त नाराज होने के कारण सिराजुद्दौला ने 4 जून, 1756 ई. को कासिम वाजार पर अपना अधिकार कर लिया तथा 16 जून को वह कलकत्ता पहुंच गया, उसे किसी प्रकार के विरोध का सामना नहीं करना पड़ा। उसने 20 जून, 1756 ई. को कलकत्ता पर अपना अधिकार कर लिया। कलकत्ता का गवर्नर डेक, कलकत्ता का उत्तरदायित्व हालवैल नामक सैनिक अधिकारी को सौंपकर फुलटा भाग गया। यहां पर एक काल कोठरी की घटना हुई जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है लेकिन आधुनिक इतिहासकार इस काल **कोठरी की घटना** (Black hole tragedy) को पूर्णतया मनगढ़न्त मानते हैं। जे. एच. लिटिल नामक एक आधुनिक इतिहासकार का इस घटना के सम्बन्ध में कथन है कि **''हालवैल तथा उसके उन सहयोगियों ने जिन्होंने इस घटना का अनुमोदन किया था, इस मनगढ़न्त कथा को रचने का षड्यन्त्र किया था।''**

(6) अंग्रेजों द्वारा कलकत्ता पर पुनः अधिकार तथा चन्द्रनगर पर अधिकार—कासिम वाजार और कलकत्ता में अंग्रेजों की पराजय का समाचार जब मद्रास काउन्सिल के सदस्यों तथा अन्य अंग्रेज अधिकारियों को मिला तो इन अधिकारियों ने क्लाइव के सेनापतित्व में स्थल सेना की एक टुकड़ी तथा वाट्सन की अध्यक्षता में एक नौ-सैनिक टुकड़ी बंगाल की ओर भेजी। इस समय सिराजुद्दौला अपने विरोधी शौकतजंग के विरुद्ध कार्यवाही कर रहा था। **उसने अपने एक सेनापति मानिकचन्द को कलकत्ता का उत्तरदायित्व सौंप रखा था लेकिन मानिकचन्द्र पहले ही अंग्रेजों की ओर मिल गया था, अतः थोड़े-से युद्ध का दिखावा करके वह कलकत्ता से भाग गया।** इसलिए जनवरी 1757 ई. में कलकत्ता पर पुनः अंग्रेजों का अधिकार हो गया। अंग्रेजों को आशंका थी कि कहीं सिराजुद्दौला चन्द्रनगर के फ्रांसीसियों से न मिल जाए इसी कारण उन्होंने सिराजुद्दौला से शीघ्रता से अलीनगर की सन्धि कर ली। इस अवसर पर स्वयं क्लाइव ने कहा था, **''एक अथवा दो दिन का विलम्ब फ्रांसीसियों तथा नवाब के विरोध के सहयोग के कारण ही कम्पनी की समस्त आशाओं का विनाश कर देता।''**

नवांव से सन्धि के शीघ्र वाद ही क्लाइव ने चन्द्रनगर पर आक्रमण करके उस पर भी अधिकार कर लिया। **इस परिस्थिति में सिराजुद्दौला को फ्रांसीसियों की मदद करनी चाहिए थी लेकिन उसने ऐसा नहीं किया।** यह वास्तव में उसकी महान् राजनीतिक भूल थी। इतिहासकार दत्ता के अनुसार, "**इस प्रकार इस कूटनीतिक युद्ध में नवाब अंग्रेजों से पराजित हुआ।**"

(7) नवाब के विरुद्ध षड्यन्त्र—जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है कि **क्लाइव ने नवाब की शक्ति समाप्त करने के लिए कूटनीति और उसके दरबार में षड्यन्त्र करवाने आरम्भ कर दिए।** क्लाइव ने नवाब के मुख्य सेनापति मीरजाफर तथा एक अन्य महत्वपूर्ण सेनानायक रायदुर्लभ को अपनी ओर कर लिया। मीरजाफर को नवाब वनाने का लालच दिया जिससे वह षड्यन्त्र करने को तैयार हो गया। **अमीचन्द नामक एक समृद्ध व्यापारी के माध्यम से अंग्रेजों तथा मीरजाफर के बीच जून 1757 ई. में एक गुप्त सन्धि हुई जिसके द्वारा मीरजाफर को नवाब बनाना निश्चित हुआ।** मीरजाफर ने आश्वासन दिया कि वह अपनी सेना सहित अंग्रेजों का साथ देगा तथा इस सन्धि के द्वारा यह भी निश्चित हुआ कि (1) कलकत्ता के विनाश की क्षतिपूर्ति हेतु मीरजाफर एक करोड़ रुपया कम्पनी को, 50 लाख रुपया अंग्रेजों को तथा 20 लाख रुपया कलकत्ता के हिन्दुओं को देगा। (2) दूसरी वात यह कि मीरजाफर कलकत्ता की किलेबन्दी में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा तथा कलकत्ता के निकटवर्ती प्रदेशों को अंग्रेजों को दे देगा। (3) यदि मीरजाफर उपर्युक्त सभी. निर्णयों का पालन करेगा तो अंग्रेज उसके सभी शत्रुओं के विरुद्ध उसकी सहायता करेंगे, परन्तु इन परिस्थितियों में अंग्रेजी सेनाओं का व्यय मीरजाफर को ही सहन करना पड़ेगा। मध्यस्थता कराने वाले धोखेवाज अमीचन्द ने इस रहस्य को छिपाए रखने का 30 लाख रुपया मांगा। क्लाइव ने इस सन्धि की दो प्रकार की प्रतियां तैयार करवायीं—**लाल प्रतियां** जो नकली थीं, इन पर अमीचन्द को 30 लाख रुपया दिए जाने का उल्लेख था परन्तु **सफेद प्रतियां** जो कि वास्तविक थीं उनमें अमीचन्द को रुपए दिए जाने का कोई उल्लेख नहीं था। वाट्सन ने लाल रंग की प्रतियों पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया अतः क्लाइव ने स्वयं ही वाट्सन के हस्ताक्षर कर दिए। **नैतिक दृष्टि से क्लाइव का यह कार्य पूर्णतया अनुचित था।**

इतिहासकारों का मत है कि जून मास के मध्य तक सिराजुद्दौला को इस सन्धि के विषय में पता चल गया था, परन्तु वह कुछ भी कार्यवाही करने में असफल रहा। सम्भवतः वह अल्पायु का होने के कारण अनुभवहीन रहा तथा अपने धोखेवाज परामर्शदाताओं के धोखे का शिकार बन गया। डॉ. आर. सी. मजूमदार के अनुसार, "**यदि नवाब ने शीघ्रता से कार्य करके मीरजाफर को वन्दी बना लिया होता तो अन्य षड्यन्त्रकारी स्वयं ही आतंकित हो जाते तथा षड्यन्त्र पूर्ण रूप से असफल हो गया होता लेकिन नवाब के साहस ने उसका साथ छोड़ दिया। किसी सख्त कार्यवाही के स्थान पर वह स्वयं मीरजाफर से भेंट करने उसके निवास पर गया और अलीवर्दी के नाम दयनीय मिन्नतें कीं।**"

घटनाएं (Events, 23rd June, 1757)—**षड्यन्त्र के पूर्ण रूप से निश्चित हो जाने पर क्लाइव युद्ध का बहाना ढूंढने लगा।** उसने शीघ्र ही सिराजुद्दौला पर आरोप लगाया कि वह 9 फरवरी, 1757 ई. की अलीनगर की सन्धि का पालन नहीं कर रहा है तथा फ्रांसीसियों एवं डचों के साथ सहयोग करके षड्यन्त्र कर रहा है। सिराजुद्दौला के द्वारा इस आरोप का खण्डन करने पर भी क्लाइव ने उस पर आक्रमण कर दिया। 22 जून, 1757 ई. को नवाब तथा अंग्रेजों की सेनाएं '**प्लासी**' नामक गांव के पास एक-दूसरे के सामने आ खड़ी हुईं, युद्ध 23

जून, 1757 ई. को अगले दिन आरम्भ हुआ। सिराजुद्दौला की सेना की संख्या लगभग 50,000 थी जबकि अंग्रेजी सेना की संख्या केवल 3,200 थी परन्तु क्लाइव को यह विश्वास था कि सिराजुद्दौला की सेना का बहुत बड़ा भाग युद्ध में भाग नहीं लेगा। दोपहर के समय तक क्लाइव ने नवाव की सेना पर आक्रमण कर दिया। मोहन लाल तथा मीरमदान के सेनापतित्व में नवाव की थोड़ी-सी सेना तथा कुछ फ्रांसीसियों ने अंग्रेजी सेना का वीरतापूर्वक सामना किया। **मीरजाफर तथा राय्दुर्लभ के सेनापतित्व में सेना के एक विशाल भाग ने इस युद्ध में कोई भाग नहीं लिया** और सिराजुद्दौला के साथ यह विश्वासघात किया। जब नवाव को इस बात का पता चला कि उसके बड़े-बड़े सेनानायक उससे विश्वासघात कर रहे हैं तो वह घबरा गया अतः अपने प्राणों की रक्षा हेतु युद्ध-क्षेत्र से भाग गया। युद्ध-क्षेत्र से भागकर सिराजुद्दौला मुर्शिदावाद पहुंचा और वहां से वह अपनी पत्नी लुत्फउन्निसा के साथ पटना की ओर भाग गया परन्तु उसे शीघ्र ही वन्दी वना लिया गया तथा कुछ समय पश्चात् मीरजाफर के पुत्र मीरन ने उसकी हत्या कर दी। इस प्रकार धोखे से अंग्रेजों को वहुत वड़ी सफलता मिल गयी।

प्लासी युद्ध के परिणाम (Results of the Battle of Plassey)—सैनिक दृष्टि से प्लासी के युद्ध का कोई विशेष महत्व नहीं है, क्योंकि इस युद्ध में सैन्य शक्ति का नहीं अपितु षड्यन्त्र का सहारा लिया गया किन्तु परिणामों की दृष्टि से प्लासी युद्ध की गणना भारतीय इतिहास के महान् युद्धों में की जाती है। इसके प्रभाव स्थायी तथा सुदूरगामी सिद्ध हुए, जिन्होंने भारतीय इतिहास की धारा को ही मोड़ दिया। एडमिरल वाट्सन ने इस युद्ध के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा, **"प्लासी का युद्ध कम्पनी के लिए नहीं अपितु सामान्य रूप से ब्रिटिश जाति के लिए असाधारण महत्व रखता है।"** इस युद्ध के महत्वपूर्ण परिणाम निम्नलिखित प्रकार से हुए :

(1) **बंगाल पर अंग्रेजी नियन्त्रण की स्थापना** (It established English control over Bengal)—वंगाल के कवि नवीन चन्द्र ने प्लासी के प्रभाव को दर्शाते हुए लिखा है, **"भारत में अनन्त अन्धकारमयी रात्रि आरम्भ हो गयी।"** प्लासी के युद्ध के उपरान्त बंगाल की सत्ता पर अंग्रेजों का वास्तविक आधिपत्य हो गया। मीरजाफर वंगाल का नया नवाव वनाया गया। वह अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली मात्र था अर्थात् वह सैद्धान्तिक रूप से सार्वभौम था, व्यावहारिक रूप में नहीं। वह कम्पनी की इच्छा तक गद्दी पर बना रह सकता था। यह तथ्य इस दृष्टान्त से प्रमाणित हो जाता है कि जव वाद में कम्पनी ने मीरकासिम को नवाब बनाया तो मीरजाफर ने गद्दी छोड़ दी। इस विषय में के. एम. पणिक्कर का कथन उल्लेखनीय है। उन्होंने लिखा है, **"प्लासी एक ऐसा व्यापार था जिसमें बंगाल के धनवान सेठों और मीरजाफर ने नवाब को बेच दिया था।"**

(2) **कम्पनी को क्षेत्रीय लाभ** (Company got some territory)—इस युद्ध के कारण कम्पनी को अनेक आर्थिक तथा क्षेत्रीय लाभ भी हुए। कम्पनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा में स्वतन्त्र रूप से व्यापार करने की छूट मिल गयी। कलकत्ता के निकट चौवीस परगनों की जमींदारी भी उसे मिल गयी। अतः कलकत्ता स्थित अंग्रेजों की बस्ती काफी समृद्ध हो गयी। व्यापार में भी वृद्धि हुई। कंम्पनी को अन्य लाभ भी हुए। **मीरजाफर ने कलकत्ता पर आक्रमण करने के लिए 1,77,00,000 रुपए युद्ध क्षतिपूर्ति के रूप में कम्पनी और शहर के व्यापारियों को दिए तथा कम्पनी के बड़े अधिकारियों को भी नवाब ने घूस अथवा उपहार के रूप में काफी धनराशि दी। जैसे**—क्लाइव को वीस लाख रुपए से भी अधिक तथा वाट्सन को बीस लाख

रुपए दिए। अनुमानतः इस ढंग से नवाव का कुल तीन करोड़ रुपया व्यय हुआ। इसके साथ-साथ ब्रिटिश व्यापारी तथा अधिकारी अब अपने निजी व्यापार पर चुंगी देने में हमेशा के लिए मुक्त हो गए।

(3) **कम्पनी के गौरव में वृद्धि** (It raised the prestige of the Company)—प्लासी के युद्ध ने कम्पनी के गौरव में अत्यन्त वृद्धि कर दी। अव ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक साधारण व्यापारिक कम्पनी से उठकर एक ऐसी प्रभावशाली शक्ति बन गयी जो शासकों का निर्माण एवं विनाश कर सकती थी। यही कारण था कि अव विभिन्न भारतीय शासक तथा नागरिक, कम्पनी का आदर करने लगे। इतिहासकार सरकार एण्ड दत्ता के अनुसार, **"इस विजय का नैतिक प्रभाव वहुत अधिक था। एक विदेशी कम्पनी के द्वारा एक प्रान्तीय सूबेदार को अपमानित किए जाने से कम्पनी की शक्ति तथा गौरव में असाधारण वृद्धि कर दी।"**

(4) **दक्षिण में होने वाले आंग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष पर प्रभाव** (Effect on Anglo-French conflict in the Deccan)—बंगाल से प्राप्त अनन्त धनराशि एवं अन्य साधनों के सहयोग से कम्पनी ने एक शक्तिशाली सेना का संगठन कर लिया। इस सेना ने तथा बंगाल से उपलब्ध अन्य साधनों ने दक्षिण में होने वाले आंग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष में एक निर्णायक भूमिका अदा की। बंगाल से ही क्लाइव ने कर्नल फोर्ड को दक्षिण में भेजा जिसने फ्रांसीसियों से उत्तरी सरकार के क्षेत्रों को छीना। **आंग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष के तीसरे चरण में अंग्रेजों को जो व्यापक सफलता मिली, निःसन्देह इस सफलता में प्लासी के बाद उनकी बंगाल विजय का सबसे बड़ा हाथ था।**

(5) **बंगाल में होने वाली क्रान्तियों को पथ प्रदर्शन** (It paved the way for subsequent revolution in Bengal)—प्लासी के युद्ध के वाद बंगाल की गद्दी पर मीरजाफर को बैठाया गया। इसे इतिहासकारों ने बंगाल की प्रथम क्रान्ति कहा है। मीरजाफर ने इस कार्य के लिए कम्पनी एवं उसके अधिकारियों को काफी धन दिया था। इस कारण कम्पनी के अधिकारी एवं स्वयं कम्पनी वहुत लालची हो गयी थी। अतः क्लाइव के बंगाल से चले जाने के बाद कम्पनी के अधिकारियों ने मीरजाफर की जगह उसके दामाद मीरकासिम को नवाब बनाने का निर्णय किया। इसके पीछे भी यही लालच था कि बंगाल का नया नवाव बनाने पर उन्हें फिर से धन मिलेगा। अतः **प्लासी के युद्ध ने बंगाल की दूसरी क्रान्ति तथा बाद में बक्सर के युद्ध को जन्म दिया।**

(6) **भारत विजय का मार्ग प्रशस्त**—प्लासी की विजय से अंग्रेजों को पर्याप्त अनुभव एवं शक्ति प्राप्त हुई। अतः इससे उत्साहित होकर वे भारत के अन्य भागों पर भी अपना आधिपत्य स्थापित करने का स्वप्न देखने लगे। अंग्रेजों को अब इस बात का ज्ञान हो गया था कि सिराजुद्दौला के समान ही अन्य भारतीय शासकों पर विजय प्राप्त करना कठिन नहीं है।

(7) **बंगाल का शोषण** (Exploitation of Bengal)—निःसन्देह प्लासी के बाद भारत में अनन्त अन्धकारमयी रात्रि का आरम्भ हो गया था। अब कम्पनी तथा इसके कर्मचारियों के द्वारा बंगाल के लोगों का अत्यन्त शोषण शुरू हुआ। मालेसन के शब्दों में, **"जितना हो सके उतना हड़प लें, मीरजाफर को सोने की एक बोरी के रूप में इस्तेमाल करें और जब इच्छा हो उसमें हाथ डाल दें।"** इस लालच से स्वयं कम्पनी भी नहीं बच पायी थी। बंगाल की सम्पदा कम्पनी के निदेशकों तथा उच्च अधिकारियों को भी अनन्त दिख रही थी। जैसे भी हो इस सम्पदा का अंग्रेज अपहरण करना चाहते थे। यही कारण है कि प्लासी के बाद कम्पनी के निदेशकों ने अपने भारतीय अधिकारियों को निर्देश दे दिया कि बंगाल को भविष्य में मुम्बई और मद्रास प्रेसीडेंसियों का खर्चा वहन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, उन्हें यह भी आदेश

दिया गया कि बंगाल की आमदनी से ही कम्पनी के भारतीय निर्यातित मालों को खरीदना चाहिए। **कम्पनी को भारत से केवल व्यापार ही नहीं करना था जबकि उसे बंगाल के नवाब पर स्थापित अपने नियन्त्रण का इस्तेमाल प्रान्त का सम्पदा को हथिया लेने के लिए करना था।**

(8) **नैतिक प्रभाव**—प्लासी के युद्ध ने बंगाल के नवाब तथा लोगों के हौसले समाप्त कर दिए। उनमें निराशा की भावना उत्पन्न हो गयी और वे स्वयं को निःसहाय समझने लगे। किसी भी राष्ट्र के लिए ये भावनाएं प्राणघातक सिद्ध होती हैं वस्तुतः पतन का प्रतीक होती हैं।

इस प्रकार प्लासी के युद्ध से बंगाल अथवा भारत में ब्रिटिश सत्ता का मार्ग प्रशस्त हो गया। वास्तव में, इस युद्ध ने अंग्रेजों को बंगाल में अपने पैर जमाने का मौका दिया। इसी कारण इस युद्ध के महत्व पर प्रकाश डालते हुए मालेसन ने लिखा है, **"कोई ऐसा युद्ध नहीं हुआ है जिसके तात्कालिक तथा स्थायी परिणाम इतने महत्वपूर्ण हुए हों।"**[1]

बक्सर का युद्ध
(BATTLE OF BUXAR)

यह युद्ध 23 अक्टूबर, 1764 ई. को लड़ा गया। इस युद्ध में एक ओर अंग्रेजी सेनाएं थीं तथा दूसरी ओर बंगाल के भूतपूर्व नवाब मीरकासिम, अवध के नवाब शुजाउद्दौला तथा मुगल सम्राट शाहआलम की संयुक्त सेनाएं थीं।

युद्ध के कारण (Causes of Battle)

इसके निम्नलिखित कारण थे :

(1) **मीरकासिम का नवाव के पद से हटाया जाना**—1760 ई. में मीरकासिम अंग्रेजों की सहायता से बंगाल का नवाव बना। उसने अंग्रेजों को विशाल धनराशि उपहारस्वरूप दी तथा वर्दवान, मिदनापुर, चटगांव, आदि जिले दिए। परन्तु योग्य शासक होने के नाते अंग्रेजों के इशारों पर चलना उसके लिए सम्भव न हो सका। जब मीरकासिम ने कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा किए जाने वाले अनुचित निजी व्यापार का विरोध किया तो कलकत्ता काउन्सिल के अनेक सदस्य उसके विरोधी हो गए। पटना स्थित अंग्रेजी कारखाने के अध्यक्ष ने अपने कार्यों से पटना पर अधिकार करने के प्रयास द्वारा जलते पर नमक का कार्य किया। यह सरासर अन्याय था परन्तु जब अंग्रेजों ने उसे नवाव के पद से हटा दिया तो उसका क्रोध बढ़ गया। अतः इसी कारण मीरकासिम अंग्रेजों का कट्टर शत्रु बन गया और उसने युद्ध करने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

(2) **मीरकासिम द्वारा अंग्रेज बन्दियों की हत्या**—अंग्रेज सेनापति मेजर एडम्स ने मीरकासिम की सेनाओं को कटवाह, गिरिया, मुर्शिदाबाद, मुंगेर, आदि स्थानों पर पराजित किया। मीरकासिम अपने प्राणों की रक्षा के लिए पटना की ओर भाग गया। क्रोधित मीरकासिमं ने अंग्रेज समर्थक सैकड़ों व्यक्तियों की हत्या कर दी। बाद में उसने समरु (Samaru) नामक एक जर्मन की सहायता से 200 अंग्रेज बन्दियों की हत्या कर दी। अतः इस हत्याकाण्ड ने अंग्रेजों को उत्तेजित कर दिया। मीरकासिम का कहना था कि **"यदि मैं शत्रुओं के हाथों में पड़ जाता हूं तो वे मुझे जीवित नहीं छोड़ेंगे। मैं अपनी सत्ता से वंचित हो रहा हूं परन्तु फिर भी मुझे इस बात से कुछ-न-कुछ सन्तोष है कि मेरे पतन से मेरे शत्रुओं को सन्तोष न होगा क्योंकि पहले मैं इन सबका वध कर दूंगा।"**

1 **"There never was a battle in which the consequences were so vast, to immediate and so permanent."** —**Malleson, *Decisive Battles of India*, p. 67.**

(3) अवध के नवाव शुजाउद्दौला द्वारा स्वार्थपूर्ति के लिए मीरकासिम की सहायता—बंगाल से भागकर मीरकासिम पटना पहुंचा तथा पटना से अवध के नवाव शुजाउद्दौला की शरण में चला गया। शुजाउद्दौला तथा उसके पूर्वज दीर्घकाल से बंगाल पर गिद्ध दृष्टि लगाए हुए थे अतः बंगाल पर अपने प्रभाव की वृद्धि करने के उद्देश्य से शुजाउद्दौला मीरकासिम की सहायता करने के लिए तैयार हो गया। सरकार और दत्ता के अनुसार, **"पिछले तीन दशकों से अवध के नवाब अपने प्रभाव में वृद्धि करने के उद्देश्य से बंगाल की ओर गिद्ध दृष्टि लगाए हुए थे। इसी कारण शुजाउद्दौला द्वारा अपने एक बन्धु शासक की उसके सिंहासन को पुनः प्राप्त करने में सहायता करना अपने व्यक्तिगत लाभ की भावना से अधिक था।"**

(4) मीरकासिम, शुजाउद्दौला तथा शाहआलम में आपसी गठबन्धन—मुगल सम्राट शाह आलम इस समय अवध आया हुआ था। वह भी अंग्रेजों से वहुत नाराज था क्योंकि बंगाल तथा बिहार पर मुगल सम्राट के प्रभाव को स्थापित करने के तीन प्रयास अंग्रेजों ने असफल कर दिए थे। अतः वह भी अंग्रेजों के विरुद्ध संगठन में सम्मिलित हो गया। इस प्रकार इस गठवन्धन ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी।

बक्सर युद्ध का प्रारम्भ और घटनाएं (The War Begins)

मीरकासिम, शुजाउद्दौला तथा शाहआलम की सम्मिलित सेनाओं के विहार की ओर बढ़ना आरम्भ किया। उन्हें कुछ फ्रांसीसियों ने भी सहायता दी। 1764 ई. के पूर्वार्द्ध में बिहार और अवध की सीमाओं के निकटवर्ती क्षेत्रों में मुठभेड़ें हुईं, परन्तु कोई निर्णय न हो सका। इसी बीच एक अत्यन्त योग्य सेनापति मुनरो ने अंग्रेजी सेना का नेतृत्व संभाला। 23 अक्टूबर, 1764 ई. को गंगा नदी के तट पर स्थित बक्सर नामक स्थान पर दोनों सेनाओं के मध्य भीषण संग्राम हुआ। दोनों ओर से काफी संख्या में सैनिक मारे गए। अन्त में इस युद्ध में अंग्रेज ही विजयी रहे। मुगल सम्राट शाहआलम ने अंग्रेजों से समझौता कर लिया तथा मीरकासिम युद्ध-क्षेत्र से भाग गया। शुजाउद्दौला ने कुछ समय तक युद्ध अवश्य जारी रखा परन्तु वह अकेले कुछ न कर सका और अन्त में उसने भी कोटा नामक स्थान पर आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रकार बक्सर का युद्ध समाप्त हो गया।

इलाहाबाद की सन्धि (Treaty of Allahabad) (1765 ई.)

मई, 1765 ई. में क्लाइव दूसरी बार गवर्नर के रूप में बंगाल आया था। इस समय तक कम्पनी की स्थिति में व्यापक परिवर्तन हो चुका था। अव वह व्यापारिक संस्था न रहकर उत्तर भारत की एक प्रमुख राजनीतिक शक्ति वन गयी थी। वंगाल का शासन अब अप्रत्यक्ष रूप से कम्पनी के हाथों में आ गया। **क्लाइव ने अवध के नवाब तथा मुगल बादशाह के साथ मित्रता कर ली। अतः यह मित्रता 'इलाहाबाद संन्धि' में परिणत हुई।** इस सन्धि की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित प्रकार से थीं :

(1) शुजाउद्दौला को अवध का प्रदेश पुनः सौंप दिया गया परन्तु उससे कड़ा तथा इलाहाबाद के दो जिले छीन लिए गए।

(2) शुजाउद्दौला ने **युद्ध की क्षतिपूर्ति के लिए अंग्रेजों को पचास लाख रुपए देना स्वीकार** किया।

(3) अंग्रेजों ने अवध के **नवाब को** सैनिक सहायता देना स्वीकार किया, किन्तु इन **सेनाओं का व्यय उसे ही सहन करना था।**

(4) कम्पनी को **अवध के प्रदेशों में बिना कोई कर दिए व्यापार करने की अनुमति मिल** गयी।

(5) अवध के नवाव से लिए गए कड़ा तथा इलाहाबाद के जिले मुगल सम्राट को दे दिए गए।

(6) मुगल सम्राट शाहआलम के लिए 26 लाख रुपया वार्षिक पेंशन निश्चित कर दी गयी।

(7) मुगल सम्राट शाहआलम ने प्रसन्न होकर बंगाल, विहार तथा उड़ीसा की दीवानी अंग्रेजों को सौंप दी अर्थात् अव इन तीनों प्रदेशों से कर एकत्रित करने का अधिकार अंग्रेजों को मिल गया।

बक्सर युद्ध का महत्व (Significance of the Battle of Buxar)

बक्सर के युद्ध का प्लासी के युद्ध से किसी भी प्रकार महत्व कम नहीं है। इस युद्ध में न केवल प्लासी के अपूर्ण कार्य को ही पूरा किया वरन् उसने ब्रिटिश कम्पनी को एक पूर्ण प्रभुतासम्पन्न शक्ति बना दिया।[1] जेम्स स्टीफन ने बक्सर के युद्ध को अत्यन्त महत्वपूर्ण बताया है।[2] इसी प्रकार के विचार मालेसन ने भी व्यक्त किए हैं। मालेसन के शब्दों में, **"बक्सर को सबसे निर्णायक युद्धों में गिना जाएगा।"**[3]

प्लासी का युद्ध एक साधारण मुठभेड़ थी जबकि बक्सर का युद्ध एक भीषण युद्ध था। प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों के 65 तथा भारतीयों के 500 सैनिक मारे गए थे लेकिन बक्सर के युद्ध में इससे कहीं अधिक क्षति हुई। इस युद्ध में अंग्रेजों के 847 तथा भारतीयों के 2,000 सैनिक मारे गए। इतिहासकारों का यह भी मानना है कि बक्सर के युद्ध में अंग्रेजों ने अपनी सैन्य शक्ति का भी अच्छा प्रदर्शन किया तथा भारतीय शक्तियां पहले की अपेक्षा उनका अब अधिक लोहा मानने लगीं। बक्सर के युद्ध के वाद अंग्रेजों का वंगाल पर न्यायिक अधिकार स्थापित हो गया। रैम्जे म्यूर के अनुसार, **"बक्सर के युद्ध ने बंगाल पर कम्पनी के शासक को अन्तिम रूप से जकड़ लिया।"**[4] बक्सर के युद्ध के परिणाम वास्तव में प्लासी के युद्ध से कहीं अधिक महत्वपूर्ण थे। सरकार एण्ड दत्ता के अनुसार, **"बक्सर का युद्ध परिणामों की दृष्टि से प्लासी के युद्ध से कहीं अधिक निर्णायक था। प्लासी के युद्ध के परिणामस्वरूप कम्पनी बंगाल के सिंहासन पर अपना एक कठपुतली नवाव बैठा सकी तथा निःसन्देह उसके सम्मान में भी आश्चर्यजनक वृद्धि हुई, परन्तु बक्सर के युद्ध ने इससे कुछ अधिक किया। बंगाल पर अपने नियन्त्रण को और अधिक सुदृढ़ करने के साथ-साथ उन्हें इस युद्ध के परिणामस्वरूप सूबे के उत्तरी-पश्चिमी भाग (उत्तर प्रदेश) पर अपना नियन्त्रण स्थापित करने का अवसर मिला। यदि प्लासी के युद्ध से बंगाल के नवाब की पराजय हुई तो बक्सर ने उससे भी महान् सम्राट की पराजय की घोषणा कर दी।"**[5]

---

1 "Buxar completed what Plassey had begun."
—Ishwari Prasad, *A History of Modern India*, p. 66.

2 "Deserves for more than Plassey to be considered as the origin of the British power in India. The battle of Plassey was decided more by treachery than by any inherent superiority of English arms and had the rights of the English in Bengal on the Battle alone, their conquest of Bengal might justly have been attributed to a political conspiracy rather to any fair fights."

3 "Buxar takes rank amongst the most decisive battles ever fought."
—Malleson, *Decisive Battles of India*, p. 208.

4 "Buxar finally revetted the shackles of company's rule over Bengal."
—Ramsay Muir

5 Sarkar & Datta, *An Advance History of India*, p. 672.

द्वैधशासन कार्य-प्रणाली तथा दुष्परिणाम
(WORKING OF DOUBLE GOVERNMENT AND ITS EVIL EFFECTS)

बंगाल में द्वैधशासन की स्थापना—भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना तथा संगठन में रार्बट क्लाइव का योगदान एवं सेवाएं महान् समझी जाती हैं। 1765 ई. में जब क्लाइव दूसरी वार बंगाल का गवर्नर वनकर आया तो उसने ज्वलन्त राजनीतिक एवं प्रशासनिक समस्याओं को तत्काल सुलझाने का प्रयास किया। उसने बंगाल में द्वैधशासन की स्थापना की। इलाहाबाद की सन्धि से कम्पनी को वंगाल, विहार तथा उड़ीसा की दीवानी (राजस्व) प्राप्त हो गयी थी। अत: **कम्पनी ने राजस्व-सम्बन्धी कार्यों को तो अपने हाथों में ले लिया लेकिन प्रशासन के कार्य नवाव के हाथों में ही रहने दिए। अतः प्रशासन के कार्यों को इस तरह विभाजित करने की प्रणाली को ही 'द्वैधशासन' (Diarchy) कहा जाता है। यह व्यवस्था 1765 ई. से 1772 ई. तक चली।** 1772 ई. में दोषपूर्ण होने के कारण वारेन हेस्टिंग्ज (Warren Hastings) ने इसे समाप्त कर दिया।

द्वैधशासन का आरम्भ (Diarchy Begins)

1765 ई. में मीरजाफर का देहान्त हो जाने पर ब्रिटिश कम्पनी ने उसके नाबालिग पुत्र नजीबुद्दौला को वंगाल के शासन पर आसीन किया। अंग्रेजों ने इस अवसर का लाभ उठाया तथा रक्षा विभाग का उत्तरदायित्व कम्पनी ने संभाल लिया। वक्सर के युद्ध के उपरान्त बंगाल, विहार, उड़ीसा की दीवानी पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो गया। उन्होंने आन्तरिक मामलों के अन्य सभी विभाग जैसे—शान्ति व्यवस्था, पुलिस, आदि पर नवाव का ही नियन्त्रण रहने दिया। इन सब कार्यों का संचालन करने के लिए नवाव को 53 लाख रुपए वार्षिक देना निश्चित किया गया परन्तु दो वर्ष वाद ही यह राशि घटकर 32 लाख रुपए वार्षिक कर दी गयी। नवाव के अल्पवयस्क होने के कारण कार्य चलाने के लिए दो उप-नवाव भी नियुक्त किए गए। बंगाल का उप-नवाव मुहम्मद रजा खां तथा विहार का उप-नवाव राजा शिवातराय था। क्लाइव ने 1765 ई. में द्वैधशासन स्थापिन करके वास्तविक शक्ति तो कम्पनी के पास रखी परन्तु प्रशासन का भार नवाव के कन्धों पर रख दिया।

द्वैधशासन अपनाने के कारण (Causes for Adopting Diarchy)

क्लाइव ने अनेक कारणों से द्वैधशासन प्रणाली को अपनाया था जिसमें निम्नलिखित प्रमुख थे :

(1) क्लाइव ने यह महसूस किया कि यदि बंगाल के शासन सूत्र को कम्पनी पूरी तरह से अपने हाथों में ले लेती है तो इससे उसकी आमदनी कम हो जाएगी और उत्तरदायित्व बढ़ जाएगा।

(2) कम्पनी के पास बड़ी संख्या में योग्य और प्रशिक्षित प्रशासकों की भी कमी थी। ऐसी दशा में बंगाल के शासन को पूरी तरह अपने हाथों में लेने से कम्पनी को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता।

(3) इस व्यवस्था के द्वारा क्लाइव यह दिखाना चाहता था कि उसने वास्तव में बंगाल पर अधिकार नहीं किया है। अत: दूसरी विदेशी शक्तियां यह नहीं कह सकती थीं कि बंगाल पर अंग्रेजों ने कब्जा कर लिया है।

(4) कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स उस समय समस्त प्रदेशों को लेने के पक्ष में नहीं था क्योंकि इससे कम्पनी के व्यापार में वाधा पड़ने की सम्भावना थी। वे लोग प्रदेश के स्थान पर धन में

अधिक रुचि रखते थे। अतः क्लाइव भी इस बात को समझता था कि यदि वह बंगाल की राजनीतिक सत्ता हाथ में ले लेगा तो सम्भवतः अंग्रेजी संसद कम्पनी के कार्य में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर देगी।

द्वैधशासन प्रणाली के दुष्परिणाम (Demerits of Diarchy)

वास्तव में क्लाइव द्वारा स्थापित यह व्यवस्था अप्रभावी तथा अव्यावहारिक थी। इसने बंगाल में अराजकता तथा भ्रान्ति फैला दी।[1] इस व्यवस्था के प्रमुख दोष निम्न रूप में सामने आए :

(1) इस शासन-व्यवस्था का पालन करने के फलस्वरूप **बंगाल, विहार तथा उड़ीसा में चारों ओर अशान्ति तथा अव्यवस्था का राज्य हो गया।** यद्यपि समस्त उत्तरदायित्व नवाब पर था किन्तु वह शक्तिहीन था दूसरी ओर समस्त शक्ति अंग्रेजों के हाथ में थी, उन पर उत्तरदायित्व कुछ भी नहीं था।

(2) **नवाब के अधिकारियों तथा अंग्रेजों में नित्य प्रति झगड़ा** होने लगा जिसके परिणामस्वरूप इस व्यवस्था का संचालन करना ही कठिन हो गया।

(3) **जनता के कष्टों में भारी वृद्धि हुई** क्योंकि एक ओर उसे अंग्रेज तथा दूसरी ओर नवाब के अधिकारी लूटते थे।

(4) **इस व्यवस्था से भारत का अन्न-भण्डार बंगाल उजाड़ बन गया था।** बंगाल से भूमि-कर अधिक वसूल होता था तथा वसूली में भी कड़ाई की जाती थी। विलियम बोल्ट जो कि कम्पनी के एक कार्यकर्ता थे, के अनुसार इन लोगों को कई बार तो अपने बच्चे बेचने पड़ जाते थे तथा भूमि छोड़कर भाग जाना पड़ता था। 1769-70 ई. के बीच पड़े भयंकर अकाल से भारी जान-माल की हानि हुई। उसे देखकर कम्पनी के एक पदाधिकारी ने इस प्रकार लिखा, **''आज जो करुणामय दृश्य देखने का मिलता है उसका वर्णन करना मनुष्य की शक्ति से परे है। यह निश्चित है कि कुछ प्रदेशों में लोगों ने मृतकों को खाया है।''**

(5) **कृषि-उपज की कमी से व्यापार तथा वाणिज्य पर भी कुप्रभाव पड़ा।** 1717 ई. से अंग्रेजों को बिना कर दिए व्यापार करने की अनुमति थी। इसके अनुसार कम्पनी के कलकत्ता स्थित गवर्नर की आज्ञा से कोई भी माल बिना निरीक्षण तथा बेरोक-टोक इधर-उधर जा सकता था। कर-सम्बन्धी आज्ञा से सरकार को हानि हुई तथा भारतीय व्यापार भी नष्ट हो गया।

(6) **द्वैधशासन प्रणाली से कम्पनी को भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ।** कर एकत्रित करने वाले अधिकारी बीच में ही बहुत-सा धन हड़प जाते थे जिससे कम्पनी के कोष में कुछ नहीं पहुंचता था।

(7) **बंगाल के कपड़ा उद्योग को भी बहुत हानि हुई।** कम्पनी ने बंगाल के कपड़ा उद्योग को हतोत्साहित करने का प्रयत्न किया क्योंकि इससे इंगलैण्ड के रेशम उद्योग को क्षति पहुंचती थी। 1769 ई. में कम्पनी के डाइरेक्टरों ने कार्यकर्ताओं को आदेश दिए थे कि कच्चे सिल्क के उत्पादन को प्रोत्साहित करो तथा रेशमी कपड़ा बुनने को निरुत्साहित करो। रेशम का धागा लपेटने वालों को कम्पनी को लिए काम करने पर बाध्य किया जाता था, कुछ जुलाहों ने तो इस उत्पीड़न से बचने के लिए अपने अंगूठे कटवा लिए थे।

द्वैधशासन प्रणाली का परित्याग—1765 ई. से 1772 तक बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में द्वैधशासन प्रणाली लागू रही, परन्तु इसमें अनेक दोष आ गए थे, अतः 1772 ई. में हेस्टिंग्ज

1 **"It made confusion more confounded and corruption more corrupt."** —*Kaye*

ने इसे समाप्त कर दिया और शासन का भार अपने हाथों में ले लिया। इसके दोषों को अनुभव करके ही मुर्शिदाबाद के एक अंग्रेज रेजीडेण्ट ने विवशतापूर्वक लिखा, **"एक अंग्रेज को यह विचार करते हुए अत्यन्त दुःख होता है कि दीवानी के अधिकार ग्रहण करने के उपरान्त देशवासियों की स्थिति पहले की अपेक्षा अत्यन्त खराब हो गयी है और मैं कह सकता हूं कि यह तथ्य बिल्कुल सत्य है कि यह सुन्दर देश जो कि एक निरंकुश तथा तानाशाह के शासनकाल में समृद्धि के पथ पर अग्रसर होता रहा अब विनाश की ओर अग्रसर हो रहा है, विशेषकर उस स्थिति में जबकि अंग्रेज प्रशासनिक व्यवस्था में मुख्य भागीदार हैं।"**

रॉबर्ट क्लाइव
(ROBERT CLIVE)

इंगलैण्ड के छोटे-से ग्राम में 1725 ई. में क्लाइव का जन्म हुआ था। उसकी पढ़ाई में अधिक रुचि नहीं थी। 19 वर्ष की आयु में वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी में क्लर्क बनकर भारत आया। वह लिपिक की नौकरी से बहुत परेशान हो गया था। अतः वह क्लर्क की नौकरी छोड़कर सेना में भर्ती हो गया। 1746 ई. में डूप्ले ने उसे बन्दी बना लिया लेकिन बाद में छोड़ दिया। सैनिक कार्यों में उसकी अत्यन्त रुचि थी जिससे वह अपने सहयोगियों में काफ़ी लोकप्रिय हो गया। एक सैनिक के रूप में उसने महत्वपूर्ण कार्य किए। इसी कारण इतिहासकारों ने उसे **'भारत में अंग्रेजी राज्य का वास्तविक संस्थापक'**[1] कहा है।

भारत में अंग्रेजी राज्य स्थापित करने में क्लाइव का योगदान—रॉबर्ट क्लाइव दो बार भारत का गवर्नर बनकर आया। अतः अंग्रेजी राज्य स्थापित करने में उसके योगदान को दोनों कालों में अलग-अलग निम्न प्रकार दिया जा सकता है :

(i) क्लाइव का प्रथम कार्यकाल एवं कार्य—प्लासी की विजय के उपरान्त कम्पनी ने क्लाइव को सेण्ट डेविड के गवर्नर पद के स्थान पर बंगाल के गवर्नर का पद दिया। **इस पद पर वह 1757 ई. से 1760 ई. तक रहा।** इस काल में **उसने अनेक प्रशंसनीय कार्य किए जो निम्न प्रकार हैं :**

(1) बिहार में शोरे के व्यापार का एकाधिकार प्राप्त करना—प्लासी के युद्ध के बाद मीरजाफर को बंगाल का नवाब बनाया गया। वह अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली मात्र था। सत्ता पर वास्तविक अधिकार क्लाइव का ही था। मीरजाफर ने अंग्रेजों की मांगों को पूरा करने के लिए अपना सारा कोष खाली कर दिया था लेकिन फिर भी वह अंग्रेजों को प्रसन्न न कर सका। अपनी आर्थिक समस्या का समाधान करने के प्रयासों से मीरजाफर के अपने दो महत्वपूर्ण हिन्दू अधिकारियों दीवान दुर्लभराय तथा बिहार के उप-गवर्नर रामनारायण से सम्बन्ध कटु हो गए। यह समस्या गम्भीर हो गयी थी अतः क्लाइव ने मध्यस्थता करके समझौता करवा दिया। अतः क्लाइव ने पारिश्रमिक के रूप में बिहार में शोरे के व्यापार का एकाधिकार प्राप्त कर लिया।

(2) शाहआलम की पराजय—मुगल सम्राट अलीगौहर (मुगल सम्राट शाहआलम द्वितीय) अपने वजीर इमाद-उल-मुल्क के व्यवहार से दुःखी हो गया अतः वह दिल्ली छोड़कर अवध चला गया। उसने अवध के नवाव शुजाउद्दौला तथा मीरजाफर के साथ मिलकर बिहार पर आक्रमण कर दिया लेकिन वह मीरन द्वारा पराजित हुआ। इसमें क्लाइव ने भी मीरन को सहायता दी थी अतः इस सहायता के बदले क्लाइव को 30,000 पौण्ड वार्षिक आय की जागीर कलकत्ता के समीप प्राप्त हुई।

1 "Real founder of the British Rule in India."

(3) डचों की पराजय—डचों की भी कलकत्ता के निकट चिन्सुरा में एक बस्ती थी। डच लोग बंगाल तथा बिहार में अंग्रेजों की वृद्धि को देखकर काफी चिन्तित हो उठे लेकिन अंग्रेजों द्वारा बिहार के शोरे के व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त कर लेने से वे काफी क्रोधित हो उठे, क्योंकि डचों को शोरे के व्यापार से बहुत लाभ था लेकिन क्लाइव की इस कार्यवाही से डचों का व्यापार ठप्प हो गया। अतः डच अपने साथ जहाज, तीन सौ यूरोपियनों तथा छः सौ मलायावासियों को लेकर गंगा में प्रवेश करने लगे। क्लाइव भी कर्नल फोर्ड के सहयोग से सेना लेकर आ डटा और उसने डचों पर विजय प्राप्त कर ली। डचों पर विजय प्राप्त करने से क्लाइव की प्रतिष्ठा में बहुत वृद्धि हुई तथा बंगाल में अंग्रेजों की स्थिति दृढ़ हो गयी।

(4) उत्तरी सरकार पर अधिकार—हैदराबाद के नए निजाम सलावतजंग को राज्य प्राप्त करने में सहायता देने के उपलक्ष में फ्रांसीसियों को उत्तरी सरकार का प्रदेश पारितोषिक के रूप में प्राप्त हुआ। क्लाइव भी इस पर अधिकार करना चाहता था अतः वह अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। 1759 ई. में उसे यह अवसर प्राप्त हो गया। इस समय यूरोप में फ्रांसीसी तथा अंग्रेजों के मध्य सप्तवर्षीय युद्ध चल रहा था। फ्रांसीसी सेनापति काउण्ट-डी-लाली ने अंग्रेजों पर पूरे ज़ोर के साथ संघर्ष करने के उद्देश्य से हैदराबाद से बुस्से को बुला लिया। बुस्से के हैदराबाद से हटते ही क्लाइव ने तुरन्त कर्नल फोर्ड को भेजकर उत्तरी सरकार पर अधिकार कर लिया। सलावत खां ने भी भय के कारण अंग्रेजों से सन्धि कर ली। अतः क्लाइव की चतुराई के कारण हैदराबाद में भी अंग्रेजों की सत्ता स्थापित हो गयी।

1760 ई. में क्लाइव इंगलैण्ड वापस चला गया। अपने इस तीन-वर्षीय कार्यकाल में क्लाइव ने बंगाल में निर्विवाद अंग्रेजों को प्रभुत्व स्थापित कर दिया। बिहार में शोरे के व्यापार का एकाधिकार प्राप्त किया, शाहआलम के गौरव को समाप्त किया तथा हैदराबाद में फ्रांसीसी प्रभाव को समाप्त कर अंग्रेजों की स्थिति को सुदृढ़ बनाया।

(ii) क्लाइव बंगाल का गवर्नर (दूसरा कार्यकाल)—1760 ई. में क्लाइव के इंगलैण्ड चले जाने के बाद बंसिटार्ट ने बंगाल के गवर्नर का कार्य-भार संभाला। उसने 5 वर्ष तक इस पद पर कार्य किया। इन पांच वर्षों में कम्पनी भ्रष्टाचार का अड्डा बन गयी थी क्योंकि कम्पनी के कर्मचारी भेंट, उपहार, रिश्वत, आदि स्वीकार करने तथा निजी व्यापार करने के आदी हो चुके थे। अल्फ्रेड लायल के शब्दों में, **"क्लाइव के चले जाने के उपरान्त एक ऐसा समय आरम्भ हुआ जो कि अंग्रेजों के नाम पर कलंक है।"** अतः कम्पनी के संचालकों ने 1765 ई. में क्लाइव को पुनः बंगाल का गवर्नर नियुक्त करके भेजा। उसके इस काल की प्रमुख घटनाएं निम्नलिखित हैं :

(1) अवध के नवाब के साथ सन्धि—सर्वप्रथम क्लाइव ने अपना ध्यान अवध के नवाब शुजाउद्दौला की ओर दिया। शुजाउद्दौला मीरकासिम तथा शाहआलम के साथ में पराजित हुआ था। इस समय शुजाउद्दौला अंग्रेजों की कृपा पर था। अतः अनेक अंग्रेजों का विचार था कि अवध को अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया जाए परन्तु क्लाइव ने इस समय अपनी दूरदर्शिता का परिचय देकर अनेक कारणों से अवध को ब्रिटिश साम्राज्य में नहीं मिलाया। क्लाइव जानता था कि अवध के विलय से अंग्रेजी साम्राज्य की सीमाओं में असाधारण रूप से वृद्धि हो जाएगी जिससे उनकी व्यवस्था करना कठिन हो जाएगा। इसके अतिरिक्त अवध के विलय से अंग्रेजी साम्राज्य का मराठों से सीधा सम्पर्क हो जाता जिससे अंग्रेजों का व्यर्थ में ही उनसे संघर्ष होता। कुशल प्रबन्धकों के अभाव में भी उसने अवध को अपने साम्राज्य में नहीं मिलाया।

अतः 1766 ई. में उसने शुजाउद्दौला से इलाहाबाद की सन्धि करके 50 लाख रुपए के वदले कड़ा तथा इलाहाबाद के जिलों को छोड़कर अवध का प्रदेश उसे दे दिया। शुजाउद्दौला ने अंग्रेजों से आक्रामक तथा रक्षात्मक सन्धि करना भी स्वीकार किया। इस प्रकार क्लाइव ने अपनी उदार शर्तों से अवध के नवाब की मित्रता प्राप्त कर ली।

(2) शाहआलम से सन्धि—शुजाउद्दौला के बाद क्लाइव ने अपना ध्यान मुगल सम्राट शाहआलम की ओर मोड़ा। शाहआलम का समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से क्लाइव ने उसके साथ पर्याप्त उदारतापूर्वक व्यवहार किया। शाहआलम के लिए 26 लाख रुपया वार्षिक पेंशन निश्चित कर दी गयी। उसे कड़ा तथा इलाहाबाद के जिले भी दे दिए गए। इन सबके बदले में कम्पनी को बंगाल, विहार तथा उड़ीसा की दीवानी (राजस्व) प्राप्त हो गयी। निःसन्देह दीवानी का अधिकार प्राप्त होना विशेष महत्वपूर्ण नहीं था, क्योंकि इन प्रान्तों के अंग्रेजों को पहले से ही दीवानी के अधिकार प्राप्त थे, परन्तु क्लाइव इस बात को भली-भांति जानता था कि शाहआलम को भारत का सम्राट स्वीकार किया जाता है। इस कारण शाहआलम द्वारा प्रदत्त दीवानी का अर्थ होगा कि अंग्रेजों को इन तीनों प्रान्तों में कानूनी अधिकार भी प्राप्त हो गए।

(3) सुधार (Reforms)—वास्तव में उपहार स्वीकार करने, जागीरें प्राप्त करने, अपनी जेवें भरने, आदि परम्पराओं का जन्मदाता क्लाइव ही था, किन्तु 1760 ई. में उसके इंगलैण्ड वापस पहुंचने पर उसका बड़ा विरोध किया गया। परिणामस्वरूप 1765 ई. में जब वह दूसरी बार बंगाल का गवर्नर बनकर भारत आया तो उसने कुछ सुधार करने के विषय में विचार किया। **अतः उसने निम्नलिखित सुधार किए :**

(क) नागरिक सुधार—नागरिक प्रशासन को स्वच्छ करने के लिए क्लाइव ने निम्नलिखित सुधार किए :

(1) कम्पनी के कर्मचारियों को भेंट तथा उपहार, आदि स्वीकार करने के सम्बन्ध में एक शपथ-पत्र पर हस्ताक्षर करने होते थे।

(2) कम्पनी ने बंगाल, विहार तथा उड़ीसा की दीवानी प्राप्त कर ली थी। कम्पनी के कर्मचारियों के निजी व्यापार के कारण कम्पनी को करों की बड़ी हानि हो रही थी। अतः क्लाइव ने कम्पनी के कर्मचारियों को निजी व्यापार बन्द करने का आदेश दिया।

(3) क्लाइव ने 'लॉर्ड क्लाइव फण्ड' की भी स्थापना की। इस फण्ड का उद्देश्य कम्पनी के असमर्थ तथा कम्पनी के कर्मचारियों की सेवाकाल में मृत्यु हो जाने पर सहायता प्रदान करना था। कम्पनी द्वारा अपने कर्मचारियों को पेंशन दिए जाने की व्यवस्था किए जाने के पूर्व इस फण्ड द्वारा कम्पनी के कर्मचारियों की पर्याप्त सहायता की गयी।

(4) क्लाइव यह भली-भांति जानता था कि कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि करने से ही उन्हें भेंट, उपहार लेने तथा निजी व्यापार से रोका जा सकता है। अतः उसने कम्पनी के संचालकों से इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया लेकिन कम्पनी के संचालकों ने उसकी बात की अवहेलना कर दी। क्लाइव ने एक समिति का गठन करके नमक, सुपारी तथा तम्बाकू के व्यापार का एकाधिकार उसे दे दिया। इस प्रकार होने वाले लाभ को उच्च अधिकारियों में विशेष अनुपात में बांट दिया गया था।

(ख) सैन्य सुधार—प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार लाने के साथ-साथ क्लाइव ने सैन्य व्यवस्था की ओर भी ध्यान दिया। इस क्षेत्र में क्लाइव का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य **'दोहरे भत्ते'** की प्रथा को बन्द करना था। सैनिकों को यह भत्ता इसलिए दिया जाता था कि युद्धकाल

में सैनिकों का व्यय शान्तिकाल की अपेक्षा अधिक होता था। कर्नाटक के प्रथम तथा द्वितीय युद्ध से भत्ते देने की इस परम्परा का उदय हुआ था। यद्यपि इस प्रथा को समाप्त कर देने का काफी विरोध हुआ था लेकिन क्लाइव ने इसकी चिन्ता नहीं की। इतिहासकारों ने क्लाइव के इस कार्य की बहुत प्रशंसा की है। मालेसन के अनुसार, **"क्लाइव का अपने सम्पूर्ण जीवन में चरित्र तथा आचरण कभी भी इतना महान् नहीं रहा जितना इस विद्रोह के समय दण्ड प्रस्तुत करते समय दृष्टिगोचर होता है। उसने अकेले ही इस विद्रोह का दमन किया।"**

(4) कलकत्ता काउन्सिल का पुनर्गठन—कलकत्ता काउन्सिल भी भ्रष्टाचार का अखाड़ा बनी हुई थी। इसमें निजामुद्दौला तथा मुहम्मद रजा नामक सदस्य बदनाम थे। अतः क्लाइव ने उन्हें पदच्युत करके अन्य अंग्रेज पदाधिकारियों को नियुक्त किया। इससे काउन्सिल के पुराने वाद-विवादों का अन्त हो गया।

(5) बंगाल में द्वैधशासन प्रणाली—बंगाल में द्वैधशासन की स्थापना भी क्लाइव ने की थी। यद्यपि द्वैधशासन प्रणाली क्लाइव की एक कूटनीतिक चाल थी क्योंकि इस शासन प्रणाली के द्वारा वह अन्य विदेशी शक्तियों को यह दिखाना चाहता था कि अंग्रेजों ने बंगाल पर अपना कब्जा नहीं जमाया है लेकिन इस व्यवस्था से शासन में अशान्ति एवं अराजकता फैल गयी। परिणामस्वरूप 1772 ई. में वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा इसे समाप्त कर दिया गया।

क्लाइव की वापसी और अन्त

1767 ई. में लार्ड क्लाइव इंगलैण्ड वापस चला गया। इंगलैण्ड पहुंचने पर उसे कड़े विरोध का सामना करना पड़ा। उस पर अमीचन्द के साथ धोखा करने, सिराजुद्दौला के साथ अनुचित व्यवहार करने तथा मीरजाफर से अन्यायपूर्ण तरीके से धन लेने के सम्बन्ध में आरोपों के आधार पर अभियोग चलाया गया। इंगलैण्ड की संसद् ने उसकी सेवाओं को ध्यान में रखते हुए उसे सम्मानपूर्वक मुक्त करते हुए उसके सम्मान में कहा, **"क्लाइव ने अपने देश इंगलैण्ड की महान् सेवा की है।"** किन्तु इस अभियोग से क्लाइव को अत्यन्त पीड़ा पहुंची और उसने नवम्बर 1774 ई. में आत्महत्या कर ली।

क्लाइव का मूल्यांकन
(ESTIMATE OF CLIVE)

अनेक इतिहासकार क्लाइव को भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक कहते हैं। निःसन्देह एक सच्चे देश-प्रेमी के समान उसने अपने देश की सच्ची सैनिक सेवा की। वह एक वीर तथा साहसी था। इंगलैण्ड के तत्कालीन प्रधानमन्त्री पिट ने उसे **'जन्मजात सेनापति'** (Born Commander) कहा। इस विषय में पी. ई. रॉवर्ट्स का कथन उल्लेखनीय है। उनके शब्दों में, **"क्लाइव एक सैनिक के रूप में एक महान् नेता था, परन्तु पिट का यह कथन कि वह स्वर्ग से उतरा हुआ सेनानायक था सत्य नहीं।"**[1] अपने परिश्रम के वल पर ही उसने एक लिपिक के पद से सर्वोच्च पद को प्राप्त किया। उसने कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी अपनी विलक्षण सैनिक योग्यता का परिचय दिया। योग्य सेनापति के साथ-साथ वह कुशल प्रशासक भी था। उसने प्रशासन के दोषों को भेंट, उपहार स्वीकार करने, निजी व्यापार, आदि कुप्रथाओं को समाप्त किया। उसने असहाय कर्मचारियों तथा सेवाकाल में मर जाने वाले कर्मचारियों के बच्चों हेतु 'सहायता फण्ड' की भी स्थापना की। डाक-व्यवस्था भी क्लाइव ने ही प्रारम्भ की थी। **'दोहरे**

1 **"As a soldier Clive was a great leader of men, but Pitt's famous description of him as a heaven born General is hardly appropriate."**
—**P. E. Roberts,** ***History of British Rule in India*, p. 165.**

भत्ते' प्रथा को समाप्त कर सैनिक सुधार किया। इन गुणों के अतिरिक्त उसके चरित्र में कुछ दोष भी थे। वह लालची था तथा क्षतिपूर्ति हेतु अनैतिक कार्य भी कर सकता था। कपटपूर्ण नीति द्वारा ही उसने प्लासी में विजय प्राप्त की थी। वाट्सन के जाली हस्ताक्षर बनाकर अमीचन्द को तीस लाख पौण्ड की धनराशि का आश्वासन देकर धोखा देना भी उसके चरित्र पर गहरा दाग था। प्लासी के युद्ध के बाद मीरजाफर को बंगाल का नवाब बनाने के बदले एक विशाल धनराशि उपहारस्वरूप ग्रहण करना भी उसके लालचीपन एवं स्वार्थता का रूप है। नन्दलाल चटर्जी ने क्लाइव की आलोचना की है। उन्होंने लिखा है, **"जिस पद्धति की उसने नींव रखी तथा जिस पद्धति को उसने अपनाया, उसमें उसकी अल्प दृष्टि तथा अवसरवादिता निहित थी, जो उसकी असफलताओं की द्योतक है तथा उसे एक राजनीतिज्ञ कहने में बाधक है।"**[1]

लेकिन इन चारित्रिक दोषों के होते हुए भी यह स्वीकार करना होगा कि अपने देश के लिए उसने कभी विश्वासघात नहीं किया। उसने कम्पनी के महत्व और गौरव में असाधारण रूप से वृद्धि करके उसे एक व्यापारिक कम्पनी से राजनीतिक शक्ति बना दिया। यथार्थ में भारत में अंग्रेजी राज्य का वास्तविक संस्थापक क्लाइव ही था। अपने साहस, धैर्य, सहनशक्ति तथा परिश्रम के बल पर ही उसने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की आधारशिला रखी। रॉबर्ट्स के अनुसार, **"क्लाइव भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था।"**

डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, **"अंग्रेजों तथा कम्पनी के लिए यह फ्रांसीसियों के विरुद्ध उनका रक्षक तथा उनका भाग्य-निर्माता था। यह वही था जिसने कभी कम्पनी को एक व्यापारिक प्रतिष्ठान से प्रादेशिक सत्ता में परिवर्तित कर दिया, यह वही था जिसने भारत में उसके निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया।"**

अपनी कूटनीतिज्ञता के बल पर ही क्लाइव ने हालैण्ड तथा फ्रांस जैसी शक्तिशाली शक्तियों को भी भारत में सदा के लिए शक्तिहीन कर दिया और उसने ही भारतीय शक्तियों को यह सोचने के लिए बाध्य किया कि उन्हें अंग्रेजों की शक्ति का सम्मान करना होगा। वास्तव में यह उसी की वीरता, परिश्रम तथा दूरदर्शिता का परिणाम था कि कर्नाटक के दूसरे युद्ध में अंग्रेजों की सम्भावित हार विजय में बदल गयी और कर्नाटक में अंग्रेजी प्रभाव स्थापित हो गया। डॉ. मजूमदार ने क्लाइव के महत्वपूर्ण कार्यों को ध्यान में रखकर ही कहा है, **"युद्ध तथा शान्ति में समान रूप से महान् उसके नाम को ब्रिटिश सेनापतियों तथा प्रशासकों जिन्होंने अपनी मातृभूमि के लिए एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया था, की सूची में प्रमुख स्थान प्राप्त है।"** एक अन्य राजनीतिज्ञ वर्क ने उसके सम्बन्ध में कहा है, **"उसने सुदृढ़ आधारशिला रखी। जब क्लाइव ने तलहीन गहरे जल को पाया तो उसने अपने उत्तराधिकारियों के लिए पुल छोड़ा, जिस पर लंगड़ा व्यक्ति पहिए के समान घूम सकता था, अन्धा व्यक्ति अंधेरे में अपना मार्ग ढूंढ़ सकता था।"** इसके अतिरिक्त लॉर्ड मैकाले ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा, **"इंगलैण्ड ने कदाचित की कभी भूमि और विचार भवन दोनों ही स्थानों पर वस्तुतः उससे अधिक महान् व्यक्ति को जन्म दिया हो।"**[2]

---

1 "The system which he laid down and the course which he followed, were characterized by short sighted opportunism which reveals his failure to rise to the hights of a Stateman." —Nandlal Chatterji, *Clive as an Administrator*, p. 92.

2 Macaulay, *Historical Essays*, p. 275.

जोसेफ फ्रांसिस डूप्ले
(JOSEPH FRANCIS DUPLEIX)

भारत में फ्रांस के अनेक गवर्नर जनरलों ने कार्य किया था, किन्तु उन सभी में डूप्ले सर्वश्रेष्ठ था। **डूप्ले का जन्म फ्रांस में 1697 ई. में हुआ था।** उसके पिता फ्रांस के एक सम्पन्न व्यक्ति थे। डूप्ले को व्यापार में कोई रुचि नहीं थी, किन्तु पिता के आग्रह पर उसने फ्रांसीसी कम्पनी में कार्य करना स्वीकार कर लिया। 1730 ई. में डूप्ले को फ्रांसीसी शासित प्रदेश चन्द्रनगर का गवर्नर नियुक्त किया गया। इस पद पर कार्य करते हुए उसने असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया, अतः 1742 ई. में डूप्ले को पाण्डिचेरी का गवर्नर तथा भारत में फ्रांसीसी बस्तियों का गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया। इस पद पर डूप्ले ने लगभग 12 वर्षों तक कार्य करते हुए भारत में फ्रांसीसी शक्ति को निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर किया।

डूप्ले की नीति (Policy of Dupleix)—जिस समय डूप्ले भारत आया था उस समय उसका मुख्य उद्देश्य भारत में फ्रांसीसी व्यापार के हितों की रक्षा करना तथा व्यापार को बढ़ाना था, किन्तु कुछ समय भारत में रहने के पश्चात् उसकी विचारधारा में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ तथा उसने भारत में साम्राज्यवादी नीति का पालन करने का निर्णय किया। डूप्ले सम्भवतः ऐसा पहला व्यक्ति था जिसने यह विचार व्यक्त किया कि भारत में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की जा सकती है। इस सन्दर्भ में लॉर्ड मैकाले का यह कथन उल्लेखनीय है, **"मुगल साम्राज्य के खण्डहर पर एक विशाल यूरोपीय साम्राज्य की स्थापना की जा सकती है। इस प्रकार के विचार को जन्म देने वाला पहला व्यक्ति डूप्ले था।"[1] डूप्ले के हृदय में इस प्रकार का विचार उत्पन्न होने के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदाई थे :**

(i) डूप्ले अत्यन्त दूरदर्शी था। उसका विचार था कि अंग्रेजों की शक्तिशाली सामुद्रिक शक्ति के समक्ष फ्रांस का टिका रहना कठिन है। भारत में इंगलैण्ड भी व्यापार कर रहा था, अतः उसने व्यापारिक उन्नति को त्याग कर राजनीतिक क्षेत्र में उन्नति करने का निर्णय लिया।

(ii) डूप्ले ने अनुभव किया कि मुगल साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हो रहा है। उसका विचार था कि कमजोर व छोटे-छाटे राज्यों पर आसानी से विजय प्राप्त की जा सकती है क्योंकि फ्रांसीसी सेना काफी शक्तिशाली थी।

(iii) डूप्ले का यह भी विचार था कि यूरोपीय सैनिकों की देख-रेख में भारतीयों को प्रशिक्षित करके उनका अपने लिए अच्छा उपयोग किया जा सकता है।

(iv) भारत के तत्कालीन अनिश्चित व अशान्त वातावरण में व्यापार को सुरक्षित रखने के लिए भी सैनिक शक्ति की आवश्यकता थी। अतः सैन्य-शक्ति में वृद्धि करना वैसे भी डूप्ले के लिए आवश्यक था।

इस प्रकार अपने उद्देश्यों में परिवर्तन करने के उपरान्त डूप्ले ने अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कार्य करना प्रारम्भ किया।

डूप्ले ने अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के उद्देश्य से तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का अध्ययन किया। उस समय मराठे, निजाम तथा अन्य राजा आपस में लड़ रहे थे। अतः अवसर से लाभ उठाते हुए उसने स्थानीय राजाओं के पारस्परिक झगड़ों में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया। डूप्ले का विचार था कि ऐसा करने से जिस भी राज्य की वह सहायता करेगा वह

1 **"The man who first saw that it was possible to found an European empire on the ruins of the Mughal monarchy was Dupleix."**
—**Macaulay, *Historical Essays*, p. 310.**

विजयी होगा तथा तत्पश्चात् फ्रांसीसियों को उस राज्य से न केवल सुविधाएं प्राप्त होंगी वरन् वह अप्रत्यक्ष रूप से उनके प्रभाव में भी आ जाएगा। इस प्रकार धीरे-धीरे फ्रांसीसियों के पांव भारत में जम सकते हैं। डूप्ले का यह भी मानना था कि इस नीति से फ्रांसीसी सेना का खर्चा चलाने के लिए भी इन देशी राज्यों से धन प्राप्त होता रहेगा। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि कालान्तर में अंग्रेजों ने डूप्ले की इन्हीं नीतियों का सहारा लेकर भारत में अपने साम्राज्य की स्थापना की थी। इसी कारण यह कहा जाता है कि **"भारत को जीतने के लिए अंग्रेजों को उस मार्ग का अनुसरण करना पड़ा था, जो फ्रांस की बुद्धि ने उसके लिए खोला था।"**[1]

डूप्ले ने इस नीति का पालन करते हुए कर्नाटक में पहले अनवरुद्दीन तथा बाद में चांदा साहब की सहायता की तथा अन्त में वह चांदा साहब को कर्नाटक में नवाब बनाने में सफल हुआ। इसी प्रकार हैदराबाद में उसने पहले मुजफ्फरजंग व बाद में सलाबतजंग की सहायता की तथा सलाबतजंग को नवाब बनवाया। डूप्ले की इन सफलताओं से फ्रांसीसियों को अत्यधिक लाभ हुआ। उन्हें प्रचुर धन-सम्पत्ति के अतिरिक्त मछलीपट्टम व उसके निकट का क्षेत्र प्राप्त हुआ।

इस प्रकार 1751 ई. तक भारत में फ्रांसीसी प्रभाव अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर था, किन्तु डूप्ले की यह सफलता स्थाई प्रमाणित नहीं हो सकी। डूप्ले की महत्वाकांक्षी नीतियों के कारण भारत में अंग्रेजी हितों का निरन्तर अहित हो रहा था, अतः शीघ्र ही दोनों में संघर्ष होना स्वाभाविक ही था। अंग्रेजों ने भारत में बढ़ते हुए फ्रांसीसी प्रभाव को रोकने के लिए देशी राज्यों में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ किया तथा डूप्ले के समर्थक राजाओं के विरोधियों को सहायता देना प्रारम्भ कर दिया। इसी कारणवश अंग्रेजों ने कर्नाटक में मुहम्मदअली व हैदराबाद में नासिरजंग को सहायता दी। अन्ततः क्लाइव ने त्रिचनापल्ली में चांदा साहब व फ्रांसीसी सेना को परास्त किया। इस पराजय से डूप्ले की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का पहुंचा। डूप्ले की इस पराजय के पश्चात् उसे फ्रांस वापिस बुला लिया गया।

डूप्ले की असफलता के कारण—डूप्ले जिस समय भारत आया था उस समय भारत में फ्रांसीसियों की स्थिति अच्छी नहीं थी, किन्तु डूप्ले ने अपनी योग्यता, सूझ-बूझ व दूरदर्शिता का परिचय देते हुए भारत में फ्रांसीसी प्रभाव में असीमित वृद्धि की, किन्तु इस अर्जित सफलता को वह कायम न रख सका। अतः अंग्रेजों के विरुद्ध उसकी असफलता को देखते हुए डूप्ले को फ्रांस वापिस बुला लिया गया। डूप्ले की असफलता के प्रमुख कारण निम्न थे—

(i) डूप्ले की कमजोरी—डूप्ले की असफलता में स्वयं डूप्ले की अनेक कमजोरियों का प्रमुख योगदान था। डूप्ले ने प्रारम्भ में सफलता प्राप्त होने पर भारतीय शासकों से उपहार व धन स्वीकार किया था। उसके इस कार्य से अन्य फ्रांसीसी अधिकारियों पर प्रभाव पड़ा तथा उन्होंने भी उपहार स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया। इससे न केवल भ्रष्टाचार में वृद्धि हुई वरन् फ्रांसीसी हितों को भी क्षति पहुंची। **इसके अतिरिक्त डूप्ले अत्यन्त अहंकारी व उग्र स्वभाव का था तथा अपनी क्षमता से वृहत् योजनाएं बनाकर उनको कार्यान्वित करने की चेष्टा करता था।** उदाहरण के तौर पर डूप्ले ने कर्नाटक व हैदराबाद में एक ही समय हस्तक्षेप किया। परिणामस्वरूप वह अपनी शक्ति का सही उपयोग न कर सका। उसकी इसी नीति की आलोचना करते हुए डॉडवैल ने लिखा है, **"उसकी नीति में स्थायी सफलता के आधारभूत**

---

1 भारतीय सैनिकों को प्रशिक्षित कर उनको अपने लिए इस्तेमाल करने तथा देशी राज्यों के पारस्परिक झगड़ों में हस्तक्षेप कर देशी राज्यों पर प्रभाव जमाने की नीति डूप्ले ने अपनाई थी। इन्हीं तरीकों का क्लाइव ने भी प्रयोग किया था।

तत्वों की कमी थी। उसने जो भी सफलता प्राप्त की वह अस्थाई अनुकूल परिस्थितियों के कारण थी।''[1]

(ii) अयोग्य सेनापति—डूप्ले एक दूरदर्शी व्यक्ति व योग्य राजनीतिज्ञ था, किन्तु वह एक कुशल सेनानायक नहीं था। यदि डूप्ले को क्लाइव व लारेन्स जैसे सेनापति मिले होते तो निश्चित रूप से फ्रांसीसियों को सफलता मिली होती।

(iii) शक्तिशाली अंग्रेजी सेना—डूप्ले की असफलता में अंग्रेजों की सैनिक शक्ति का प्रमुख योगदान था। अंग्रेजी सेना, फ्रांसीसी सेना की तुलना में कहीं अधिक शक्तिशाली थी। विशेषकर अंग्रेजी जल सेना अत्यधिक शक्तिवान थी। ऐसी स्थिति में डूप्ले के लिए सफलता प्राप्त करना अत्यन्त कठिन था।

(iv) आर्थिक अभाव—फ्रांसीसी कम्पनी के समक्ष सदैव आर्थिक संकट रहा। फ्रांसीसी कम्पनी की आर्थिक स्थिति एक तो पहले से ही कमजोर थी, ऊपर से डूप्ले की नीतियों के कारण यह और खराब हो गई। डूप्ले भारत में फ्रांस राज्य की स्थापना करना चाहता था, अतः उसने व्यापार की ओर ध्यान न देकर राजनीतिक हितों के अनुरूप ही कार्य किए। इससे फ्रांसीसी कम्पनी की स्थिति और भी खराब हो गई। **डूप्ले का विश्वास था कि राजनीतिक सफलताओं से वह आर्थिक स्थिति में भी सुधार ला सकेगा, किन्तु उसकी यह विचारधारा सही प्रमाणित न हुई।** अतः डूप्ले को अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। उसने कम्पनी का तीस लाख रुपया खर्च कर दिया। उसने अपने मित्रों से ऋण लेकर तथा स्वयं अपना धन लगाकर स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया किन्तु उसे सफलता न मिली। 1751 ई. के पश्चात् तो सैनिकों को वेतन तक देना उसके लिए कठिन हो गया। अतः धन के अभाव में सफलता प्राप्त करना डूप्ले के लिए असम्भव ही था।

(v) डूप्ले द्वारा अपव्ययता—आर्थिक स्थिति विपन्न होने के पश्चात् भी डूप्ले अत्यधिक शान-शौकत से रहता था विलासिता पर खूव धन खर्च करता था। ऐसे समय में जवकि कम्पनी की आर्थिक स्थिति खराब थी डूप्ले की अपव्ययी नीति ने पतन की राह पर उसका मार्ग प्रशस्त कर दिया।

(vi) डूप्ले द्वारा तथ्यों को छिपाना—डूप्ले ने समय-समय पर सही स्थिति से अपनी सरकार को अवगत नहीं कराया। उसने सरकार को सूचित किए विना ही अत्यधिक धन खर्च किया व भारतीय राजाओं के साथ मनमानी नीति का पालन किया। वास्तविकता से अवगत न कराने के कारण सरकार का डूप्ले पर विश्वास न रहा तथा फ्रांस में उसे विलासी, अपव्ययी व स्वेच्छाचारी समझा जाने लगा। इसी कारण, उसे फ्रांस वापिस बुला लिया गया। रॉबर्ट्स ने लिखा है, **''डूप्ले ने भारत में अपनी गतिविधियों की पूरी सूचना उसने कम्पनी के डाइरेक्टरों को नहीं दी। अपनी विजय का समाचार तो वह तुरन्त लिख भेजता था, किन्तु पराजय की चर्चा कभी नहीं करता था। यहां तक कि अर्काट पर क्लाइव का अधिकार हो जाने की सूचना भी उसने नहीं दी।''[2]**

उपरोक्त सभी कारणों से यद्यपि डूप्ले असफल रहा, किन्तु फिर भी भारत में उसके द्वारा किए गए कार्यों के महत्व को पूर्णतः नकारा नहीं जा सकता। यद्यपि उसमें अनेक दोष थे, किन्तु कुछ गुण भी थे। वह एक कुशल राजनीतिज्ञ व कूटनीतिज्ञ था, तथा भारत की स्थिति

1 डॉडवैल, कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग V, पृ. 132.
2 रॉबर्ट्स, ब्रिटिशकालीन भारत का इतिहास, पृ. 89.

का उसने सही आंकलन किया था। यह उसका दुर्भाग्य ही था कि उसे विभिन्न कारणोंवश अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफलता न मिल सकी, यद्यपि उसी की नीति का पालन करके अंग्रेज भारत में शासन स्थापित करने में सफल हो गए। डूप्ले में योजनाएं बनाने की अद्भुत क्षमता थी। उसने भारत में अपनी योजना को सफल बनाने का भी अथक प्रयास किया। स्वयं उसने ही कहा था, "**मैंने अपना यौवन, भाग्य तथा जीवन तक बलिदान कर दिया।**"

इन्हीं कारणोंवश अनेक इतिहासकारों ने डूप्ले की प्रशंसा की है। मालेसन ने तो उसकी तुलना नेपोलियन से की है[1] व उसे समकालीन फ्रांसीसियों में सर्वश्रेष्ठ बताया है। एलफिंस्टन ने भी डूप्ले की प्रशंसा की है। पी. ई. रॉबर्ट्स ने भी डूप्ले की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "**डूप्ले भारतीय इतिहास का एक प्रतिभावान एवं तेजस्वी व्यक्तित्व है......उसकी राजनीतिक अवधारणाएं साहसपूर्ण एवं कल्पनाशील थीं। कुछ समय के लिए उसने पूर्व में फ्रांसीसियों की प्रतिष्ठा को सर्वोपरि स्थान दिला दिया था, भारतीय शासकों एवं नेताओं की दृष्टि में जितना सम्मान उसका था, उतना किसी अन्य विदेशी को नहीं मिला, तथा उसने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि एवं असाधारण व्यक्तित्व के बल पर अपने अंग्रेज प्रतिद्वन्द्वियों में भय एवं आतंक फैला दिया था।**"[2]

प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में अंग्रेजों व फ्रांसीसियों के 1740 ई. से 1748 ई. तक के सम्बन्धों का वर्णन कीजिए।
2. भारत में अंग्रेजों व फ्रांसीसियों के 1748 ई. से 1763 ई. तक के मध्य सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए।
3. अंग्रेजों की विजय व फ्रांसीसियों की पराजय के कारणों का वर्णन कीजिए।
4. प्लासी के युद्ध के कारणों व महत्व का वर्णन कीजिए।
5. क्लाइव द्वारा किए गए प्रमुख कार्यों का वर्णन कीजिए।
6. बक्सर के युद्ध के क्या कारण थे? इस युद्ध के महत्व पर प्रकाश डालिए।
7. डूप्ले द्वारा किए गए प्रमुख कार्यों का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कर्नाटक के प्रथम युद्ध के कारण बताइए।
2. कर्नाटक के द्वितीय युद्ध के क्या कारण थे?
3. कर्नाटक के तृतीय युद्ध के कारण बताइए।
4. अंग्रेजों की सफलता व फ्रांसीसियों की विफलता के कारणों पर प्रकाश डालिए।
5. क्लाइव का मूल्यांकन कीजिए।

---

1 Malleson, *Dupleix*, p. 159.

2 "Dupleix is a striking and brilliant figure in Indian history.......His political conception were daring and imaginative. He raised the prestige of France in east for some years to an amazing height. He won a reputation among Indian princes and leaders that has never been surpassed and he aroused a dread in his English contemporaries which is atonce a tribute to his personal power and a testimony to their sagacity." —Roberts, P. E., *History of British India*, p. 119.

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. फ्रांसीसी शक्ति के भारत में प्रारम्भिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई :
   (अ) लिनायर (व) ड्यूमा
   (स) मार्टिन (द) उपरोक्त में कोई नहीं
2. सूरत के स्थान पर मुम्वई राजधानी वनाई गई :
   (अ) 1680 ई. (व) 1685 ई. (स) 1687 ई. (द) 1690 ई.
3. 18वीं सदी में कर्नाटक किस सूवे का अंग था :
   (अ) हैदरावाद (व) वंगाल (स) मद्रास (द) उ. प्र.
4. एक्स-ला-शापैल की सन्धि कब हुई :
   (अ) 1740 (व) 1742 (स) 1745 (द) 1748
5. लाली किस देश का सेनापति था :
   (अ) पुर्तगाल (व) फ्रान्स (स) स्पेन (द) इंग्लैण्ड

[उत्तर—1. (स), 2. (स), 3. (अ), 4. (द), 5. (व)।]

निम्नलिखित वाक्यों में सत्य/असत्य दर्शाइए :

1. प्लासी के युद्ध के समय वंगाल का नवाव मीर कासिम था।
2. प्लासी के युद्ध के समय वंगाल का नवाव सिराजुद्दौला था।
3. 'काल कोठरी की घटना' कलकत्ता में हुई थी।
4. मानिकचन्द्र अंग्रेजों से मिल गया था।
5. वंगाल में द्वैध शासन की स्थापना डूप्ले ने की थी।

[उत्तर—1. असत्य, 2. सत्य, 3. सत्य, 4. सत्य, 5. असत्य।]

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :

1. द्वैध शासन प्रणाली वंगाल में .... ने लागू की।
2. वंगाल में लागू की गई द्वैध शासन प्रणाली को .... समाप्त किया।
3. भारत में अंग्रेजी राज्य का वास्तविक संस्थापक .... था।
4. कर्नाटक के प्रथम युद्ध के समय वहां का नवाव .... था।
5. चन्द्रपुर .... वस्ती थी।

[उत्तर—1. क्लाइव, 2. वारेन हेस्टिंग्ज, 3. क्लाइव, 4. अनवरुद्दीन, 5. फ्रांसीसी।]

4

वारेन हेस्टिंग्ज : आन्तरिक प्रशासन, विदेश नीति तथा कार्नवालिस के सुधार

[WARREN HASTINGS : INTERNAL ADMINISTRATION AND FOREIGN POLICY AND REFORMS OF CORNWALLIS]

वारेन हेस्टिंग्ज (1772—1785 ई.)
(WARREN HASTINGS)

सुधारों की आवश्यकता (Need of Reforms)

वारेन हेस्टिंग्ज भी क्लाइव की भांति लगभग 18 वर्ष की आयु में एक क्लर्क वनकर भारत आया था, परन्तु अपनी योग्यता के कारण धीरे-धीरे उन्नति करके उच्च पद पर नियुक्त हुआ। 1772 ई. से 1774 ई. तक वह बंगाल का गवर्नर रहा। 1774 ई. में उसकी पदोन्नति करके उसे गवर्नर जनरल बना दिया गया। इस पद पर वह 1785 ई. तक रहा। वह एक योग्य प्रशासक था। **गवर्नर जनरल का पद संभालते ही उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।** द्वैधशासन के कारण जनता की दशा अत्यन्त खराव हो गयी थी तथा चारों ओर अराजकता एवं अशान्ति व्याप्त थी। लगान एकत्रित करने की व्यवस्था अत्यन्त दोषपूर्ण थी। कोष लगभग खाली हो चुका था। कम्पनी संचालकों को इंगलैण्ड की सरकार को लगभग 10 लाख पौण्ड ऋण देना पड़ा था। मराठे एवं मैसूर का शासक हैदरअली भारत से अंग्रेजों को भगाने की योजनाएं वना रहे थे। इस प्रकार वारेन हेस्टिंग्ज के सामने अनेक समस्याएं थीं। लेकिन वारेन हेस्टिंग्ज ने धैर्यपूर्वक अनेक प्रशासनिक सुधार करके व्यवस्था कायम करने का प्रयत्न किया।

प्रशासनिक सुधार
(ADMINISTRATIVE REFORMS)

विभिन्न पदों पर कार्य करने के उपरान्त वारेन हेस्टिंग्ज ने बंगाल के गवर्नर का पद संभाला। **उसने प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार करने के लिए निम्न कार्य किए :**

(1) द्वैधशासन प्रणाली का अन्त—बंगाल में द्वैधशासन प्रणाली के कारण चारों ओर अशान्ति तथा अव्यवस्था व्याप्त थी अतः **सर्वप्रथम वारेन हेस्टिंग्ज ने द्वैधशासन प्रणाली का अन्त करके प्रबन्ध का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व कम्पनी के हाथों में ले लिया।**

(2) **बंगाल के नवाब को पेंशन कम**—बंगाल के नवाब नजिमउद्दौला को शासन के उत्तरदायित्व से मुक्त कर दिया। उसकी पेंशन 32 लाख वार्षिक के स्थान पर 16 लाख वार्षिक कर दी गयी।

(3) **दो उप-नवाबों की नियुक्ति**—बंगाल के नवाब के अल्पवयस्क होने के कारण दो उप-नवाबों की नियुक्ति की गयी। बंगाल का उप-नवाब रजा खां तथा बिहार का उप-नवाब शिताब राय को भी उनके पदों से मुक्त कर दिया गया तथा उन पर अभियोग चलाया गया और बाद में मुक्त कर दिया गया।

(4) **राजकीय कोष का स्थानान्तरण**—राजकीय कोष को मुर्शिदाबाद से कलकत्ता स्थानान्तरित कर दिया गया जिससे कलकत्ता अधिक महत्वपूर्ण हो गया।

(5) **उपहार लेने पर प्रतिबन्ध**—कम्पनी कर्मचारियों पर घूस लेने तथा उपहार-भेंट आदि स्वीकार करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

(6) **डकैतों का दमन**—जनता की सम्पत्ति तथा जीवन की सुरक्षा के लिए चोर-डाकुओं का दमन किया गया। डाकुओं को पकड़े जाने पर कठोर दण्ड दिया जाता था।

राजस्व-सम्बन्धी सुधार
(REVENUE REFORMS)

1765 ई. में बंगाल में दीवानी अधिकार प्राप्त करने के उपरान्त कम्पनी ने भूमिकर एकत्रित करने का उत्तरदायित्व स्वयं संभालने के स्थान पर 'आमिल' नामक भारतीय एजेण्टों को यह कार्य सौंप दिया। **'आमिल' नामक कर्मचारियों को लगान पर कमीशन मिलता था जिससे वे अधिक-से-अधिक धन एकत्र करने के प्रयत्न में कृषकों को तंग करते थे।** 1769 ई. में 'आमिल' कर्मचारियों के कार्य पर नियन्त्रण रखने हेतु निरीक्षक नियुक्त किए गए, परन्तु व्यवस्था पहले से भी अधिक खराब हो गयी। अतः भूराजस्व व्यवस्था में सुधार करने के लिए हेस्टिंग्ज ने निम्न महत्वपूर्ण कार्य किए :

राजस्व परिषद् का गठन—कलकत्ता में एक राजस्व परिषद् का गठन करके राजस्व का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व परिषद् को सौंप दिया।

कर कलेक्टरों की नियुक्ति—करों को एकत्र करने का कार्य कम्पनी ने स्वयं संभाला। 'आमिलों' को उनके पद से मुक्त कर दिया गया। उनके स्थान पर अंग्रेज 'कलेक्टर' नियुक्त किए गए तथा उनकी सहायता के लिए अनेक देशी कर्मचारी भी नियुक्त किए गए।

कर वसूली एक वर्ष के लिए—1772 ई. में लगान एकत्रित करने का कार्य अपने हाथों में लेने के उपरान्त कम्पनी ने आरम्भ में पांच वर्षों तक सर्वाधिक बोली बोलने वाले को भूमि दे दी किन्तु बाद में अनुभव किया गया कि पांच वर्ष के लिए भूमि ठेके पर देने की व्यवस्था ठीक नहीं है, अतः **1777 ई. में यह पांच वर्ष के स्थान पर एक वर्ष कर दी गयी।**

वारेन हेस्टिंग्ज के इन सुधारों का उद्देश्य करों को भली प्रकार वसूल करना था। उसका विचार कृषकों के कष्टों को दूर करना नहीं था। इस प्रकार सर्वाधिक बोली बोलने वाले को भूमि देने से गरीब कृषक कराहते रहे।

व्यापारिक सुधार
(COMMERCIAL REFORMS)

ईस्ट इण्डिया कम्पनी यथार्थ में एक व्यापारिक कम्पनी थी, लेकिन इधर व्यापारिक क्षेत्र में भी अनेक दोष आ गए थे अतः वारेन हेस्टिंग्ज ने इनको भी सुधारने का पूरा प्रयत्न किया।

(1) 1717 ई. से केवल कम्पनी का माल कर-मुक्त था लेकिन कालान्तर में सभी अंग्रेजों ने कर देना बन्द कर दिया। परिणामस्वरूप सरकारी खजाने में बहुत ही कम धन जाने लगा। अन्त में स्थिति से बाध्य होकर वारेन हेस्टिंग्ज ने **'दस्तक'** अथवा **'फ्री पास'** की व्यवस्था को समाप्त कर दिया तथा सभी के माल पर चुंगी ली जाने लगी।

(2) कम्पनी द्वारा भारतीय व्यापारियों तथा अंग्रेज व्यापारियों सभी से कर लेने से व्यापार की दशा में सुधार हुआ तथा भ्रष्टाचार भी कम हुआ।

(3) व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए पांच के अतिरिक्त सभी चुंगीघरों को समाप्त कर दिया गया क्योंकि स्थान-स्थान पर चुंगीघर होने से व्यापार के विकास में बाधा पड़ती थी।

(4) नमक, तम्बाकू तथा सुपारी के अतिरिक्त अन्य सभी व्यापारिक वस्तुओं पर चुंगी में $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत की छूट दी गयी।

(5) कम्पनी के लिए माल खरीदने के लिए **'एक व्यापारिक परिषद्'** (Board of Trade) का गठन किया गया।

(6) भारत के व्यापार को बढ़ावा देने के लिए वारेन हेस्टिंग्ज ने भूटान, तिब्बत तथा मिस्र आदि देशों को व्यापारिक मिशन भेजे।

न्यायिक सुधार
(JUDICIAL REFORMS)

वारेन हेस्टिंग्ज ने न्याय के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण सुधार किए जिनमें प्रमुख थे :

(1) अभी तक अपने-अपने क्षेत्रों में जमींदार न्याय-सम्बन्धी अधिकारों का प्रयोग करते थे। वारेन हेस्टिंग्ज ने जमींदारों के इन अधिकारों को समाप्त करके केवल साधारण मुकदमे सुनने का अधिकार ही उनके पास रहने दिया।

(2) प्रत्येक जिले में एक-एक फौजदारी तथा दीवानी न्यायालय स्थापित किए गए। दीवानी न्यायालय का न्यायाधीश अंग्रेज कलेक्टर ही होता था परन्तु फौजदारी न्यायालयों का अधिकार भारतीयों के पास ही रहने दिया गया।

(3) दीवानी के मुकदमों की अपील सुनने के लिए कलकत्ता में एक सदर दीवानी न्यायालय स्थापित किया गया तथा फौजदारी के मुकदमों की अपील सुनने के लिए सदर निजामत की स्थापना की गयी।

(4) न्यायालयों के लिए रिकार्ड रखना अनिवार्य कर दिया गया।

(5) सभी प्रकार के मुकदमों का निर्णय एक विशेष अवधि में करना होता था ताकि किसी भी मुकदमें को आवश्यकता से अधिक न खींचा जा सके।

(6) वारेन हेस्टिंग्ज ने अनेक भारी जुर्मानों की व्यवस्था को भी समाप्त कर दिया।

(7) न्यायाधीशों को सरकार की ओर से वेतन दिए जाने की व्यवस्था की गयी तथा उनके फीस लेने या उपहार-भेंट लेने के अधिकार को समाप्त कर दिया।

(8) न्याय अब हिन्दू तथा मुसलमान दोनों धर्मों के अनुसार किया जाने लगा। वारेन हेस्टिंग्ज ने हिन्दू कानून की एक संहिता भी तैयार करवायी थी।

इस प्रकार न्याय के क्षेत्र में वारेन हेस्टिंग्ज ने महत्वपूर्ण कार्य किए। वास्तव में, बंगाल में एक स्वच्छ तथा कुशल न्यायिक व्यवस्था को प्रारम्भ करने का श्रेय पूर्ण रूप से वारेन हेस्टिंग्ज को जाता है।

व्यय में कटौती

वारेन हेस्टिंग्ज के कार्य-काल में विदेशी युद्धों पर भारी धनराशि व्यय की गयी अतः उसने धन बचाने का हर सम्भव प्रयत्न किया :

(1) बंगाल के नवाब की 32 लाख रुपए वार्षिक पेंशन घटाकर आधी अर्थात् 16 लाख रुपए वार्षिक कर दी गयी, अतः 16 लाख रुपए वार्षिक की बचत की गयी।

(2) मुगल सम्राट् शाहआलम की 26 लाख रुपए की वार्षिक पेंशन को पूर्ण रूप से बन्द कर दिया गया क्योंकि वह अंग्रेजों का साथ छोड़कर (1772 ई. में) मराठों से जा मिला था, अतः 26 लाख रुपए की वार्षिक बचत हो गयी।.

(3) रुहेलों के विरुद्ध अवध के नवाब की सहायता के बदले में वारेन हेस्टिंग्ज को 40 लाख रुपए प्राप्त हुए।

(4) कड़ा और इलाहाबाद के जिले शाहआलम से लेकर अवध के नवाब शुजाउद्दौला को 50 लाख रुपए के बदले में दे दिए गए।

इस प्रकार वारेन हेस्टिंग्ज ने विभिन्न प्रशासनिक, राजस्व-सम्बन्धी, व्यापारिक तथा न्याय-सम्बन्धी सुधारों से दीर्घकालीन अशान्ति तथा अराजकता को समाप्त करके शान्ति तथा व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया। उसने कम्पनी तथा जनता के कल्याण के लिए अत्यन्त उपयोगी प्रशासनिक व्यवस्था का आधार तैयार किया। यथार्थ में लॉर्ड क्लाइव ने जिस अंग्रेजी साम्राज्य की आधारशिला रखी थी, वारेन हेस्टिंग्ज ने उस साम्राज्य को व्यवस्था प्रदान की। वास्तव में अंग्रेज़ी साम्राज्य का संस्थापक क्लाइव था, लेकिन वारेन हेस्टिंग्ज उसका प्रशासनिक संगठनकर्ता था।

रेग्युलेटिंग एक्ट
(REGULATING ACT OF 1773)

आरम्भ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक व्यापारिक संस्था थी, परन्तु 1757 ई. के प्लासी के युद्ध में विजय तथा 1765 ई. में बंगाल, बिहार, उड़ीसा के दीवानी अधिकार प्राप्त करने के उपरान्त इस कम्पनी ने राजनीतिक रूप धारण कर लिया। इंगलैण्ड की संसद नहीं चाहती थी कि भारत जैसे विशाल देश की सत्ता पर कुछ गिने-चुने व्यक्तियों का ही अधिकार रहे। अतः 1773 ई. में वारेन हेस्टिंग्ज ने रेग्युलेटिंग एक्ट पारित किया।

रेग्युलेटिंग एक्ट पारित करने के लिए उत्तरदायी परिस्थितियां
(CONDITIONS RESPONSIBLE FOR THE ENACTMENT OF REGULATING ACT)

(1) **कम्पनी का परिवर्तित स्वरूप**—1765 ई. में कम्पनी व्यापारिक संस्था से राजनीतिक संस्था बन गयी थी। कम्पनी के राजनीतिक शक्ति बन जाने के फलस्वरूप संसद की प्रभुसत्ता अत्यन्त सीमित हो गयी इसी कारण कम्पनी को संसद के नियन्त्रण में लाने का निश्चय किया गया ताकि संसद की प्रभुसत्ता बनी रही तथा उसे कम्पनी के अधीनस्थ प्रदेशों पर लागू किया जा सका।

(2) **बंगाल की द्वैधशासन प्रणाली**—क्लाइव द्वारा लागू की गयी द्वैधशासन प्रणाली बंगाल में पूर्ण रूप से असफल रही, साथ ही वह घातक भी रही। इस प्रणाली के फलस्वरूप भ्रष्टाचार में पर्याप्त वृद्धि हुई अतः ब्रिटिश सरकार के लिए भारत में कम्पनी का यह अयोग्य तथा भ्रष्ट शासन असहनीय था।

(3) मद्रास, बम्बई तथा कलकत्ता की प्रेसीडेन्सियों में तालमेल का अभाव—ये दोनों ही प्रेसीडेन्सियां कम्पनी के प्रति उत्तरदायी थीं। अतः तीनों ही स्वतन्त्र थीं और उनका आपस में कोई तालमेल और सहयोग नहीं था। इसके अतिरिक्त इन तीनों प्रेसीडेन्सियों के पारस्परिक विरोधी कार्यों ने कम्पनी के लिए अनेक समस्याएं पैदा कर दी थीं।

(4) कम्पनी के कर्मचारियों का धनी होना—प्रायः भारत में आने के समय कम्पनी के कर्मचारियों की आर्थिक स्थिति वहुत खराव होती थी, परन्तु भारत से लौटते समय वे धनी होकर लौटते थे। वे पर्याप्त धन कमाकर इंगलैण्ड में नवावों का सा जीवन व्यतीत करते थे तथा संसद के सदस्य भी बन जाते थे। यहां उन्हें **'इण्डियन नवाब'** कहा जाता था। इस प्रकार संसद को कम्पनी के कर्मचारियों के धनी होने तथा उनके भ्रष्टाचार के सम्बन्ध में पूरा-पूरा विश्वास हो गया था अतः वह इस भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाना चाहती थी।

(5) कम्पनी द्वारा ब्रिटिश सरकार को खिराज न देना—1766 ई. में यह निश्चित किया गया था कि अपनी विजयों के लिए कम्पनी ब्रिटिश सरकार को 4 लाख पौण्ड खिराज के रूप में दिया करेगी। कम्पनी कुछ वर्ष तो यह खिराज देती रही, परन्तु बाद में वह इसे न दे सकी, क्योंकि कम्पनी की आर्थिक स्थिति खराव हो गयी थी। अतः इंगलैण्ड की सरकार ने कम्पनी पर अपनां नियन्त्रण स्थापित करने का प्रयास किया।

अतः कम्पनी की स्थिति का अध्ययन करने के लिए दो गुप्त समितियों का गठन किया गया। इन समितियों ने भारत में कम्पनी की प्रशासनिक व्यवस्था की कटु आलोचना की। कम्पनी को चौदह लाख पौण्ड का ऋण दे दिया गया, परन्तु उस पर नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से 1773 ई. में रेग्युलेटिंग एक्ट पारित किया गया जिसे 1774 ई. में लागू किया गया।

रेग्युलेटिंग एक्ट की धाराएं (Provisions of the Regulating Act)

इस अधिनियम की प्रमुख धाराएं निम्नलिखित थीं :

इंगलैण्ड में परिवर्तन (Changes in England)—(1) कोर्ट ऑफ प्रोपराइटर्ज (Court of Proprietors) में मतदान की योग्यता में वृद्धि कर दी गयी। अभी तक वे व्यक्ति जिनके पास छः मास से पांच सौ पौण्ड के हिस्से थे, मतदान में भाग ले सकते थे। अव इस योग्यता में वृद्धि कर दी गयी। अव वही व्यक्ति मताधिकार में भाग ले सकते थे जिनके पास कम-से-कम एक हजार पौण्ड के हिस्से (shares) थे। डायरेक्टरों की योग्यताएं एक हजार पौण्ड से वढ़ाकर दो हजार पौण्ड कर दी गयीं।

(2) डायरेक्टरों कां निर्वाचन अव एक वर्ष के स्थान पर चार वर्षों के लिए किया जाने लगा। इसमें से 25 प्रतिशत प्रत्येक वर्ष अवकाश ग्रहण कर लेते थे।

(3) कम्पनी को प्रतिवर्ष आर्थिक मामलों से सम्बन्धित पत्रों की प्रति राजकोष में भेजनी होती थी। नागरिक तथा फौजदारी से सम्बन्धित मामलों की प्रतियां राज्य के सचिवों को भेजनी होती थीं।

भारत में परिवर्तन (Changes in India)—(1) वंगाल के गवर्नर को भारत में समस्त अंग्रेजी राज्य का गवर्नर वना दिया गया।

(2) गवर्नर जनरल की सहायता के लिए एक चार-सदस्यीय परिषद् भी नियुक्त की गयी। ये सदस्य पांच वर्ष के लिए नियुक्त किए जाते थे। सदस्यों को सम्राट की अनुमति प्राप्त होने पर ही अपने पद से हटाया जा सकता था अर्थात् सम्राट ही सदस्यों को उनके पद से हटा सकता था।

(3) बहुमत के आधार पर निर्णय लेने का निश्चय किया गया। गवर्नर जनरल को **निर्णायक मत** (Casting Vote) देने का अधिकार था, परन्तु वह बहुमत के निर्णय को ठुकरा नहीं सकता था।

(4) मद्रास तथा बम्बई प्रेसीडेन्सियों के गवर्नर अब गवर्नर जनरल और उसकी परिषद् के अधीन हो गए तथा इन प्रेसीडेन्सियों के गवर्नर अब बिना गवर्नर जनरल की अनुमति के कोई युद्ध अथवा सन्धि नहीं कर सकते थे, परन्तु आपात्काल में वे इंगलैण्ड की सरकार से अनुमति प्राप्त कर अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकते थे।

(5) कलकत्ता में सम्राट के अधीन एक सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) स्थापित करने का भी प्रयत्न किया गया। यह न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र से बाहर था। इनमें मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त तीन न्यायाधीश और होते थे। इस न्यायालय को दीवानी, फौजदारी, चर्च-सम्बन्धी तथा जल सेना-सम्बन्धी मुकदमे सुनने का अधिकार था।

(6) गवर्नर जनरल, उसकी परिषद् के संदस्यों तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन में वृद्धि कर दी गयी।

(7) इस एक्ट के अन्तर्गत कम्पनी के कर्मचारियों के उपहार स्वीकार करने, रिश्वत लेने तथा निजी व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। यह बात स्पष्ट कर दी गयी कि अपराधियों को भारी आर्थिक दण्ड दिया जाएगा और उन्हें इंग्लैण्ड वापस भेज दिया जाएगा।

रेग्युलेटिंग एक्ट के दोष (Defects of Regulating Act)

रेग्युलेटिंग एक्ट, ब्रिटिश सरकार का कम्पनी के मामलों को नियमित करने तथा भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार करने का पहला प्रयास था। परन्तु यह स्वच्छ प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित नहीं कर सका। बूटन राऊज के अनुसार, **"एक्ट का उद्देश्य श्रेष्ठ था, परन्तु उसके द्वारा स्थापित पद्धति अधूरी थी।"** इस एक्ट के दोष इस प्रकार हैं :

(1) **गवर्नर जनरल का परिषद् पर अपूर्ण नियन्त्रण**—ब्रिटिश भारत का सर्वोच्च अधिकारी होते हुए भी गवर्नर जनरल का अपनी परिषद् पर पूर्ण नियन्त्रण नहीं था। उसे परिषद् में बहुमत द्वारा दिए गए निर्णयों के अनुसार कार्य करना पड़ता था। इस प्रकार गवर्नर जनरल के अधिकार सीमित थे। वारेन हेस्टिंग्ज के परिषद् के सदस्यों से अच्छे सम्बन्ध नहीं थे, अक्सर परिषद् के सदस्यों के निर्णय उसके विरुद्ध होते थे। परिणामस्वरूप स्थिति दिन-प्रतिदिन खराब होती गयी। अतः इस एक्ट कीं अस्पष्टता ने गवर्नर जनरल और उसकी परिषद् के सदस्यों के बीच गम्भीर संघर्ष को जन्म दिया। परिषद् के सदस्यों के विरोध के कारण वारेन हेस्टिंग्ज ने पुरन्दर की सन्धि रद्द कर दी थी।

(2) **सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र अस्पष्ट**—इस एक्ट में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की व्यवस्था तो की गयी थी परन्तु उसका कार्य-क्षेत्र निश्चित नहीं किया गया था। गवर्नर जनरल, उसकी परिषद् के सदस्य तथा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के पारस्परिक अधिकारों का स्पष्टीकरण नहीं किया गया था। अतः गवर्नर जनरल और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के सम्बन्ध कभी भी मधुर नहीं रहे। **सर्वोच्च न्यायालय के कार्यों का भी स्पष्टीकरण नहीं किया गया था।** इस एक्ट के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को अंग्रेजी प्रजा के मुकदमे सुनने का अधिकार था वस्तुतः प्रजा की व्याख्या नहीं की गयी थी। इस एक्ट में यह भी स्पष्ट नहीं किया गया था कि सर्वोच्च न्यायालय अंग्रेजी अथवा भारतीय विधि के अनुसार कार्य

करेगा। अंग्रेजी न्यायाधीशों को केवल अंग्रेजी कानूनों का ही ज्ञान था, इस कारण भारतीयों पर इस कानून को बलात् लादा गया।

(3) गवर्नर जनरल का सर्वोच्च न्यायालय के अधीन होना—इस एक्ट द्वारा गवर्नर जनरल और उसकी परिषद् के सदस्यों को सर्वोच्च न्यायालय के अधीन कर दिया गया। गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद् द्वारा पारित किए गए नियम सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुमति दिए जाने पर ही वैध समझे जाते थे।

(4) कम्पनी में पूंजीवादियों को महत्व—मतदाता बनने के स्तर में वृद्धि करके 500 पौण्ड से 1,000 पौण्ड कर दिया गया, परिणामस्वरूप कम्पनी पर कुछ धनी व्यक्तियों का अधिकार हो गया तथा प्रशासनिक व्यवस्था पर कुछ ही व्यक्तियों का स्थायी अधिकार हो गया।

(5) बम्बई तथा मद्रास पर गवर्नर जनरल का अपूर्ण नियन्त्रण—इस एक्ट द्वारा बम्बई तथा मद्रास प्रेसीडेन्सियों पर गवर्नर जनरल का प्रभुत्व तो स्थापित कर दिया गया, परन्तु उसका स्वरूप निश्चित नहीं किया गया। आपात स्थिति में वे गवर्नर इंगलैण्ड की सरकार से अनुमति प्राप्त कर इच्छानुसार कार्य कर सकते थे। इससे गवर्नर जनरल शक्तिहीन हो गया। इस दोष के कारण सूरत की सन्धि के परिणामस्वरूप मराठों के साथ दीर्घकालीन युद्ध करना पड़ा।

(6) कम्पनी के ऊपर संसद का अस्पष्ट नियन्त्रण—ब्रिटिश संसद कम्पनी के मामलों में पूर्ण हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी, उसे केवल वार्षिक रिपोर्ट ही चाहिए थी। निःसन्देह गवर्नर जनरल और उसके परिषद् के सदस्यों की कम्पनीं के डाइरेक्टरों से सिविल और सैनिक पत्र-व्यवहार की प्रतियां राज्य सचिव को भेज दी जाती थीं, परन्तु इस रिपोर्ट तथा पत्र पर तुरन्त कार्यवाही करने का कोई प्रबन्ध नहीं था। इस प्रकार भारत में कम्पनी की गतिविधियों पर संसद का कोई नियन्त्रण न हो सका।

दोषपूर्ण होते हुए भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस एक्ट के उद्देश्य तो अच्छे थे परन्तु इस एक्ट का निर्माण उन व्यक्तियों ने किया था जिन्हें भारतीय परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान नहीं था। यथार्थ में वे कम्पनी के अधिकारों को सीमित करना चाहते थे परन्तु वे शक्ति सन्तुलन के झगड़े में व्यस्त हो गए तथा अनेक बातें अस्पष्ट ही रह गयीं जिसके कारण प्रत्येक अंग ढीला पड़ गया। वास्तव में, इंगलैण्ड की संसद द्वारा भारत सरकार में परिवर्तन करने और उसे नियमित करने के लिए बनाए गए अधिनियमों की कड़ी में यह एक्ट प्रथम चरण था। इस एक्ट ने कम्पनी के भारतीय साम्राज्य को एक केन्द्रीय सरकार प्रदान की। साथ ही ब्रिटिश भारत के लिखित संविधान के लिए आधार प्रस्तुत किया। **इस एक्ट ने भारत के राजनैतिक विकास का शुभारम्भ किया, जिसके फलस्वरूप 1947 ई. में भारत ने अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त की।**

रेग्युलेटिंग एक्ट में संशोधन (Amendment in the Regulating Act)

रेग्युलेटिंग एक्ट अस्पष्ट तथा अपूर्ण था इसके कारण गवर्नर जनरल के सम्मुख अनेक कठिनाइयां आयीं। वह सर्वोच्च न्यायालय तथा अपनी परिषद् के सम्मुख स्वयं को असमर्थ पाता था। परिणामस्वरूप, 1781 ई. में **'बंगाल न्यायालय एक्ट'** (Bengal Judiciary Act) पारित किया गया। इस एक्ट द्वारा गवर्नर जनरल और उसकी परिषद् तथा उच्च न्यायालयों से उसके सम्बन्धों की व्याख्या की गयी थी। **इस एक्ट की मुख्य धाराएं निम्न थीं :**

(1) सर्वोच्च न्यायालय कम्पनी के कर्मचारियों के विरुद्ध उन कार्यों के लिए कोई कार्यवाही नहीं कर सकता जो उन्होंने राजकीय कर्मचारी के रूप में किए हैं।

(2) गवर्नर जनरल और उसकी परिषद् के सदस्यों को एक राजकीय कर्मचारी के रूप में किए गए कार्यों के लिए सर्वोच्च न्यायालय के कार्य-क्षेत्र से अलग कर दिया गया।

(3) भूमिकर एकत्रित करने वाले अधिकारियों को भी सर्वोच्च न्यायालय के नियन्त्रण से मुक्त रखा गया।

(4) सर्वोच्च न्यायालय को कलकत्ता के सभी नागरिकों के मुकदमे सुनने का अधिकार दिया गया।

(5) आदेश लागू करते समय सर्वोच्च न्यायालय को सामाजिक तथा धार्मिक रीति-रिवाजों का ध्यान रखना होगा।

(6) गवर्नर जनरल और उसकी काउन्सिल को प्रान्तीय न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार भी दिया गया। 5,000 पौण्ड तक के मुकदमों की अपील सम्राट तक की जा सकती थी।

(7) यह भी व्यवस्था की गयी कि हिन्दुओं के मुकदमों का निर्णय हिन्दू कानूनों के अनुसार तथा मुसलमानों के मुकदमों का फैसला इस्लामी कानूनों के अनुसार होगा।

पिट के इण्डिया एक्ट द्वारा रेग्युलेटिंग एक्ट में किए गए सुधार—रेग्युलेटिंग एक्ट दोषपूर्ण तथा अस्पष्ट था जिसके कारण अनेक संघर्ष उत्पन्न हुए। अतः 1781 ई. के बंगाल न्यायालय एक्ट के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारों का स्पष्टीकरण कर दिया गया था, परन्तु गवर्नर जनरल के अधिकारों तथा स्थिति के सम्बन्ध में कोई स्पष्टीकरण नहीं किया गया था। 1784 ई. में **'पिट्स इण्डिया एक्ट'** (Pitt's India Act) **ने रेग्युलेटिंग एक्ट में अनेक सुधार किए :**

(1) रेग्युलेटिंग एक्ट के अन्तर्गत गवर्नर जनरल की सहायता के लिए चार सदस्यों की एक परिषद् की व्यवस्था थी। अब इस परिषद् के सदस्यों की संख्या घंटाकर तीन कर दी गयी जिनमें एक सेना का सेनापति होता था। अब गवर्नर जनरल एक सदस्य की सहायता से अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकता था। अतः इस सुधार से गवर्नर जनरल की स्थिति दृढ़ हुई।

(2) रेग्युलेटिंग एक्ट की धाराओं के अनुसार बम्बई तथा मद्रास के गवर्नर आपात्काल का सहारा लेकर गवर्नर जनरल की इच्छा के विरुद्ध स्वेच्छा से कार्य करते थे। उदाहरणार्थ, बम्बई के गवर्नर ने गवर्नर जनरल के परामर्श के बिना सूरत की सन्धि कर ली। पिट्स के इण्डिया एक्ट द्वारा इस दोष को दूर किया गया।

(3) पिट्स इण्डिया एक्ट के द्वारा गवर्नर जनरल और प्रेसीडेन्सीज की परिषदों के सदस्यों की नियुक्ति कम्पनी के भारत स्थित स्वीकृत अधिकारियों में से की जाने लगी। ये सदस्य अधिक उपयोगी सिद्ध हुए क्योंकि उन्हें भारतीय मामलों का ज्ञान होता था। स्पष्ट रूप से यह रेग्युलेटिंग एक्ट में सुधार ही था।

(4) रेग्युलेटिंग एक्ट में भारत तथा इंगलैण्ड की संसद तथा सरकार का नियन्त्रण अस्पष्ट था। लेकिन पिट्स इण्डिया एक्ट ने इस नियन्त्रण को स्पष्ट और दृढ़ किया। अब भारतीय मामलों पर सम्राट को नियन्त्रण प्राप्त था। अब इंगलैण्ड की अनुमति के बिना गवर्नर जनरल और उनकी परिषद् के सदस्य न तो किसी से युद्ध कर सकते थे और न ही किसी से सन्धि। इस सम्बन्ध में प्रो. एस. आर. शर्मा का कथन है, **"मालिकों की परिषद् अब राजनीतिक अधिकारों से सम्बन्धित थी। अब संचालक भी ब्रिटिश सरकार जिसको कि असीमित अधिकार प्राप्त थे के इशारों पर नाचते थे।"**

वारेन हेस्टिंग्ज के काल की कुछ प्रमुख घटनाएं
(MAIN EVENTS OF WARREN HASTINGS' TENURE)

अवध की बेगमों का मामला (Affair of Begams of Avadh)

अवध का तत्कालीन नवाब वजीर आसफुद्दौला था। वजीर आसफुद्दौला को कम्पनी को बहुत बड़ी रकम चुकानी थी, किन्तु उसके पास धनाभाव था। नवाब आसफुद्दौला की दादी तथा मां के पास अपार धन-सम्पत्ति थी जिन्हें वे अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझती थीं। **नवाब की मां तथा दादी को 'अवध की बेगम' कहा जाता था।** अवध की बेगमों ने 1775 ई. में कम्पनी के रेजीडेण्ट के आग्रह पर नवाब को एक बड़ी रकम इस शर्त के साथ दी कि भविष्य में वह तथा कम्पनी और धन की मांग नहीं करेंगे। किन्तु, कम्पनी के ऋण को नवाब चुका पाने में असमर्थ था, अतः 1781 ई. में उसने कम्पनी के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि कम्पनी बेगमों के धन पर अधिकार करके अपने ऋण की पूर्ति कर ले। वारेन हेस्टिंग्ज ने नवाब आसफुद्दौला के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया यद्यपि यह 1775 ई. के पारस्परिक समझौते के विरुद्ध था।

वारेन हेस्टिंग्ज ने बेगमों के धन पर अधिकार करने के लिए सेना भेजी। नवाब व कम्पनी की सम्मिलित सेना ने फैजाबाद में बेगमों के साथ दुर्व्यवहार किया तथा उनकी सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया।

वारेन हेस्टिंग्ज के इस कार्य की इतिहासकारों द्वारा आलोचना की गई है। इतिहासकारों का मानना है कि बेगमों का कम्पनी से न तो कोई सम्बन्ध था और न ही कोई झगड़ा, फिर भी उनके विरुद्ध सेना भेजकर उनकी सम्पत्ति पर अधिकार कर लेना वारेन हेस्टिंग्ज का कार्य निन्दनीय था। सर अल्फ्रेड लायल ने वारेन हेस्टिंग्ज के इस कार्य को घृणित बताया है।[1]

राजा चेतसिंह का मामला (Affair of Raja Chet Singh)

राजा चेतसिंह बनारस का शासक था जो अवध के सामन्त शासक के रूप में बनारस में शासन करता था तथा नवाब को साढ़े बाईस लाख रुपए वार्षिक कर के रूप में देता था। 1775 ई. में अवध के नवाब तथा कम्पनी के मध्य फैजाबाद की सन्धि हो गयी जिसके अन्तर्गत बनारस पर कम्पनी का अधिकार स्वीकार किया गया। इस सन्धि के परिणामस्वरूप बनारस का राजा चेतसिंह अब कम्पनी को वार्षिक कर के रूप में साढ़े बाईस लाख रुपया देने लगा।

1778 ई. में वारेन हेस्टिंग्ज ने राजा चेतसिंह से कर के अतिरिक्त पांच लाख रुपयों की मांग की। चेतसिंह ने हेस्टिंग्ज की मांग को स्वीकार कर लिया। 1779 ई. में हेस्टिंग्ज ने पुनः पांच लाख रुपए की मांग की। इस बार भी चेतसिंह ने रुपया हेस्टिंग्ज को दे दिया। 1780 ई. में वारेन हेस्टिंग्ज ने चेतसिंह से दो हजार घुड़सवारों को देने के लिए कहा। चेतसिंह इतने घुड़सवार देने की स्थिति में नहीं था, अतः उसने 500 घुड़सवार तथा 500 पैदल सैनिक कम्पनी के लिए भेज दिए। **चेतसिंह के इस कार्य से हेस्टिंग्ज नाराज हो गया तथा उस पर तीस लाख रुपए जुर्माना कर दिया।** वारेन हेस्टिंग्ज जुर्माना वसूल करने के लिए स्वयं बनारस गया। चेतसिंह द्वारा माफी मांगने के पश्चात् भी हेस्टिंग्ज ने उसे बन्दी बना लिया। हेस्टिंग्ज के इस कार्य से चेतसिंह के सैनिकों ने विद्रोह कर दिया तथा अनेक अंग्रेज सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। हेस्टिंग्ज को बनारस से भागने के लिए विवश होना पड़ा।

1 "An ignoble type of undertaking."
—Sir Alfred Lyall, *Warren Hastings*, pp. 136-137.

तत्पश्चात् हेस्टिंग्ज अधिक सेना के साथ पुनः बनारस आया व चेतसिंह को पद्च्युत कर उसके भांजे को बनारस का राजा घोषित किया गया तथा वार्षिक कर को बढ़ाकर 40 लाख रुपए कर दिया गया।

राजा चेतसिंह के साथ वारेन हेस्टिंग्ज के व्यवहार की भी इतिहासकारों द्वारा आलोचना की गई है। वारेन हेस्टिंग्ज ने राजा चेतसिंह से अनुचित मांग तो की ही साथ ही उसको बन्दी बनाकर गैर-कानूनी कार्य किया। हेस्टिंग्ज का चेतसिंह के प्रति व्यवहार निश्चित रूप से आपत्तिजनक था।

नन्द कुमार का मामला (The Affair of Nand Kumar)

1775 ई. में कलकत्ता के एक कुलीन ब्राह्मण नन्द कुमार ने वारेन हेस्टिंग्ज पर रिश्वत लेने का आरोप लगाया। नन्दकुमार का आरोप था कि वारेन हेस्टिंग्ज ने मीरजाफर की पत्नी मुन्नी बेगम से साढ़े तीन लाख रुपए लेकर उसे नए नवाब की संरक्षिका नियुक्त किया था। गवर्नर जनरल की कौंसिल ने वारेन हेस्टिंग्ज से इस विषय में पूछताछ की किन्तु उसने जवाब नहीं दिया। **अतः कौंसिल ने इस आरोप को सही मानते हुए वारेन हेस्टिंग्ज को आदेश दिया कि रिश्वत की रकम के बराबर रुपया वह कम्पनी को दे, किन्तु हेस्टिंग्ज ने ऐसा नहीं किया।** इसके साथ ही हेस्टिंग्ज ने नन्दकुमार पर कम्पनी के विरुद्ध षड्यन्त्र करने का आरोप लगाया। इसी समय कलकत्ता के ही एक व्यापारी ने नन्दकुमार पर जालसाजी का आरोप लगाया। नन्दकुमार को जालसाजी के आरोप में मृत्युदण्ड दे दिया गया। इस प्रकार हेस्टिंग्ज पर लगा आरोप स्वतः समाप्त हो गया।

नन्द कुमार को मृत्युदण्ड दिए जाने की इतिहासकारों द्वारा कटु आलोचना की गई है। इतिहासकारों का विचार है कि उसे मृत्युदण्ड जालसाजी के लिए नहीं वरन् वारेन हेस्टिंग्ज पर अंगुली उठाने के आरोप में दिया गया था। उल्लेखनीय है कि सुप्रीम कोर्ट का चीफ जस्टिस इम्पे (Impay) वारेन हेस्टिंग्ज का मित्र था। इसी कारण उसने केवल जालसाजी के आरोप में नन्दकुमार को मृत्युदण्ड दे दिया ताकि हेस्टिंग्ज पर लगा आरोप स्वतः समाप्त हो जाए। इसी कारण नन्दकुमार की मृत्यु को **'कानूनी हत्या'** (Judicial Murder) कहा गया है। **किन्तु अनेक इतिहासकार इस मत से सहमत नहीं हैं व अपने मत के पक्ष में निम्नलिखित तर्क देते हैं :**

(i) पहले नन्दकुमार पर जालसाजी का मुकदमा कलकत्ता के व्यापारी मोहन प्रसाद द्वारा चलाया गया था। नन्दकुमार ने वारेन हेस्टिंग्ज पर आरोप बाद में लगाया था।

(ii) नन्दकुमार के विरुद्ध निर्णय चार जजों ने दिया था।

(iii) वारेन हेस्टिंग्ज व इम्पे की बहुत घनिष्ठता नहीं थी।

सत्य चाहे जो भी हो किन्तु फिर भी इसमें सन्देह नहीं है कि नन्दकुमार को जालसाजी के आरोप में मृत्यु दण्ड देना न्यायसंगत नहीं था।

वारेन हेस्टिंग्ज पर महाभियोग
(IMPEACHMENT OF WARREN HASTINGS)

1785 ई. में वारेन हेस्टिंग्ज वापस इंगलैण्ड चला गया। उस पर अनेक आरोप थे, अतः 1788 ई. में उस पर महाभियोग चलाया गया। उस पर चेतसिंह, अवध की बेगमों का मामला, नन्दकुमार की हत्या, रुहेला युद्ध सम्बन्धी अनेक आरोप थे। हेस्टिंग्ज ने इन आरोपों

को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। यह अभियोग 1795 ई. तक चलता रहा; अन्ततः उसे सभी आरोपों से बरी कर दिया गया।

वारेन हेस्टिंग्ज का मूल्यांकन
(ESTIMATE OF HASTINGS)

वारेन हेस्टिंग्ज भारत के गवर्नर जनरलों में से एक विवादास्पद गवर्नर जनरल माना जाता है। उसके विषय में कहा जाता है कि उसने बलपूर्वक भारत को लूटा तथा अंग्रेजी साम्राज्य का प्रसार किया। इसके विपरीत अनेक इतिहासकारों ने उसकी प्रशंसा की है। एल्फ्रेड लायल ने उसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, **"वारेन हेस्टिंग्ज ने ऐसी प्रारम्भिक प्रशासनिक क्षमता का प्रदर्शन किया जिससे वह भारत के इतिहास के किसी भी युग में महान् माना जाता।"**[1]

लॉर्ड कार्नवालिस (1786—93 ई.)
(LORD CORNWALLIS)

भारत के इतिहास में लॉर्ड कार्नवालिस को अपने सुधारों के कारण विशेष स्थान प्राप्त है। 1786 ई. में कम्पनी ने एक उच्च वंश तथा कुलीन वृत्ति के व्यक्ति लॉर्ड कार्नवालिस को **'पिट्स इण्डिया एक्ट'** के अन्तर्गत रेखांकित शान्ति स्थापना तथा शासन के पुनर्गठन के हेतु, गवर्नर जनरल नियुक्त कर भारत भेजा। उसे विशेषकर एक सन्तोषजनक भूमिकर व्यवस्था स्थापित करना, एक ईमानदार तथा कार्यक्षम न्याय व्यवस्था बनाना, तथा कम्पनी के व्यापार विभाग का पुनर्गठन करना था। उसने वारेन हेस्टिंग्ज के स्थापित किए हुए ढांचे पर ही अतिरिक्त शासन-व्यवस्था का गठन किया जो 1856 ई. तक चलता रहा।

कार्नवालिस द्वारा किए गए सुधार
(REFORMS OF LORD CORNWALLIS)

1. प्रशासनिक सुधार (Administrative Reforms)—सार्वजनिक सेवाओं की व्यवस्था में कार्नवालिस ने जो सुधार किए वे अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। निःसन्देह क्लाइव तथा वारेन हेस्टिंग्ज ने सिविल सर्विस में सुधार करने के प्रयास किए, परन्तु उनकी सफलताओं का आशय इसी बात से लगाया जा सकता है कि वारेन हेस्टिंग्ज के उपरान्त 1785-86 ई. में बनारस के रेजीडेण्ट को 1,350 पौण्ड वार्षिक वेतन मिलता था, परन्तु वह अन्य साधनों से लगभग 40,000 पौण्ड और बना लेता था। कार्नवालिस समझ गया कि अभी इस दिशा में बहुत कुछ सुधार करने हैं। **उसने सार्वजनिक सेवाओं में सुधार के लिए निम्न प्रयास किए :**

(i) लॉर्ड कार्नवालिस ने सर्वप्रथम अपने व्यक्तिगत उदाहरण द्वारा (**ईमानदारी तथा आदर्श चरित्र**) कम्पनी के कर्मचारियों में भी ईमानदारी की भावना जाग्रत की।
(ii) उसने कम्पनी को पक्षपात के कारण उत्पन्न होने वाले अनेक दोषों से बचाने का प्रयास किया।
(iii) अनेक अनावश्यक पदों को समाप्त कर दिया गया। ये पद कम्पनी के संचालकों अथवा नियन्त्रण परिषद् के सदस्यों तथा अनेक सम्बन्धियों को प्रसन्न करने के लिए बनाए गए थे।

---
1 "Warren Hastings showed a genius for pioneering administration that would have won him distinction at any epoch of Indian History."
—Alfred Lyall, *Warren Hastings*, p. 230.

(iv) उसने कम्पनी के संचालकों को कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि करने को बाध्य किया ताकि वे किसी प्रकार के लालच में न आवें।

(v) निजी व्यापार तथा घूसखोरी को रोकने के लिए भी कठोर नियम बनाए गए।

कार्नवालिस के इन कार्यों से शासन-व्यवस्था में स्वच्छता आयी तथा कम्पनी के कर्मचारी ईमानदार एवं कर्तव्यनिष्ठ बन गए।

2. **न्याय-सम्बन्धी सुधार** (Judicial Reforms)—वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा प्रारम्भ किए गए न्याय-सम्बन्धी सुधारों को कार्नवालिस ने अनेक सुधारों के साथ पूरा किया :

(i) **दीवानी न्यायालयों का पुनर्गठन**—दीवानी के मुकदमों का निर्णय करने के लिए विभिन्न स्तरों पर अनेक छोटे-बड़े न्यायालयों की स्थापना की गयी। मुन्सिफ तथा रजिस्ट्रार के न्यायालय सबसे छोटे थे। मुन्सिफ 50 रु. तक के तथा रजिस्ट्रार 200 रु. तक के मुकदमे सुनने के अधिकारी होते थे। इन न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध जिला न्यायालय में अपील की जा सकती थी।**जिला न्यायालय में एक अंग्रेजी जज तथा कुछ भारतीय कर्मचारी होते थे।** जिला न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपील प्रान्तीय न्यायालयों में होती थी। ये प्रान्तीय न्यायालय कलकत्ता, ढाका, मुर्शिदाबाद तथा पटना में स्थित थे। प्रत्येक प्रान्तीय न्यायालय में तीन अंग्रेज जज तथा अनेक भारतीय कर्मचारी होते थे। ये प्रान्तीय न्यायालय, कलकत्ता स्थित सदर दीवानी न्यायालय जो कि गवर्नर जनरल तथा उसकी काउन्सिल के अधीन होती थी, के अधीन होते थे।

(ii) **फौजदारी न्यायालयों का पुनर्गठन**—दीवानी के समान फौजदारी न्यायालयों का भी पुनर्गठन किया गया। इसमें सबसे छोटा न्यायालय दरोगा का होता था तथा ये छोटे-छोटे फौजदारी के मुकदमों का निर्णय करते थे, प्रायः भारतीय ही दरोगा होते थे। इन निर्णयों के विरुद्ध अपील जिला सेशन जज के न्यायालय में होती थी। इन जिला न्यायालय के ऊपर कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, पटना तथा ढाका में प्रान्तीय न्यायालय थे। इनके जज भी सिविल न्यायालयों के जज होते थे। ये न्यायालय प्रान्तों का दौरा भी करते थे तथा घूम-घूमकर जनता को न्याय प्रदान करते थे। इन प्रान्तीय न्यायालयों द्वारा दिए-गए मृत्यु-दण्ड की अपील की स्वीकृति सदर निजामत अदालत से लेनी पड़ती थी। सदर निजामत अदालत गवर्नर जनरल तथा उनकी काउन्सिल के अधीन कार्य करती थी।

(iii) **कलेक्टर न्याय-सम्बन्धी अधिकारों से वंचित**—1792 ई. तक कलेक्टर एवं जिला जज का कार्य एक ही व्यक्ति किया करता था परन्तु 1793 ई. के उपरान्त उसमें परिवर्तन करके दोनों पदों को दो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को दे दिया। अब कलेक्टर का कार्य केवल लगान इकट्ठा करना ही था। जिले के सिविल न्यायालयों के लिए जिला जजों की नियुक्ति की गयी।

(iv) **कार्नवालिस कोड की स्थापना**—न्याय-व्यवस्था में सुधार लाने के उद्देश्य से कार्नवालिस ने विभिन्न नियमों को संकलित करके एक न्याय विधान का निर्माण किया। यह न्याय विधान **'कार्नवालिस कोड'** के नाम से विख्यात है। इस कोड में हाथ-पांव काटने के अतिरिक्त अन्य अमानुषिक दण्ड समाप्त कर दिए गए।

3. **पुलिस सुधार** (Police Reforms)—कार्नवालिस से पूर्व अपने-अपने क्षेत्रों में पुलिस व्यवस्था का उत्तरदायित्व जमींदार वर्ग पर ही था। हेस्टिंग्ज इन अधिकारों को समाप्त करने में सफल नहीं हो सका था। **कार्नवालिस ने इस दिशा में अनेक सुधार किए :**

(1) नए पुलिस विभाग की स्थापना की गयी तथा जमींदारों को उनके पुलिस अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

(2) प्रत्येक जिले को अनेक थानों में बांट दिया गया और प्रत्येक थाने को एक दरोगा के अधीन रखा गया। दरोगा की सहायता हेतु अनेक सिपाही भी होते थे।

(3) जिले के दरोगा जिला मजिस्ट्रेट के अधीन होते थे।

(4) पुलिस-प्रबन्ध को प्रोत्साहित करने तथा सुचारु बनाने के विचार से जिला मजिस्ट्रेट को चोरी का माल पकड़ने पर 10% कमीशन दिया जाता था। इसी प्रकार प्रत्येक डाकू के पकड़ने पर भी उसे एक निश्चित राशि मिलती थी।

(5) पुलिस-व्यवस्था पर होने वाले व्यय की पूर्ति के लिए बड़े-बड़े नगरों की दुकानों पर थोड़ा-सा कर लगा दिया गया।

4. **व्यापारिक सुधार** (Reforms in Trade)—व्यापार विभाग में कार्नवालिस ने देखा कि भ्रष्टता व्याप्त है प्रायः कम्पनी का माल घाटे पर विकता था जबकि कम्पनी के कार्यकर्ताओं द्वारा अपने खाते में भेजे गए माल पर लाभ होता था। 1774 ई. में व्यापार बोर्ड स्थापित होने के पश्चात् कम्पनी अपना माल यूरोपीय तथा भारतीय ठेकेदारों द्वार मोल लेती थी। ये लोग प्रायः घटिया माल ऊंची दरों पर मोल लेकर कम्पनी को दे देते थे। व्यापार बोर्ड के सदस्य इन अनियमितताओं को रोकने के स्थान पर उनसे कमीशन तथा घूस लेते थे। कार्नवालिस ने व्यापार बोर्ड के सदस्यों की संख्या 11 से घटाकर 5 कर दी तथा ठेकेदारों के स्थान पर व्यापारिक प्रतिनिधियों तथा रेजीडेण्टों (Commercial Agents and Residents) द्वारा माल लेने की व्यवस्था बना दी। ये लोग माल निर्माताओं के पेशगी में धन दे देते थे और माल निश्चित कर लेते थे जिससे कम्पनी को माल सस्ता मिलना शुरू हो गया और कम्पनी पुनः अपने पांव पर खड़ी हो गयी तथा यह व्यवस्था कम्पनी के व्यापार के अन्तिम दिनों तक चलती रही।

5. **लगान-सम्बन्धी सुधार** (Revenue Reforms)—राजस्व प्रणाली में सुधार कार्नवालिस का प्रमुख सुधार था। इस सुधार से पूर्व सर्वाधिक बोली लगाने वाले को एक वर्ष के लिए भूमि दी जाती थी। परिणामस्वरूप एक ओर तो भूमि बंजर हो गयी तथा दूसरी ओर व्यापार चौपट हो गया। जमींदार भी परेशान थे तथा जनता भी भूखों मरने लगी। लेकिन कई वर्षों तक समस्या का अध्ययन करने के उपरान्त लॉर्ड कार्नवालिस ने जमींदारों को 10 वर्ष के लिए भूमि दे दी। इस व्यवस्था के परिणाम सन्तोषजनक रहे, अतः 1793 ई. में जमींदारों को स्थायी रूप से भूमि दे दी गयी। इस प्रकार की व्यवस्था से सरकार जनता तथा जमींदारों अर्थात् सभी वर्गों को बड़ा लाभ हुआ। बंगाल भारत का एक सम्पन्न राज्य बन गया।

कार्नवालिस के सुधारों का महत्व (Significance of the Reforms)—कार्नवालिस के सुधार अत्यन्त लाभकारी थे। घूसखोरी का अन्त हो गया। दण्ड-व्यवस्था नर्म हो गयी तथा अदालतों के सुप्रबन्ध के कारण न्याय प्राप्त करने में प्रजा को बड़ी आसानी हो गयी परन्तु कार्नवालिस की सबसे बड़ी भूल यह थी कि उसनें यह प्रथा चला दी कि भारतवासी किसी ऊंचे पद पर नियुक्त न किए जाएं क्योंकि उसे उनकी योग्यता पर विश्वास न था, इससे सारा प्रबन्ध अंग्रेज अधिकारियों को ही करना पड़ा जिससे यह बहुत महंगा हो गया।

बंगाल का स्थायी बन्दोबस्त
(PERMANENT SETTLEMENT IN BENGAL)

बंगाल की राजस्व-व्यवस्था में सुधार करके लॉर्ड कार्नवालिस ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया। उसके द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था ही बाद में 'स्थायी बन्दोबस्त' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

स्थायी बन्दोबस्त के लागू करने के कारण—बंगाल के स्थायी बन्दोबस्त के कारण ही लॉर्ड कार्नवालिस की गणना सफल प्रशासकों में की जाती है। लॉर्ड कार्नवालिस से पूर्व राजस्व कर एकत्रित करने की कोई व्यवस्था नहीं थी। ब्रिटिश काल से पूर्व सरकार की ओर से लगान वसूल करने वाले अधिकारी किसानों से लगान इकट्ठा करके अपना कमीशन काटकर राजकोष में जमा करवा देते थे। इलाहाबाद की सन्धि के अनुसार अंग्रेजों को बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी के अधिकार प्राप्त हो गए, उस समय भी क्लाइव ने लगान एकत्रित करने के पुराने ढंग को ही चलने दिया। वारेन हेस्टिंग्ज ने कम्पनी की आय में वृद्धि करने के विचार से भूमि को पांच वर्ष के लिए बाद में एक वर्ष के लिए ठेके पर देना आरम्भ कर दिया। ठेके पर भूमि देने की यह प्रणाली अत्यन्त असन्तोषजनक और दोषपूर्ण सिद्ध हुई। **उसमें अनेक दोष थे :**

(1) उत्साह तथा जिद में आकर जमींदार अधिक-से-अधिक बोली लगाते थे, परन्तु वे भूमि की आय से इतनी राशि प्राप्त नहीं कर पाते थे, इसी कारण सरकार का बहुत-सा धन बिना वसूल किए ही रह जाता था।

(2) जमींदारों को यह भी विश्वास नहीं होता था कि अगले वर्ष भूमि उनको मिलेगी अथवा नहीं इस कारण वह भूमि की दशा को सुधारने का कोई प्रयास नहीं करता था, परिणामस्वरूप भूमि ऊसर होने लगी।

(3) एक वर्ष के ठेके में अपनी धनराशि को पूरा करने के लिए जमींदार कृषकों पर बहुत अत्याचार करते थे।

स्थायी बन्दोबस्त—1784 ई. पिट्स इण्डिया एक्ट में कम्पनी के संचालकों को स्पष्ट आदेश दिया गया था कि वे भारत में वहां की न्याय-व्यवस्था तथा संविधान के अनुसार उचित भूमि व्यवस्था लागू करें। अप्रैल 1784 ई. में जब कार्नवालिस भारत आ रहा था तो कम्पनी के संचालकों ने उसे यह स्पष्ट निर्देश दिए थे कि वह पिट्स के इण्डिया एक्ट की धाराओं के अनुसार भारत में भूमि कर निश्चित कर दे। **लॉर्ड कार्नवालिस शीघ्रता से कोई कार्य नहीं करना चाहता था।** उसने भूमि कर की जांच-पड़ताल का कार्य बंगाल प्रशासन के एक अनुभवी सदस्य सर जान शोर को दिया। उसने सम्पूर्ण लगान व्यवस्था का लगभग तीन वर्ष तक अध्ययन किया। उसकी रिपोर्ट के आधार पर कार्नवालिस ने दस वर्ष के लिए भूमि जमींदारों को सौंप दी। परन्तु जब यह परीक्षण सफल रहा तो कार्नवालिस ने उसे स्थायी रूप दे दिया और भूमि सदा के लिए जमींदारों को सौंप दी गयी। **इस व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार थीं :**

(1) अभी तक जमींदारों की कानूनी स्थिति यह थी कि वे भूमि कर एकत्रित करने के अधिकारी तो थे लेकिन भूमि के स्वामी नहीं थे, परन्तु अब उनको भूमि का स्थायी रूप से स्वामी मान लिया गया।

(2) अब जमींदारों को नित्य प्रति दिए जाने वाले उत्तराधिकार के शुल्क से भी मुक्ति मिल गयी।

(3) जमींदारों से लिया जाने वाला कर भी निश्चित कर दिया गया, परन्तु उसकी रकम में वृद्धि की जा सकती थी। यह निश्चित किया गया कि 1793 ई. में किसी जमींदार को लगान से जो कुछ भी प्राप्त होता था, सरकार भविष्य में उसका 10/11 भाग लिया करेगी, शेष धन का अधिकारी जमींदार रहेगा।

स्थायी बन्दोबस्त के गुण (Merits of permanent settlement)—मार्शमैन के अनुसार, **"यह अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य था।"** इस प्रकार आर. सी. दत्त का कथन है, **"लॉर्ड कार्नवालिस**

द्वारा प्रतिपादित स्थायी भूमि-व्यवस्था अंग्रेजों द्वारा किए गए सभी कार्यों में सबसे बुद्धिमत्तापूर्ण एवं सफल कार्य था।"

स्थायी वन्दोबस्त में निम्नलिखित विशेषताएं थीं :

(1) जमींदारों के लिए विशेष लाभकारी—भूमि के इस स्थायी वन्दोवस्त का लाभ जमींदार वर्ग को मिला। उन्हें भूमि का स्वामित्व प्राप्त हो गया। समय के साथ-साथ भूमि से अधिक उत्पादन होने लगा जिससे जमींदार समृद्धशाली हो गए। सरकार जमींदारों से एक निश्चित राशि ही लेती थी जवकि आय में दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो रही थी। उन्हें उत्तराधिकार शुल्क तथा अनेक अन्य अनुचित करों से भी मुक्ति मिल गयी थी।

(2) सरकार की आय का निश्चित होना—1793 ई. से पूर्व भू-राजस्व से प्राप्त होने वाली आय निश्चित नहीं थी। वोली से प्राप्त होने वाले धन की राशि घटती-वढ़ती रहती थी। स्थायी बन्दोवस्त से भूमिकर की रकम निश्चित कर दी गयी। परिणामस्वरूप सरकार की आय भी निश्चित हो गयी तथा अव सरकार सरलता से वजट वना सकती थी।

(3) प्रशासन की कुशलता में वृद्धि—सरकार को अपना अधिकांश समय भू-राजस्व को एकत्रित करने तथा उससे सम्वन्धित समस्याओं की ओर लगाना पड़ता था। अनेक योग्य अधिकारी इसी विभाग की समस्याओं का समाधान करने में लगे रहते थे, परिणामस्वरूप उनके पास अन्य कार्यों के लिए समय नहीं वचता था किन्तु स्थायी वन्दोवस्त के फलस्वरूप सरकार को राजस्व-सम्वन्धी समस्याओं से मुक्ति मिल गयी। अव सरकार अन्य प्रशासनिक कार्यों की ओर ध्यान दे सकती थी।

(4) उत्पादन तथा समृद्धि में वृद्धि—स्थायी व्यवस्था के फलस्वरूप भूमि की दशा में सुधार होने लगा तथा अधिक-से-अधिक अन्न का उत्पादन होने लगा। 1793 ई. से पूर्व जमींदार, भूमि के सुधार की ओर कोई ध्यान नहीं देते थे, किन्तु स्थायी बन्दोवस्त के परिणामस्वरूप जमींदार लोग भूमि के स्वामी वन गए और उन्होंने भूमि तथा उत्पादन की स्थिति को सुधारने का उचित प्रयास किया। वनों को साफ करने के अतिरिक्त वंजर भूमि को उपजाऊ वनाने का भी प्रयास किया गया।

(5) बार-बार भूमिकर निश्चित करने के झंझट से मुक्ति—इस व्यवस्था से सरकार और जमींदार दोनों को ही प्रतिवर्ष भूमिकर निश्चित करने वाली कठिनाइयों से मुक्ति मिल गयी। स्थायी बन्दोवस्त के फलस्वरूप जमींदारों को नित्य प्रति होने वाली लगान-सम्वन्धी कठिनाइयों से मुक्ति मिल गयी। इसी प्रकार सरकार को भी जमीन की वार्षिक व्यवस्था करने पर विशाल धनराशि व्यय करने के अतिरिक्त अनेक झंझटों से मुक्ति मिल गयी।

(6) ब्रिटिश सरकार को स्थिरता प्राप्त होना—स्थायी बन्दोवस्त के कारण बंगाल में ब्रिटिश सरकार का आधार सुदृढ़ हो गया। अंग्रेजों ने जमींदारों को भूमि का स्वामी वना दिया था। इसी कारण जमींदार सरकार के प्रवल समर्थक वनं गए और 1857 ई. की क्रान्ति के समय भी अंग्रेजों के ही भक्त वने रहे।

डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, **"राजनीतिक दृष्टि से भी यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण था। जमींदार लोग ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा तथा सरकार बने रहने में रुचि लेने लगे। विद्रोह के समय भी उनकी वफादारी दृढ़ ही रही। इस दृष्टिकोण से यह व्यवस्था अत्यन्त सफल रही।"**

स्थायी बन्दोबस्त के दोष (Demerits of permanent settlement)—इसके दोष अग्र प्रकार हैं :

(1) आरम्भ में जमींदारों पर उल्टा प्रभाव—आरम्भ में अनेक जमींदार-वंश नष्ट हो गए, क्योंकि उन्होंने अपना समस्त धन भूमि को सुधारने में व्यय कर दिया, किन्तु उत्पादन में उस अनुपात में वृद्धि नहीं हुई। इस कारण वे अपनी रकम को जो उस समय के अनुसार बहुत अधिक थी, समय पर जमा न कर सके इसी कारण विक्री के नियम जो कि 'विनाशकारी नियम' के नाम से भी प्रसिद्ध है के अनुसार उनकी विक्री कर दी गयी।

(2) कृषकों के हितों की उपेक्षा—इस स्थायी वन्दोबस्त में कृपकों के अधिकारों तथा हितों का तनिक भी ध्यान नहीं रखा गया तथा उन्हें पूर्ण रूप से जमींदारों की दया पर छोड़ दिया गया। जमींदार उन पर अनेक प्रकार के अमानवीय अत्याचार करते थे और उन्होंने किसानों से अधिकाधिक धन बटोरना प्रारम्भ कर दिया।

(3) राज्य के भावी हितों की अवहेलना—स्थायी वन्दोवस्त के द्वारा राज्य के भावी हितों की भी उपेक्षा की गयी। समय के साथ-साथ भूमि से प्राप्त होने वाली आय में वृद्धि होने लगी, परन्तु राजकीय भाग निश्चित था, इसी कारण बढ़ी हुई आय से सरकार को एक पैसा भी नहीं मिल सका।

(4) खेती करने वालों पर करों का भारी बोझ—समय के साथ-साथ सरकार के व्यय में वृद्धि हो रही थी, परन्तु वह जमींदारों से एक पाई भी अधिक लेने में असमर्थ थी। इस कारण जमींदारों से होने वाले घाटे को सरकार अन्य व्यक्तियों पर भारी कर लगाकर पूरा करती थी। इस प्रकार जमींदारों के लाभ के लिए अनेक लोग करों के भार से दव गए जो पूर्णतया अन्याय था।

(5) अन्य प्रान्तों पर भार—समय व्यतीत होने पर वंगाल, सरकार के लिए एक घाटे का प्रान्त वन गया। वंगाल के कृषक वर्ग पर भी कर लगने से जव यह घाटा पूरा न हुआ तव सरकार ने वाध्य होकर अन्य प्रान्तों पर भी भारी कर लगाए।

निष्कर्ष (Conclusion)—उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्थायी भू-वन्दोबस्त गुण तथा दोषों का सम्मिश्रण था। इसमें केवल जमींदारों का ही कल्याण हुआ, परन्तु राज्य तथा कृषकों के हितों की अवहेलना हुई। सेटन कार के अनुसार, "**स्थायी व्यवस्था में तीन सम्बन्धित पार्टियों में से अर्थात् जमींदार, जनसाधारण तथा राज्य में से जमींदारों के हितों की आंशिक रक्षा हुई, कृषकों की रक्षा स्थगित कर दी गयी तथा राज्य के हितों को स्थायी रूप से स्थगित कर दिया गया।**"[1]

न्यायिक एवं कार्यकारिणी सेवाओं का पृथक्कीकरण

1757 ई. की प्लासी की लड़ाई और 1764 ई. की वक्सर की लड़ाई ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में महत्वपूर्ण घटनाएं थीं। इनके दूरगामी महत्व को स्वीकार करते हुए यह कहा जाने लगा कि कम्पनी ने जो क्षेत्र लड़ाइयों में जीते हैं उन पर ब्रिटिश प्रभुसत्ता स्थापित होगी, किन्तु मूल समस्या जीते हुए इलाकों में आन्तरिक प्रशासन से सम्बद्ध मामलों की थी। 1765 ई. में **क्लाइव ने जिस द्वैध-व्यवस्था को लागू किया उसमें फौजदारी, दीवानी व पुलिस प्रशासन नवाव के हाथों रहा किन्तु सच्ची सत्ता कम्पनी के पास थी।** इस व्यवस्था ने न्यायिक व कार्यकारिणी क्षेत्र में अनेक समस्याएं पैदा कर दीं, अतः हेस्टिंग्ज ने भारत आते ही (1772 ई. में) एक कुशल प्रशासनिक व्यवस्था की नींव डालने का प्रयत्न किया। उसके द्वारा किए गए कार्य को पश्चात् में कार्नवालिस ने पूर्ण किया।

---

1 **"The permanent settlement somewhat secured the interests of the Zamindars, postponed those of the tenants and permanently sacrificed those of the State."**

—Seton Carr

न्यायिक एवं कार्यकारिणी सेवाओं के पृथक्कीकरण की आवश्यकता की पृष्ठभूमि

वारेन हेस्टिंग्ज के भारत आगमन के समय बंगाल में न्याय व्यवस्था अत्यन्त अस्त-व्यस्त थी। 1772 ई. में बंगाल में न्याय व्यवस्था दो रूपों में चल रही थी। प्रथम तो मुगलकालीन पद्धति के अनुरूप थी जो कि 1765-72 ई. में द्वैध-शासन की अव्यवस्था के पश्चात् भी यथावत् जारी थी; द्वितीय, कलकत्ता में न्याय व्यवस्था के रूप में, इस व्यवस्था के अन्तर्गत कुछ के कार्य क्षेत्र का आधार इंगलैण्ड सरकार द्वारा दिए गए अधिकारों पर निर्भर था, जो कि अंग्रेजी नियमों के अनुकूल कार्य करते थे। किन्तु जमींदार ही न्यायाधीश थे। दीवानी और फौजदारी मुकदमों का निर्णय वही करते थे। सबसे बड़ी बुराई यही थी कि न्याय व्यवस्था धन पर आश्रित हो गयी थी। न्यायालय द्वारा लगाया गया जुर्माना जमींदार अपनी सम्पत्ति समझता था। न्यायाधीश न तो ईमानदार थे और न ही उनके कार्यक्षेत्र का विभाजन हुआ था।

वारेन हेस्टिंग्ज ने इस अव्यवस्था को दूर करने के उद्देश्य से न्यायिक व्यवस्था में परिवर्तन किए। पर्सिवल स्पीयर के अनुसार, **"यह ठीक है कि वारेन हेस्टिंग्ज ने मुगलकालीन न्याय व्यवस्था के अनुरूप ही न्याय व्यवस्था लागू करने का प्रयत्न किया, प्रशासन के सभी विभाग, पदाधिकारी, पदवियां आदि मुगल प्रशासनिक व्यवस्था के अनुरूप थे, किन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि उन पर मुगलों का नियन्त्रण न होकर कम्पनी का नियन्त्रण था।"**[1]

संक्षेप में, कहा जा सकता है कि वारेन हेस्टिंग्ज ने इस सन्दर्भ में तीन महत्वपूर्ण कार्य किए—प्रथम, दीवानी न्याय प्रशासन, द्वितीय, फौजदारी न्याय प्रशासन और तृतीय; कलकत्ता में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना। दीवानी अदालतों के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत धन, उत्तराधिकार, कर्ज, सूद, विवाह से सम्बन्धित मामले रखे गए। फौजदारी अदालतों के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत डकैती, चोरी, मारपीट, हत्या, आदि सम्बन्धी मामले रखे गए। प्रत्येक जिले में एक दीवानी और एक फौजदारी अदालत स्थापित की गई। दीवानी अदालत में मुख्य न्यायाधीश कलक्टर को बना दिया गया। कलक्टर की दीवानी अदालत 500 रुपए तक के मुकदमों का निर्णय कर सकती थी। इससे ऊपर सदर दीवानी अदालत थी जिसका अध्यक्ष सर्वोच्च परिषद् का प्रधान होता था। इसी प्रकार फौजदारी अदालत में कलक्टर को यह निरीक्षण करना पड़ता था कि साक्षी की गवाही ठीक से ली गई है या नहीं? और उस पर उचित विचार किया गया है या नहीं? मृत्युदण्ड देने की स्थिति में सदर निजामत अदालत से आदेश अनिवार्य रूप से लेना पड़ता था। **सदर निजामत अदालत के कार्य का निरीक्षण परिषद् तथा उसके सदस्य करते थे।** हेस्टिंग्ज ने कलकत्ता में सदर दीवानी तथा सदर फौजदारी अदालतें भी स्थापित की थीं। इन दोनों पर कम्पनी का पूर्ण नियन्त्रण था। 1773 ई. में कलकत्ता में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई। इसमें एक प्रमुख जज व तीन अन्य जज थे। इनकी नियुक्ति का अधिकार इंगलैण्ड के राजा को था। बंगाल, बिहार व उड़ीसा की अंग्रेजी प्रजा सर्वोच्च न्यायालय के अधीन थी। दीवानी सम्बन्धी मामलों में इसके निर्णय के विरुद्ध इंगलैण्ड के राजा के यहां अपील की जा सकती थी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वारेन हेस्टिंग्ज ने अव्यवस्थित न्याय व्यवस्था को एक ढांचा देने का प्रयत्न किया, किन्तु इन परिवर्तनों से न्याय पद्धति अंग्रेजी जिला प्रशासन का अंग बन गई थी और न्याय प्रशासन पर अब कम्पनी के अंग्रेज अधिकारियों का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया था। कम्पनी ने न्याय व्यवस्था के क्षेत्र में सर्वोच्चता स्थापित कर ली थी, सम्पूर्ण न्याय व्यवस्था

---

1 पर्सिवल स्पीयर, ए हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, खण्ड द्वितीय, पृ. 86.

में जिले के कलक्टर का प्रमुख स्थान था। जिले के कलक्टर न्याय देने व दण्ड निर्धारित करने का कार्य तो करते ही थे साथ ही उनके पास भूमि कर विभाग भी था। प्रश्न यह भी था कि यदि कलक्टर स्वयं अपराध करता तो उसके अपराध का निर्णय कौन करता ? न्यायाधीश होने के कारण अपने अपराध का निर्णय करने का भी उसे ही अधिकार था। इस स्थिति में जवकि न्यायाधीश स्वयं अपने अपराध का निर्णय करता तो लोगों का उस निर्णय पर विश्वास करना असम्भव होता, यही कारण था कि कार्नवालिस ने कार्नवालिस संहिता लागू कर कलक्टर को कर सम्वन्धी अधिकार दिए और उसकी न्यायिक व फौजदारी शक्तियां छीन लीं। यह ठीक है कि कार्नवालिस ने जिले की शक्ति कलक्टरों के हाथों में केन्द्रित की किन्तु कार्यकारिणी व न्यायाधिकारियों को भी एक-दूसरे से पृथक् कर दिया।

न्यायिक व कार्यकारिणी शक्तियों का पृथक्कीकरण की व्यवस्था (कार्नवालिस संहिता में न्याय-व्यवस्था)

कार्नवालिस ने अपने न्यायिक सुधारों को 1793 ई. में अन्तिम रूप देते हुए कार्नवालिस संहिता लागू करते हुए राजस्व एवं न्यायिक शक्तियों का पृथक्कीरण कर दिया। अब तक मजिस्ट्रेट एक जिला जज व पुलिस प्रशासक के सर्वोच्च अधिकारी के रूप में कार्य करते हुए कार्यपालिका व न्यायपालिका दोनों कार्य देखता था। **कार्नवालिस ने जिला दीवानी न्यायालयों में कार्य के लिए एक नए अधिकारियों की श्रेणी जिला न्यायाधीशों (District Judges) की गठित की।** इन्हीं को फौजदारी व पुलिस कार्य भी दे दिए गए। पुलिस प्रशासन को कारगर वनाने के लिए प्रत्येक जिले को कई पुलिस हल्कों या थानों में बांट दिया गया। प्रत्येक हल्का एक भारतीय दरोगा के अधीन कर दिया गया जो अपने इलाके में शान्ति बनाए रखने और अपराधों को रोकने या उनका पता लगाने के लिए उत्तरदायी था।

दीवानी अदालतों को एक कड़ी (Gradation) वनाया गया। कर तथा दीवानी मामलों का भेद समाप्त करते हुए दीवानी अदालतों को समस्त दीवानी मामलों की सुनवाई का अधिकार प्रदान कर दिया गया। मुंसिफ की अदालत 50 रुपए तक के मामले सुनने की हकदार हो गई। इसके ऊपर रजिस्ट्रार की अदालत में 200 रुपए तक के मामले सुने जाते थे। इन दोनों की अपीलें जिला अदालतों में होती थीं, जिला न्यायाधीशों की सहायता के लिए भारतीय विधिवेत्ता होते थे। जिला न्यायालय से ऊपर चार प्रान्तीय न्यायालयें थीं जो कि कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, ढाका व पटना में स्थापित की गईं। इनमें 1,000 रुपए तक के मामले सुने जाते थे। इससे ऊपर कलकत्ता की सदर दीवानी अदालत थी जिसके सदस्य गवर्नर जनरल व उसके पार्षद होते थे। 5,000 से ऊपर के मामले सपरिषद् सम्राट की अदालत सुनती थी।

कार्नवालिस संहिता की सबसे महत्वपूर्ण वात यह थी कि इसने सरकारी अधिकारियों को भी अपने सरकारी कार्य के लिए इन्हीं न्यायालयों के सम्मुख उत्तरदायी बना दिया। जिलों में रहने वाले यूरोपीय लोग भी इन्हीं दीवानी अदालतों के अधीन कर दिए गए, कलकत्ता से दूर रहने वाले यूरोपीय भी कलकत्ता में तभी रह सकते थे जबकि वे इन अदालतों की अधीनता स्वीकार कर लेते। **निःसन्देह कार्नवालिस ने ऐसा करके कानून की विशिष्टता (Sovereignty of Law) को स्थापित कर दिया।**

फौजदारी न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत जिला न्यायाधीश को अपराधियों अथवा व्यवस्था भंग करने वालों को बन्दी बनाने की आज्ञा देने का अधिकार प्रदान कर दिया गया। छोटे-छोटे मामलों में जिला न्यायाधीश स्वयं निर्णय ले लेते थे, किन्तु गम्भीर मामले सर्किट न्यायालयों

के सामने रखने होते थे। भ्रमण करने वाली प्रान्तीय दीवानी अदालतें ही यह कार्य देखती थीं। इसमें भारतीय काजी व मुफ्ती होते थे, इस अदालत को मृत्युदण्ड देने का अधिकार था किन्तु इसकी पुष्टि सदर निजामत अदालत से आवश्यक थी। क्षमादान करने का अधिकार केवल गवर्नर जनरल को ही था।

निष्कर्ष—इस प्रकार स्पष्ट है कि कार्नवालिस ने सम्राट की चिर प्रचलित व्यक्तिगत हुकूमत के स्थान पर देश में प्रथम वार लिखित कानूनों तथा विनियमों पर आधारित शासन पद्धति की आधारशिला रखी। ताराचन्द के अनुसार, **"बिना किसी भेदभाव के सभी पर समान रूप से लागू होने वाली दीवानी विधि संहिता की स्थापना एक ऐसी क्रान्तिकारी घटना थी जिसने लोगों के व्यक्तिगत और सामाजिक आचार-विचार को गम्भीर रूप से प्रभावित किया।"**[1] **संहिता में शक्ति वितरण, शक्ति पृथक्करण और नागरिक स्वतन्त्रता का पूर्ण ध्यान रखा गया।** पश्चिम के आधार पर भारत में न्यायालयों की स्थापना कर निष्पक्षता को आधार वनाया गया। राजस्व व न्याय व्यवस्था को अलग-अलग हाथों में डालकर कानून की सर्वोच्चता कायम की गई। फलस्वरूप शासक वर्ग के सदस्यों के अतिरिक्त सभी के लिए समान रूप से न्याय करने की प्रवृत्ति भारत में घर करने लगी।

वारेन हेस्टिंग्ज व कार्नवालिस की विदेश नीति

प्रथम आंग्ल-मैसूर युद्ध (First Anglo-Mysore War—1767-69)

कारण—हैदरअली तथा अंग्रेजों के वीच पहला युद्ध इतिहास में प्रथम आंग्ल-मैसूर के नाम से जाना जाता है। **इस युद्ध के निम्नलिखित कारण थे :**

(1) **दोनों ही अपने प्रभाव-क्षेत्र में वृद्धि करना चाहते थे।** वास्तव में, हैदरअली की वढ़ती हुई शक्ति अंग्रेजों के लिए वहुत वड़ा खतरा थी। अंग्रेज भली-भांति समझ गए थे कि यदि हैदरअली को नतमस्तक न किया गया तो वह शीघ्र ही दक्षिणी भारत में अपना प्रभाव स्थापित करने में सफल हो जाएगा। अतः वे तरह-तरह से हैदरअली को कुचलने की तरकीवें सोचने एवं करने लगे। इस स्थिति में हैदरअली के साथ अंग्रेजों का संघर्ष अनिवार्य हो गया।

(2) **हैदरअली के विरुद्ध अंग्रेजों द्वारा मराठों तथा हैदरावाद के निजाम के साथ सांठ-गांठ करना भी हैदरअली की आंखों में खटकता था।** इस सांठ-गांठ को यद्यपि वह तोड़ने में सफल हो गया था लेकिन अंग्रेजों के विरुद्ध उसके मन में शत्रुता वनी रही।

(3) अंग्रेजों एवं हैदरअली के पारस्परिक संघर्षों का एक अन्य कारण यह भी था कि **हैदरअली अंग्रेज़ों के प्रवल शत्रु फ्रांसीसियों की ओर अधिक आकर्षित था।** उसने अपनी सेना को प्रशिक्षित करने के लिए फ्रांसीसी अधिकारियों की नियुक्ति कर रखी थी। अतः अंग्रेजों के लिए यह असहनीय था।

घटनाएं (Events)—उपर्युक्त कारणों के फलस्वरूप 1769-70 ई. में हैदरअली तथा अंग्रेजों में प्रथम युद्ध लड़ा गया। प्रारम्भ में तो अंग्रेजों को थोड़ी-वहुत सफलता मिली किन्तु वाद में हैदरअली ने उनको चारों ओर से घेरना आरम्भ कर दिया। उसकी सेना वढ़ती हुई मद्रास तक पहुंच गयी। **अंग्रेज हताश हो गए और घवराकर हैदरअली के साथ 4 मई, 1769 ई. को एक सन्धि कर ली।** इस सन्धि के अनुसार दोनों ने एक-दूसरे के जीते हुए प्रदेशों को लौटा दिया। अंग्रेजों ने हर्जाने के रूप में हैदरअली को वहुत-सा धन दिया और किसी वाहरी

1 ताराचन्द, भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, पृ. 263.

शक्ति के आक्रमण हो जाने पर दोनों ने एक-दूसरे की सहायता करने का वचन दिया। इस प्रकार प्रथम अंग्रेज-मैसूर युद्ध का अन्त हो गया।

द्वितीय आंग्ल-मैसूर युद्ध (Second Anglo-Mysore War—1780-83)

युद्ध के कारण (Causes of the battle)—इस युद्ध के लिए **निम्नलिखित कारण उत्तरदायी थे :**

(1) 1769 ई. **की मद्रास सन्धि का अंग्रेजों द्वारा उल्लंघन**—हैदरअली तथा अंग्रेजों के बीच मैसूर युद्ध के उपरान्त 1769 ई. में एक सन्धि हुई थी जिसकी एक धारा के अनुसार अंग्रेजों ने वायदा किया था कि यदि हैदरअली पर कोई विदेशी शक्ति आक्रमण करेगी तो अंग्रेज उनकी सहायता करेंगे। लेकिन 1771 ई. में मराठों के आक्रमण के समय हैदरअली द्वारा अंग्रेजों ने सहायता मांगने पर भी उन्होंने सहायता नहीं दी। इस विश्वासघात के लिए हैदरअली ने अंग्रेजों को कभी माफ नहीं किया और वह संघर्ष करने के लिए तैयारियां करने लगा।

(2) हैदरअली तथा अंग्रेजों के स्वार्थों का टकराव—यद्यपि हैदरअली तथा अंग्रेजों के स्वार्थ भिन्न-भिन्न थे। परिणामस्वरूप इन दोनों में एक दिन संघर्ष होना अनिवार्य था। दोनों ही एक-दूसरे पर सन्देह करते थे। हैदरअली का प्रत्येक साहसिक कार्य अंग्रेजों के लिए चिन्ता का विषय होता था। इसी प्रकार अंग्रेजों की मराठों तथा हैदराबाद के निजाम से मित्रता हैदरअली को कटी आंख नहीं सुहाती थी।

(3) माही पर अंग्रेजी आधिपत्य—1775 ई. में अमरीका के स्वतन्त्रता संग्राम के आरम्भ होने पर हालैण्ड, स्पेन तथा फ्रांस ने अमरीकावासियों का समर्थन किया। फ्रांस सप्तवर्षीय युद्ध में अपनी पराजय का बदला इंगलैण्ड से लेना चाहता था। उसने इस अवसर का लाभ उठाकर भारत में अपने खोए हुए गौरव को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया। अंग्रेजों ने इसका विरोध कर भारत स्थित समस्त फ्रांसीसी बस्तियों पर अधिकार कर लिया। इन बस्तियों में माही नाम की भी एक वस्ती थी जो मैसूर राज्य में थी तथा हैदरअली को उससे बड़ा लाभ था। अतः हैदरअली ने अंग्रेजों से माही खाली करने को कहा, किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इससे हैदरअली का क्रोध और वढ़ गया तथा वह युद्ध के लिए तैयार हो गया।

(4) मद्रास सरकार की विवेकहीन कार्यवाहियां—मद्रास सरकार भ्रष्ट थी। इसने अपने वुद्धिहीन कार्यों से अंग्रेजों को एक ऐसे युद्ध में उलझा दिया जिसके लिए वे तैयार नहीं थे तथा इस समय वे मराठों से युद्ध में व्यस्त थे। मद्रास की सरकार ने सर्वप्रथम हैदराबाद के निजाम को उत्तरी सरकार का दिया जाने वाला खिराज (कर) देना बन्द कर दिया। इसके अतिरिक्त मद्रास सरकार ने हैदरअली की आज्ञा के विना उसके राज्य से अपनी सेनाएं गुजार कर निजाम के भाई बसालतजंग के प्रदेशों पर जवरदस्ती अधिकार कर लिया। परिणामस्वरूप निजाम तथा हैदरअली दोनों ही अंग्रेजों से क्रुद्ध हो गए।

(5) त्रिगुट संघ की स्थापना—हैदरावाद का निजाम तथा हैदरअली दोनों ही अंग्रेजों से रुष्ट थे। इधर मराठे पहले ही अंग्रेजों से युद्ध कर रहे थे। इन परिस्थितियों से प्रभावित होकर तीनों ही भारतीय शक्तियों ने 1779 ई. में आपस में सहयोग करके एक संघ बनाया।

घटनाएं (Events)

हैदरअली का कर्नाटक पर अधिकार—1780 ई. के मध्य में हैदरअली ने एक विशाल सेना तथा 100 तोपें लेकर कर्नाटक पर भीषण आक्रमण कर दिया, उसने चारों ओर लूटपाट

तथा तोड़-फोड़ मचायी। अतः अंग्रेज आतंकित होकर भागने लगे। अंग्रेज सेनापति कर्नल वैली तथा बक्सर विजेता मेजर मुनरो को भी बुरी तरह पराजित होना पड़ा। मेजर मुनरो मद्रास भाग गया। हैदरअली ने आगे बढ़कर अर्काट पर अधिकार कर लिया तथा देखते-ही-देखते सम्पूर्ण कर्नाटक पर हैदरअली का अधिकार हो गया।

हेस्टिंग्ज का प्रभावशाली कार्य—वास्तव में, वारेन हेस्टिंग्ज ने ऐसी परिस्थितियों में भी हिम्मत नहीं छोड़ी। उसने सेनापति सर आयरकूट को दक्षिण में भेजा। इसके साथ-साथ उसने कूटनीति का भी सहारा लिया, उसने गुण्टूर को निजाम को वापस देकर उसका समर्थन प्राप्त कर लिया। इसके बाद महादजी सिन्धिया तथा बरार के शासक को अपनी कूटनीति से अपनी ओर मिला लिया। मद्रास के गवर्नर ह्वाइट हाल को पदच्युत कर दिया क्योंकि सम्पूर्ण विनाश का उत्तरदायित्व उसी पर था। लेकिन हैदरअली के साथियों द्वारा साथ छोड़ देने पर भी उसने साहस नहीं छोड़ा और युद्ध जारी रखा। जुलाई 1781 ई. से सितम्वर 1781 ई. इन तीन महीनों में उसे अनेक स्थानों पर पराजय का मुंह देखना पड़ा। परन्तु फरवरी 1782 ई. में उसने तन्जौर के समीप कर्नल ब्रैथवेट पर विजय प्राप्त करके अपने खोए हुए सम्मान को पुनः प्राप्त कर लिया।

फ्रांसीसियों का आगमन—1782 ई. का वर्ष आरम्भ होते-होते एडमिरल सफरन की अध्यक्षता में एक जंगी वेड़ा तथा डूचीमन के सेनापतित्व में लगभग 2,000 सैनिक हैदरअली की सहायता के लिए फ्रांस से भारत पहुंच गए। इस संयुक्त सेना ने अनेक स्थानों पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त सर आयरकूट के प्रयासों को असफल किया। सर आयरकूट ने हैदरअली के अड्डे अरनी तथा अंग्रेज सेनापति हम्वर स्टोन ने मालावार पर अधिकार करने का प्रयास किया परन्तु उन्हें नीचा देखना पड़ा।

हैदरअली की मृत्यु—अभी युद्ध समाप्त नहीं हुआ था कि **दिसम्बर 1782 ई. में हैदरअली की मृत्यु हो गयी।** उधर अप्रैल 1782 ई. में सर आयरकूट की भी मृत्यु हो गयी।

टीपू सुल्तान द्वारा युद्ध जारी रखना—टीपू वास्तव में योग्य पिता का योग्य पुत्र था। उसने पिता द्वारा जारी युद्ध को जारी रखा। उसने वम्बई की ओर से आगे बढ़ने वाले ब्रिगेडियर मैथ्यु पर विजय प्राप्त कर उसे बन्दी बना लिया। इस बीच यूरोप में इंगलैण्ड तथा फ्रांस में 1783 ई. की वार्साय सन्धि द्वारा शान्ति स्थापित हो गयी, अतः फ्रांसीसी सेना टीपू का साथ छोड़ युद्ध-क्षेत्र से अलग हो गयी। यह युद्ध कुछ समय तक जारी रहा। अन्त में दोनों ही पक्ष थक गए और मार्च 1783 ई. में दोनों पक्षों ने मंगलौर की सन्धि करके इस युद्ध को समाप्त किया।

मंगलौर की सन्धि—इस सन्धि के अनुसार निश्चित किया गया कि दोनों पक्ष एक-दूसरे के जीते हुए प्रदेश वापस कर दें और युद्धबन्दियों को लौटा दें। इस सन्धि ने अंग्रेजों की प्रतिष्ठा को मैसूर के प्रथम युद्ध की भांति ही भारी आघात पहुंचाया। वारेन हेस्टिंग्ज को इस सन्धि से सन्तुष्टि प्राप्त नहीं हुई। 1783 ई. की मंगलौर की सन्धि अस्थायी सिद्ध हुई। इसका कारण यह था कि दोनों ही पक्ष एक-दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखते थे और 6 साल के वाद ही दोनों पक्षों में पुनः युद्ध प्रारम्भ हो गया।

तृतीय आंग्ल-मैसूर युद्ध
(THIRD ANGLO-MYSORE WAR—1790-92)

कारण—यह युद्ध अंग्रेजों तथा मैसूर के शासक टीपू सुल्तान के मध्य लड़ा गया। इस युद्ध के कारण अग्रलिखित थे :

(1) **पारस्परिक सन्देह**—1783 ई. की मंगलौर सन्धि से अंग्रेजों तथा टीपू सुल्तान के बीच शान्ति स्थापित हो गयी थी परन्तु यह शान्ति अस्थायी थी। यथार्थ में टीपू सुल्तान तथा अंग्रेजों को एक-दूसरे पर विश्वास नहीं था, अतः दोनों गुप्त रूप से एक-दूसरे के विरुद्ध युद्ध की तैयारी करते रहे। अतः ऐसी स्थिति में दोनों में युद्ध होना अनिवार्य था।

(2) **टीपू सुल्तान का फ्रांसीसियों से गठबन्धन**—यूरोप में 1789 ई. में फ्रांस की राज्य-क्रान्ति प्रारम्भ होने के कारण इंगलैण्ड को आशंका थी कि उसका किसी समय फ्रांस से संघर्ष आरम्भ हो सकता है। टीपू अंग्रेजों पर दबाव डालने के उद्देश्य से इस स्थिति का लाभ उठाना चाहता था। उसने फ्रांस से सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से 1787 ई. में अपने राजदूत भी फ्रांस भेजे। इससे टीपू को कोई लाभ हुआ अथवा नहीं, परन्तु अंग्रेजों के हृदय में सन्देह अवश्य पैदा हो गया।

(3) **लॉर्ड कार्नवालिस का टीपू को अकेला करने का प्रयास**—टीपू को फ्रांसीसियों से गठबन्धन करने के प्रयासों को देखकर लॉर्ड कार्नवालिस ने उसे भी अन्य राजनीतिक शक्तियों से अलग करके अकेला करने का प्रयास किया। उसने मराठों और हैदराबाद के निजाम को लालच देकर अपना समर्थक बना लिया। उसने इन दोनों से अलग-अलग सन्धियां भी कर लीं।

(4) **गुण्टूर का मामला**—गुण्टूर के मामले के कारण भी अंग्रेजों और टीपू के मतभेदों में और कटुता आ गयी। हैदराबाद के निजाम तथा टीपू सुल्तान दोनों के लिए वह समुद्र तट पहुंचने का एक साधन था। द्वितीय मैसूर युद्ध की समाप्ति के समय वारेन हेस्टिंग्ज ने हैदराबाद के निजाम को यह प्रदेश वापस कर दिया था, परन्तु लॉर्ड कार्नवालिस ने अब इस प्रदेश का महत्व समझकर हैदराबाद के निजाम से वापस ले लिया तथा निजाम को यह आश्वासन दिया कि टीपू सुल्तान ने निजाम के जिन प्रदेशों पर अधिकार कर लिया है, अंग्रेज उन्हें वापस दिलाने का प्रयत्न करेंगे।

(5) **टीपू सुल्तान द्वारा ट्रावनकोर के राजा पर आक्रमण**—टीपू समुद्र तट पर पहुंचना बहुत आवश्यक समझता था क्योंकि तभी वह फ्रांसीसियों की मदद प्राप्त कर सकता था। गुण्टूर हाथ से निकल गया था अतः समुद्र तक पहुंचने के विचार से उसने ट्रावनकोर के हिन्दू राजा पर आक्रमण कर दिया। ट्रावनकोर के हिन्दू शासक को अंग्रेजों की संरक्षता प्राप्त थी अतः अंग्रेजों ने उसकी सहायता की और इस प्रकार 1790 ई. में तृतीय मैसूर युद्ध आरम्भ हो गया जो 1792 ई. में समाप्त हुआ।

घटनाएं—इस युद्ध में हैदराबाद का निजाम तथा मराठे अपने स्वार्थों को लेकर अंग्रेजों की तरफ थे। आरम्भ में अंग्रेजों को कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। एक वर्ष तक प्रयास करने के बाद भी अंग्रेज सेनापति भीडोज कुछ न कर सका। ऐसी स्थिति में कार्नवालिस बहुत चिन्तित हो उठा। वह क्रोध से चिल्लाया—**"हमने समय खो दिया तथा हमारे प्रतिद्वन्द्वी ने अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि कर ली, ये दोनों ही बातें युद्ध में अत्यन्त महत्व की होती हैं।"**

टीपू कुशलता से लड़ा। विवश होकर अगले वर्ष कार्नवालिस ने स्वयं सेना का संचालन किया। कार्नवालिस 1791 ई. में बंगलौर पर अधिकार करने के बाद टीपू की राजधानी श्रंगापट्नम के नजदीक पहुंच गया। इसी बीच वर्षा ऋतु आरम्भ हो गयी तथा अंग्रेजों की रसद समाप्त हो गयी, अतः गवर्नर जनरल को कुछ समय के लिए युद्ध स्थगित कर पीछे हटना पड़ा। बरसात के पश्चात् दिसम्बर में युद्ध पुनः आरम्भ हो गया। टीपू ने आगे बढ़कर कोयम्बटूर पर अधिकार कर लिया परन्तु शीघ्र ही टीपू पराजित होने लगा। धीरे-धीरे उसके

सभी दुर्गों पर अंग्रेजों का अधिकार होने लगा और अन्त में उसकी राजधानी श्रंगापट्नम को भी घेर लिया। मार्च 1792 ई. में टीपू ने विवश होकर अंग्रेजों से सन्धि कर ली।

युद्ध की समाप्ति और श्रंगापट्नम की सन्धि, 1792 ई.

तृतीय मैसूर युद्ध की समाप्ति मार्च 1792 ई. की श्रंगापट्नम की सन्धि के साथ हुई। **इस सन्धि की शर्तें निम्न प्रकार थीं :**

(1) टीपू को लगभग अपने आधे राज्य से वंचित होना पड़ा। इस राज्य को मराठों, निजाम और अंग्रेजों ने आपस में बांट लिया। अंग्रेजों को पश्चिम में मालाबार, दक्षिण में डिण्डीगाल तथा पूरब में बारामहल के प्रदेश मिले। इन भागों को प्राप्त करके अंग्रेजों ने मैसूर को तीन ओर से घेर लिया। कृष्णा नदी से मैनार तक के मैसूर के प्रदेश पर निजाम का अधिकार हो गया तथा मराठों को तुंगभद्रा नदी तक प्रदेश प्राप्त हुए।

(2) टीपू ने कुर्ग के राजा की स्वतन्त्रता को स्वीकार किया। कुर्ग के शासक ने बाद में अंग्रेजों की प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली।

(3) टीपू ने लगभग 30 लाख पौण्ड क्षतिपूर्ति के रूप में दिए।

(4) उसके दो पुत्रों को अंग्रेजों ने अपने पास बन्धक के रूप में रखा।

अनेक इतिहासकार कार्नवालिस की टीपू के प्रति अपनायी गयी नीति की आलोचना करते हैं। उनका कथन है कि यदि अंग्रेजों ने 1792 ई. में ही टीपू का पूर्ण विनाश कर दिया होता तो अंग्रेजों को कुछ समय उपरान्त चौथा मैसूर युद्ध न लड़ना पड़ता। लेकिन यह आलोचना तथ्यसंगत नहीं है क्योंकि कार्नवालिस को तत्कालीन परिस्थितियों ने सन्धि करने के लिए बाध्य कर दिया था क्योंकि एक ओर मराठों और निजाम पर अधिक समय तक विश्वास नहीं किया जा सकता था क्योंकि वे किसी भी समय अपना समर्थन बदल सकते थे। दूसरी ओर कम्पनी के संचालक भी प्रादेशिक उत्तरदायित्व बढ़ाने की नीति के समर्थक नहीं थे। इसके अतिरिक्त फ्रांस की क्रान्ति आरम्भ हो जाने से फ्रांस भी टीपू को सहायता दे सकता था। वास्तव में, यह सन्धि टीपू की दूरदर्शिता की परिचायक थी। उसका कथन नितान्त सत्य है, **"हमने अपने मित्रों को शक्तिशाली बनाए बिना अपने शत्रु को पूर्ण रूप से कुचल दिया है।"**

आंग्ल-मराठा सम्बन्ध
(THE ANGLO-MARATHA RELATIONS)

प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध (First Anglo-Maratha War)

कारण (Causes)—प्रथम मराठा युद्ध 1775 ई. से 1782 ई. तक अंग्रेजों तथा मराठों के बीच लड़ा गया था। इस युद्ध के प्रमुख कारण ये थे कि 1772 ई. में पेशवा माधवराव का देहान्त हो गया था, अतः उसका छोटा भाई नारायणराव उत्तराधिकारी बना। परन्तु उसके चाचा रघुनाथराव (राघोवा जी) ने अगस्त, 1773 ई. में उसका वध करवा दिया तथा स्वयं सिंहासनासीन हो गया, परन्तु नाना फड़नवीस आदि अनेक मराठा सरदारों ने राघोवा को पेशवा स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। अतः उन्होंने 12 सदस्यों की एक समिति **'बारह भाई सभा'** बनायी और शासन संचालन प्रारम्भ किया। अप्रैल, 1774 ई. में नारायणराव की विधवा पत्नी से एक पुत्र पैदा हुआ। अतः मराठों ने इस पुत्र को माधवराव द्वितीय के नाम से अपना पेशवा स्वीकार किया। राघोवा अपने प्रयासों को असफल देखकर बम्बई की ओर भाग गया वहां इसने कम्पनी सरकार से सहायता की याचना की। अतः अंग्रेजों तथा राघोवा के बीच मार्च, 1775 ई. में **'सूरत की सन्धि'** हो गयी। अतः इस सन्धि के अनुसार अंग्रेजों

ने राघोवा को पेशवा बनाने का आश्वासन दिया तथा राघोवा ने अंग्रेजों को सालसैट, बसीन आदि क्षेत्र देने का वचन दिया।

युद्ध की घटनाएं (Events of the War)

(1) **घरास का युद्ध**—राघोवा की सहायता के लिए बम्बई के गवर्नर ने कर्नल कीटिंग के सेनापतित्व में एक अंग्रेजी सेना पूना के विरुद्ध भेजी। राघोवा तथा अंग्रजों की सम्मिलित सेनाओं ने घरास नामक स्थान पर मराठों पर विजय प्राप्त की। दोनों ने आगे बढ़कर सालसैट पर अधिकार कर लिया।

(2) **पुरन्दर की सन्धि**—जब गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्ज को सूरत सन्धि का पता चला तो उसने इसे अस्वीकार कर दिया और बम्बई के गवर्नर से युद्ध रोकने के लिए कहा। दूसरी ओर, अपने प्रतिनिधि कर्नल अपटन को पूना दरबार में सन्धि के लिए भेजा। अतः दोनों पक्षों में एक सन्धि हो गयी, जो 'पुरन्दर की सन्धि' कहलायी। **इस सन्धि की शर्तें थीं :**

(i) सालसैट पर अंग्रेजों का ही अधिकार रहा।
(ii) अंग्रेजों ने राघोवा की सहायता न करने का वचन दिया।
(iii) पेशवा सरकार ने राघोवा को 25,000 रुपया मासिक वेतन देना स्वीकार किया।
(iv) **'बारह भाई सभा'** को पेशवा माधवराव द्वितीय की वैध संरक्षिका प्रतिनिधिमण्डल स्वीकार किया गया। पूना दरबार ने अंग्रेजी सेना के खर्च के बदले में 12 लाख रुपया देना भी स्वीकार किया।

लेकिन पुरन्दर की सन्धि को व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सका। इसका कारण था लन्दन स्थित कम्पनी के संचालकों द्वारा पुरन्दर सन्धि के स्थान पर सूरत सन्धि को अस्वीकृति देना।

(3) **वारगांव का सम्मेलन सन्धि**—अतः सूरत सन्धि स्वीकार किए जाने से युद्ध पुनः आरम्भ हो गया। पूना दरबार की मराठा सेना पूरी वीरता के साथ लड़ी। मराठों ने पूना से 20 मील दूरी तेली गांव नामक स्थान पर अंग्रेजों को बुरी तरह पराजित किया। अतः अंग्रेजों को सन्धि के लिए बाध्य होना पड़ा। **यह सन्धि 'वारगांव का सम्मेलन' के नाम से जानी जाती है।** इस सन्धि से यह निश्चित हुआ : (i) 1773 ई. के बाद मराठों के जिन प्रदेशों पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया है वे वापस मिल जाएंगे। (ii) बंगाल से आने वाली सेना को रोक दिया जाएगा। (iii) राघोवा तथा दो अंग्रेज अधिकारी मराठों के सुपुर्द कर दिए जाएंगे। (iv) मराठों को भड़ौंच से होने वाली आय का प्रतिशत दिया जाएगा।

(4) **हेस्टिंग्ज द्वारा वारगांव सम्मेलन अस्वीकार**—वास्तव में वारगांव सम्मेलन अंग्रेजों के लिए अपमानजनक था। अतः हेस्टिंग्ज ने उसे अस्वीकार कर दिया।

(5) **जनरल गोडार्ड का अभियान**—हेस्टिंग्ज ने तुरन्त जनरल गोडार्ड के नेतृत्व में एक सेना पूना पर आक्रमण हेतु भेज दी। यह सेना अपसिंचित मार्गों से होती हुई सूरत पहुंच गयी। 1780 ई. में इस सेना ने अहमदनगर पर अधिकार करने के उपरान्त बसीन पर विजय प्राप्त कर ली। जनरल गोडार्ड को बड़ौदा के शासक गायकवाड़ का भी समर्थन प्राप्त था। अब गोडार्ड ने पूना की ओर प्रस्थान किया, लेकिन इसी बीच मराठा (नाना फड़नवीस), निजाम तथा हैदरअली तीनों ने मिलकर युद्ध किया और अप्रैल 1781 ई. में अंग्रेजों को बुरी तरह पराजित कर दिया।

(6) **कैप्टन पोपहम की ग्वालियर विजय**—इस पराजय के बाद कैप्टन पोपहम के नेतृत्व में एक सेना कलकत्ता से भेजी गयी। इस सेना ने शीघ्र ही ग्वालियर पर अधिकार कर लिया।

महादजी सिन्धिया की राजधानी ग्वालियर पर अधिकार करना अंग्रेजों की महान् सफलता थी। विवश होकर सिन्धिया ने अंग्रेजों से सन्धि कर ली।

सालाबाई की सन्धि
(TREATY OF SALABAI IN 1782)

17 मई, 1782 को ग्वालियर के समीप सालाबाई नामक स्थान पर मराठों और अंग्रेजों के बीच सालाबाई की सन्धि हुई। इस सन्धि की प्रमुख धाराएं निम्नलिखित थीं :

(1) माधवराव द्वितीय को मराठों का वैध पेशवा स्वीकार किया गया।

(2) राघोवा को तीन लाख रुपया पेंशन (वार्षिक) देना निश्चय करके अलग कर दिया गया।

(3) फतेसिंह गायकवाड़ को बड़ौदा का स्वतन्त्र शासक स्वीकार करके उसके सभी प्रदेश उसे दे दिए गए।

(4) सालसैट पर अंग्रेजों का अधिकार स्वीकार किया गया। अंग्रेजों द्वारा मराठों के विजित प्रदेश उन्हें वापस कर दिए। इस प्रकार सिन्धिया को यमुना के पश्चिम के प्रदेश प्राप्त हुए।

सन्धि का महत्व
(SIGNIFICANCE OF THE TREATY)

भारतीय इतिहास में सालाबाई की सन्धि का विशेष महत्व है। अनेक अंग्रेज विचारक इस सन्धि को अंग्रेजों की महान् सफलता बताते हैं। डॉ. वी. ए. स्मिथ के अनुसार, **"सालाबाई की सन्धि भारतीय इतिहास की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है क्योंकि इसके द्वारा आगामी बीस वर्षों तक के लिए शक्तिशाली मराठों के साथ शान्ति स्थापित हो गयी तथा यद्यपि कम्पनी को भारत में प्रभुतासम्पन्न सत्ता तो नहीं बनाया परन्तु उसने इसे एक नियन्त्रण शक्ति अवश्य बना दिया।"**

लेकिन अनेक भारतीय इतिहासकार इस मत से सहमत नहीं हैं वे इसे भारत में सर्वोच्च सत्ता बनाने की दिशा में इतना महत्वपूर्ण नहीं मानते। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, **"इस सन्धि को भारतीय राजनीति में अंग्रेजों को एक महत्वपूर्ण नियन्त्रण शक्ति के रूप में स्थापित करने वाला मानना ऐतिहासिक तथ्यों की अपेक्षा कल्पना पर ही अधिक आधारित है।"**

निःसन्देह इस सन्धि ने कम्पनी को भारत में सर्वोच्च सत्ता बनाने में कोई विशेष योगदान नहीं दिया परन्तु फिर भी यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि यह सन्धि अंग्रेजों के लिए बहुत ही लाभकारी थी।

महादजी सिन्धिया (1727-1794)
(MAHADJI SINDHIA)

महादजी का जन्म 1727 ई. में सिन्धिया परिवार में हुआ था। सिन्धिया वंश का संस्थापक रानोजी था, जिसे पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने जागीर प्रदान कर सम्मानित किया था। रानोजी सिन्धिया के परिवार के लगभग सभी पुरुष पानीपत के तृतीय युद्ध में अहमदशाह अब्दाली का सामना करने में वीरगति को प्राप्त हो गए थे, केवल महादजी ही किसी प्रकार अपने प्राण बचाने में सफल हुआ था। इसी युद्ध में परिणामस्वरूप उसका एक पांव सदैव के लिए खराब हो गया था।

महादजी का व्यक्तिगत जीवन पवित्र था। वह धर्म एवं जाति की राजनीति में कभी नहीं उलझा। हिन्दू तथा मुसलमान एक समान उसका आदर करते थे। महादजी ने सभी जातियों व धर्मों के लोगों को अपने राज्य में नियुक्त किया। **महादजी हमेशा पेशवा परिवार के प्रति स्वामिभक्त रहा, किन्तु दुर्भाग्यवश नाना फड़नवीस उससे ईर्ष्या करते थे तथा इसी कारण उसे सदैव पूना से दूर ही रखते थे।** यदि नाना फड़नवीस ने महादजी की प्रारम्भ से ही सहायता की होती तो जो सफलता एवं शक्ति महादजी ने मराठों के लिए 1789 ई. में अर्जित की, उसमें वह बहुत पहले सफल हो गया होता। जिसने सम्भवतः मराठा इतिहास की दिशा ही बदल दी होती।

महादजी का जीवन एक लम्बा परिश्रमपूर्ण कठोर जीवन था। **उसके जीवन को चार भागों में बांटा जा सकता है :** प्रथम भाग में 1761 ई. तक वह अपने भाइयों की छत्र-छाया में रहा। द्वितीय भाग में उसने नाना फड़नवीस के साथ मिलकर प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध में अंग्रेजों के विरुद्ध सफलता प्राप्त की। तीसरी भाग में उसने युद्ध और नीति में अनुभव प्राप्त किया। चौथे भाग में उसने एक राज्य का निर्माण किया जिसे वह अपने वंशजों के लिए छोड़ गया।[1]

महादजी एवं मुगल सम्राट—मुगल सम्राट शाहआलम से महादजी के मधुर सम्बन्ध थे, क्योंकि सालबाई की सन्धि के द्वारा अंग्रेजों ने मुगलों के मामले में हस्तक्षेप न करने का आश्वासन दिया था। मुगल सम्राट ने 1784 ई. में महादजी को **'वकील ए मुतलक'** कीउपाधि प्रदान की तथा मुगल-प्रशासन के समस्त अधिकार भी उसे सौंप दिए। महादजी ने मुगलों के शत्रुओं का विनाश किया, किन्तु इससे उसे अत्यधिक आर्थिक हानि उठानी पड़ी।

ग्वालियर एवं गोहद पर अधिकार—महादजी ने 27 जुलाई, 1783 ई. को ग्वालियर पर आक्रमण किया व उस पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त की। तत्पश्चात् 26 फरवरी, 1784 ई. के उसने गोहद का आक्रमण करके उस पर भी अधिकार कर लिया।

राजपूतों से युद्ध—जयपुर के शासक सवाई जयसिंह की 1743 ई. में मृत्यु हो जाने पर उसके पुत्रों में संघर्ष हुआ। मराठों ने माधोसिंह की सहायता की तथा राजा बनने के पश्चात् उसने मराठों को चौथ देने का आश्वासन दिया, किन्तु 1786 ई. तक उसने ऐसा नहीं किया। अतः महादजी ने माधोसिंह को चेतावनी दी, किन्तु उसने फिर भी चौथ नहीं दी। अतः महादजी ने माधोसिंह पर आक्रमण किया, दोनों के मध्य 28 जुलाई, 1787 ई. को *'लाल सोट का युद्ध'* हुआ, किन्तु यह युद्ध अनिर्णीत ही समाप्त हो गया।

महादजी ने अपनी स्थिति में सुधार करने के पश्चात् पुनः माधोसिंह पर आक्रमण किया। यह युद्ध 20 जून, 1790 ई. को पाटन नामक स्थान पर हुआ। इस युद्ध में माधोसिंह का साथ जोधपुर के शासक ने दिया। दोनों सेनाओं के मध्य हुए घमासान युद्ध में, अन्ततः महादजी की विजय हुई। **तत्पश्चात् महादजी ने जोधपुर के शासक विजयसिंह को सबक सिखाने के लिए जोधपुर की ओर प्रस्थान किया।** दोनों सेनाओं के मध्य मेड़ता नामक स्थान पर 10 सितम्बर, 1790 को युद्ध हुआ। जिसमें विजयसिंह परास्त हुआ। इस युद्ध से महादजी को अत्यधिक लाभ हुआ। उसे न केवल सांभर व अजमेर प्राप्त हुए वरन् विजयसिंह से उसने 60 लाख रुपए भी वसूल किए।

इस प्रकार महादजी उत्तर भारत में अपना प्रभाव स्थापित करने में सफल रहा। 1792 ई. में वह पूना गया जहां वह नाना फड़नवीस से अपने सम्बन्ध सुधारना चाहता था, किन्तु

1 महाजन, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 144.

अपने उद्देश्य में वह सफल न हो सका 1793 ई. में वह बीमार हो गया व 12 फरवरी, 1794 ई. में उसकी पूना में ही मृत्यु हो गई।

उसकी मृत्यु पर मालेसन ने लिखा, "महादजी सिन्धिया की मृत्यु से मराठों का सबसे योग्य योद्धा, अत्यन्त दूरदर्शी शासक खो गया। जीवन में उसके दो मुख्य उद्देश्य थे, प्रथम तो एक राज्य स्थापित करना और दूसरा अंग्रेजों से एक साम्राज्य स्थापित करने में होड़ लगाना इन दोनों में ही उसे किसी हद तक सफलता प्राप्त हुई। उसके द्वारा स्थापित राज्य आज भी वर्तमान है और लेक और वेलेजली ने आठ वर्ष बाद इसकी बनाई सेना का जो संहार किया उसका मुख्य कारण महादजी की छत्रछाया उठ जाना था। काश, वह थोड़े दिन और जीता तो उसने टीपू की घुड़सवार सेना और उसके फ्रांसीसी सिपाही, निजाम का शक्तिशाली तोपखाना, राजपूतों की सारी शक्ति, और पूना, इन्दौर, बड़ौदा और नागपुर से मराठों के प्रभाव क्षेत्र के सारे हथियार उठाने वाले सिपाहियों को एक ध्वज के नीचे एकत्रित कर दिया होता। यद्यपि शक्ति का पूर्व निर्णय नहीं हो पाता, किन्तु फिर भी संयुक्त भारतवर्ष और अंग्रेजों के बीच मुख्य समस्या का निर्णय तो हो ही जाता। अस्तु जो भी हो मृत्यु ने इसका निर्णय कर दिया और उसके बाद जो भाग्यहीन निर्णय होना था, केवल थोड़े समय की बात रह गई।"

यदुनाथ सरकार के मतानुसार, "महादजी सिन्धिया एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व के रूप में उत्तरी भारतवर्ष के इतिहास में एक भीमकाय व्यक्ति की तरह छाया रहा। उसके साधन त्रुटिपूर्ण थे, उसके साथियों और प्रतिनिधियों ने उससे बहुधा धोखा किया और उसे अनेक चिन्ताजनक जटिल समस्याओं से निपटना पड़ा। जेम्स अण्डरसन और विलियम पामर जैसे रैजीडैन्टों ने उसके पतन के विषय में भविष्यवाणी की थी, किन्तु अन्त में उसने सब पर विजय पाई। आधुनिक राष्ट्रवादी भले ही इसे भ्रम कहे, किन्तु धर्म उसके जीवन का प्राण था। हम इस शक्तिशाली अत्यन्त व्यस्त व्यक्ति में, जबकि यह सांसारिक रूप से प्रतिष्ठा के शिखर पर था, प्रगाढ़ पारिवारिक प्रेम, स्वाभाविक नम्रता तथा आदरणीय व्यक्तियों के प्रति आदर और सम्मान पाते हैं।"

नाना फड़नवीस (1742-1800 ई.)
(NANA PHADNAVIS)

नाना फड़नवीस का जन्म 12 फरवरी, 1742 ई. को महाराष्ट्र के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उसका वास्तविक नाम बालाजी था। पेशवा माधव राव प्रथम ने नाना को **'फड़नवीस'**[1] नियुक्त किया था।

नाना का कद ऊंचा, शरीर दुबल पतला तथा रंग कुछ काला ही था। चेहरे पर गम्भीरता छाई रहती थी। हंसना या मुस्कराना तो शायद उनके स्वभाव के प्रतिकूल ही था। उनकी आंखें पैनी तथा सदा चारों ओर घूमती रहती थीं। उनके सामने आते ही उनके प्रति लोगों में आदर उत्पन्न होता था, साथ ही आतंक भी छा जाता था।

निर्बल होने के कारण वे अधिक शारीरिक श्रम नहीं कर सकते थे। उसके नाजुक मिजाज के सम्बन्ध में महाराष्ट्र में एक लोक-वार्ता प्रसिद्ध है। कहते हैं कि नाना जिस हाथी पर सवार होते थे, उसके पैरों के नीचे अगर संयोगवश इलायची आ जाती तो ऊपर नाना को छींक आ जाती और अगर पैरों के नीचे लौंग आ जाती तो नाना के सिर में दर्द शुरू हो जाता।

1 पेशवा के आय-व्यय का हिसाब रखने वाला।

इस आख्यायिका में अतिशयोक्ति तो है ही, पर इसमें नाना के स्वास्थ्य की नजाकत पर प्रकाश पड़ता है। इसी कारण उन्हें युद्धों में नहीं भेजा जाता था।

नाना का रहन-सहन अत्यन्त सादा था। वे तड़क-भड़क पसन्द नहीं करते थे। सादी वेशभूषा, सादा भोजन तथा सीमित आवश्यकताएं ही उनके जीवन का आधार थीं। वे प्रत्येक कार्य को नियमपूर्वक और निश्चित समय पर करते थे। **साधारण से साधारण कार्य को भी वे उसी सावधानी से करते थे जिससे वे राज्य के महत्वपूर्ण कार्य किया करते थे।**

वे प्रतिदिन सूर्योदय के एक घण्टा पूर्व उठते थे। प्रातःकालीन कर्तव्यों के उपरान्त वे स्नान कर दो घण्टे तक पूजा किया करते थे। इसके बाद वे विद्वान लोगों, शास्त्री और पण्डितों से मिलते थे। वे इनका बड़ा आदर करते थे तथा धन, वस्त्र, आदि देकर उनका सत्कार करते थे। इसके बाद वे पालकी में बैठकर देव-दर्शन के लिए अपने बेलवाग के मन्दिर जाते थे। फिर नगर के सम्वाददाता तथा गुप्तचर उनके सामने उपस्थित होकर नगर की प्रमुख घटनाओं की जानकारी देते थे। इसी समय नाना बाजार के दैनिक भावों की सूचना प्राप्त करते थे। अगर किसी वस्तु के भाव में अधिक घटा-बढ़ी होती तो उसके कारणों पर भी विचार होता था। **बाजार-भाव की ओर उनका विशेष ध्यान रहता था।**

दोपहर को बारह बजे वे भोजन करते थे। तदुपरान्त थोड़ा विश्राम कर वे राज्य के कार्यों को करते थे। सूर्यास्त के पूर्व वे कार्यालय से बाहर निकलते। थोड़ा विश्राम करने के बाद देव-दर्शन करने मन्दिर जाते थे। अगर दरबार हो तो उसमें उपस्थित होते थे। **सायंकाल में वे अपने विश्वस्त कर्मचारियों से मिलते थे।** उनसे वार्तालाप कर विभिन्न घटनाओं तथा परिस्थितियों की नवीन जानकारी प्राप्त करते थे। फिर सायं-संध्या कर वे स्तोत्र पाठ करते थे। भोजनोपरान्त मध्यरात्रि तक वे देश के विभिन्न भागों से आए हुए गुप्तचरों से मिलते या उनके द्वारा भेजे हुए संवादों को पढ़ते।[1]

राजनीतिक विरोधियों के प्रति नाना का व्यवहार अत्यन्त कठोरता का रहता था। अपने विरोधियों को कुचल डालना ही वे सर्वोत्तम नीति मानते थे। ऐसे भी कई अवसर आए जब नाना अगर उदारता, क्षमाशीलता और दया का व्यवहार करते तो वे अपने विरोधियों को अपने सहायक बना सकते थे। पर राजनीतिक उदारता को वे निर्बलता समझते थे। यह सत्य है कि उन्होंने अपने किसी राजनीतिक विरोधी को कभी मृत्यु-दण्ड नहीं दिया और न किसी की हत्या करने का षड्यन्त्र ही रचा। उन्होंने अपने विरोधियों को लम्बी अवधि तक बन्दीवास में ही रखा। अगर कभी इनमें से किसी को स्वतन्त्र भी किया तो वह भी उन्होंने अपने किसी राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही किया। बन्दी अवस्था में नाना ने अपने विरोधियों के साथ जो कठोरता का व्यवहार किया वह किसी भी दृष्टि से समर्थन योग्य नहीं है। इसी कारण उनके अनेक विरोधियों की कारावास में ही मृत्यु हो गई थी।[2]

नाना फड़नवीस के व्यक्तित्व की तुलना एक वटवृक्ष से की जा सकती है जिसकी सुदृढ़ता किसी भी प्रबल झंझावात को चुनौती देने की क्षमता रखती है तथा जिसकी विशाल और सघन छाया में लोग विश्रान्ति, शान्ति और सुख प्राप्त कर सकते हैं, पर जो अपने आस-पास किसी भी अन्य वृक्ष को पनपने नहीं देता। नाना का चरित्र भी ठीक इसी प्रकार का था। उन्होंने अपने जीवन-काल में अनेक प्रबल बबंडरों का दृढ़ता तथा आत्म-विश्वास के साथ सामना किया। उनके उथल-पुथलमय तथा तूफानी जीवन में कभी कोई परिस्थिति ऐसी

1 हर्डीकर, नाना फड़नवीस, पृ. 319.
2 हर्डीकर, नाना फड़नवीस, पृ. 318.

उत्पन्न नहीं हुई जिसने उन्हें हताश कर दिया हो अथवा जिसने उनके आत्म-विश्वास को निर्वल और असहाय वना दिया हो।[1]

नाना के समय में भारतीय समाज मनसवदारी या सामन्तशाही व्यवस्था से गुजर रहा था। **व्यक्तिगत स्वार्थ वंश-परम्परागत बन चुके थे।** राजाओं की गद्दियां तो वंश-परम्परागत थीं ही, पर साथ ही मन्त्रियों के पद भी वंश-परम्परागत वन चुके थे। इतना ही नहीं शासन के उच्चपद भी वंशीय अधिकारों की वस्तु हो गए थे। तात्पर्य यह है कि नाना जिस व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करते थे वह सामन्तशाही व्यवस्था प्रायः अपने अन्तिम रूप पर पहुंच चुकी थी। **नाना, किसी नवयुग के सन्देशवाहक के रूप में नहीं वरन् एक लड़खड़ाती हुई सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था के रक्षक के रूप में ही इतिहास के रंगमंच पर प्रकट हुए थे।**

इस पृष्ठभूमि के होते हुए भी जव हम नाना के चरित्र पर दृष्टिपात करते हैं तो उनके चरित्र में कुछ प्रगतिशील तत्व भी हमारे सामने आए विना न रहेंगे। उस समय देश में राजनीतिक एकता की भावना विकसित नहीं हो पाई थी। **समस्त देश के एक राष्ट्र होने की कल्पना का पूर्ण रूप से उदय नहीं हो पाया था।** नाना के लिए महाराष्ट्र ही उनका देश तथा उनका राष्ट्र था। फिर भी उन्होंने अपने राजनीतिक दृष्टिकोण को व्यापक वनाया था तथा उन्होंने अंग्रेजों की शक्ति को इस देश से मिटा देने के लिए हैदरअली, निजाम, मुगल वादशाह तथा देश के अन्य अनेक स्वतन्त्र शासकों का एक संघ निर्माण करने का प्रयत्न किया था।[2]

पेशवा माधवराव प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई नारायण पेशवा बना जिसका उसके चाचा राघोवा द्वारा घोर विरोध किया गया। राघोवा ने नारायणराव की 1773 ई. में हत्या कर दी व स्वयं को पेशवा घोषित किया। इस समय नाना ने 'वारामाई समिति' की स्थापना की व शासन प्रवन्ध अपने हाथों में ले लिया तथा यह घोषणा की कि नारायणराव की गर्भवती पत्नी से उत्पन्न पुत्र को पेशवा वनाया जाएगा। अतः 1774 ई. में माधवराव द्वितीय के नाम से यह पुत्र पेशवा घोषित किया गया।

मैसूर से सम्बन्ध—नाना ने टीपू के विरुद्ध अंग्रेजों की सहायता की थी, अतः टीपू ने मराठों पर आक्रमण किया व अनेक स्थानों पर अधिकार कर लिया। नाना के द्वारा टीपू के विरुद्ध अंग्रेजों की सहायता करना नाना की एक भूल थी क्योंकि वाद में जव अंग्रेजों व मराठों के मध्य युद्ध हुए, तो टीपू ने उनकी सहायता नहीं की।

मराठा संघ

दुर्भाग्य से नाना का काल मराठा राज्य का पतन का काल था। इस समय तक पतन के लिए आवश्यक सभी परिस्थितियों का निर्माण हो चुका था। राज्य के आधार स्तम्भ मराठा सरदार और राजनीतिज्ञ सिद्धान्त और आदर्शहीन वन गए थे। राज्यहित की भावना की प्रखरता नष्ट हो चुकी थी तथा उसका स्थान व्यक्ति-हित और स्वार्थ की भावना ने ले लिया था। परिणामस्वरूप राज्य के जागीरदारों, सरदारों, अधिकारियों, आदि के स्वार्थ आपस में टकराने लगे थे तथा मराठा राज्य की एकता की भावना नष्ट हो चुकी थी। आपसी संघर्ष इतना तीव्रतम हो गया था कि राज्य की नींव ही डगमगाने लगी थी।

नाना की अधिकतर शक्ति तथा समय राज्य के स्वार्थी सरदारों और राजनीतिज्ञों में, राज्य-हित के लिए एकता वनाए रखने के प्रयत्न में ही खर्च होता था। राज्य के संकट-काल में इस आपसी एकता को वनाए रखने में नाना बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर लेते थे। अनेक

1 वही, पृ. 310.

2 वही, पृ. 311.

बार नाना अपनी चातुर्य से राज्य के इन संघर्षरत सरदारों तथा वीर योद्धाओं का उपयोग कर राज्य पर आए हुए भीतरी और बाहरी संकटों का निवारण करने में सफल हुए थे। राज्य को सुदृढ़, स्थाई और प्रगतिगामी बनाने में वे भले ही सफल न हुए हों पर वे उसे नष्ट होने से बचाने में अवश्य सफल हुए थे।[1]

नाना के समय तक मराठा साम्राज्य का प्रभाव क्षेत्र, दिल्ली से तुंगभद्रा नदी तक तथा बंगाल की सीमा से लेकर गुजरात तक विस्तृत हो चुका था। साथ ही देश के अन्य शासकों से सन्धियां हो चुकी थीं। इसके कारण लूट से धन प्राप्त करने का मार्ग बन्द सा हो गया था। अब तो केवल विभिन्न कर ही राज्य की आय का एक मात्र साधन रह गया था। **करों द्वारा इतना धन नहीं मिलता था कि जिससे शासन तथा आए दिन होने वाले युद्धों का खर्च उठाया जा सके। परिणामस्वरूप मराठा राज्य की आर्थिक स्थिति दिन-पर-दिन गम्भीर होती चली गई।**[2]

इसके विपरीत मराठा राज्य के प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी अंग्रेज सरकार की आय का साधन केवल कर ही नहीं था, वरन् उनका व्यापार भी इतना विशाल और लाभकारी था कि शासन तथा युद्धों का खर्च चलाकर भी कम्पनी सरकार को बहुत बचत होती थी। **अंग्रेजों की आर्थिक सुदृढ़ता तथा मराठा राज्य की आर्थिक निर्बलता भी मराठा राज्य के पतन का एक प्रमुख कारण था।''**[3]

नाना का मूल्यांकन

नाना पर आरोप लगाया जाता है कि उनमें घोर अधिकार-लिप्सा थी। **वे राज्य के शासन-सूत्रों को सदा अपने ही हाथों में रखना चाहते थे।** अगर कभी कोई व्यक्ति, फिर वह मराठा राज्य का चाहे जितना बड़ा हितैषी रहा हो तथा राज्य के प्रति उसकी सेवाएं कितनी ही महत्वपूर्ण क्यों न रही हों, उनके मार्ग में बाधा बन जाता तो वह नाना का कोपभाजन बने बिना नहीं रहता था।

इसमें सन्देह नहीं कि नाना में अधिकार-लिप्सा अत्यन्त प्रबल रूप में थी। अगर कोई उनकी सत्ता को चुनौती दे बैठता तो उसे कुचलने में नाना कुछ भी कर सकते। साथ ही उनकी राज्य-हित की भावना भी अत्यन्त बलवती थी। नाना के समय में मराठा राज्य चारों ओर से संकटों से घिरा था। नाना अनुभव करते थे कि इन संकटों से राज्य की नैया को पार लगाने की क्षमता केवल उन्हीं में है। उन्हें विश्वास था कि उनके हाथों से शासन-सूत्रों के जाते ही आन्तरिक संघर्ष तथा बाहरी आक्रमण इतने तीव्र हो जाएंगे कि उन्हें संभालना असम्भव हो जाएगा। वे यह भी अनुभव करते थे कि अंग्रेजों की आक्रामक नीति का सफलतापूर्वक प्रतिकार करने वाला अन्य कोई व्यक्ति मराठा राज्य में नहीं है। यह कौन कह सकता है कि नाना के इस आत्मविश्वास में यथार्थता न थी? नाना की योग्यता के सम्बन्ध में उस समय भी सर्वसाधारण लोगों की राय थी कि **''अत्यन्त योग्यता और निपुणता से एक साथ सब मोरचों पर अंग्रेजों को संभालने का काम नाना ही कर सकते थे।''** रामशास्त्री प्रभुणे ऐसे स्पष्ट और सत्यभाषी नाना को 'मन्त्र्युत्तम' कहकर उनको गौरवान्वित करते थे।

इसमें सन्देह नहीं कि नाना सदा सत्तारूढ़ बने रहने के जो प्रयत्न करते थे उसके पीछे अधिकार-लिप्सा होते हुए भी राज्य-हित की भावना भी उनमें प्रबल रूप से विद्यमान थी।[4]

1 हर्डीकर, नाना फड़नवीस, पृ. 312.
2 पूर्वोक्त, पृ. 315.
3 वही।
4 वही, पृ. 317.

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अनेक दोषों के होते हुए भी वह एक महान् राजनीतिज्ञ था, जिसका प्रभाव सम्पूर्ण मराठा राज्य पर छाया रहा।

मार्च, 1799 ई. में नाना फड़नवीस बीमार पड़ गया व अन्ततः 13 मार्च, 1800 ई. को उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु पर पामर ने कहा, **"मराठा शासन की सूझबूझ और विद्वत्ता नाना के साथ समाप्त हो गई।"** इसी प्रकार के विचार सर रिचर्ड टेम्पल ने भी व्यक्त किए। उनके शब्दों में, **"इस महान मन्त्री की मृत्यु से मराठा राज्य की ईमानदारी और निपुणता समाप्त हो गई।"**

प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. वारेन हेस्टिंग्ज के प्रशासनिक सुधारों का वर्णन कीजिए।
2. वारेन हेस्टिंग्ज के प्रशासनिक सुधारों का मूल्यांकन कीजिए।
3. वारेन हेस्टिंग्ज की विदेश नीति की विवेचना कीजिए।
4. कार्नवालिस के सुधारों पर प्रकाश डालिए।
5. कार्नवालिस की प्रशासनिक नीति का मूल्यांकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. वारेन हेस्टिंग्ज के राजस्व सम्बन्धी सुधारों पर प्रकाश डालिए।
2. वारेन हेस्टिंग्ज के न्यायिक सुधारों का मूल्यांकन कीजिए।
3. रेग्यूलेटिंग एक्ट की प्रमुख धाराएं बताइए।
4. कार्नवालिस कोड क्या था ?
5. कार्नवालिस के स्थाई वन्दोबस्त की प्रमुख विशेषताएं बताइए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'आमिल' कहते थे :
   (अ) राजस्व अधिकारी (ब) सैनिक
   (स) शिक्षक (द) न्यायाधीश
2. स्थाई वन्दोवस्त बंगाल में किसने लागू किया ?
   (अ) वारेन हेस्टिंग्ज (ब) कार्नवालिस (स) वेलेजली (द) बैंटिंक
3. 'अवध की बेगमों का मामला' किस गवर्नर-जनरल के काल में हुआ था ?
   (अ) वारेन हेस्टिंग्ज (ब) कार्नवालिस (स) वेलेजली (द) बैंटिंक
4. 'कार्नवालिस कोड' सम्बन्धित था :
   (अ) सैन्य-व्यवस्था (ब) राजस्व (स) न्याय (द) शिक्षा
5. प्रथम आंग्ल-मैसूर युद्ध किस वर्ष प्रारम्भ हुआ ?
   (अ) 1765 ई. (ब) 1767 ई. (स) 1769 ई. (द) 1772 ई.

[उत्तर—1. (अ), 2. (ब), 3. (अ), 4. (स), 5. (ब)।]

निम्नलिखित वाक्यों में सत्य/असत्य दर्शाइए :

1. बंगाल का प्रथम गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्ज था।
2. रेग्यूलेटिंग एक्ट 1773 ई. में वारेन हेस्टिंग्ज ने पारित किया।

निम्नलिखित वाक्यों में सत्य/असत्य दर्शाइए :

1. वंगाल का प्रथम गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्ज था।
2. रेग्यूलेटिंग एक्ट 1773 ई. में वारेन हेस्टिंग्ज ने पारित किया।
3. नवाव की मां तथा दादी को 'अवध की वेगम' कहा जाता था।
4. कार्नवालिस पर महाभियोग चलाया गया था।
5. वंगाल में स्थाई वन्दोवस्त वारेन हेस्टिंग्ज ने लागू किया था।

[उत्तर—1. सत्य, 2. सत्य, 3. सत्य, 4. असत्य, 5. असत्य।]

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :

1. राजा चेतसिंह .... का शासक था।
2. नन्दकुमार की मृत्यु को .... कहा जाता है।
3. स्थाई वन्दोवस्त .... में लागू किया गया था।
4. व्यापारिक परिषद की स्थापना कम्पनी का .... खरीदने के लिए किया गया था।
5. वारेन हेस्टिंग्ज ने .... को समाप्त कर दिया।

[उत्तर—1. वनारस, 2. कानूनी हत्या, 3. बंगाल, 4. माल, 5. दस्तक।]

5

वेलेजली तथा लॉर्ड हेस्टिंग्ज
[WELLESLEY AND LORD HASTINGS]

लॉर्ड वेलेजली (1798 ई.—1805 ई.)
(LORD WELLESLEY)

20 जून, 1760 ई. को काउण्टीमीथ (आयरलैण्ड) में लॉर्ड वेलेजली का जन्म हुआ। उसका पूरा नाम रिचर्ड कोले वेलेजली था। उसके पिता गैरट वेलेजली एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। लॉर्ड वेलेजली की प्रारम्भिक शिक्षा ट्रिम (मीथ), डैरो तथा ईटन के स्कूल में हुई, इसके बाद उसने क्राइस्टचर्च कॉलेज ऑक्सफोर्ड में दाखिला लिया। 1781 ई. में वह आयरलैण्ड का पीयर (Pear) बना और उसे लॉर्ड मानिंगटन की उपाधि प्राप्त हुई। 1784 ई. में वह इंगलैण्ड की लोकसभा का सदस्य वन गया। 1793 ई. में वह नियन्त्रण समिति (Board of Control) का सदस्य वना। 1798 ई. में 38 वर्ष की उम्र में लॉर्ड वेलेजली भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त होकर मई के महीने में भारत पहुंचा।

लॉर्ड वेलेजली के आगमन के समय राजनीतिक परिस्थितियां
(POLITICAL CONDITIONS OF INDIA AT THE TIME OF HIS ARRIVAL)

(1) **भारत की राजनीतिक स्थिति**—1798 ई. में भारत की राजनीतिक स्थिति अत्यन्त खराब थी। अभी तक भारतीय राज्यों का कोई संयुक्त मोर्चा नहीं बन पाया था। कुछ राज्यों की राजनीतिक परिस्थिति का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

(i) **दिल्ली**—शाहआलम द्वितीय दिल्ली का सम्राट था। इस समय तक मुगल वंश अपनी प्राचीन गरिमा एवं गौरव को खोकर पतन के कगार पर खड़ा था। साम्राज्य एवं शक्ति न होने के कारण मुगल सम्राट कभी अंग्रेजों की ओर मिल जाता था, कभी मराठों की ओर।

(ii) **मराठा**—खर्दा (अहमदनगर के निकट) की विजय के पश्चात् मराठों की शक्ति निरन्तर बढ़ती जा रही थी। मराठों के अधीन काफी विशाल साम्राज्य आ गया था। वे निरन्तर छोटे-छोटे राजपूत राज्यों पर आक्रमण करके उनसे चौथ एवं सरदेशमुखी वसूल करके उन्हें उनकी रक्षा का वचन दे रहे थे। इस समय अंग्रेजों के समक्ष सबसे शक्तिशाली मराठे ही थे। लेकिन मराठों में आन्तरिक एकता स्थापित न हो सकी तथा इस समय तक योग्य मराठा नेताओं का देहान्त हो चुका था जिससे मराठा शक्ति क्षीण होनी प्रारम्भ हो गयी थी।

(ii) **मैसूर राज्य**—मैसूर में इन दिनों टीपू सुल्तान का शासन था। तृतीय मैसूर युद्ध के बाद टीपू की शक्ति क्षीण हो गयी थी। यद्यपि वह अंग्रेजों का कट्टर विरोधी था और अंग्रेजों

से टक्कर लेने हेतु मारीशस, अरब, काबुल, आदि के पास अपने राजदूत भी भेजता रहा लेकिन इस समय तक उसमें अंग्रेजों का सामना करने की क्षमता नहीं रह गयी थी।

(iv) **निजाम**—खर्दा की पराजय के पश्चात् निजाम की शक्ति काफी छिन्न-भिन्न हो गयी थी। इस युद्ध में अंग्रेजों की मदद न मिलने से उसका अंग्रेज शासकों से विश्वास उठ गया। अतः अब वह अंग्रेजों के स्थान पर फ्रांसीसियों की ओर झुक गया था और फ्रांसीसियों की मदद से अपनी सेना का पुनः निर्माण करने लगा।
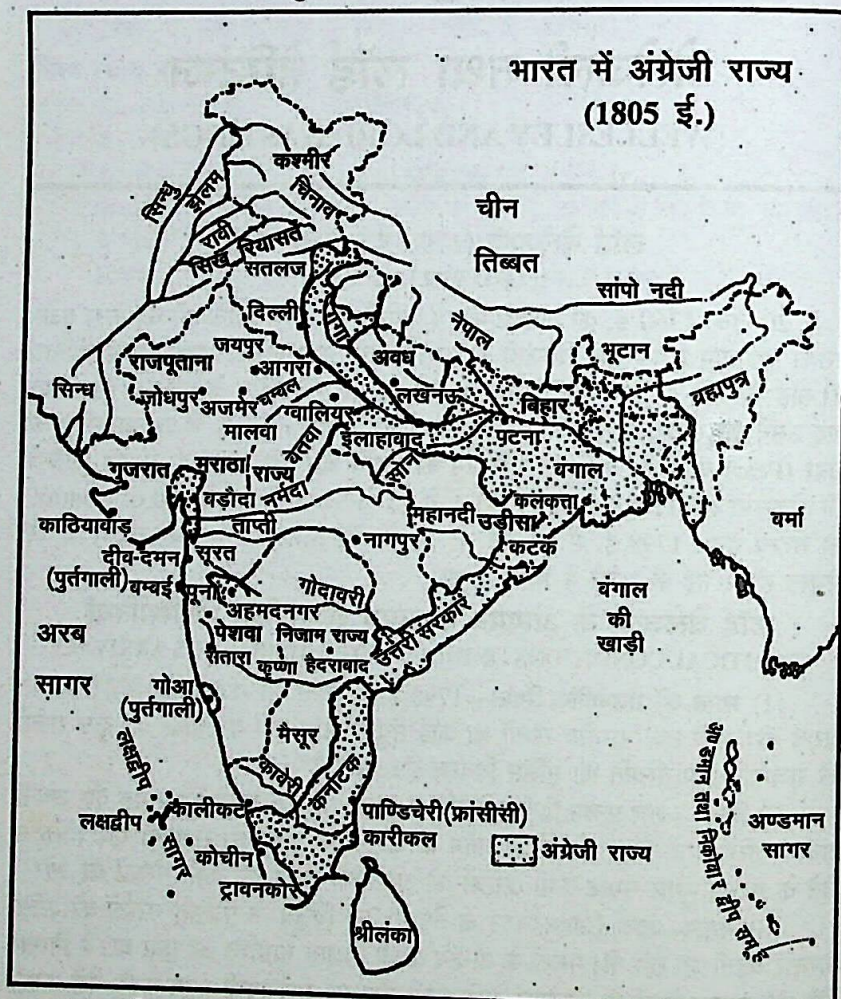
(v) **कर्नाटक**—कर्नाटक में इन दिनों मुहम्मद अली का बड़ा पुत्र उमदातुल उमरा शासन कर रहा था। वह ऊपरी तौर पर अंग्रेजों से मैत्रीभाव प्रदर्शित करके गुप्त रूप से टीपू सुल्तान से मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध षड्यन्त्र का कार्य कर रहा था।

(vi) **अवध**—अवध में इन दिनों सादत अली शासन कर रहा था। वह इस समय तक पूर्णरूपेण अंग्रेजी सत्ता के अधीन हो चुका था। यह बड़ा अकर्मण्य एवं अयोग्य था जिससे

शासन-व्यवस्था काफी खराब हो गयी थी। अतः अवध के नवाब की स्थिति इस समय काफी असुरक्षित एवं असहाय हो चुकी थी।

(vii) **पंजाब**—पंजाब में सिक्ख शक्ति का उत्कर्ष महाराजा रणजीतसिंह के नेतृत्व में हो रहा था। रणजीतसिंह ने सिक्ख सेना की मदद से 1798 ई. में लाहौर को अपने अधिकार में कर लिया था लेकिन रणजीतसिंह भी अंग्रेजी शक्ति का सफलतापूर्वक सामना करने में सक्षम नहीं हो पाया था।

(2) **अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां**—अंग्रेजी के लिए अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां इस समय काफी प्रतिकूल थीं। 1793 ई. से फ्रांस और ब्रिटेन एक-दूसरे के निरन्तर विरोधी बनते जा रहे थे। फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के दौरान इन दोनों यूरोपीय शक्तियों का जो संघर्ष आरम्भ हुआ था वह नेपोलियन बोनापार्ट के उत्कर्ष से और बढ़ गया था क्योंकि 1798 ई. तक नेपोलियन समस्त यूरोप को रौंदकर मिस्र तक पहुंच गया था इससे ब्रिटिश सरकार की चिन्ता बढ़ गयी। नेपोलियन टीपू सुल्तान को पत्र लिखकर अंग्रेजों के विरुद्ध हर प्रकार की सहायता देने का आश्वासन दे रहा था। भारतीय नरेश; यथा निजाम, मराठे, इत्यादि फ्रांसीसी शक्ति का निरन्तर स्वागत कर रहे थे।

(3) **ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थिति**—इन दिनों ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थिति काफी मजबूत हो गयी थी। बिहार, उड़ीसा तथा बंगाल में कम्पनी का अधिकार स्थापित हो चुका था। मैसूर के एक बहुत बड़े भाग पर भी अंग्रेजों का अधिकार था। अवध तथा कर्नाटक के नवाब भी कम्पनी के संरक्षण में कार्य कर रहे थे। यूरोप एवं भारत के बीच स्थित सामुद्रिक मार्ग पर भी अंग्रजों का ही आधिपत्य था। इस समय तक कम्पनी काफी शक्तिशाली हो चुकी थी। उसमें भारतीय नरेशों को आपस में लड़ाने की क्षमता थी। इस समय तक भारत में कोई भी ऐसा राज्य नहीं रह गया था जो कि अंग्रेजों के विरुद्ध सफलतापूर्वक संयुक्त नेतृत्व कर सके।

वेलेजली की नीति एवं उसका क्रियान्वयन—लॉर्ड वेलेजली भारत की राजनीतिक परिस्थितियों से पूर्णरूपेण अवगत था। ऐसी परिस्थितियों के लिए उसने अग्रगामी नीति का अनुसरण किया लेकिन पिट्स इण्डिया एक्ट की 34वीं धारा इस नीति का विरोध करती थी।[1] वेलेजली ने हस्तक्षेप करने की नीति का अनुसरण किया।

उद्देश्य—लॉर्ड वेलेजली ने अपने दो उद्देश्य निश्चित किए :

(क) भारतीय शक्तियों पर नियन्त्रण रखकर भारत में कम्पनी की सत्ता को सर्वोपरि बनाना।

(ख) शक्तिशाली सेना संगठित करके भारत में फ्रांसीसी प्रभुत्व को समाप्त करना। अपने उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु उसने निम्नलिखित कार्य किए :

सहायक सन्धि
(SUBSIDIARY ALLIANCE)

सहायक सन्धि लॉर्ड वेलेजली के मूल लक्ष्यों का प्रमुख साधन थी। लॉर्ड वेलेजली ने राज्य-विस्तार करने तथा भारत में कम्पनी को प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से ही इस सहायक सन्धि व्यवस्था को अपनाया। सहायक सन्धि करके उसने विभिन्न राज्यों पर कम्पनी का प्रभुत्व बढ़ाया। **वास्तव में सहायक सन्धि प्रणाली एक मकड़ी के जाले की भांति थी। जिस प्रकार मकड़ी**

1 "Schemes of conquest and extent of dominion in India are measures repugnant to the wish, honour and policy of the nation."
—A. C. Banerjee, *Indian Constitutional Documents*, pp. 68-69.

के जाले में एक बार फंस जाने के बाद कोई भी कीड़ा बाहर नहीं निकल सकता है ठीक उसी प्रकार जो भारतीय राज्य सहायक सन्धि के जाल में फंसा वह कभी भी उससे बाहर नहीं निकल सका।[1] जिस प्रकार ज़ाले में बैठी हुई मकड़ी सुविधानुसार जाल में फंसे शिकार को कभी भी दबोच सकती है उसी प्रकार कम्पनी ने भी आवश्यकता पड़ने पर भारतीय राज्यों पर फन्दा कड़ा कर दिया। इस सन्धि के अनुसार ब्रिटिश सरकार देशी राज्यों के साथ सन्धि करती थी व उसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी लेती थी। बदले में देशी राज्य कों कुछ शर्तें माननी होती थीं।

सहायक सन्धि की प्रमुख शर्तें—**सहायक सन्धि की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थीं :**

(1) सहायक सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाला देशी नरेश यह स्वीकार करता था कि वह कम्पनी के आधिपत्य में रहेगा और बिना कम्पनी की अनुमति के वह किसी भी अन्य राज्य के साथ सन्धि विग्रह इत्यादि नहीं करेगा। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि किसी भी सहायक सन्धि करने वाले देशी राज्य की विदेश नीति का संचालन कम्पनी के द्वारा ही होगा।[2]

(2) देशी नरेश बिना कम्पनी की अनुमति के अपने यहां किसी भी यूरोपियन (केवल अंग्रेजों को छोड़कर) को नौकरी नहीं देगा। इस शर्त के द्वारा वेलेजली फ्रांसीसियों के प्रभाव को कम करना चाहता था।

(3) सन्धि करने वाला देशी नरेश अपने राज्य में एक अंग्रेज रेजीडेण्ट रखेगा जिससे वह शासन-सम्बन्धी बातों में परामर्श लेगा। इस शर्त के द्वारा वेलेजली अंग्रेज हुकूमत को देशी राज्यों की गतिविधियों से अवगत रखना चाहता था।

(4) सन्धिकर्ता देशी नरेश अपने व्यय पर अपने यहां एक अंग्रेज सेना रखेगा। इस शर्त का उद्देश्य कम्पनी के राज्य में वृद्धि करना था।

(5) इन सभी शर्तों को स्वीकार करने वाले राज्य के आन्तरिक मामले में कम्पनी हस्तक्षेप न करने का वचन देती थी तथा आन्तरिक विद्रोह एवं बाहरी हमलों की स्थिति में उस राज्य की रक्षा का वचन देती थी।

सहायक सन्धि का विकास धीरे-धीरे हुआ। **सर अल्फ्रेड लायल इस सन्धि का विकास चार चरणों में मानते हैं। पहले चरण में अंग्रेजों ने आर्थिक लाभ को ध्यान में रखते हुए भारतीय देशी मित्र नरेशों को सेनाएं उधार दीं; दूसरे चरण में अंग्रेज शासकों ने स्वयं युद्ध छेड़ा और मित्र देशी शासकों ने उनकी सहायता हेतु अपनी सेनाएं भेजीं; तीसरे चरण में अंग्रेज प्रशासकों ने देशी सेनाओं को संगठित किया और चौथे चरण में अंग्रेजों ने सेना के व्यय के बदले में धन के स्थान पर प्रदेश लेने प्रारम्भ कर दिए।**

सहायक सन्धि का क्रियात्मक स्वरूप—लॉर्ड वेलेजली ने सभी छोटी-बड़ी भारतीय रियासतों को सहायक सन्धि करने के लिए आमन्त्रित किया और एक-एक करके सभी देशी राज्यों को अपना शिकार बना लिया तथा उनके स्वतन्त्र अस्तित्व को समाप्त कर दिया। **भारत से लौटते समय वेलेजली सभी प्रमुख भारतीय राज्यों को एक सहायक छाते** (subsidiary umbrella) **के नीचे एकत्र कर गया था।** वेलेजली के साथ सहायक सन्धि करने वाले राज्य निम्न थे :

(1) वेलेजली और हैदराबाद के निजाम—सहायक सन्धि स्वीकार करने वाला यह प्रथम भारतीय नरेश था। निजाम ने 1798 ई. में सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किए। इस सन्धि की

1 डॉ. जगन्नाथ प्रसाद मिश्र, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 206-207.

2 "This (Subsidiary alliance) looked as harmless measures for the protection of native rulers; it proved a potent system for the infiltration of British Supremacy."
—P.E. Roberts, *India Under Wellesley*, p. 29.

शर्तानुसार निजाम ने फ्रांसीसी सेना को अपने राज्य से हटाकर छः अंग्रेजी बटालियन अपने राज्य में रख लीं और इस सेना के व्यय हेतु 24 लाख रुपए वार्षिक देने स्वीकार किए। हैदराबाद में एक ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखा गया। इस सन्धि से कम्पनी की प्रतिष्ठा काफी बढ़ गयी। यद्यपि इस सन्धि से निजाम के स्वतन्त्र अस्तित्व पर आघात लगा तथापि वह अपने बाह्य एवं आन्तरिक शत्रुओं के भय से मुक्त हो गया। निजाम ने सहायक सन्धि का सदैव पालन करके अंग्रेजों की मित्रता कायम रखी।[1]

(2) **अवध के साथ सन्धि**—इलाहाबाद की सन्धि द्वारा पहली बार अवध और कम्पनी के बीच सम्बन्ध स्थापित हुए थे। तभी से कम्पनी का प्रभाव अवध में बढ़ता गया। वेलेजली के भारत आगमन के समय लगभग दस हजार ब्रिटिश सेना अवध की सुरक्षा के लिए वहां तैनात थी। इस सेना के खर्च हेतु अवध का नवाब प्रति वर्ष 74 लाख रुपए देता था। गवर्नर जनरल का पद संभालते ही वेलजली ने अवध पर दबाव डालने की नीति अपनायी। इन दिनों अवध को अफगानिस्तान के शासक जमानशाह, सिक्खों तथा मराठों का भय था। अवध का नवाब सादत अली स्वयं इन आक्रमणों का सामना करने में असमर्थ था। अतः वेलेजली ने परिस्थितियों का फायदा उठाते हुए नवाब के पास प्रस्ताव भेजा कि वह अपनी सेना में कमी करे तथा कम्पनी की सेना में वृद्धि करे। किन्तु नवाब ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। वेलेजली ने उस पर दवाब डालना आरम्भ कर दिया। अन्त में भयभीत होकर अवध के नवाब ने भी 10 नवम्बर, 1801 ई. में सहायक सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिए। इसके अतिरिक्त नवाब के पास कोई दूसरा विकल्प ही नहीं था। यह सन्धि भी उसी प्रकार थी जिस प्रकार कम्पनी और निजाम के बीच हुई थी। इस सन्धि की मुख्य व्यवस्था यही थी कि कम्पनी की सेना का खर्च पूरा करने के लिए किसी वार्षिक शुल्क के स्थान पर अवध राज्य का बड़ा क्षेत्र कम्पनी के अधिकार-क्षेत्र में दे दिया जाए।

(3) **मैसूर के साथ सन्धि**—मैसूर के तृतीय युद्ध की समाप्ति पर लॉर्ड कार्नवालिस ने कहा था कि, "**हम लोगों ने अपने मित्रों को बिना उग्र बनाए ही अपने शत्रु को पंगु बना दिया है।**"[2] लेकिन कार्नवालिस के ये शब्द सत्य साबित नहीं हुए। तृतीय मैसूर युद्ध में पराजित होने के पश्चात् भी टीपू ने हार नहीं मानी।[3] उसने वेलेजली की सहायक सन्धि को अस्वीकार कर दिया और चतुर्थ मैसूर युद्ध का श्रीगणेश किया। इस युद्ध में टीपू सुल्तान को परास्त होना पड़ा। मैसूर का अधिकांश भाग निजाम तथा अंग्रेजों ने बांट लिया। वेलेजली ने सम्पूर्ण मैसूर को नहीं छीना क्योंकि ऐसा करने से मराठे और निजाम क्रुद्ध हो जाते।[4] मैसूर के शेष भाग पर एक पुराने हिन्दू राजवंश के अल्पवयस्क लड़के कृष्णराव उदायर को मैसूर की गद्दी पर बैठाया। इसी के पूर्वजों से हैदरअली ने मैसूर राज्य छीना था। मैसूर के नए राजा कृष्णराव उदायर ने गद्दी पर बैठते ही 1799 ई. में सहायक सन्धि को स्वीकार कर लिया।

---

1 "Hydrabad treaty may therefore be said to be the subsidiary treaty par-excellence," —K. M. Panikker, *British Policy towards Indian States*, p. 33.

2 "We have crippled our enemy without making our friends too formidable." —Datta, *An Advanced History of India*, p. 711.

3 Instead of sinking under his misfortunes, he (Tipu) exeled. Writes Malcolm, "All his activity of repair the ravages of war. He began to add to the fortifications of his capital to remount his cavalry—to recruit and discipline his infantry to punish his refractory tributories, and to encourage the cultivation of his country, which was soon restored to its former prosperity." —*Ibid.*

4 "The Governor-General acted wisely in not making Mysore ostensibly is British possession. He acted no less wisely in making it substantially so." —*The History of British Empire in India*, p. 89.

(4) **वेलेजली और पेशवा**—टीपू सुल्तान को पराजित करने के पश्चात् अंग्रेजों ने हैदराबाद के निजाम पर प्रभाव डाला। पेशवा माधवराव की मृत्यु के उपरान्त मराठों में फूट और आन्तरिक कलह घर कर गयी थी। 1800 ई. में नाना फड़नवीस की भी मृत्यु हो गयी। इससे मराठा शक्ति बिल्कुल छिन्न-भिन्न हो गयी। मराठा संघ की राजनीति ने पलटा खाया। पूना में गृह-कलह भड़क उठा और पेशवा बाजीराव द्वितीय मराठा राज्य से भाग निकला। पेशवा पूना से भागकर अंग्रेजों के संरक्षण में चला गया। बम्बई के निकट बेसीन द्वीप में जाकर उसने शरण ली। इसी स्थान पर पेशवा ने अंग्रेजों के साथ दिसम्बर 1802 ई. में जो सन्धि की वह **'बेसीन की सन्धि'** (Treaty of Bassein) कहलाती है। भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना के दृष्टिकोण से बेसीन की सन्धि अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। ओवेन के अनुसार, **"बेसीन की सन्धि ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में कम्पनी को भारत का साम्राज्य दे दिया।"**[1] डीन हट्टन के अनुसार, **"निःसन्देह यह एक ऐसा कदम था जिसने पश्चिम भारत में अंग्रेजी राज्य के आधार को बिल्कुल बदल दिया। इसने एक ही क्षण में अंग्रेजों की जिम्मेदारियां तिगुनी बढ़ा दीं।"**[2] लेकिन इन कथनों से यह नहीं समझना चाहिए कि बेसीन की सन्धि से ही अंग्रेजों को भारत का राज्य मिला।

(5) **भौंसले राजा से सन्धि**—बेसीन की सन्धि के कारण दूसरा मराठा युद्ध छिड़ गया था। इस युद्ध में भौंसले सरदार और सिन्धिया दोनों शामिल हुए थे। परन्तु अन्य मराठा सरदार इस युद्ध से अलग रहे। 29 नवम्बर, 1803 ई. को भौंसले राजा की पराजय हो गयी अतः 17 दिसम्बर, 1803 ई. को बरार के भौंसला राज्य ने अंग्रेजों से देवगांव की सन्धि कर ली। सन्धि के अनुसार कटक तथा वर्धा नदी के पश्चिम के प्रदेश अंग्रेजों को दे दिया गए। भौंसले राजा ने अपनी राजधानी नागपुर में एक ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखना स्वीकार कर लिया।

(6) **सिन्धिया से सन्धि**—इसी पृष्ठभूमि में 30 दिसम्बर, 1803 ई. को सिन्धिया ने सुर्जी अर्जुनगांव (Surji Arjungaon) नामक स्थान पर अंग्रेजों से सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार गंगा और यमुना के बीच का भू-भाग, जयपुर, जोधपुर और गोहद के उत्तर के सभी क्षेत्र तथा किले अंग्रेजों को मिले। इसके अतिरिक्त पश्चिम में भड़ौंच, अहमदनगर तथा अंजन्ता की पहाड़ियों के दक्षिण के सभी क्षेत्र अंग्रेजों को दे दिए।

अन्य राज्यों के प्रति वेलेजली की नीति
(POLICY OF LORD WELLESLEY WITH OTHER STATES)

(1) **कर्नाटक राज्य**—कर्नाटक राज्य से अंग्रेजों का पुराना सम्बन्ध था। इन दिनों कर्नाटक की आर्थिक स्थिति अत्यन्त खराब हो गयी। वेलेजली नवाब के शासन का अन्त करके कर्नाटक को कम्पनी के राज्य में मिला लेना चाहता था। इसके लिए उसे अच्छा बहाना मिल गया। टीपू को पराजित करने के पश्चात् श्रीरंगपट्टम में उसे कुछ ऐसे कागजात मिले जिनके आधार पर वेलेजली ने मुहम्मदअली नवाब तथा उसके बेटे उमदत-उल-उमरा पर टीपू से मिले रहने और अंग्रेजों के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने का आरोप लगाया। 1801 ई. में उमदत-उल-उमरा का देहान्त हो गया और उसका पुत्र हुसैन दो संरक्षकों की सहायता से कर्नाटक पर शासन करने लगा। वेलेजली ने उसके पास प्रस्ताव भेजा कि वह कर्नाटक का शासन कम्पनी को देकर पेंशनभोक्ता

1 "The Treaty of Bassein changed the entire position of the English in Western India and converted the British empire in India into the British empire of India."
—Owen, *Wellington's Despatches of the Introduction*, p. 46.

2 "It was without question a step which changed the footing on which we stood in Western India. It tripled the English responsibilities in an instant."
—*Dean Hutton*

नागरिक बन जाए। नवाब ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फलतः वेलेजली और स्वर्गीय नवाब के भतीजे आजमउद्दौला की एक सन्धि के अनुसार आजमउद्दौला कर्नाटक का नवाब बना। कर्नाटक का शासन कम्पनी के हाथ में चला गया और नवाब को पेंशन मिलने लगी।

(2) **ट्रावनकोर का शासक**—मैसूर राज्य के दक्षिण में ट्रावनकोर राज्य था। यहां के मराठे शासक अंग्रेजों के मित्र थे। वेलेजली ने वहां के राजा सर्फोजी को 1799 ई. में कम्पनी के साथ एक नयी सन्धि करने के लिए विवश कर दिया।

(3) **सूरत**—अंग्रेजों की पहली व्यापारिक कोठी सूरत में ही खुली थी। 1759 ई. में सूरत में भी द्वैधशासन लागू किया गया। यह द्वैधशासन व्यवस्था 1799 ई. तक चलती रही। 1799 ई. में ही सूरत के नवाब की मृत्यु हो गयी। वेलेजली ने इस स्थिति का फायदा उठाया, उसने नवाब के अल्पवयस्क पुत्र को गद्दी पर बैठा कर वेलेजली ने उससे बहुत-सा धन मांगा और अपनी सेना भंग करने के लिए कहा। लेकिन 1800 ई. में नवाब को गद्दी से हटाकर सूरत को कम्पनी राज्य में सम्मिलित कर दिया।

(4) **फर्रुखाबाद**—अवध के अधीन फर्रुखाबाद का एक छोटा-सा राज्य था। वेलेजली ने फर्रुखाबाद के साथ भी सहायक सन्धि कर अपने राज्य में मिला लिया।

सहायक सन्धि के लाभ—सहायक सन्धि प्रणाली से कम्पनी को निम्नलिखित लाभ हुए :

(1) **कम्पनी के प्रभुत्व में विस्तार**—सहायक सन्धि से देशी राज्यों (Native States) पर कम्पनी का अधिकार स्थापित हो गया। उन राज्यों की विदेश नीति पर पूर्ण रूप से कम्पनी का अधिकार स्थापित हो गया।

(2) **सेना की प्राप्ति**—सहायक सन्धि के फलस्वरूप कम्पनी देशी नरेशों के खर्च से विशाल सेनाएं रखती थी। इस सेना का उपयोग कम्पनी साम्राज्य विस्तार हेतु करती थी तथा इस सेना के देशी राज्यों में रहने से कम्पनी बाहरी आक्रमण के भय से मुक्त हो गयी।

(3) **कम्पनी का राज्य-क्षेत्र युद्ध से मुक्त**—सहायक सन्धि से कम्पनी का राज्य क्षेत्र युद्ध के भयंकर परिणामों से मुक्त रहता था क्योंकि यदि कोई युद्ध होता भी था तो वह कम्पनी के राज्य-क्षेत्र में न होकर देशी राज्यों में होता था।

(4) **फ्रांसीसी प्रभाव की समाप्ति**—सहायक सन्धि द्वारा कम्पनी भारतीय रियासतों पर से फ्रांसीसी प्रभाव को समाप्त करने में समर्थ हो गयी। इन देशी रियासतों में फ्रांसीसियों का सैनिक तथा राजनीतिक प्रभाव समाप्त हो गया तथा षड्यन्त्र का भय भी समाप्त हो गया क्योंकि सन्धि की शर्त के अनुसार देशी नरेश अपने यहां अंग्रेजों के अतिरिक्त किसी भी विदेशी को नौकर नहीं रख सकते थे।

(5) **शान्ति स्थापना**—सहायक सन्धि ने भारत में शान्ति स्थापना में भी बड़ा योगदान दिया। इस प्रणाली ने देशी नरेशों की हिंसात्मक तथा महत्वाकांक्षी वृत्ति को रोक दिया। कम्पनी के संरक्षण में आने से वे सुरक्षित एवं शान्तिमय जीवन व्यतीत करने लगे।

(6) **भारतीय रियासतों पर आसानी से नियन्त्रण**—सहायक सन्धि से कभी भी यूरोपीय शक्तियों को ईर्ष्या नहीं हुई, इसका कारण यह था कि प्रत्यक्ष रूप में रियासतों की स्वतन्त्रता पर कोई आंच नहीं आती थी।

(7) **भारत में अंग्रेजी राज्य की सुदृढ़ता**—सहायक सन्धि ने भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थिति को काफी सुदृढ़ बना दिया। अतः वेलेजली की सहायक सन्धि प्रणाली अंग्रेजी साम्राज्य के विस्तार एवं सुदृढ़ता का साधन सिद्ध हुई।

सहायक सन्धि से हानियां—सहायक सन्धि से मात्र कम्पनी को लाभ हुआ, देशी रियासतों को इससे अनेक हानियां हुईं :

(1) **कम्पनी की सेना का आर्थिक बोझ**—देशी रियासतों को इस सन्धि से पहली हानि यह हुई कि अपने राज्य में कम्पनी की सेना का आर्थिक बोझ उनकी बर्दाश्त से बाहर हो गया लेकिन उन्हें अधिकार नहीं था कि वे इस आर्थिक बोझ में कुछ कमी करवा सकें।

(2) **भारतीय राज्यों की सैनिक शक्ति का ह्रास**—सहायक सन्धि करने वाले देशी नरेशों के सैनिक अयोग्य बन गए थे क्योंकि कम्पनी के संरक्षण से वे बाह्य एवं आन्तरिक आक्रमणों से मुक्त हो गए थे जिससे वे आलसी एवं विलासप्रिय हो गए थे।

(3) **भारतीय नरेशों के अधिकार-क्षेत्र में कमी**—सन्धि की शर्त के अनुसार देशी रियासतों का कुछ भाग कम्पनी के अधिकार में दे दिया गया। इससे भारतीय राज्यों के अधिकार वाले प्रदेशों का अधिकार घटा।

(4) **जनता की कठिनाइयों में वृद्धि**—सहायक सन्धि से भारतीय जनता की कठिनाइयां बढ़ गयीं, उन पर असीमित कर लगा दिए गये तथा कुव्यवस्था के कारण भी जनता कठिनाइयों का सामना करने लगी।

(5) **देशी राज्यों का अंग्रेजों से ईर्ष्या-द्वेष बढ़ा**—प्रारम्भ में इस प्रणाली के अपनाकर देशी राजाओं ने सुरक्षा महसूस की लेकिन कालान्तर में अंग्रेजों से इस प्रणाली के आधार पर ही अधिक ईर्ष्या करने लगे।

वेलेजली के समय हुए प्रमुख युद्ध
(IMPORTANT BATTLES DURING WELLESLEY'S TENURE)

(1) **चतुर्थ मैसूर युद्ध**—यह युद्ध 1799 ई. में अंग्रेजों एवं टीपू सुल्तान के मध्य हुआ। टीपू सुल्तान इस युद्ध द्वारा तृतीय मैसूर युद्ध में हुए अपने अपमान का बदला लेना चाहता था अतः उसने फ्रांसीसियों से भी सहायता मांगी लेकिन इस युद्ध में टीपू लड़ता हुआ मारा गया और इस युद्ध की सफलता ने वेलेजली की ख्याति में चार चांद लगा दिए तथा उसे **'मार्क्विस'** (Marques) की उपाधि से विभूषित किया गया।

(2) **द्वितीय मराठा युद्ध**—यह युद्ध 1803 ई. में हुआ। इसमें एक ओर अंग्रेज तथा दूसरी ओर मराठा सरदार सिन्धिया और भौंसले थे। लॉर्ड वेलेजली की साम्राज्यवादी नीति इस युद्ध का प्रमुख कारण थी। यह युद्ध चार माह अगस्त 1803 ई. से दिसम्बर 1803 ई. तक चला। अन्त में अंग्रेजों तथा भौंसले के मध्य देवगांव की सन्धि तथा अंग्रेजों और सिन्धिया के बीच सुर्जी अर्जुनगांव की सन्धि हुई। इस प्रकार मराठा संघ के दो प्रमुख सदस्यों—भौंसले तथा सिन्धिया पर विजय प्राप्त करने के फलस्वरूप अंग्रेजों के लिए मराठों का दमन करना कठिन नहीं रहा।

(3) **तृतीय मराठा युद्ध**—अभी तक होल्कर अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त था। अप्रैल 1809 ई. में वेलेजली ने होल्कर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। तीन तरफ से होल्कर के राज्य में युद्ध आरम्भ हुआ। होल्कर ने अपने पूर्वजों की छापामार नीति अपनायी। नवम्बर 1804 ई. में होल्कर की एक सैनिक टुकड़ी डिग (Dig) नामक स्थान पर पराजित हो गयी। 10 अप्रैल, 1805 ई. में हारकर उसने अंग्रेजों से सन्धि का प्रस्ताव रखा। किन्तु इसी बीच वेलेजली को इंगलैण्ड वापस बुला लिया गया।

वेलेजली के सुधार
(REFORMS OF WELLESLEY)

साम्राज्यवाद का पोषक होने के कारण वेलेजली अधिक सुधार नहीं कर सका। **इसके प्रमुख सुधार निम्न हैं :**

(1) भूमि-सम्बन्धी सुधार—वेलेजली ने जिन प्रदेशों को जीता वहां भूमि का एक वर्ष, तीन वर्ष, चार वर्ष तथा अन्त में स्थायी प्रबन्ध करने का आयोजन किया। कम्पनी को इन प्रदेशों के लगान से काफी आय प्राप्त हुई।

(2) न्याय विभाग में सुधार—न्याय विभाग में भारतीयों को पहले की अपेक्षा कार्य करने का अधिक अवसर प्रदान किया गया। बहुत-से झगड़ों को अंग्रेज न्यायाधीश भारतीयों के पास निर्णय हेतु भेज दिया करते थे।

(3) शिक्षा के क्षेत्र में सुधार—भारतीयों को कम्पनी के निम्न पदों पर रखने हेतु शिक्षित वनाना आवश्यक था। इसके लिए कलकत्ता में एक विद्यालय की स्थापना की गयी। वेलेजली भारत में ईसाई धर्म की उन्नति तथा प्रचार के पक्ष में था। फोर्ट विलियम कॉलेज में उसने धार्मिक शिक्षा का विशेष प्रबन्ध करवाया। उसने बाइविल का अनुवाद सात भारतीय भाषाओं में भी करवाया जिससे अधिक-से-अधिक लोग बाइबिल की शिक्षाओं से अवगत होकर ईसाई धर्म ग्रहण करें।

व्यापार के सम्बन्ध में वेलेजली स्वतन्त्र व्यापार (Free Trade) का समर्थक था। वह व्यापार-सम्बन्धी बहुत-से प्रतिवन्धों को दूर करना चाहता था, लेकिन कम्पनी के संचालकों ने इसकी स्वीकृति नहीं दी।

वेलेजली की इंगलैण्ड वापसी—वेलेजली एक साम्राज्यवादी शासक था। अपनी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के कारण उसने अनेक युद्ध किए। इन युद्धों में काफी धन खर्च हुआ, इससे कम्पनी के संचालक अप्रसन्न हो गए। इसके अतिरिक्त, कम्पनी के संचालकों से पूछे विना उसने अनेक कार्य कर लिए थे, यथा अपने दो भाइयों को उच्च पदों पर आसीन, कलकत्ता में भव्य भवन (स्वयं रहने के लिए) का निर्माण, अवध के मामले में अपनी इच्छानुसार निर्णय, इत्यादि। **अतः 15 अगस्त, 1805 को वेलेजली को इंगलैण्ड वापस बुला लिया गया और** लॉर्ड कार्नवालिस दूसरी वार गवर्नर जनरल वनकर भारत आया।

वेलेजली के कार्यों का मूल्यांकन
(EVALUATION)

वेलेजली की गणना भारत में ब्रिटिश साम्राज्य निर्माताओं की श्रेणी में की जाती है। अपनी साम्राज्यवादी नीति के तहत सहायक सन्धि का जाल बिछा कर उसने निजाम, मराठे, अवध, कर्नाटक, तंजौर, सूरत, फर्रुखाबाद, इत्यादि को कम्पनी शासन के अधीन कर दिया। उसने भारतीय शत्रुओं तथा फ्रांसीसियों से कम्पनी की शक्ति की रक्षा की। वेलेजली सार्वजनिक हित के कार्यों में भी रुचि लेता था। कृषि तथा पशुओं की नस्ल सुधारने के लिए भी उसने प्रयत्न किए। कम्पनी के कर्मचारियों की शिक्षा हेतु उसने कलकत्ता में कॉलेज की स्थापना करवायी। धार्मिक क्षेत्र में भी उसने अपनी व्यावहारिक बुद्धि का परिचय दिया।

लेकिन वेलेजली में कतिपय चारित्रिक दोष भी थे। वह दम्भी तथा पाखण्डी प्रवृत्ति का था तथा पक्षपाती था जिससे भारत में ही उसने अपने दो भाइयों को ऊंचे-ऊंचे पदों पर नियुक्त किया।

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार में वेलेजली का महत्वपूर्ण योगदान था। वह एक चतुर राजनीतिज्ञ था। यूरोपीय स्थिति से प्रभावित होकर उसने भारत में अग्रगामी नीति का अनुसरण किया। पी. ई. रॉबर्ट्स ने लॉर्ड वेलेजली की प्रशंसा करते हुए लिखा है, **"वेलेजली भारत के महत्तम शासकों में से एक था; केवल क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्ज तथा डलहौजी ही उसकी तुलना कर सकते हैं.......उसने देखा कि इंगलैण्ड के लिए भारत में विशिष्ट भूमिका निभाने के अतिरिक्त और कोई रास्ता ही नहीं था।"**[1]

लॉर्ड हेस्टिंग्ज (1813 ई.—1823 ई.)
(LORD HASTINGS)

लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने 1813 ई. से 1823 ई. तक गवर्नर जनरल के रूप में कार्य किया था।

लॉर्ड हेस्टिंग्ज की विदेश नीति
(LORD HASTING'S FOREIGN POLICY)

1812 में नेपोलियन का मास्को अभियान पूर्णतः विफल रहा तथा 1813 में लिपजिग (Lipzig) के मैदान में नेपोलियन एक बार पुनः पराजित हुआ, जिसके कारण इंग्लैण्ड, जो भारत में अब तक रक्षात्मक नीति अपनाए हुए था पुनः विस्तारवादी नीति की शुरूआत की ओर अग्रसर हुआ। इसे प्रारम्भ करने वाला व्यक्ति लॉर्ड हेस्टिंग्ज था। **भारत आगमन के पहले उसने अमेरिका के स्वातन्त्र्य-युद्ध में भाग लिया था और इंग्लैण्ड की संसद का सदस्य भी रह चुका था।** उल्लेखनीय तथ्य यह है कि संसद में उसने वेलेजली की विस्तारवादी नीति की कड़े शब्दों में निन्दा की थी, किन्तु भारत आने पर उसने वेलेजली की नीति का ही पालन किया। इस समय भारत की स्थिति चिन्ताजनक बनी हुई थी, क्योंकि अर्ल ऑफ मिण्टो के शासनकाल में पराजित मराठा सरदारों ने पुनः अपनी शक्ति को सुदृढ़ कर लिया था और वे ब्रिटिश-भारत की सरकार के खिलाफ कार्य कर रहे थे। **इसी प्रकार पेशवा भी सहायक सन्धि से तंग आ चुका था और वह भी मौके की तलाश में था।** पिंडारियों के उपद्रवों से मध्य भारत में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गई थी तथा सीमा के उत्तर की ओर गोरखों और पूर्व की तरफ से बर्मियों की बढ़ती हुई शक्ति ने ब्रिटिश भारत की सरकार को चिन्तित कर दिया था और यह भय उत्पन्न होने लगा कि अवसर रहते अगर इन समस्याओं को नहीं सुलझाया गया तो ये समस्याएं ब्रिटिश भारत की सरकार की नींव हिला देगी।

आंग्ल-नेपाल युद्ध (1814-16 ई.)
(ANGLO-NEPALESE WAR)

1813 ई. में लॉर्ड हेस्टिंग्ज भारत का गवर्नर जनरल बनकर भारत आया। उसे सर्वप्रथम गोरखों से युद्ध करना पड़ा। नेपाल भारत के उत्तर में एक पहाड़ी भू-भाग पर फैला हुआ शक्तिशाली राज्य था। गोरखा जाति वीर तथा लड़ाकू थी। नेपाल की भौगोलिक रचना भी इतनी दुर्गम थी कि वे देशी आक्रमणकारी को वहां अत्यन्त कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था।

1 **"He saw that Great Britain could no longer play any but predominant part in India."** —**P. E. Roberts, *History of British India*, p. 244.**

1814 ई. से पूर्व आंग्ल-नेपाल सम्बन्ध (Anglo-Nepalese Relations Before 1814)

अंग्रेज 1814 ई. से पूर्व भी नेपाल के सम्पर्क में आए थे। 1762 ई. में पहली बार वंगाल के नवाब मीरकासिम ने एक सेना नेपाल पर आक्रमण करने के लिए भेजी थी मगर उस सेना को पराजित होना पड़ा। कुछ समय पश्चात् वेटहा के अंग्रेज व्यापारिक रेजीडेण्ट ने पुनः नेपाल पर एक असफल आक्रमण किया। 1792 ई. में अंग्रेजों ने नेपाल से एक व्यापारिक सन्धि की, परन्तु यह सन्धि विशेष लाभकारी नहीं हुई। 1802 ई. में कैप्टन नौक्स तथा कर्नल कीरपैट्रिक के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मण्डल भेजा गया। यह मण्डल भी असफल रहा। लॉर्ड हेस्टिंग्ज के भारत आने के समय नेपाल एक शक्तिशाली राज्य था, नेपाल के उत्तर में शक्तिशाली विशाल चीन था, अतः उत्तर में उसका विस्तार बन्द रहा। **19वीं सदी में नेपाल ने अपना विस्तार अपने दक्षिण में बंगाल तथा अवध की सीमाओं की ओर करना प्रारम्भ किया।** 1801 ई. में उसने गोरखपुर पर अधिकार कर लिया, अतः अब नेपाल तथा अंग्रेजी राज्य की सीमाएं मिल गईं, परन्तु हिमालय का तराई भाग ऐसा था जहां अभी तक नेपाल और अंग्रेजी राज्य की सीमाएं निश्चित नहीं हो सकीं अनिश्चित सीमा क्षेत्र पर दोनों शक्तियों में संघर्ष होना अनिवार्य हो गया। अतः अब युद्ध ही दोनों शक्तियों की सीमाओं को निश्चित कर सकता था।

युद्ध का आरम्भ (War begins)

1814 ई. में **युद्ध आरम्भ हो गया। लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने तीन तरफ से नेपाल पर आक्रमण करने की योजना बनाई।** कर्नल ऑक्टरलोनी को सतलज नदी की ओर भेजा गया। मेजर जिलेप्सी को मेरठ से चलकर सेनापति अमरसिंह थापा के विरुद्ध ऑक्टरलोनी की मदद के लिए भेजा गया, **मेजर जनरल मार्ले को पटना से तथा जॉनवुड को गोरखपुर से नेपाल की राजधानी की ओर बढ़ने के आदेश दिए गए।** आरम्भ में अंग्रेजों को सफलता नहीं मिली। गोरखा सैनिक वड़ी वीरता से लड़े, परन्तु 1815 ई. में स्थिति में एकदम परिवर्तन हुआ। कर्नल निकोलस तथा गार्नर ने अप्रैल, 1815 ई. में अल्मोड़ा तथा कुमायूं पर अधिकार कर लिया। ऑक्टरलोनी ने मई, 1815 ई. में अमरसिंह थापा से मालोन का किला छीन लिया। इसके अतिरिक्त अंग्रेज कुछ पहाड़ी जातियों को भी अपनी सेना में भर्ती करने में सफल हो गए जिससे युद्ध में आशातीत सफलता प्राप्त हुई। **अतः इस हार के पश्चात् गोरखों ने सन्धिवार्ता चलाई, परन्तु अंग्रेजों की अत्यधिक कठिन मांगों तथा नेपाल दरबार में उग्र दल के शक्ति में होने के कारण सन्धि वार्ता न हो सकी।** अतः युद्ध पुनः आरम्भ हो गया डेविड ऑक्टरलोनी साहसपूर्वक आगे वढ़ा और 28 फरवरी, 1816 ई. को मकवनपुर नामक स्थान पर गोरखों को करारी मात दी। इसके वाद शान्तिवार्ता पुनः चली और **मार्च, 1816 ई. में नेपाल दरबार ने सैगोली की सन्धि की शर्तों को स्वीकार कर लिया।**

सैगोली की सन्धि (Treaty of Sagauli)—इस सन्धि के प्रमुख निर्णय निम्न थे :

(1) अंग्रेजों को गढ़वाल और कुमायूं के जिले तथा तराई का अधिकांश भाग प्राप्त हुआ।

(2) दोनों राज्यों की सीमाओं को निश्चित कर दिया गया।

(3) नेपाल ने सिक्किम राज्य से अपने समस्त अधिकार वापस ले लिए।

(4) नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में एक अंग्रेज रेजीडेण्ट रख दिया गया।

यद्यपि सैगोली की सन्धि एवं आंग्ल-नेपाल युद्ध को लेकर लॉर्ड हेस्टिंग्ज की बहुत आलोचना हुई, परन्तु अंग्रेजों को इससे वहुत लाभ हुआ। नेपाल हमेशा के लिए अंग्रेजों का

मित्र-राज्य बन गया। अंग्रेजों को हमेशा नेपाल से बहादुर गोरखा प्राप्त रहे। शिमला, मंसूरी तथा नैनीताल जैसे ठण्डे स्थान भी अंग्रेजों को मिले तथा मध्य-एशिया से सम्पर्क स्थापित करने के लिए अंग्रेजों को नए मार्ग प्राप्त हुए।

पिण्डारियों का सफाया

गवर्नर जनरल हेस्टिंग्ज के समय पिण्डारियों ने अपने कार्यों से मध्य भारत में अराजकता की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। अतः इनका दमन करना आवश्यक हो गया था। पिण्डारी लुटेरों का एक दल था जिसमें सभी धर्म और जाति के लोग शामिल थे। पिण्डारियों की उत्पत्ति एवं मराठों के साथ उनके सम्बन्धों के विषय में इतिहासकारों में मतभेद है। एम. पी. राय ने लिखा है कि जैसे-जैसे मराठों की शक्ति कम होती गई उसी अनुपात में पिण्डारियों की शक्ति में वृद्धि होती गई। जब तक मराठों का दल मजबूत था, पिण्डारी वही करते थे जो मराठे कहते थे, परन्तु जब मराठों का दल कमजोर हो गया तो पिण्डारियों ने उनके आदेशों को मानने से इन्कार कर दिया।

पिण्डारियों का मुख्य नेता चीतू था। पिण्डारियों की अपनी सक्षम घुड़सवार फौज थी। वे जिधर भी जाते उधर आतंक व बरबादी का ताण्डव मचा कर ही लौटते। इन्होंने बुन्देलखण्ड, गुजरात निजाम के प्रदेश एवं उत्तरी सरकार में अपने कार्यों के द्वारा आतंक मचा दिया था। अतः मजबूर होकर गवर्नर जनरल ने इनका दमन करने का निश्चय किया।

पिण्डारियों के दमन के लिए हेस्टिंग्ज ने एक लाख सैनिकों की एक सेना का गठन किया तथा इस सेना को दो भागों में विभक्त किया गया। **एक भाग का नेतृत्व उसने स्वयं किया तथा दूसरे भाग का नेतृत्व सर थॉमस हिस्लोप (Sir Thomas Hislop) को सौंपा गया।** उत्तर से हेस्टिंग्ज तथा दक्षिण की तरफ से हिस्लोप पिण्डारियों को घेरते हुए क्रमशः आगे बढ़े। उन्हें पूरी तरह घेर लिया गया कि वह कहीं से भी भागने न पाएं। कुछ सरदारों ने डरकर आत्मसमर्पण कर दिया। पिण्डारी नेता करीम खां को गवासपुर की जागीर दे दी गई। वासिल मोहम्मद और चीतू का अन्त कर दिया गया। इस प्रकार हेस्टिंग्ज ने पिण्डारियों के खिलाफ सख्त अभियान चलाकर उनका दमन किया और पीड़ित जनता को उनके आतंक से मुक्ति दिलाई और प्रभावित क्षेत्रों में पुनः कानून व व्यवस्था स्थापित कर शान्ति का माहौल कायम किया।

तृतीय मराठा युद्ध (1817-18)
(THIRD MARATHA WAR—1817-18)

मराठा संघर्ष के कारण—1805 ई. में अंग्रेजों एवं मराठों के आपसी संघर्ष प्रायः समाप्त हो गए थे, परन्तु 1817-18 ई. में लॉर्ड हेस्टिंग्ज के समय में अनेक कारणों से पुनः आरम्भ हो गया। **इस युद्ध के अनेक कारण थे जिनमें से प्रमुख निम्न हैं :**

(1) **असन्तुष्ट पेशवा बाजीराव**—पेशवा बाजीराव ने 1802 ई. में अंग्रेजों से बसीन की सन्धि कर ली थी, परन्तु उसके लिए यह सन्धि असहनीय थी। अतः **लॉर्ड हेस्टिंग्ज के कार्यकाल में उसने समस्त मराठा सरदारों को पुनः संगठित करने का प्रयास किया** तथा सिन्धिया, होल्कर और भौंसले की राज्य सभाओं में अपने विशेष दूत भेजकर गुप्त सन्धि करने का भी प्रयास किया। बाजीराव की इन कार्यवाहियों से पूना स्थित अंग्रेज रेजीडेण्ट सशंकित हो उठा था, अतः उन्होंने भी अपने साधनों को एकत्र करना आरम्भ कर दिया।

(2) मराठों तथा पिण्डारियों का गठबन्धन—पिण्डारी लूटमार करने वाला एक वर्ग था। 1815 ई. में हैदराबाद तथा 1816 ई. में उत्तरी सरकार के अनेक राजमार्गों पर इन पिण्डारियों ने लूटमार मचाई थी। अंग्रेजों का विचार था कि पिण्डारियों तथा मराठों में गठबन्धन है। वे मराठों द्वारा उत्तेजित किए जाने पर ही लूटमार कर रहे हैं, अतः इस प्रकार के सन्देह से वातावरण और भी अधिक गर्म तथा तनावपूर्ण हो गया।

(3) नागपुर के (अप्पा साहब) भौंसले से सन्धि—मराठा संघ को निर्बल करने के उद्देश्य से अंग्रेजों ने इस संघ के सदस्यों से पृथक्-पृथक् सन्धियां कीं। **सर्वप्रथम अंग्रेजों ने 27 मई, 1816 ई. को नागपुर के अप्पा साहब से सन्धि की।** इस सन्धि से नागपुर की वास्तविक स्वतन्त्रता का अन्त हो गया। वास्तव में यह सन्धि अप्पा साहब पर लादी गई थी। परिणामस्वरूप शीघ्र ही वह अपनी स्थिति से दुःखी हो गया।

(4) पेशवा पर पूना की सन्धि का लादना—लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने पूना में स्थित अंग्रेज रेजीडेण्ट एल्फिन्स्टन को पेशवा के साथ एक नवीन सन्धि का आदेश दिया ताकि पेशवा की ओर से आक्रमण का भय समाप्त हो जाए। आदेश मिलते ही रेजीडेण्ट ने पेशवा बाजीराव द्वितीय को सन्धि पर हस्ताक्षर करने को बाध्य किया। **इस सन्धि की धाराएं कठोर थीं :**

- (i) पेशवा ने मराठा संघ का अध्यक्ष होने का अपना अधिकार छोड़ दिया।
- (ii) उसने आश्वासन दिया कि वह किसी भी अन्य राज्य से अंग्रेज रेजीडेण्ट से परामर्श किए बिना बातचीत नहीं करेगा।
- (iii) उसने यह भी स्वीकार किया कि अंग्रेज उसके राज्य में जितनी भी सेनाएं आवश्यक समझें, रख सकते हैं।
- (iv) उसने आश्वासन दिया कि वह अपने मन्त्री त्रयम्बकजी को पकड़वाएगा तथा ऐसा होने तक उसने अपने परिवार के एक अन्य सदस्य को बन्धक के रूप में अंग्रेजों को देना स्वीकार कर लिया।
- (v) पेशवा ने अहमदनगर दुर्ग अंग्रेजों को दे दिया, साथ ही मालवा, बुन्देलखण्ड तथा उत्तरी भारत पर अपने आधिपत्य का परित्याग कर दिया।

यथार्थ में इस सन्धि की कठोर धाराओं ने ही पेशवा को अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करने को बाध्य कर दिया।

(5) दौलतराव सिन्धिया से 5 नवम्बर, 1817 ई. की सन्धि—ग्वालियर के मराठा शासक सिन्धिया से भी अंग्रेजों ने 5 नवम्बर, 1817 ई. को एक नवीन सन्धि की जिसके द्वारा सिन्धिया ने आश्वासन दिया कि वह अंग्रेज़ों की पिण्डारियों के विरुद्ध सहायता करेगा। **साथ ही सिन्धिया को उदयपुर, कोटा, जोधपुर, बूंदी, आदि राजपूत राज्यों से स्वतन्त्र रूप से सन्धि करने के अधिकार से वंचित कर दिया।** इस सन्धि से अंग्रेजों ने सिन्धिया के निकटवर्ती राज्यों में अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना लिया।

(6) गायकवाड़ से सन्धि—6 नवम्बर, 1817 ई. को अंग्रेजों ने एक अन्य मराठा सरदार गायकवाड़ से सन्धि कर ली। इस सन्धि का उद्देश्य गायकवाड़ तथा उसकी सेनाओं को अंग्रेजों के लिए अधिक उपयोगी बनाना था।

(7) होल्कर की स्थिति को कमजोर बनाना—1817 ई. में मराठा सरदार जसवन्तराव होल्कर की मृत्यु हो गई अतः उसके राज्य इन्दौर में अशान्ति एवं अव्यवस्था फैल गई। अंग्रेजों ने इस अवसर का लाभ उठाया। इन्होंने स्वर्गीय होल्कर के दो सहयोगियों—अमीर खां तथा

गफ्फूर खां को अपनी ओर मिला लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि होल्कर के उत्तराधिकारी मल्हारराव होल्कर द्वितीय की स्थिति बहुत खराब एवं कमजोर हो गई।

उपर्युक्त सन्धियों एवं कूटनीतिक चालों द्वारा अंग्रेजों ने युद्ध से पूर्व ही अपनी स्थिति काफी सुदृढ़ कर ली थी और फिर जान-बूझकर मराठा संघ के विभिन्न सदस्यों को ऐसे उकसाया कि वे युद्ध के लिए तैयार हो गए।

घटनाएं (Events)

अंग्रेजों की इस दबाव एवं सन्धियों की नीति से मराठा सरदार अत्यन्त दुःखी हो चुके थे। **अन्त में, तंग आकर पेशवा बाजीराव द्वितीय, अप्पा साहब भौंसले तथा मल्हारराव होल्कर द्वितीय ने सम्मिलित रूप से 1817 ई. में अंग्रेजों के विरुद्ध हथियार उठा लिए।**

(1) पेशवा से युद्ध—पेशवा बाजीराव द्वितीय के लिए पूना की सन्धि असहनीय हो रही थी। अतः मराठा संघ के सदस्यों में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करने वाला वह पहला मराठा सरदार था। उसने पूना के निकट किरकी नामक स्थान पर ब्रिटिश रेजीडेन्सी पर आक्रमण कर दिया और रेजीडेन्सी में आग लगा दी। ब्रिटिश रेजीडेण्ट एल्फिस्टन वहां से भाग गया, लेकिन पुनः जनरल स्मिथ की सहायता से 12 नवम्बर, 1817 ई. को पूना पर अधिकार कर लिया। पेशवा दक्षिण की ओर भाग गया, लेकिन जनरल स्मिथ ने उसका पीछा किया। **अन्त में पेशवा को आत्म-समर्पण करना पड़ा।** लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने उसके साथ बड़ा कठोर व्यवहार किया। पेशवा को आठ लाख वार्षिक पेंशन देकर उसका अधिकांश राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। पेशवा के एक मन्त्री त्रयम्बक राव को आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया, लेकिन इस कठोरतापूर्वक व्यवहार का बदला लेने का प्रयास 1857 ई. में नाना साहब ने किया।

(2) नागपुर के अप्पा साहब भौंसले से संघर्ष—अब हेस्टिंग्ज ने भौंसले को समाप्त करने का निश्चय किया। भौंसले पहले ही जबरदस्ती लादी गई सन्धि से असन्तुष्ट था। अतः उसने इस अन्यायपूर्ण सन्धि का विरोध करने के उद्देश्य से पेशवा की भांति रेजीडेन्सी पर आक्रमण कर दिया, परन्तु अगले ही दिन उसे सीताबल्डी नामक स्थान पर अंग्रेजों ने पराजित कर दिया। **कुछ दिनों बाद नागपुर के एक अन्य युद्ध में उसकी सेना बुरी तरह पराजित हो गई।** भौंसले निराश होकर पंजाब की ओर भाग गया तथा कुछ समय उपरान्त राजस्थान में किसी स्थान पर उसकी मृत्यु हो गई।

(3) होल्कर के साथ संघर्ष—भौंसले के बाद होल्कर शेष रह गया था। मल्हारराव होल्कर अल्पवयस्क था। उसके सैनिक अधिकारियों ने जब पेशवा द्वारा अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध का समाचार सुना तो उन्होंने भी अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। उन्होंने अन्य मराठा सरदारों को सहयोग देने के उद्देश्य से दक्षिण की ओर प्रस्थान किया, किन्तु सर जान मैलकम की सेनाओं ने उन्हें रोककर महीदपुर नामक स्थान पर बुरी तरह पराजित किया। इस पराजय के उपरान्त होल्कर के सैनिक अधिकारियों ने अंग्रेजों से सन्धि की। 1818 ई. **में मन्दसौर नामक स्थान पर दोनों पक्षों में सन्धि हो गई।** इस सन्धि के अनुसार होल्कर ने राजपूत राज्यों तथा अमीर खां पठान के राज्य पर अपना दावा त्याग दिया और सतपुड़ा के दक्षिण का अपना सारा राज्य कम्पनी को दे दिया। इसके अतिरिक्त अपने राज्य में एक ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखना स्वीकार किया।

परिणाम (Results)—इस युद्ध के परिणाम मराठों के लिए अत्यन्त ही घातक रहे। इन मराठा सरदारों के अधिकांश प्रदेशों को अंग्रेजों ने अपने अधिकार में कर लिया तथा उन पर इतने अधिक प्रतिवन्ध लगा दिए गए कि वे अव पूर्ण रूप से शक्तिहीन हो गए। मराठा संघ अव पूर्ण रूप से नष्ट-भ्रष्ट हो गया, क्योंकि इसके सदस्यों से इतने अधिक प्रदेश छीन लिए गए थे। जिससे वे अव कुछ भी करने में असमर्थ थे। इस प्रकार लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने 1818 ई. में लॉर्ड वेलेजली द्वारा आरम्भ किए गए कार्य को समाप्त कर दिया।

मराठों के पतन के कारण
(CAUSES OF THE DOWNFALL OF THE MARATHAS)

(1) संगठन का अभाव—इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मराठों का एक विशाल साम्राज्य था लेकिन इसकी सवसे वड़ी कमजोरी यह थी कि यह सुसंगठित नहीं था। मराठा संघ के विभिन्न सदस्य—पेशवा, सिन्धिया, होल्कर तथा भौंसले आपस में सहयोग करने के स्थान पर आपस में ही संघर्षरत हो गए। **इस प्रकार उन्होंने अपनी वहुत वड़ी शक्ति, जिसका प्रयोग शत्रु के विरुद्ध कर सकते थे, व्यर्थ ही आपस में लड़कर नष्ट कर दी।** अन्तिम पेशवा वाजीराव द्वितीय पर अपना प्रभाव स्थापित करने के उद्देश्य से सिन्धिया तथा होल्कर आपस में ही लड़ पड़े और उनके इस संघर्ष ने अंग्रेजों को मराठा राजनीति में हस्तक्षेप करने का अवसर दिया। इसी पारस्परिक ईर्ष्या एवं मतभेद के कारण सिन्धिया एवं भौंसले के आमन्त्रण पर भी होल्कर ने द्वितीय मराठा युद्ध में मराठों का साथ नहीं दिया और जान-वूझकर एक मौन दर्शक के रूप में तमाशा देखता रहा। निःसन्देह अगले ही वर्ष इसे इसका परिणाम भुगतना पड़ा जवकि उसे अकेले ही अंग्रेजों का सामना करना पड़ा।

(2) केन्द्रीय शक्ति का अभाव—पेशवाओं के, विशेषकर उत्तरकालीन पेशवाओं के अधीन कोई भी ऐसी सुसंगठित केन्द्रीय शक्ति न थी जो सभी मराठा सरदारों को कल्याण के लिए पारस्परिक सहयोग से कार्य करने के लिए वाध्य कर सकती। केन्द्रीय शक्ति का यह अभाव मराठों को वड़ा महंगा पड़ा तथा उनके पतन का प्रमुख कारण वना।

(3) अनिश्चित आर्थिक दशा अथवा आर्थिक विकास की अवहेलना—मराठों के राज्य की सवसे वड़ी कमजोरी यह थी कि उन्होंने अपने विशाल साम्राज्य के आर्थिक विकास पर समुचित ध्यान नहीं दिया इसी कारण उसकी आय के साधन सदैव अनिश्चित रहते थे। आर्थिक स्थिति की ओर भी उन्होंने जरा ध्यान नहीं दिया। इसके परिणाम वहुत वुरे हुए। **वे पैसे की कमी बराबर महसूस करते रहे और इस हालत में जब भी उनके समक्ष पैसों की कमी हुई वे लूट-पाट कर इसकी पूर्ति करने लगे।** मराठों के लिए लूटपाट करना एक मामूली-सी वात हो गयी थी लेकिन इस तरह से आमदनी प्राप्त करके किसी भी राज्य को नहीं चलाया जा सकता है। दूसरी ओर उनका अपना कोई भी प्रदेश उपजाऊ नहीं था, न ही कर लगाने की व्यवस्था का उचित ढंग था। इस प्रकार सुदृढ़ आर्थिक स्थिति न होने की वजह से मराठे दीर्घकाल तक राजनीतिक प्रगति नहीं कर सके।

(4) दोषपूर्ण सैन्य संगठन—मराठों के पतन का एक प्रमुख कारण उनका दोषपूर्ण सैन्य संगठन था। वे लुक-छिप कर करने वाले गुरिल्ला युद्ध में निपुण थे लेकिन खुलकर मैदान में युद्ध करने की कला सें वे पूरी तरह भिज्ञ नहीं थे। यदि गुरिल्ला तरीके से लड़ाई लड़ते रहते तो सम्भव था कि उनकी शक्ति विनष्ट नहीं होती लेकिन वदलती हुई परिस्थिति में यह असम्भव हो गया था। **इस साम्राज्य में एक बहुत बड़ी आवादी निवास करती थी और विदेशी आक्रमण से**

उन्हें बचाना मराठा राज्य का कर्तव्य था। इस तरह का कार्य गुरिल्ला युद्ध से नहीं हो सकता था। मराठों को वाध्य होकर अपनी सामरिक कला में परिवर्तन करना पड़ा जिससे उनकी हार निश्चित हो गयी।

(5) देशी शक्तियों से शत्रुता—मराठे इस समय देश की सवसे शक्तिशाली जाति समझी जाती थी लेकिन अंग्रेजों को देश से वाहर निकालने के लिए उन्हें अन्य जातियों की भी सहायता लेनी चाहिए थी परन्तु मराठों ने ऐसा नहीं किया। वे प्रारम्भ से ही राजपूतों एवं सिक्खों के राज्यों में लूटमार मचाते रहते थे जिससे देशी राज्यों का उन्हें सहयोग मिलना कठिन था। **यदि सभी देशी राज्य मिलकर अंग्रेजों का विरोध करते तो उनकी सफलता निश्चित थी।** किन्तु भारत का यह दुर्भाग्य रहा कि आवश्यकता के समय भी भारतीयों ने कभी भी सम्मिलित होकर देश के संकट का सामना करने का प्रयास नहीं किया। देशी नरेशों ने हमेशा मराठों के विरुद्ध अंग्रेजों की सहायता की जिससे अंग्रेजों को मराठा शक्ति को कुचलने में सुगमता हो गयी।

(6) पानीपत की पराजय—1761 ई. तक मराठों की ख्याति सम्पूर्ण भारतवर्ष में फैल चुकी थी। मुगल सम्राट शाहआलम उनके हाथ की कठपुतली था। अटक के दुर्ग पर केसरिया झण्डा लहराता था और हिन्दू साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न पूर्ण होते प्रतीत हो रहे थे लेकिन ठीक इसी समय इस महान् मराठा साम्राज्य को अफगानिस्तान के शासक अहमद शाह अब्दाली ने पानीपत के युद्ध में पराजित करके भारी आघात पहुंचाया। इस पराजय से एक ओर तो मराठों की प्रतिष्ठा समाप्त हो गयी, **सभी को उनके खोखलेपन का ज्ञान हो गया** तथा दूसरी ओर मराठों एवं मुसलमानों ने पारस्परिक संघर्षों के कारण अपने आपको इतना शक्तिहीन वना लिया कि एक तीसरी शक्ति अर्थात् अंग्रेजों के उत्थान के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया। अतः इसी कारण कहा जाता है कि **"यदि प्लासी ने भारत में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना का बीजारोपण किया तो पानीपत ने उनके पनपने तथा जड़ पकड़ने का कार्य किया।"**

(7) शिथिल प्रशासनिक व्यवस्था—अन्तिम पेशवाओं के काल में मराठों की प्रबन्ध व्यवस्था में शिथिलता आ गयी और उन्होंने जनकल्याण कार्यों की पूर्ण उपेक्षा कर दी। परिणामस्वरूप वे जन-साधारण की सहानुभूति प्राप्त न कर सके, अतः विपत्ति काल में किसी ने भी उनकी रक्षा के लिए कुछ नहीं किया। एडवर्ड के अनुसार, **"मराठों की प्रशासनिक प्रणाली मराठा साम्राज्य के लिए सृजनात्मक न होकर विनाशात्मक अधिक थी।"**

(8) सामन्तशाही अथवा जागीरदारी प्रथा—सामन्तशाही अथवा जागीरदारी प्रथा ने मराठों को दुर्वल वना दिया। इस प्रथा के दोषों को ध्यान में रखकर ही इसे समाप्त करने का प्रयास किया था। परन्तु राजाराव ने इस प्रथा को पुनः प्रचलित कर दिया। ये जागीरदार राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा करके अपने हितों को ही अधिक महत्व प्रदान करते थे तथा केन्द्रीय सत्ता से दूर रहने का प्रयास करते थे। उनके इस प्रकार के कार्यों ने मराठा साम्राज्य को छिन्न-भिन्न करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

(9) राष्ट्रीय आदर्श का परित्याग—शिवाजी ने हिन्दूवाद, बादशाही तथा हिन्दू राज्य स्थापित करने के लिए अपना जीवन बलिदान कर दिया था, परन्तु शिवाजी की मृत्यु के बाद अनेक मराठा सरदारों, विशेषकर इन्दौर के होल्कर ने साम्राज्यवाद के नशे में इस आदर्श को भुला दिया और राजपूतों तथा जाटों पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिए। **पानीपत की पराजय के बाद भी उन्होंने यह शिक्षा ग्रहण नहीं की कि अपने सजातीय राज्यों पर आक्रमण करना उचित**

नहीं। उनकी इस नीति के परिणामस्वरूप एक ओर तो हिन्दू राज्य मराठों के शत्रु हो गए तथा दूसरी ओर राष्ट्रीय संकट के समय भी वे मराठों की सहायता के लिए आगे नहीं आए।

(10) **उत्तरकालीन मराठा सरदारों का नैतिक पतन**—उत्तरकालीन मराठा सरदार शिवाजी के उच्च नैतिक आदर्शों को भूलकर दुराचारी जीवन व्यतीत करने लगे। सैनिक सरदारों ने अपने साथ स्त्रियों को युद्ध-क्षेत्र में ले जाना आरम्भ कर दिया। एस. आर. शर्मा के अनुसार, **''शिवाजी के काल में किसी भी आक्रमण के समय स्त्री को ले जाना एक भीषण अपराध माना जाता था जिसके लिए मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। लेकिन पेशवाओं के काल में यह एक मान्यता प्राप्त फैशन बन गया।''** वास्तव में, उत्तरकालीन मराठा ठीक उत्तरकालीन मुगलों के समान विलासिता के शिकार हो गए थे और इनका पतन भी वैसे ही हुआ जैसे कि उत्तरकालीन आदर्शहीन मुगलों का।

(11) **तोपखाने के लिए विदेशियों पर निर्भरता**—मराठों ने सेना के एक महत्वपूर्ण अंग अर्थात् तोपखाने की पूर्णरूप से उपेक्षा कर दी जिसके फलस्वरूप वे अंग्रेजों का सामना करने में असफल रहे क्योंकि अंग्रेजों के पास भारी तोपखाना तथा उसके चलाने के लिए भली-भांति प्रशिक्षित व्यक्ति थे। **अच्छे-से-अच्छा मराठा सैनिक भी तोपों के सामने ठहर नहीं सका।** मराठों ने जब तोपखाना रखने का प्रयास भी किया तो उन्हें बन्दूकों, तोपों, बारूदों और उन्हें चलाने के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों हेतु विदेशियों पर निर्भर रहना पड़ता था। उन्होंने न तो तोप बनाने का ही प्रयास किया और न ही अपने व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने का प्रयास किया।

(12) **जल-शक्ति की अवहेलना**—मराठों ने भी मुगलों के समान सामुद्रिक शक्ति की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उन्होंने उसकी पूर्ण उपेक्षा थी। निःसन्देह एक मात्र जहाजी बेड़ा ही मराठों की रक्षा नहीं कर सकता था, परन्तु फिर भी अंग्रेजों का सामना करने में उनकी पर्याप्त सहायता अवश्य करता। इस सामुद्रिक शक्ति की अवहेलना के कारण उनका पतन और भी समीप आ गया।

(13) **अंग्रेजों की श्रेष्ठ कूटनीति**—यह बात पूर्ण विश्वास के साथ कही जा सकती है कि मराठों की कूटनीति अंग्रेजों की कूटनीति के सामने असफल रही। अंग्रेजों को युद्ध से पूर्व ही इन बातों का पूर्ण ज्ञान होता था कि मराठों के पास कितनी सेना है। **उनके मार्ग में कौन-कौनसी नदियां और पुल आएंगे तथा उन्हें किस पुल के उड़ाने से रोका जा सकता है।** अंग्रेजों ने विभिन्न देशी भाषाओं का ज्ञान भी प्राप्त कर लिया था और वे हर प्रकार की गोपनीय सूचनाएं अपने अधिकारियों तक पहुंचा देते थे।

(14) **भौगोलिक ज्ञान का अभाव**—युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए मराठों को भौगोलिक ज्ञान भी नहीं था। इस ज्ञान के अभाव में उन्हें युद्धों के समय अनेक सकंटों का सामना करना पड़ जाता था। ठीक इसके विपरीत अंग्रेजों को मराठा प्रदेशों की भौगोलिक स्थिति का पूरा-पूरा ज्ञान था। इस ज्ञान के कारण वे युद्ध में मराठों को आसानी से परास्त कर देते थे।

(15) **महान् मराठा सरदारों की असामयिक मृत्यु**—मराठों के पतन का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि जब मराठों एवं अंग्रेजों के मध्य वास्तविक युद्ध आरम्भ हुआ तो उसके पूर्व ही योग्य तथा अनुभवी मराठा सरदार मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे तथा उनके उत्तराधिकारी अत्यन्त ही निकम्मे, स्वार्थी तथा अयोग्य थे। **अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम ग्यारह वर्षों में मराठा राज्य के अधिकांश योग्य व्यक्ति काल के ग्रास बन गए, यह मराठों का दुर्भाग्य ही था।** 1789 ई. में महान् न्यायाधीश रामशास्त्री की, 1794 ई. में महादजी सिन्धिया तथा

वर्षों में मराठा राज्य के अधिकांश योग्य व्यक्ति काल के ग्रास बन गए, यह मराठों का दुर्भाग्य ही था। 1789 ई. में महान् न्यायाधीश रामशास्त्री की, 1794 ई. में महादजी सिन्धिया तथा हरिवन्त फड़के, 1795 ई. में अहिल्याबाई होल्कर तथा पेशवा माधवराव द्वितीय की, 1797 ई. में तुकोजी होल्कर की, 1799 ई. में परशुराम भाई पटवर्द्धन की तथा 1800 ई. में नाना फड़नवीस की भी मृत्यु हो गयी।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णित अनेक कारणों से एक विशेष एवं सुदृढ़ मराठा साम्राज्य का पतन हो गया।

लॉर्ड हेस्टिंग्ज के सुधार
(REFORMS OF LORD HASTINGS)

लॉर्ड हेस्टिंग्ज केवल साम्राज्य विस्तारक ही नहीं वरन् एक योग्य प्रशासक भी था। उसने सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक अनेक सुधार किए :

(क) **न्यायिक सुधार** (Judicial Reforms)—हेस्टिंग्ज ने निम्नलिखित न्यायिक सुधार किए :

(1) **प्रत्येक थाने में मुन्सिफ की नियुक्ति**—कम्पनी के संचालकों से अनुमति लेकर हेस्टिंग्ज ने प्रत्येक थाने के लिए एक मुन्सिफ नियुक्त किया जो 74 रुपए तक के मुकदमों की सुनवायी करता था। इसके निर्णयों की अपील अदालतों में की जा सकती थी।

(2) **प्रत्येक जिले में सदर अमीन की नियुक्ति**—दीवानी न्यायालय का न्यायाधीश प्रान्तीय न्यायालय की आज्ञा प्राप्त करके सदर अमीनों की नियुक्ति करता था जो 100 रुपए तक के मुकदमों को सुन सकता था, लेकिन 1821 ई. में हेस्टिंग्ज ने यह नियम बनाया कि सदर अमीन 500 रुपए तक के मुकदमों को सुन सकता है, अतः इससे सदर अमीन के अधिकार में वृद्धि हो गई।

(3) **रजिस्ट्रार के कार्य-क्षेत्र को बढ़ाना**—लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने रजिस्ट्रार के अधिकारों को बढ़ा दिया। उसको 200 रुपए तक के मुकदमों की सुनवाई करने का अधिकार दे दिया। दीवानी न्यायालय 500 रुपए से अधिक के मुकदमों को रजिस्ट्रार के यहां भेज सकते थे।

(4) **जिला दीवानी अदालतों का कार्यक्षेत्र निर्धारित करना तथा न्यायाधीशों के पद के लिए योग्यता निर्धारित करना**—जिला दीवानी अदालत में 5,000 रुपए से कम वाले विवादों को प्रस्तुत किया जाना निश्चित हुआ तथा इस धनराशि से अधिक के विवादों को सीधे प्रान्तीय अपील की अदालतों में भेजा जाने लगा 1815 ई. के एक नियम के अनुसार सदर दीवानी न्यायालय के पद पर नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति को 9 वर्ष का न्याय का अनुभव तथा 4 वर्ष तक प्रान्तीय न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य का अनुभव आवश्यक कर दिया गया।

(5) **मजिस्ट्रेटों को दण्ड देने का अधिकार**—लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने मजिस्ट्रेटों को दण्ड देने का अधिकार दे दिया। वह वह अब अपराधियों को 30 बेतों के शारीरिक दण्ड देने तथा सपरिश्रम 2 वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड दे सकता था। इसके अतिरिक्त हेस्टिंग्ज ने 1821 ई. में नियम बनाया जिसके अनुसार माल विभाग के किसी अधिकारी अथवा कलेक्टर को लगान वसूली हेतु मजिस्ट्रेट का अधिकार दे दिया।

(6) **भारतीयों के वेतन में वृद्धि**—लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने न्याय विभाग के समस्त भारतीय अधिकारियों के वेतन में वृद्धि कर दी जिससे भारतीय अधिकारी ईमानदारी से काम कर सकें।

(ख) भू-राजस्व सम्बन्धी सुधार (Revenue Reforms)—हेस्टिंग्ज ने अग्रलिखित सुधार किए :

(1) लगान की मिली-जुली व्यवस्था—इस व्यवस्था के अनुसार किसानों का लगान उसकी भूमि के अनुसार निश्चित किया गया तथा गांव के प्रधान को यह अधिकार दिया गया कि वह लगान वसूल करके उसे सरकारी खजाने में जमा कर दे। इस व्यवस्था को बंगाल में लागू किया गया। इसके साथ-साथ अब कृषकों का लगान गांव के नम्बरदार द्वारा निश्चित किया जाने लगा जिसके फलस्वरूप जमींदारों के अत्याचारों से किसानों को छुटकारा मिल गया।

(2) आगरा तथा अवध में महलवाड़ी व्यवस्था—लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने आगरा तथा अवध में लगान के लिए 'महलवाड़ी प्रथा' को आरम्भ किया, जिसके अनुसार बीस एवं तीस-वर्षीय लगान की व्यवस्था की गई जिसके द्वारा प्रत्येक गांव के द्वारा सामूहिक रूप से लगान कम्पनी के कोष में जमा किया जाता था।

(3) रैय्यतवाड़ी प्रथा—लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने 'रैय्यतवाड़ी प्रथा' को भी आरम्भ किया, जिसमें यह व्यवस्था की गई कि किसान सीधे सरकारी खजाने में लगान जमा करते थे। भूमि पर किसानों को वंशानुगत अधिकार दे दिया गया। किसान को जमीन बेचने का अधिकार भी दे दिया गया। यह प्रथा मद्रास प्रान्त में लागू की गई।

(4) बंगाल कृषक एक्ट, 1822 ई.—लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने लॉर्ड कार्नवालिस के स्थायी बन्दोबस्त को पूर्णतया खत्म कर दिया। 1822 ई. में 'बंगाल कृषक एक्ट' को लागू किया गया, जिसके अनुसार मौसमी किसानों को उनकी जमीन पर पूर्ण अधिकार दे दिया गया, लेकिन यह भी निश्चित किया गया कि किसी विशेष परिस्थिति के लगान वृद्धि नहीं की जा सकती।

(ग) शिक्षा-सम्बन्धी सुधार (Educational Reforms)—लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने अन्य क्षेत्रों की तरह शिक्षा के क्षेत्रों में भी अनेक सुधार किए :

(1) मद्रास तथा बम्बई में पाठशालाएं खुलवाना—लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने मद्रास तथा बम्बई में अनेक पाठशालाओं का निर्माण कराया। इन पाठशालाओं का व्यय सरकारी खजाने से दिया जाता था। इसके अतिरिक्त हेस्टिंग्ज ने अपने स्वयं के निजी कोष से अनेक विद्यालयों का निर्माण कराया।

(2) अंग्रेजी स्कूलों एवं वर्नाक्यूलर स्कूलों की स्थापना—कलकत्ता में अंग्रेजी प्रचार के उद्देश्य से एक कॉलेज तथा कई अंग्रेजी स्कूलों की स्थापना की गई तथा कलकत्ता के ही निकट अनेक वर्नाक्यूलर स्कूलों की स्थापना की गई।

(घ) प्रेस को स्वतन्त्रता प्रदान करना (Liberty of Press)—लॉर्ड हेस्टिंग्ज प्रेस की स्वतन्त्रता का समर्थक था। उसकी राय थी कि जनता की राय जानने का माध्यम समाचार पत्र ही है, अतः समाचार-पत्रों के ऊपर काफी सीमा तक सरकारी नियन्त्रण हटा दिया गया, लेकिन समाचार-पत्रों के मार्गदर्शन के लिए कुछ नियम बना दिए ताकि ऐसे समाचार-पत्र प्रकाशित न हों जिनसे लोकहित की हानि हो। 'समाचार दर्पण' नामक वर्नाक्यूलर समाचार-पत्र का प्रकाशन भी इसी शासन काल में हुआ था।

हेस्टिंग्ज का त्यागपत्र
(RESIGNATION OF HASTINGS, 1823)

'विलियम पॉमर एण्ड कम्पनी' (William Pomar & Company) नामक एक व्यावसायिक संस्था थी। इस संस्था ने हैदराबाद के निजाम को बहुत ऊंची दर पर ऋण दे रखा

था। इस कम्पनी में गवर्नर जनरल का एक रिश्तेदार भी साझेदार था। उसने ऋण देने की आज्ञा दे दी, परन्तु पार्लियामेण्ट ने अपने एक एक्ट द्वारा इस प्रकार के ऋण देने का निषेध कर दिया था। इससे हेस्टिंग्ज की बड़ी बदनामी हुई। अतः 1823 ई. में **हेस्टिंग्ज ने त्याग-पत्र दे दिया** और इंगलैण्ड वापस चला गया।

हेस्टिंग्ज का मूल्यांकन
(ESTIMATE OF HASTINGS)

लॉर्ड हेस्टिंग्ज जिस समय भारत आया उसकी उम्र 60 वर्ष की थी, किन्तु फिर भी उसने आश्चर्यजनक क्षमता का प्रदर्शन किया। उसने अनेक युद्धों में भी भाग लिया। लॉर्ड हेस्टिंग्ज के शासनकाल की प्रमुख विशेषता यह थी कि भारत में कम्पनी की सर्वश्रेष्ठता प्रमाणित हो गई। इसी कारण जे. एस. मिल ने लिखा है, **"जिस योजना की नींव क्लाइव ने रखी तथा जिसको वारेन हेस्टिंग्ज तथा वेलेजली ने कार्यान्वित किया, उसे पूर्ण करने का कार्य हेस्टिंग्ज ने किया"**[1]

प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. लॉर्ड वेलेजली की सहायक सन्धि का मूल्यांकन कीजिए।
2. सहायक सन्धि से आप क्या समझते हैं? इसकी प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए।
3. सहायक सन्धि पर प्रकाश डालिए।
4. लॉर्ड हेस्टिंग्ज के सुधारों पर प्रकाश डालिए।
5. लॉर्ड हेस्टिंग्ज की विदेश-नीति की विवेचना कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लॉर्ड वेलेजली के आगमन के समय भारत की राजनीतिक परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए।
2. सहायक सन्धि की प्रमुख शर्तें बताइए।
3. वेलेजली के समय के प्रमुख युद्धों का वर्णन कीजिए।
4. हेस्टिंग्ज के सुधारों का उल्लेख कीजिए।
5. हेस्टिंग्ज की मराठा-नीति की विवेचना कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. लॉर्ड वेलेजली के बंगाल में गवर्नर-जनरल का कार्य भार ग्रहण करते समय मुगल बादशाह था :
   (अ) शाह आलम (ब) अकबर II
   (स) आलमगीर II (द) अहमदशाह
2. लॉर्ड वेलेजली का समकालीन अवध का शासक था :
   (अ) मुहम्मद अली (ब) सादत अली
   (स) आलमगीर (द) शुजाउद्दौला
3. निम्न में से किस राज्य के साथ सहायक सन्धि नहीं की गई थी :

---

1 **The administration of the Marquess of Hastings may be regarded as the completion of the great scheme of which Clive had laid the foundations and Warren Hastings and Wellesley had reared the super structure. —*J.S Mill.***

4. 'मार्क्विस' की उपाधि किसे प्रदानं की गई थी :
   (अ) कार्नवालिस (व) वारेन हेस्टिंग्ज
   (स) वेलेजली (द) हेस्टिंग्ज
5. पिण्डारियों का दमन किस गवर्नर-जनरल ने किया :
   (अ) कार्नवालिस (व) वारेन हेस्टिंग्ज
   (स) वेलेजली (द) लॉर्ड हेस्टिंग्ज

   [उत्तर—1. (अ), 2. (व), 3. (द), 4. (स), 5. (द)।]

निम्नलिखित वाक्यों में सत्य/असत्य दर्शाइए :

1. वेलेजली 1798 ई. में वंगाल का गवर्नर-जनरल वना।
2. वेलेजली को लॉर्ड मानिंगटन की उपाधि दी गई थी।
3. भारत में सहायक सन्धि का प्रतिपादक लॉर्ड हेस्टिंग्ज था।
4. वेलेजली ने मराठों का दमन किया था।
5. पिण्डारियों का दमन करने में वेलेजली सफल रहा।

[उत्तर—1. सत्य, 2. सत्य, 3. असत्य, 4. असत्य, 5. असत्य।]

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :

1. वेलेजली ने सभी प्रमुख राज्यों को एक..........के नीचे कर दिया।
2. सहायक सन्धि..........के जाले के समान थी।
3. सेगौली की सन्धि...........के साथ हुई थी।
4. पिण्डारियों का मुख्य नेता..........था।
5. हेस्टिंग्ज ने आगरा तथा..........में महलवाड़ी व्यवस्था लागू की।

[उत्तर—1. सहायक छाते, 2. मकड़ी, 3. नेपाल, 4. चीतू, 5. अवध]

6

लॉर्ड विलियम बैंटिंक
[LORD WILLIAM BENTINCK]

लॉर्ड विलियम बैंटिंक (1828 ई.—1835 ई.)
(LORD WILLIAM BENTINCK)

1828 ई. में लॉर्ड विलियम बैंटिंक भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया। बैंटिंक बड़ा ही उदार तथा सुधारवादी व्यक्ति था। वास्तव में वह प्रथम गवर्नर जनरल था, जिसने ब्रिटिश ईस्ट इण्ड़िया कम्पनी को लाभ पहुंचाने के साथ-साथ भारतीय जनता के कल्याण एवं सुख का भी पर्याप्त ध्यान रखा। उसका दृढ़ विश्वास था कि एक अच्छे तथा कुशल प्रशासक का मुख्य कर्तव्य प्रजा के कल्याण का सर्वाधिक ध्यान रखना है। इस आदर्श का अनुसरण करते हुए उसने अपने कार्यकाल में अनेक सामाजिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक सुधार किए। लॉर्ड मैकाले के प्रशंसात्मक शब्दों में, **"बैंटिंक ने प्राच्य स्वेच्छाचारिता में अंग्रेजी स्वतन्त्रता की भावना को भर दिया, वह यह नहीं भूला कि सरकार का उद्देश्य शासितों का कल्याण है। उसने क्रूर रीति-रिवाजों को बन्द किया, अपमानजनक भेदभावों को समाप्त किया, जनता को अपने विचारों को प्रकट करने की स्वतन्त्रता दी। उसकी यही नीति निरन्तर रही कि उसको सौंपे गए लोगों के नैतिक एवं बौद्धिक चरित्र का विकास हो।"**[1]

बैंटिंक के सुधार
(REFORMS OF WILLIAM BENTINCK)

विलियम बैंटिंक सुधारवादी व्यक्ति था। वह पाश्चात्य देशों के उदार तथा सुधारवादी आन्दोलनों से बहुत प्रभावित था। बड़े ही सम्पन्न तथा प्रतिष्ठित परिवार में उसका जन्म हुआ था, अतएव उसका अपना कोई स्वार्थ नहीं था और वह जनसेवा की भावना से ओत-प्रोत था। गवर्नर जनरल होने से पूर्व वह मद्रास का गवर्नर रह चुका था, अतएव वह भारतीयों की आवश्यकताओं से अवगत था तथा उनकी पूर्ति के लिए दृढ़संकल्प था। **ईसाई मिशनरियों ने सुधार के कुछ कार्य भारत में पहले ही आरम्भ कर दिए थे।** इससे बैंटिंक को बड़ा प्रोत्साहन मिला। ब्रिटिश सरकार ने बैंटिंक को भेजा भी सुधार कार्यों के लिए ही था क्योंकि विजय

1 **"Lord William Bentinck infused into oriental despotism the spirit of British freedom, who never forgot the end of government the happiness of the governed; who abolished cruelties, who effaced humiliating distinctions, who gave liberty to the expression of public opinion; whose constant study it was to elevate intellectual and moral character of the nation committed to his charge."**
—Lord Macaulay

कार्य उसके पूर्व गवर्नर पूरा कर चुके थे। बैंटिंक ने अपने इस प्रधान उत्तरदायित्व को बड़े धैर्य तथा साहस के साथ करना आरम्भ किया तथा एक सुधारक एवं संगठनकर्ता के रूप में अमर कीर्ति प्राप्त की। **उनके सुधार कार्यों को निम्न भागों में बांटा जा सकता है :**

आर्थिक सुधार
(FINANCIAL REFORMS)

बैंटिंक के आने से पूर्व कम्पनी वहुत दिनों तक देशी राजाओं के साथ युद्ध करने में त्रस्त रही। इससे कम्पनी को बहुत क्षति उठानी पड़ी तथा उसके कोष को बहुत भारी धक्का लगा। अतएव बैंटिंक ने कम्पनी की आय में वृद्धि तथा व्यय में कमी करने के लिए **निम्नलिखित आर्थिक योजनाएं चलायीं :**

(1) **सैनिक अधिकारियों के भत्तों में कटौती**—व्यय में कमी करने के लिए बैंटिंक ने सर्वप्रथम सैनिकों की संख्या में कमी कर दी, अब सैनिक अधिकारियों के वेतन में तो किसी प्रकार की कटौती नहीं की जा सकती थी, परन्तु भत्तों में कमी अवश्य की जा सकती थी इसलिए लॉर्ड विलियम बैंटिंक ने एक विशेष आदेश जारी करके कलकत्ते के 400 मील के अन्दर-अन्दर नियुक्त सैनिक तथा अधिकारियों का भत्ता आधा कर दिया। इस सुधार से बैंटिंक ने कम्पनी के व्यय में लगभग दो हजार पौण्ड वार्षिक की बचत की।

(2) **अनावश्यक पदों की समाप्ति**—लॉर्ड विलियम बैंटिंक ने व्यय में कमी करने के उद्देश्य से समितियों का गठन किया जिसमें एक सैनिक तथा दूसरी असैनिक थी। इन समितियों से व्यय में कमी करने के लिए सुझाव मांगे गए। इस समिति के सुझाव पर उसने अनेक ऐसे पदों को समाप्त कर दिया जिनके बिना भी कार्य चलाया जा सकता था। इससे पर्याप्त धनराशि की बचत हुई।

(3) **असैनिक विभाग के अधिकारियों के वेतन में कटौती**—कम्पनी के असैनिक विभाग के अधिकारियों को बड़ी ऊंची-ऊंची तनख्वाहें दी जाती थीं जिससे प्रशासकीय विभाग का व्यय बहुत अधिक बढ़ गया था। अब व्यय कम करने के उद्देश्य से बैंटिंक ने इन अधिकारियों के वेतन में कटौती कर दी। इससे भी काफी धनराशि की बचत हुई।

(4) **अनावश्यक न्यायालयों की समाप्ति**—दौरा तथा अपील की अदालतें ऐसी थीं जिनसे कोई लाभ नहीं था केवल सरकार का व्यय बढ़ता था। अतः बैंटिंक ने इन न्यायालयों को समाप्त कर दिया।

(5) **भारतीयों की नियुक्ति से बचत**—लॉर्ड कार्नवालिस ने भारतीयों को ऊंचे पद देने पर रोक लगा दी थी लेकिन बैंटिंक ने इस नियम में परिवर्तन कर दिया, उसने भारतीयों को ऊंचे-ऊंचे पद प्रदान करना आरम्भ कर दिया। चूंकि भारतीय अफसर अंग्रेजों से कम वेतन पर कार्य करने को तैयार हो जाते थे अतएव इस व्यवस्था से खर्च में काफी बचत हो गयी।

(6) **अफीम के व्यापार की उत्तम व्यवस्था करना**—इन दिनों मालवा, बिहार तथा बनारस में अफीम का उत्पादन बहुत अधिक होता था, पुर्तगाली व्यापारी इस अफीम को खरीदकर चीन तथा पूर्वी द्वीप समूह आदि देशों में जाकर बेचते थे तथा काफी पैसा कमाते थे। **बैंटिंक ने अब लाइसेन्स देने की प्रणाली को प्रचलित करके पुर्तगाली व्यापारियों को बीच से हटाने का प्रयास किया।** इसके साथ-साथ अफीम भेजने के मार्ग को भी बदल दिया और अब बम्बई के बन्दरगाह से अफीम भेजने की व्यवस्था की गयी। इससे अंग्रेजी कम्पनी को बहुत अधिक लाभ हुआ।

(7) जागीरों तथा रियासतों का अपहरण—बहुत-सी रियासतों तथा जागीरों को जब्त करके भी बैंटिंक ने कम्पनी की आय में वृद्धि की। अब किसी जागीर या रियासत के मालिक की मृत्यु हो जाती थी और उसके कोई पुत्र नहीं रहता था तो तब उस जागीर अथवा रियासत को जब्त कर लिया जाता था।

(8) कर-मुक्त भूमि पर कर (लगान)—हिन्दू तथा मुसलमान राजाओं ने बहुत-सी जमीन लोगों को माफी में दे दी थी। यह जमीन बिना लगान की थी। इससे कम्पनी को कोई लाभ नहीं होता था। इस प्रकार की भूमि बहुत अधिक थी। अतः बैंटिंक ने इस प्रकार की भूमि की जांच-पड़ताल करवायी तथा उस पर कर लगा दिया। इस प्रकार लगभग 30 लाख रुपए वार्षिक कम्पनी को लाभ होने लगा।

(9) उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) की लगान व्यवस्था—लॉर्ड बैंटिंक ने तत्कालीन उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त की समस्त भूमि का सर्वेक्षण करने के उपरान्त 1833 ई. में राजा टोडरमल के बन्दोबस्त के आधार पर 30 वर्ष के लिए लगान निश्चित कर दिया। इस कार्य से भी कम्पनी की आय में पर्याप्त वृद्धि हुई।

लॉर्ड विलियम बैंटिंक के इन कार्यों का परिणाम यह निकला कि जहां कम्पनी को पहले एक करोड़ रुपए वार्षिक की हानि होती थी वहां अब उसे $1\frac{1}{2}$ करोड़ रुपए वार्षिक का लाभ होने लगा।

प्रशासनिक तथा न्यायिक सुधार
(JUDICIAL & ADMINISTRATIVE REFORMS)

लॉर्ड कार्नवालिस ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की प्रशासनिक व्यवस्था का आधार तैयार किया था और इस समय भी वही प्रशासनिक व्यवस्था चल रही थी, परन्तु अब इस व्यवस्था में विशेषकर न्यायिक व्यवस्था में अनेक दोष दिखायी दे रहे थे। अतः इन दोषों को दूर करने के उद्देश्य से लॉर्ड विलियम बैंटिंक ने इस दिशा में अनेक सुधार किए। इनमें से अधिकांशतः न्याय व्यवस्था से ही सम्बन्धित थे, उसने न्याय व्यवस्था में तीन प्रमुख दोषों **'विलम्ब, अनिश्चितता तथा अधिक व्यय'** (Delay, Uncertainty and Expensive) **को दूर करने के उद्देश्य से निम्न सुधार किए :**

(1) प्रान्तीय न्यायालयों का अन्त—1829 ई. में सिविल मामलों के लिए स्थापित अपील तथा दौरे के न्यायालय कोई उपयोगी कार्य नहीं कर रहे थे। अतः इनको बन्द कर दिया गया। यथार्थ में इस समय ये न्यायालय उन अयोग्य अधिकारियों जिन्हें कोई अन्य कार्य नहीं आता था, के विश्राम-गृह बन गए थे। अतः उनके कार्यों को कमिश्नरों को दे दिया गया। इस योजना के अन्तर्गत बंगाल को 20 डिवीजनों में विभाजित करके प्रत्येक डिवीजन में एक कमिश्नर की नियुक्ति की गयी। इस समय कमिश्नरों के पास न्याय के साथ-साथ पुलिस, माल विभाग-सम्बन्धी अधिकार भी थे।

(2) न्यायाधीशों के अधिकारों में वृद्धि—1829 ई. में एक अधिनियम पारित किया गया। इसके द्वारा जिला सिविल तथा सैशन न्यायाधीशों के अधिकारों में वृद्धि कर दी गयी। अब उन्हें अनेक फौजदारी मुकदमों के अधिकार भी दिए गए। अब उन्हें 2 वर्ष तक सश्रम कठोर दण्ड देने का अधिकार था।

(3) देशी भाषाओं को न्यायालय की भाषा का पद देना—यद्यपि भारत में मुगलों का शासन बहुत वर्षों पहले ही समाप्त हो चुका था, परन्तु अभी भी फारसी को न्यायालय की भाषा होने का गौरव प्राप्त था। अब इस भाषा को न तो न्याय करने वाले और न ही प्राप्त

करने वाले सरलता से समझ पाते थे तथा इसकी उपयोगिता पूर्ण रूप से समाप्त हो चुकी थी। इस कारण अब फारसी के स्थान पर देशी भाषाओं को न्यायालय की भाषा का स्थान प्रदान किया गया।

(4) **कानूनों का नियमबद्ध किया जाना**—लॉर्ड विलियम बैंटिंक के काल में उसकी परिषद् में विधि सदस्य के पद की उत्पत्ति की गयी। इस पद पर मैकाले को नियुक्त किया गया। **लॉर्ड मैकाले ने दण्ड संहिता (Penal Code) तैयार करने की दिशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया।** कानूनों को इस प्रकार एक स्थान पर संग्रहीत करके न्याय प्रणाली में पर्याप्त सुधार हुआ तथा अब न्याय करना भी सरल हो गया।

(5) **भारतीयों की उच्च पदों पर नियुक्तियां**—कार्नवालिस ने बड़ी-बड़ी नौकरियों का द्वार भारतीयों के लिए बन्द कर दिया था जिससे भारतीयों के शिक्षित वर्ग में बड़ा असन्तोष फैल रहा था। अतः **1831 में बैंटिंक ने एक अधिनियम पारित किया।** इसके द्वारा मुन्सिफ तथा सदर अमीन के पद के द्वार भारतीयों के लिए भी खोल दिए गए अर्थात् इन पदों पर अब भारतीयों की भी नियुक्ति की जाने लगी। इस प्रकार बैंटिंक के शासनकाल में नौकरियों के भारतीयकरण के लिए पहला कदम उठाया गया।

(6) **इलाहाबाद में सदर दीवानी न्यायालय तथा सदर निजामत न्यायालय की स्थापना करना**—इस काल तक भारत में अंग्रेजी साम्राज्य पर्याप्त रूप से विस्तृत हो चुका था परन्तु जनता को, विशेषकर उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) की जनता को अभी भी हजारों मील दूर कलकत्ता न्याय पाने हेतु जाना होता था। **बैंटिंक ने जनता के इन कष्टों को अनुभव किया और उनको दूर करने के विचार से इलाहाबाद में एक पृथक् सदर दीवानी अदालत तथा एक सदर निजामत न्यायालय की स्थापना की।** इन न्यायालयों ने 1832 ई. में अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया जिससे उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त के लोगों को पर्याप्त सुविधा मिली।

(7) **जूरी प्रथा (Jury System) को प्रचलित करना**—1832 ई. में एक अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के द्वारा बंगाल में जूरी प्रथा प्रचलित की गयी। इस प्रथा के अन्तर्गत प्रतिष्ठित भारतीयों को यूरोपीय न्यायाधीशों के साथ बैठकर निर्णय देने में न्यायाधीश की सहायता करने का अधिकार प्रदान किया गया।

शिक्षा-सम्बन्धी सुधार
(EDUCATIONAL REFORMS)

भारत में **लॉर्ड विलियम बैंटिंक के काल में शिक्षा-क्षेत्र में भी अनेक महत्वपूर्ण सुधार किए गए :**

(1) **अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना**—**लॉर्ड विलियम बैंटिंक के काल में शिक्षा-सम्बन्धी दो विचारधाराएं थीं। प्रथम विचारधारा के समर्थक एच. एच. विल्सन थे।** उनका तथा उनके सहयोगियों का विचार था कि शिक्षा के लिए स्वीकृत धनराशि भारतीय भाषाओं के माध्यम से भारतीय साहित्य के विकास पर व्यय की जानी चाहिए। **दूसरी विचारधारा के प्रवर्तक सर चार्ल्स ट्रेविलियन थे।** उनका कथन था कि इस धन को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से यूरोपीय साहित्य तथा विज्ञान की शिक्षा पर व्यय किया जाना चाहिए। लॉर्ड मैकाले, जो कि उस समय गवर्नर जनरल की परिषद् के विधि सदस्य थे, उन्होंने इस वाद-विवाद में विशेष रुचि लेकर सर चार्ल्स ट्रेविलियन के विचार का दृढ़तापूर्वक समर्थन किया। राजा राममोहनराय जैसे कुछ भारतीयों ने अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा दिए जाने के विचार का समर्थन

किया। **लॉर्ड विलियम बैंटिंक ने दूसरी विचारधारा का ही समर्थन किया।** सरकार ने 7 मार्च, 1835 ई. को घोषित किया कि अंग्रेजी भाषा ही शिक्षा का माध्यम होगी तथा शिक्षा पर व्यय किया जाने वाला धन अंग्रेजी साहित्य तथा विज्ञान की शिक्षा पर ही व्यय किया जाएगा। वास्तव में अंग्रेजी सरकार ने तीन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर यह निश्चय किया था। प्रथम तो अंग्रेजी भाषा में शिक्षा देने के परिणामस्वरूप छोटे-छोटे पदों, उदाहरणार्थ क्लर्क आदि के पदों के लिए भारतीय प्राप्त हो जाएंगे; दूसरे, व्यय में कमी होगी तथा तीसरे, सैकड़ों भारतीय अंग्रेजी भाषा के समर्थक हो जाएंगे जिसके परिणामस्वरूप भारत में इंगलैण्ड के माल की मांग में वृद्धि होगी।

(2) **कलकत्ता में मेडिकल कॉलेज की स्थापना**—सम्भव है कि अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने के सम्बन्ध में विद्वानों के दो मत हों परन्तु यह बात तो स्वीकार करनी ही होगी कि 1835 ई. में लॉर्ड विलियम बैंटिंक ने एक मेडीकल कॉलेज की स्थापना करके सराहनीय कार्य किया। इस कॉलेज में भारतीयों को पाश्चात्य ढंग पर चिकित्सा-सम्बन्धी शिक्षा दी जाती थी। कालान्तर में अन्य महत्वपूर्ण स्थानों पर कॉलेज स्थापित किए गए जो भारतीयों के लिए अत्यन्त लाभकारी प्रमाणित हुए।

सामाजिक सुधार
(SOCIAL REFORMS)

सम्भव है लॉर्ड विलियम बैंटिंक के आर्थिक, न्याय-सम्बन्धी तथा शिक्षा-सम्बन्धी सुधारों की इस आधार पर आलोचना की जाए कि इन सुधारों के पीछे अंग्रेजों की स्वार्थपरता छिपी थी, परन्तु बैंटिंक के सामाजिक सुधारों को देखते हुए बैंटिंक के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। वास्तव में, इन सुधारों को विलियम बैंटिंक ने मानवीय विचारों से प्रेरित होकर ही किया था। **उसने भारतीय समाज में व्याप्त निम्नलिखित दोषों को दूर किया :**

(1) **सती-प्रथा का निषेध** (Abolition of sati)—हिन्दुओं में सती-प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही थी। इसके अनुसार विधवा होने वाली स्त्री को जीवित ही अपने पति के साथ जल जाना होता था। आरम्भ में यह प्रथा त्याग तथा श्रद्धा की भावनाओं से प्रेरित थी तथा किसी को जबरदस्ती सती होने के लिए बाध्य नहीं किया जाता था, परन्तु बाद में इस प्रथा ने धार्मिक रूप धारण कर लिया। जो स्त्रियां सती नहीं होना चाहती थीं उन्हें परिवार तथा समाज के अन्य लोग दबाव डालकर सती होने के लिए बाध्य करते थे। **अतः इस प्रथा को समाप्त करने के लिए समय-समय पर सम्राट अकबर, पुर्तगाली गवर्नर अल्बुकर्क तथा पेशवाओं आदि ने अनेक कदम उठाए, परन्तु फिर भी यह प्रथा किसी-न-किसी रूप में चलती रही।** लॉर्ड विलियम बैंटिंक कार्यकाल में एक वर्ष की अल्प अवधि में 463 स्त्रियां सती हुई थीं उससे यह अन्याय सहा न गया, उसने इस प्रथा को अत्यन्त निर्मम समझा तथा 1829 ई. में उसने एक नियम बनाकर इस पर पूर्ण नियन्त्रण लगा दिया। इस प्रथा के विरुद्ध कानून बनाकर घोषित किया गया, कि जो भी कोई किसी स्त्री को सती होने के लिए प्रेरित करेगा अथवा उसे सती होने के लिए बाध्य करेगा तो उसे मृत्युदण्ड दिया जाएगा। इस कल्याणकारी कार्य में भारत के महान् समाज सुधारक राजा राममोहन राय ने गवर्नर जनरल के साथ महत्वपूर्ण सहयोग दिया तथा हजारों विधवाओं को सती होने से बचाया। **इस प्रकार बैंटिंक ने हिन्दू समाज के बहुत बड़े अभिशाप को दूर किया।**

(2) ठगी का दमन (Suppression of thaggee)—दूसरी सामाजिक कुप्रथा जिसे बैंटिंक ने दूर किया, ठगी की प्रथा थी। बैंटिंक ने ठगों का दमन करने का दृढ़ निश्चय कर लिया और उसने यह कार्य कर्नल स्लीमैन को सौंप दिया। स्लीमैन ने बड़े ही व्यवस्थित ढंग से कार्य आरम्भ किया। सबसे पहले उसने ठगों के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न किया। फिर उसने ठगों को दण्ड देने के लिए विशेष अदालतों की व्यवस्था करवायी। उसने उन लोगों को जो कि ठगों के बारे में सूचना देंगे, माफ कर देने का वचन दिया। पूरी तैयारी कर लेने के बाद उसने ठगों का पीछा करना आरम्भ किया और उन्हें चारों ओर से घेर लिया। सहस्रों की संख्या में ठग पकड़े गए। कुछ लोगों को उसने सरकारी गवाह बनाया। लगभग 2,000 ठगों को बन्दी बना लिया। इनमें से 1,500 ठगों को मृत्यु-दण्ड दे दिया गया या देश से निष्कासित कर दिया गया। 500 को जबलपुर स्थित सुधार-गृह में भेज दिया गया। यहां उन्हें अनेक प्रकार के कार्य सिखाकर उत्तम नागरिक जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाया गया।

(3) कन्या-वध पर प्रतिबन्ध (Suppression of female infanticide)—इन दिनों राजस्थान के कुछ कबीलों में अत्यन्त घृणास्पद तथा निर्मम प्रथा प्रचलित थी कि वे अपने यहां कन्या का जन्म होते ही उसका वध कर देते थे। लॉर्ड बैंटिंक ने इस प्रथा पर प्रतिबन्ध लगाकर इसका उल्लंघन करने वाले को प्राणदण्ड देने की व्यवस्था की।

(4) नर-बलि का निषेध (Suppression of human sacrifices)—उड़ीसा की कुछ असभ्य जातियां अपने देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए नर-बलि दिया करती थीं। बैंटिंक ने इस प्रकार के कार्य करने वालों के लिए उसी प्रकार की दण्ड-व्यवस्था की, जैसी हत्यारों को दी जाती थी।

(5) दास-प्रथा का निषेध—भारत में दास-प्रथा का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा था। लोग भुखमरी से बचने तथा ऋण चुकाने के लिए अपने बच्चों को और कभी-कभी स्वयं को बेच दिया करते थे। 1832 ई. में बैंटिंक ने एक कानून बनाकर दास-प्रथा का निषेध कर दिया।

(6) हिन्दू उत्तराधिकार कानून में सुधार—हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के अन्तर्गत धर्म परिवर्तन करने वाले व्यक्ति को उसकी पैतृक सम्पति के अधिकार से वंचित कर दिया जाता था। बैंटिंक ने इस कानून में परिवर्तन करके घोषणा की कि धर्म परिवर्तन करने की स्थिति में किसी भी व्यक्ति को उसकी पैतृक सम्पत्ति में भाग प्राप्त करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जाएगा। बैंटिंक के इस कार्य से ईसाई धर्म के प्रचार को पर्याप्त सहयोग मिला।

सार्वजनिक कार्य
(PUBLIC WORKS)

प्रजा की भलाई के विचार से **लॉर्ड विलियम बैंटिंक ने अनेक उपयोगी सार्वजनिक निर्माण के कार्य भी किए :**

(1) लॉर्ड विलियम बैंटिंक ने सर्वप्रथम **यातायात के साधनों की ओर ध्यान दिया।** उसने यातायात व्यवस्था को सुधारने के उद्देश्य से कलकत्ता तथा दिल्ली के बीच एक राजमार्ग का निर्माण करवाया। इसके अतिरिक्त बम्बई तथा आगरा के मध्य एक अन्य राजमार्ग का निर्माण करवाया। इन सड़कों के निर्माण के परिणामस्वरूप व्यापार में आश्चर्यजनक उन्नति हुई।

(2) तत्कालीन उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में सिंचाई के लिए नहरों की बहुत आवश्यकता थी। अतः लॉर्ड विलियम बैंटिंक ने इस प्रान्त में **अनेक नहरों का निर्माण करवाया।**

(3) इस काल में **गंगा नदी में भाप से चलने वाले जहाजों का प्रयोग किया जाने लगा।** इस जहाजरानी के परिणामस्वरूप भारत से देश तथा विदेश का खूब व्यापार होने लगा तथा जनता समृद्धशाली होने लगी।

विलियम बैंटिंक के सुधारों का मूल्यांकन

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि बैंटिंक ने अपने कार्यकाल में अनेक महत्वपूर्ण सुधार किए थे। निःसन्देह उसके अधिकांश सुधार आर्थिक उद्देश्यों से ही प्रेरित थे; परन्तु उससे जनता के सुख और शान्ति में भी वृद्धि हुई। उसने सेवा व्यवस्था से सुधार करके उन्हें भारतीयता का रूप प्रदान किया। उसने अनेक ऐसे पदों को समाप्त कर दिया जो भ्रष्ट अधिकारियों के लिए विश्राम गृह के समान थे। इस प्रकार उसने कम्पनी की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ आधार प्रदान करके कम्पनी की बहुत सेवा की। न्यायिक क्षेत्र में पाये जाने वाले विलम्ब, व्यय तथा अनिश्चितता को दूर करने का प्रयास किया तथा अनेक ऐसे व्यक्तियों की रक्षा की जो काफी समय से बिना मुकदमा चलाए वन्दीगृहों में पड़े हुए थे। **इसी प्रकार उसने ठगी-प्रथा, सती-प्रथा, कन्या-वध तथा नर-बलि आदि सामाजिक दोषों पर प्रतिवन्ध लगाकर अनेक निर्दोष व्यक्तियों के प्राणों की रक्षा की।** सड़कों का निर्माण करके व्यापार तथा कृषि में उन्नति की। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने पर भारतीयों में नवीन चेतना आयी तथा उन्होंने रूढ़िवादी विचारों को त्यागकर वर्तमान विचारधाराओं को अपनाना शुरू कर किया। थामसन तथा गैरेट ने बैंटिंक की अत्यधिक प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है, **"लॉर्ड विलियम बैंटिंक के आने से कई पक्षों में एक नवीन युग का सूत्रपात हुआ। उसका 7 वर्ष का शासनकाल दो उग्र तथा महंगे युद्ध-कालों के मध्य शान्ति का युग था जिसमें वे सुधार सम्भव हो सके जो बहुत समय से कालातीत थे।.........वह शान्ति, छंटनी, सुधार, मुक्त स्पर्धा, मुक्त व्यापार तथा सरकार के अति सीमित क्षेत्र में विश्वास रखता था।"**[1]

लॉर्ड विलियम बैंटिंक की थर्मटन तथा वी. डी. वसु ने आलोचना की है। उन्होंने कहा है कि उसके सम्पूर्ण कार्य स्वार्थपरता से प्रेरित थे तथा उसमें भारतीयों की अपेक्षा अंग्रेजों के कल्याण की भावना अधिक थी परन्तु इस कथन को पूर्णतया स्वीकार नहीं किया जा सकता। सती-प्रथा तथा ठगी पर प्रतिबन्ध लगाने तथा उन्हें समाप्त करने के पीछे न तो लॉर्ड विलियम बैंटिंक का ही अपना कोई स्वार्थ निहित था और न ही इनसे भारतीयों की अपेक्षा अंग्रेजों का ही अधिक कल्याण हुआ। मार्शमैन के शब्दों में, **"लॉर्ड विलियम बैंटिंक के कार्यकाल को भारतीय सुधारों के इतिहास में प्रमुख स्थान प्राप्त है। लॉर्ड रिपन के समान ही उसकी सफलताएं भी शान्ति के क्षेत्र में थीं।"**

प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. विलियम बैंटिंक के सुधारों का मूल्यांकन कीजिए।
2. विलियम बैंटिंक के सुधारों की विवेचना कीजिए।
3. विलियम बैंटिंक के सुधारों के महत्व का मूल्यांकन कीजिए।

1 **"He believed in peace, retrenchment and reform, in free competition, free trade and a strictly limited sphere of state action."**
—Thompson and Garatt, *Rise and Fulfilment of British Rule in India*, p. 317.

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विलियम बैंटिंक द्वारा ठगी का दमन किस प्रकार किया गया था?
2. विलियम बैंटिंक ने सती-प्रथा को किस प्रकार समाप्त किया?
3. विलियम बैंटिंक के द्वारा किए सामाजिक सुधारों का मूल्यांकन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सती प्रथा का उन्मूलन किस वर्ष हुआ :
   (अ) 1827 (ब) 1828
   (स) 1829 (द) 1830
2. सती प्रथा का उन्मूलन किस गवर्नर-जनरल ने किया :
   (अ) वेलेजली (ब) हेस्टिंग्ज
   (स) बैंटिंक (द) डलहौजी
3. 'दास प्रथा' कब प्रतिबन्धित की गई :
   (अ) 1830 ई. (ब) 1832 ई.
   (स) 1835 ई. (द) 1840 ई.

[उत्तर—1. (स), 2. (स), 3. (ब)।]

निम्नलिखित वाक्यों में सत्य/असत्य दर्शाइए :

1. बैंटिंक ने आर्थिक सुधार किए।
2. बैंटिंक ने अनावश्यक न्यायालयों को समाप्त किया।
3. बैंटिंक ने जूरी प्रथा लागू की थी।
4. बैंटिंक ने कलकत्ता में मेडिकल कालेज की स्थापना की थी।

[उत्तर—1. सत्य, 2. सत्य, 3. सत्य, 4. सत्य।]

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1. बैंटिंक के प्रशासन काल में..........शिक्षा व्यवस्था लागू करने का निर्णय लिया गया।
2. बैंटिंक ने..........प्रथा लागू की।
3. बैंटिंक एक..........वादी प्रशासक था।
4. बैंटिंक ने सती प्रथा..........करने हेतु कानून बनाया।
5. कन्या वध पर प्रतिबन्ध हेतु..........ने कानून बनाया।

[उत्तर—1. पाश्चात्य, 2. जूरी, 3. सुधार, 4. प्रतिबन्धित, 5. बैंटिंक।]

7

अंग्रेजों की अफगान-नीति : लॉर्ड ऑकलैण्ड तथा लॉर्ड हार्डिंग

[BRITISH AFGHAN POLICY : LORD AUCK LAND AND LORD HARDINGE]

लॉर्ड ऑकलैण्ड
(LORD AUCKLAND)

लार्ड ऑकलैण्ड 1836 ई. में भारत का गवर्नर-जनरल बना तथा उसने 1842 ई. तक इस पद पर कार्य किया। **लॉर्ड ऑकलैण्ड उदार दल का था, अतः उससे भारत में सुधार किए जाने की आशा भारतीय करते थे।** ऑकलैण्ड ने अपने प्रशासन काल में अनेक सुधार किए।

शिक्षा के क्षेत्र में ऑकलैण्ड ने महत्वपूर्ण सुधार किए। भारत के सरकारी स्कूलों में उसके द्वारा छात्र वृत्तियां प्रदान की गईं तथा प्रारम्भिक शिक्षा में माध्यम भी प्रादेशिक भाषा को ही बनाया गया। **ऑकलैण्ड ने भारतीयों के लिए चिकित्सा शिक्षा की व्यवस्था की तथा बम्बई व मद्रास में मेडिकल कालेज स्थापित किए।**

ऑकलैण्ड के प्रशासन काल में भारत में अकाल पड़ा था, अतः अकाल पीड़ितों की सहायता करने के अतिरिक्त उसने सिंचाई की योजना तैयार की तथा नहरों का निर्माण करवाया। सिंचाई योजना को धन के अभाव तथा अफगान-युद्ध के कारण कार्यान्वित नहीं किया जा सका।

लार्ड ऑकलैण्ड के प्रशासनकाल की प्रमुख घटना प्रथम आंग्ल-अफगान युद्ध थी।

आंग्ल-अफगान सम्बन्ध (The Anglo-Afghan Relations)

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में रूस द्वारा पूरव की दिशा में बढ़ना भारत स्थित अंग्रेजी साम्राज्य के लिए काफी चिन्ता का विषय था। उधर यूरोप में भी बालकान प्रदेशों को लेकर इन दोनों के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। अतः रूस जान-बूझकर अफगानिस्तान और फारस की ओर बढ़ रहा था। इससे रूस के पास भारत पर स्थल मार्ग से आक्रमण करने का मार्ग भी सरल हो रहा था। यद्यपि भारत पर सरलता से रूसी आक्रमण सम्भव न था लेकिन ब्रिटेन को अपने भारत स्थित साम्राज्य की रूसी आक्रमण से सुरक्षा की काफी चिन्ता हो गयी थी। रूस द्वारा भारत पर आक्रमण से भारत की सुरक्षा हेतु दो विचारधाराएं बनीं; पहली, अग्रगामी विचारधारा तथा दूसरी, कुशल अकर्मण्यता की नीति।

पहली विचारधारा के समर्थकों का यह विश्वास था कि भारत पर रूस का आक्रमण निश्चित है अतः भारत स्थित ब्रिटिश सरकार को उसका मुकाबला करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए तथा भारत के सीमावर्ती राज्य फारस एवं अफगानिस्तान से सन्धियां करनी चाहिए। अतः इसके लिए यह आवश्यक है कि अफगानिस्तान में ऐसा शासक हो जो अंग्रेजों की इच्छानुसार कार्य
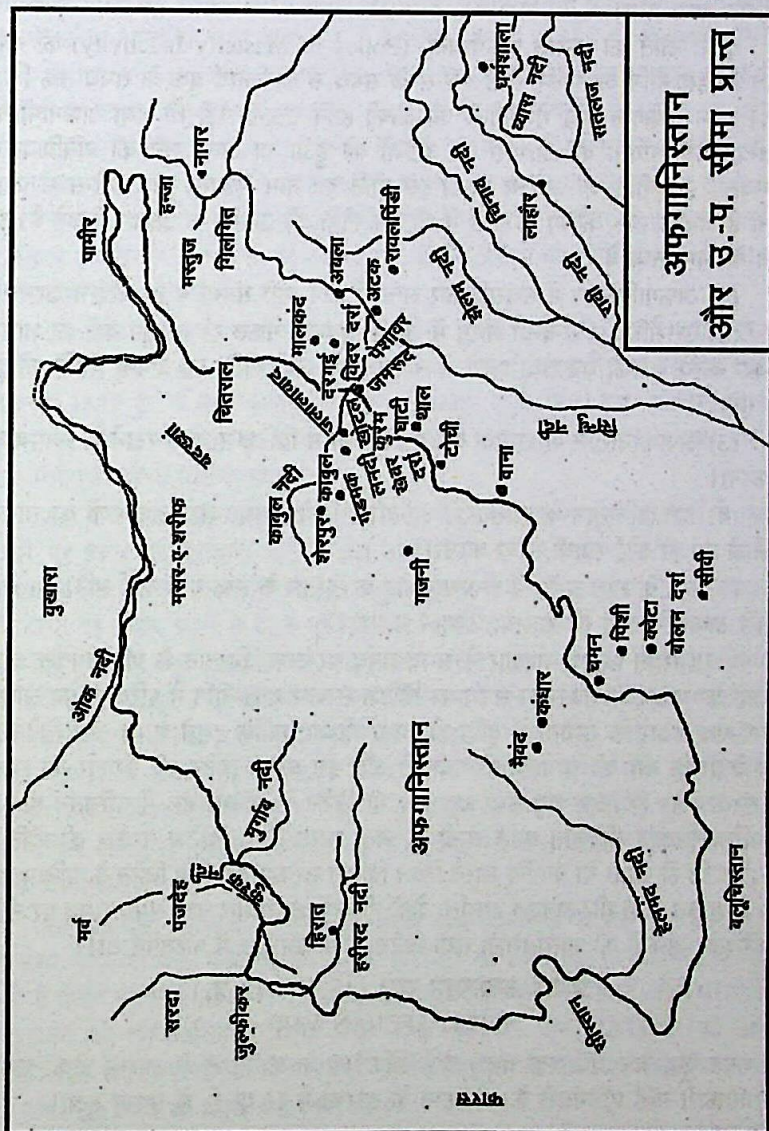
करे अर्थात् अफगानिस्तान के आन्तरिक एवं विदेशी मामलों में पूर्णरूप से अंग्रेजों का अधिकार होना चाहिए। इस कार्य को पूरा करने के लिए, दूसरे शब्दों में अफगानिस्तान के शासक को अपने कब्जे में करने के लिए आवश्यकतानुसार अफगानिस्तान से संघर्ष भी करना चाहिए।

अतः इसी नीति के कारण ही भारत स्थित ब्रिटिश सरकार को अफगानिस्तान के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करना पड़ा जिसके फलस्वरूप अफगानिस्तान के अमीरों से अंग्रेजों को दो युद्ध करने पड़े : प्रथम तथा द्वितीय अफगान युद्ध। इन युद्धों में धन और जन की हानि तो हुई साथ ही अंग्रेजों का अफगानिस्तान के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप अनैतिक एवं अनुचित माना गया।

दूसरी नीति को **'कुशल अकर्मण्यता'** (Policy of Masterly Inactivity) की नीति कहते हैं। इस नीति का पालन लॉर्ड लॉरेन्स के समय से लॉर्ड नार्थ ब्रुक के समय तक किया गया। प्रथम अफगान युद्ध में अंग्रेजों को काफी हानि उठानी पड़ी थी तथा अफगानों की स्वतन्त्राप्रिय भावना का आभास भी अंग्रेजों को हुआ था अतः इसी की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप इस नीति का आरम्भ हुआ। इस नीति का नाम मुख्यतः लॉर्ड लॉरेन्स से जोड़ा जाता है जबकि लॉर्ड केनिंग के पत्रों में भी इस नीति की उत्पत्ति के आधार मिलते हैं। **इस नीति के निम्न तथ्य थे :**

(1) अफगानिस्तान में उत्तराधिकार सम्बन्धी होने वाले संघर्षों में हस्तक्षेप न करना।

(2) उत्तराधिकार सम्बन्धी संघर्ष में जो भी युवराज सफल रहे उसे ही वहां का शासक स्वीकार करके उसकी धन तथा शस्त्रों से सहायता की जाए ताकि वह अपनी स्थिति को दृढ़ कर सके।

(3) अफगानिस्तान के शासक को अपने राज्य में ब्रिटिश राजदूत रखने के लिए बाध्य न करना।

(4) अफगानिस्तान के शासक से आन्तरिक विद्रोहों तथा बाह्य आक्रमणों का सामना करने से पूर्व ही कोई स्थायी सन्धि करना।

(5) रूस के साथ यूरोप में ही प्रभाव-क्षेत्र के विस्तार के सम्बन्ध में कोई सन्धि कर लेना जिससे अफगानिस्तान की समस्या उलझने न पाए।

भारत स्थित ब्रिटिश सरकार ने समय-समय पर अफगानिस्तान के प्रति उपर्युक्त दोनों नीतियों का पालन किया। समय-समय पर ब्रिटिश सरकार द्वारा नीति में परिवर्तन का आधार सूचना एवं संचार के साधनों में वृद्धि हो जाना भी था क्योंकि इससे भारत और ब्रिटेन के बीच बेतार के तार की व्यवस्था हो गयी थी और इस कारण ब्रिटेन की सरकार का भारत की सरकार पर नियन्त्रण बढ़ गया था। जब भी ब्रिटेन के मन्त्रिमण्डल में परिवर्तन होते थे तो अंग्रेज सरकार की नीति बदल जाती थी अतः भारत स्थित ब्रिटिश सरकार की नीति में भी परिवर्तन हो जाता था क्योंकि भारत स्थित ब्रिटिश सरकार की नीति ब्रिटेन के मन्त्रिमण्डल द्वारा संचालित होती थी। अतएव उपर्युक्त दोनों नीतियों का आधार तथा समय-समय पर नीति में परिवर्तन अंग्रेजों की स्वार्थ-सिद्धि तथा ब्रिटेन के मन्त्रिमण्डल में परिवर्तन था।

प्रथम अफगान युद्ध (1839—42 ई.)
(FIRST AFGHAN WAR)

यह युद्ध चार वर्ष तक चला। लॉर्ड ऑकलैण्ड के कार्यकाल से आरम्भ होकर उसके उत्तराधिकारी लॉर्ड एलिनबरो के कार्यकाल के आरम्भ में 1842 ई. में समाप्त हुआ।

कारण
(CAUSES)

प्रथम अफगान युद्ध के लिए अग्रलिखित कारण उत्तरदायी थे :

(1) **दोस्त मुहम्मद की मित्रता को ऑकलैण्ड द्वारा ठुकरा देना**—अंग्रेजों को 18वीं सदी के आरम्भ से ही भारत पर रूस के आक्रमण की आशंका थी अतः अंग्रेजों ने अफगानिस्तान की ओर विशेष ध्यान दिया क्योंकि वह भारत की सीमा में स्थित था। 1835 ई. में लॉर्ड ऑकलैण्ड भारत का गवर्नर जनरल बना। इस समय अफगानिस्तान का अमीर दोस्त मुहम्मद था जो अनेक आन्तरिक तथा बाह्य संकटों में फंसा हुआ था। 1834 ई. में रणजीतसिंह ने उसके पेशावर नगर पर अधिकार कर लिया था। उधर पश्चिम में ईरान सरकार उसके लिए परेशांनी का कारण बनी हुई थी। उत्तर तथा दक्षिण में भी अनेक विद्रोहों के कारण वह परेशान था अतः उपर्युक्त कारणों से दोस्त मुहम्मद अंग्रेजों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था। अतः इसी उद्देश्य से उसने लॉर्ड आकलैण्ड को गवर्नर जनरल का पद ग्रहण करते ही बधाई दी तथा रणजीतसिंह से पेशावर को वापस दिलवाने की प्रार्थना की लेकिन आकलैण्ड ने उसकी प्रार्थना की अवहेलना यह कहकर कर दी कि अंग्रेजों की नीति मित्र देशों के मामले में हस्तक्षेप करने की नहीं है।

(2) **दोस्त मुहम्मद पर रूसी प्रभाव**—अब दोस्त मुहम्मद को पूरी तरह विश्वास हो गया था कि अंग्रेज उसकी सहायता नहीं करेंगे अतः उसने रूस की तरफ मित्रता का हाथ बढ़ाया। दिसम्बर 1837 ई. में रूसी राजदूत विकेविच काबुल पहुंच गया। इस अंवसर पर दोस्त मुहम्मद ने उसका भव्य स्वागत किया। परिणामस्वरूप दोस्त मुहम्मद के रूस तथा ईरान के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गए।

(3) **बर्न्ज मिशन की असफलता**—1837 ई. में ईरानी शासक मुहम्मद मिर्जा ने रूस के इशारे पर हेरात की घेराबन्दी कर दी थी। उन्हीं दिनों अफगानिस्तान से मित्रता करने के उद्देश्य से रूस का एक प्रतिनिधि मण्डल काबुल पहुंच गया। रूसी सरकार का यह विचार था कि हेरात पर प्रभाव पड़ने से दोस्त मुहम्मद रूस से सन्धि कर लेगा। आकलैण्ड रूस की इस चाल को जानकर बहुत सशंकित हो उठा। अतः उसने अफगानिस्तान से मित्रता स्थापित करने के उद्देश्य से एक प्रतिनिधि मण्डल अफगानिस्तान भेजा। इस प्रतिनिधिमण्डल का अध्यक्ष अलैक्जेन्डर बर्न्ज था। अतः दोस्त मुहम्मद तथा अंग्रेजों के बीच सन्धि वार्ता आरम्भ हो गयी। दोस्त मुहम्मद ने वार्ता में इस बात पर विशेष बल दिया कि अंग्रेज उसे रणजीतसिंह से पेशावर वापस दिला दें तथा रूस एवं ईरान के आक्रमण के विरुद्ध दोस्त मुहम्मद की रक्षा करें लेकिन ऑकलैण्ड इस प्रकार का कोई आश्वासन नहीं देना चाहता था। परिणामस्वरूप सन्धि-वार्ता असफल हो गयी।

(4) **28 जून, 1838 ई. की त्रिदलीय सन्धि**—जब ऑकलैण्ड को रूस तथा दोस्त मुहम्मद के मध्य मैत्री का पता चला तो वह काफी सशंकित हो उठा। वह अफगानिस्तान में पुनः अंग्रेजी प्रभाव को स्थापित करना चाहता था। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उसने अपने परामर्शदाता मैक्नाटन को रणजीतसिंह के पास लाहौर भेजा और 26 जून, 1838 ई. को अंग्रेजों, रणजीतसिंह तथा अफगानिस्तान के भूतपूर्व अमीर शाहशुजा के मध्य एक त्रिपक्षीय समझौता हो गया। **इस सन्धि की प्रमुख शर्तें निम्न थीं :**

(i) दोस्त मुहम्मद के स्थान पर शाहशुजा को अफगानिस्तान का अमीर बनाया जाएगा।

(ii) शाहशुजा ने रणजीतसिंह द्वारा विजित अफगानिस्तान के प्रदेशों को रणजीतसिंह के पास ही रहने देना स्वीकार किया।

(iii) शिकारपुर की क्षति के बदले में महाराजा रणजीतसिंह को 50 लाख रुपया क्षतिपूर्ति के रूप में मिलेगा।

(iv) शाहशुजा अंग्रेजों तथा रणजीतसिंह की इच्छा के विरुद्ध न तो किसी विदेशी राज्य से सम्बन्ध स्थापित करेगा तथा न ही किसी विदेशी सेना को अफगानिस्तान से गुजरने देगा।

(v) शाहशुजा ने काबुल में एक अंग्रेज रेजीडेण्ट रखना स्वीकार किया। अतः इस सन्धि के सम्पन्न होते ही रणजीतसिंह तथा अंग्रेज दोनों ही अफगानिस्तान के विरुद्ध युद्ध की तैयारी में जुट गए।

(5) परिस्थितियों में परिवर्तन—जून, 1838 ई. में त्रिपक्षीय सन्धि के उपरान्त परिस्थितियों में तीव्र गति से परिवर्तन आरम्भ हो गया। सितम्बर, 1838 ई. में ईरानियों ने हेरात का घेरा समाप्त कर दिया था तथा लन्दन के दबाव डाले जाने के कारण रूसी राजदूत विकेविच भी काबुल से रूस वापस जा चुका था।

युद्ध प्रारम्भ तथा घटनाएं
(WAR BEGINS)

त्रिपक्षीय सन्धि के अनुसार अंग्रेजों ने सिक्खों तथा शाहशुजा को साथ लेकर 1839 ई. में अफगानिस्तान पर आक्रमण कर दिया। रणजीत ने अंग्रेजी सेनाओं को पंजाब में होकर अफगानिस्तान नहीं जाने दिया। अतः अंग्रेजी सेनाओं को सिन्ध प्रान्त से होकर बोलन दर्रे के मार्ग से आक्रमण करना पड़ा। अंग्रेजी सेनाओं ने अफगानिस्तान पर आक्रमण करके कान्धार, गजनी एवं काबुल पर अधिकार कर लिया। दोस्त मुहम्मद भाग गया अतः शाहशुजा को अफगानिस्तान का नया अमीर बनाया गया लेकिन अफगानिस्तान की जनता शाहशुजा से घृणा करती थी। इसके बाद दोस्त मुहम्मद ने अंग्रेजों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया तथा बन्दी बनाकर कलकत्ता भेज दिया गया।

इस बीच अंग्रेजों की महान् भूलें—अंग्रेजों ने अफगानिस्तान में रहकर भारी भूलें कीं जिनके परिणामस्वरूप वहां विद्रोह हो गया। इस विद्रोह का पहला कारण तो यह था कि अफगान जनता किसी भी ऐसे राजा को स्वीकार नहीं करना चाहती थी जो कि उन पर लादा गया हो। अफगान जनता शाहशुजा की अपेक्षा दोस्त मुहम्मद को अधिक अच्छा समझती थी। अंग्रेजों की दूसरी भूल यह थी कि उन्होंने शाहशुजा का निवास तो बालाहिसार का किला बनाया लेकिन अंग्रेजी सेना को खुले मैदान में ठहरा दिया, अतः यहां पर आक्रमण के समय उनकी रक्षा करना बड़ा कठिन था। इसके अतिरिक्त अंग्रेज अधिकारियों के अनैतिक कार्यों के परिणामस्वरूप भी अफगानों का क्रोध भड़क उठा। अफगानिस्तान में अंग्रेज सेना के निवास से आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो गयी अतः इससे भी अफगान जनता अंग्रेजों की विरोधी हो गयी। 1839 ई. के अन्त में रणजीतसिंह की भी मृत्यु हो गयी, जिससे सिक्ख सेनाएं पंजाब वापस आ गयीं अतः अंग्रेजों की स्थिति और भी संकटपूर्ण हो गयी।

1841-42 ई. का विद्रोह—ऐसी स्थिति में ऑकलैण्ड को अंग्रेजी सेनाएं अफगानिस्तान से वापस बुला लेनी चाहिए थीं, मगर उसने ऐसा नहीं किया अतः अफगानों को जब अंग्रेजी सेना के न हटने का विश्वास हो गया तो उन्होंने 1841 ई. में दोस्त मुहम्मद के पुत्र अकबर खां के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। लगभग 100 व्यक्तियों ने मिलकर बर्न्ज के निवास-स्थान पर आक्रमण करके उसकी हत्या कर दी। इसके शीघ्र पश्चात् मैक्नाटन की भी हत्या कर दी गयी। अफगान सैनिकों ने बेमरु नामक स्थान पर अंग्रेजी सेना पर विजय प्राप्त कर ली।

विवश होकर 1842 ई. के आरम्भ में लगभग 16,500 शस्त्रहीन अंग्रेज सैनिकों ने भारत की ओर प्रस्थान किया। वापसी में इन सैनिकों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

लॉर्ड एलिनबरो का आगमन और युद्ध का अन्त—1842 ई. में लॉर्ड ऑकलैण्ड को इंग्लैण्ड वापस बुलाकर उसके स्थान पर लॉर्ड एलिनबरो को भारत का गवर्नर जनरल वनाकर भेजा गया। अतः अंग्रेजों पर अफगानों द्वारा किए गए आक्रमण का प्रतिशोध लेने के लिए अफगानिस्तान में और सेनाएं भेजीं। इन सेनाओं ने गजनी तथा काबुल पर अधिकार कर लिया। इस विजय के उपरान्त अंग्रेजी सेनाएं भारत वापस आ गयीं। शाहशुजा का अफगान जनता ने वध कर दिया। अतः दोस्त मुहम्मद को पुनः गद्दी पर वैठाया गया।

युद्ध के परिणाम
(RESULTS OF BATTLE)

इस युद्ध के निम्नवत् परिणाम हुए :

(1) प्रथम अफगानिस्तान युद्ध से अंग्रेजों को काफी जन-धन की हानि हुई।

(2) इस युद्ध में शाहशुजा की हत्या कर दी गयी तथा अफगानिस्तान की गद्दी पर पुनः अंग्रेजों के शत्रु (दोस्त मुहम्मद) को आसीन किया गया।

(3) इस युद्ध की पराजय के परिणामस्वरूप अंग्रेजों की प्रतिष्ठा के प्रभाव को बहुत धक्का लगा।

(4) इस युद्ध के उपरान्त अंग्रेजों तथा अफगानों के बीच कटुता में वृद्धि हुई।

लॉर्ड ऑकलैण्ड की अफगान नीति की आलोचना
(CRITICISM OF THE AFGHAN POLICY OF LORD AUCKLAND)

ऑकलैण्ड की अफगान नीति की सभी इतिहासकारों ने निन्दा की है। इन्नेस (Innes) के अनुसार, **"भारत के इतिहास में यह युद्ध पूर्णतया सबसे अधिक मूर्खतापूर्ण युद्ध था।"**

(1) अनुचित आक्रमण—नैतिक रूप से यह युद्ध अनुचित था। ऑकलैण्ड ने स्वयं दोस्त मुहम्मद से कहा था कि, **"अंग्रेजी सरकार की नीति स्वतन्त्र राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करने की नहीं है"** लेकिन उसने फिर भी अफगानिस्तान पर हस्तक्षेप किया जो पूर्णतया अनुचित था।

(2) धन-जन की अपार हानि—अंग्रेजों को इस अनावश्यक युद्ध पर अपार धनराशि व्यय करनी पड़ी इसके साथ-साथ बहुत बड़ी संख्या में उसकी सेना भी नष्ट हो गयी। एक अनुमान के अनुसार अंग्रेजों को इस युद्ध में 15 खरब पौण्ड स्टर्लिंग व्यय करने पड़े तथा 20 हजार सैनिकों की वलि देनी पड़ी।

(3) यह युद्ध अपने उद्देश्य की प्राप्ति में भी असफल रहा—विशाल मात्रा में जन-धन की हानि के बाद भी अंग्रेज इस युद्ध में अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में असफल रहे। अंग्रेज पहले तो स्वयं ही अफगानिस्तान पर आधिपत्य स्थापित करना चाहते थे या फिर अपने किसी मित्र को अफगानिस्तान की गद्दी पर बैठाना चाहते थे लेकिन अफगानिस्तान की गद्दी पर पुनः दोस्त मुहम्मद बैठ गया।

(4) अंग्रेजों की महान् मूर्खतापूर्ण भूल—अफगानों जैसी स्वतन्त्रताप्रिय जाति पर दोस्त मुहम्मद के स्थान पर शाहशुजा जैसे व्यक्ति को जबर्दस्ती अफगानों की इच्छा के विरुद्ध उनका शासक बनाना अंग्रेजों की महान् भूल थी, क्योंकि अफगान जनता शाहशुजा से बहुत घृणा करती थी।

(5) ऑकलैण्ड द्वारा सिन्ध के अमीरों के साथ की गयी सन्धि (1832 ई.) का उल्लंघन—1832 ई. में अंग्रेजों ने अमीरों के साथ सन्धि की थी कि अंग्रेजी सेनाएं सिन्ध प्रदेश से होकर नहीं जाएंगी तथा न ही सिन्ध प्रान्त से होकर कोई युद्ध सामग्री ही ले जायी जाएगी। लेकिन सात वर्ष की अल्प अवधि में ही अंग्रेजों ने अपने आश्वासन का उल्लंघन कर दिया।

(6) ऑकलैण्ड में चातुर्य का अभाव—अफगानिस्तान पर आक्रमण करते समय ऑकलैण्ड ने बुद्धिमानी का परिचय नहीं दिया। ऑकलैण्ड से दोस्त मुहम्मद मित्रता को पुरस्कार के रूप में पेशावर का प्रदेश प्राप्त करना चाहता था। सम्भव है कि ऑकलैण्ड रणजीतसिंह पर तनिक दबाव डालता तो वह पेशावर का प्रदेश छोड़ने को सहमत हो जाता क्योंकि इस प्रदेश पर अपना नियन्त्रण बनाए रखने में रणजीतसिंह को बहुत व्यय करना पड़ रहा था।

जो लोग भारतीय मामलों के विषय में राय देने योग्य थे उन सभी ने इस युग की निन्दा की। बैंटिंक, एलफिंस्टन और वैलेजली सभी ने इसे बुरा कहा। ड्यूक ऑफ वैलिंग्टन ने कहा था कि **"यदि अफगानिस्तान में सरकार बनाने का प्रयत्न किया गया तो यह शाश्वत युद्ध होगा।"** इसी प्रकार 1837 ई. में कमाण्डर-इन-चीफ सर हेनरी फेन (Sir Henry Fane) ने कहा था कि "सतलज के पार पश्चिम में जाना हमारी सैनिक दुर्बलता को बढ़ाएगा। यदि आप साम्राज्य बढ़ाना चाहते हो तो अवध, ग्वालियर और शेष मराठा प्रदेशों में बढ़ाओ। ....पश्चिम को अकेला छोड़ दो।"

वास्तव में, एक राजनीतिक अपराध से स्वयं दूसरे अपराध उत्पन्न होते हैं। अंग्रेजी सेना का सिन्ध को लांघकर शिकारपुर, सक्कर और करांची पर अधिकार करना सिन्ध के अमीरों से मित्रता का उल्लंघन था। जे. ए. आर. मेरियट ने इस नीति को **'मूर्खता, अज्ञानता तथा घमण्ड का सम्मिश्रण'** बताया था। स्मिथ ने भी इस विषय में लिखा, **"लॉर्ड ऑकलैण्ड में सत्य को जानने की बुद्धि नहीं थी और वह अपने अयोग्य परामर्शदाताओं की बातों में आ गया।"**

प्रथम तथा द्वितीय अफगान युद्धों के बीच अंग्रेजों तथा अफगानों के सम्बन्ध (कुशल अकर्मण्यता की नीति का पालन)

लॉरेन्स (1864 ई.—1869 ई.) ने अफगानिस्तान के प्रति जिस नीति का अनुसरण किया, इतिहास में उस नीति को 'कुशल अकर्मण्यता' की नीति कहा जाता है। लॉरेन्स के उत्तराधिकारी वायसरायों—लॉर्ड मेयो तथा नार्थ ब्रुक ने भी इसी नीति का अनुसरण किया। इस नीति का तात्पर्य यह था कि यथासम्भव अफगानिस्तान के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न किया जाए तथा जो कोई भी वहां अपनी सत्ता स्थापित करने में सफल हो जाए उसे आर्थिक तथा युद्ध सामग्री की यथासम्भव सहायता प्रदान की जाए ताकि वह रूसी तथा ईरानी दबाव से अपनी रक्षा कर सके। सर्वप्रथम लॉर्ड आकलैण्ड ने अफगानिस्तान के प्रति उग्र नीति अपनायी। लॉर्ड आकलैण्ड के पश्चात् लॉर्ड एलिनबरो से लेकर लॉर्ड लारेन्स तक जितने भी वायसराय आए सभी ने अफगानिस्तान के प्रति हस्तक्षेप तथा निष्पक्षता की नीति का अनुकरण किया, परन्तु इस 'कुशल अकर्मण्यता' की नीति की वास्तविक रूपरेखा लॉर्ड लॉरेन्स ने ही तैयार की तथा अफगानिस्तान के सम्बन्ध में लॉर्ड मेयो तथा लॉर्ड नार्थ ब्रुक ने भी इस नीति को अपने कार्य का आधार बनाया। यह नीति पूर्ण अकर्मण्यता अथवा मूक-दर्शक बने रहने की नीति नहीं थी वरन् अफगानिस्तान के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करते हुए, वहां घटित होने वाली प्रत्येक घटना पर कड़ी नजर रखने की नीति थी।

लॉर्ड लॉरेन्स ने दृढ़तापूर्वक कुशल अकर्मण्यता की नीति का पालन किया। 1863 ई. में दोस्त मुहम्मद की मृत्यु के बाद उसके 16 पुत्रों में उत्तराधिकार का युद्ध आरम्भ हो गया। उस समय लॉर्ड लॉरेन्स ने किसी भी विशेष प्रत्याशी की सहायता करना अस्वीकार कर दिया। दोस्त मुहम्मद के सोलह पुत्रों में से तीन पुत्रों—शेरअली, अफजल खां तथा मुहम्मद आजम खां आदि ने एक के बाद एक लॉर्ड लॉरेन्स से सहायता के लिए प्रार्थना की, परन्तु लॉर्ड लॉरेन्स ने किसी का भी साथ देना अस्वीकार कर दिया। इस संघर्ष में जो विजयी हुआ उसने उसे ही मान्यता दे दी, परन्तु इस संघर्ष में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेना अस्वीकार कर दिया। अतः 1864 ई. में उसने शेर अली को, 1866 ई. में अफजल खां को तथा 1867 ई. में मुहम्मद आजम खां को काबुल का शासक स्वीकार कर लिया और 1868 ई. में शेरअली अपने सभी विरोधियों को पराजित करके अफगानिस्तान की गद्दी पर बैठा तो लॉर्ड लॉरेन्स ने पुनः उसे अफगानिस्तान का शासक स्वीकार कर लिया। इस अवसर पर उसने शेरअली को 60,000 पौण्ड तथा 3,500 रायफलों का उपहार भेजा तथा अपनी नीति को पुनः एक बार स्पष्ट किया। **लॉरेन्स ने कहा** मेरे विचार में काबुल के अमीरों के साथ किसी रक्षात्मक सन्धि के प्रस्ताव को दृढ़तापूर्वक अस्वीकार करते हुए हमें उसे सावधानीपूर्वक यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि हमारी बाह्य आक्रमणों से उसके प्रदेशों की रक्षा में रुचि है तथा यदि वह अपने कर्तव्यों का पूरा-पूरा पालन करेगा तो हम उसकी स्वतन्त्रता का समर्थन करने को तैयार हैं, परन्तु इसके करने का ढंग हमारी इच्छा पर निर्भर रहेगा।

लॉरेन्स ने रूसी आक्रमण के संकट की भी अवहेलना नहीं की थी। वह इंग्लैण्ड तथा रूस के बीच मध्य एशिया के अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्र के सीमांकन पर कोई-न-कोई समझौता कर लेने के पक्ष में था। वह रूस को अफगानिस्तान से सेनाएं ले जाने से रोकने के पक्ष में नहीं था क्योंकि इससे एक ओर तो अफगान नाराज हो जाते तथा दूसरी ओर विरोधी देश में रूसी सेनाओं को रोकना भी कठिन था। वह तो अपनें साम्राज्य के अन्दर रहकर ही दृढ़तापूर्वक रूसी आक्रमण का सामना करने के पक्ष में था। **अगले दो वायसरायों—लॉर्ड मेयो तथा लॉर्ड नार्थ ब्रुक ने भी लॉर्ड लॉरेन्स की 'कुशल अकर्मण्यता' की नीति का ही पालन किया।** उन्होंने भी अफगानिस्तान के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करते हुए वहां के अमीर से मित्रता बनाए रखने का प्रयास किया। 1869 ई. में लॉर्ड मेयो के शासनकाल में अम्बाला में अफगानिस्तान के अमीर शेरअली का भव्य स्वागत करने के उद्देश्य से एक दरबार आयोजित किया गया। **शेरअली इस समय निम्न आश्वासन प्राप्त करने के उद्देश्य से भारत आया था :** (i) निश्चित सन्धि करने, (ii) निश्चित वार्षिक अनुदान प्राप्त करने, (iii) आवश्यकता पड़ने पर सैनिक एवं शस्त्रों की सहायता का निश्चित आश्वासन प्राप्त करने, (iv) अपने वंश की अंग्रेजी सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त करने, तथा (v) अपने छोटे एवं प्रिय पुत्र अब्दुल्ला जान को अपना उत्तराधिकारी स्वीकार कराने, आदि। लेकिन लॉर्ड मेयो इनमें से किसी भी आश्वासन को देने के लिए तैयार नहीं था क्योंकि इसका अर्थ होता अफगानिस्तान के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करना। अतः उसने अमीर का भव्य स्वागत किया तथा उसे नैतिक सहायता का आश्वासन दिया तथा अमीर को 60,000 पौण्ड की विशाल धनराशि का अनुदान देकर टाल दिया। अमीर नैतिक आश्वासनों के वायदे तथा इस धनराशि से सन्तुष्ट नहीं हुआ, यद्यपि रूस की निरन्तर प्रगति के कारण वह भयभीत था, परन्तु सन्तोष प्रकट करने के अतिरिक्त उसके पास अन्य कोई रास्ता नहीं था।

लॉर्ड मेयो के बाद लॉर्ड नार्थ ब्रुक (Lord North Brook) गवर्नर जनरल बना। उसने भी 'कुशल अकर्मण्यता' की नीति का अनुसरण किया। नार्थ ब्रुक के कार्यकाल में ही 1873 ई. में अमीर शेरअली का विशेष दूत नूर मुहम्मद भारत आया, उसने वायसराय नार्थ ब्रुक से शिमला में भेंट की तथा रूस के बढ़ते हुए खतरे से उसे अवगत कराया लेकिन नार्थ ब्रुक इंग्लैण्ड में ग्लैडस्टोन की उदार सरकार से प्रभावित होकर रूस के विरुद्ध अफगानिस्तान को किसी निश्चित सहायता का आश्वासन न दे सका। कालान्तर में इंग्लैण्ड की सरकार में परिवर्तन आया। अब ग्लैडस्टोन के स्थान पर डिजरैली जैसे कट्टर साम्राज्यवादी के हाथ में सत्ता आ गयी। अतः लॉर्ड नार्थ ब्रुक को अमीर के साथ एक निश्चित सन्धि करने का आदेश मिला। नार्थ ब्रुक इस नीति का पालन करने के लिए तैयार नहीं हुआ अतः उसने त्यागपत्र दे दिया। अपनी नवीन अग्रगामी नीति का पालन करने के उद्देश्य से डिजरैली ने लॉर्ड लिटन को भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा। इस प्रकार 'कुशल अकर्मण्यता की नीति' का समय समाप्त हुआ और अफगानिस्तान के प्रति पुनः अग्रगामी नीति अपनायी गयी।

कुशल अकर्मण्यता की नीति अपनाए जाने के कारण
(CAUSES OF ADOPTING OF POLICY OF MASTERLY INACTIVITY)

कुशल अकर्मण्यता की नीति का अनुसरण निम्न कारणों से किया गया :

(i) **1855 ई. की सन्धि (दोस्त मुहम्मद तथा अंग्रेजों के बीच)**—लॉर्ड डलहौजी के समय में अमीर दोस्त मुहम्मद तथा अंग्रेजों के बीच एक सन्धि सम्पन्न की गयी। इस सन्धि के अन्तर्गत अंग्रेजी सरकार ने दोस्त मुहम्मद को यह आश्वासन दिया कि वह अफगानिस्तान की अखण्डता का सम्मान करेगी तथा इसके बदले में दोस्त मुहम्मद ने यह स्वीकार किया था कि **''वह ब्रिटिश कम्पनी के मित्रों का मित्र तथा शत्रुओं का शत्रु रहेगा।''** अतः दोस्त मुहम्मद की मृत्यु के बाद अंग्रेजों ने विशेषकर लॉर्ड लॉरेन्स ने स्वर्गीय अमीर को दिए गए आश्वासन को पूरा करना उचित समझा।

(ii) **दोस्त मुहम्मद की चेतावनी**—मृत्यु से पूर्व दोस्त मुहम्मद ने लॉर्ड लॉरेन्स को यह चेतावनी दी थी कि उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्रों के मध्य होने वाले उत्तराधिकार के युद्ध में अंग्रेजों को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए तथा उन्हें परस्पर लड़ते रहने देना चाहिए और जो भी शासक बने उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। अतः लॉर्ड लॉरेन्स तथा उसके उत्तराधिकारियों ने दोस्त मुहम्मद के कहे अनुसार ही कार्य करना हितकर समझा।

(iii) **कान्धार मिशन का प्रस्ताव**—1855 ई. की सन्धि के बाद लॉर्ड डलहौजी ने 1857 ई. में ईरानियों के विरुद्ध हेरात के घेरें में दोस्त मुहम्मद की विशेष सहायता की। अंग्रेजों ने ईरानियों का अच्छी तरह सामना करने के लिए अमीर को 12 लाख रुपए की धनराशि अनुदान में दी और इस धन का सही उपयोग हो रहा है अथवा नहीं इस बात का पता लगाने के लिए एक मिशन अफगानिस्तान (कान्धार) भेजा जिसे '**कान्धार मिशन**' कहा जाता है। यात्रा के दौरान इस मिशन ने अपनी रिपोर्ट इन शब्दों में प्रस्तुत की, **''तत्कालीन शासक को चाहे वह कोई भी व्यक्ति क्यों न हो, मान्यता देकर तथा अफगानिस्तान के मामलों में कम-से-कम रुचि लेकर उस देश के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करके, किसी भी वर्ग का समर्थन न करके वरन् शुद्ध हृदय से उन्हें अपने कार्यों को शुद्ध कर देने के लिए छोड़कर ही अपने उद्देश्य की प्राप्ति की जा सकती है।''** अतः लॉर्ड लॉरेन्स तथा उसके सहयोगियों ने अफगानिस्तान के प्रति अपने सम्बन्ध स्थापित करते समय 'कान्धार मिशन' के सुझावों का पालन किया।

(iv) अफगानों के नाराज हो जाने की आशंका—लॉर्ड लॉरेन्स इस बात को जानता था कि अफगानिस्तान में किसी भी सदस्य की सहायता करना न केवल अंग्रेजों के लिए ही वरन् उस सदस्य के लिए भी हानिकारक होगा जो कि किसी विदेशी शक्ति की सहायता से शासक वनेगा। वह शाहशुजा के समान वदनाम हो जाएगा तथा उसकी स्थिति भी पर्याप्त रूप से कमजोर रहेगी। अफगान लोग किसी भी विदेशी शक्ति के हस्तक्षेप को सहन नहीं करेंगे। लॉर्ड लॉरेन्स इस तथ्य से भी अवगत था कि अफगानिस्तान पर सर्वप्रथम आक्रमण करने वाला ही शत्रु समझा जाएगा चाहे वह अंग्रेज हों अथवा रूसी। वाद में जो वहां जाएगा वह मित्र अथवा सहायक शक्ति के रूप में देखा जाएगा।

(v) रूस के हस्तक्षेप की सम्भावना में कमी होना—लॉर्ड लॉरेन्स को यह पूर्ण विश्वास था कि यदि अंग्रेज अफगानिस्तान के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे तो रूस को भी पूर्ण नैतिक शक्ति से वहां हस्तक्षेप करने से रोका जा सकता है।

कुशल अकर्मण्यता की नीति की आलोचना
(CRITICISM OF THE POLICY OF MASTERLY INACTIVITY)

अनेक इतिहासकारों ने कुशल अकर्मण्यता की नीति की आलोचना भी की है तथा **इसमें निम्नांकित दोष पाए जाते हैं :**

(क) दुर्बल नीति—आलोचकों का विचार है कि यह दुर्बल एवं उत्साहहीन नीति थी। इस नीति के अनुसार यदि अंग्रेजों ने एक पक्ष का समर्थन किया तो अवश्य ही रूस दूसरे पक्ष का समर्थन करेगा। लेकिन इस प्रकार की आलोचना करते समय यह भुला दिया जाता है कि अंग्रेज स्वयं हस्तक्षेप न करके रूस को भी ऐसा न करने के लिए अधिक जोर से कह सकते थे। इसके अतिरिक्त लॉर्ड लॉरेन्स ने यदि किसी भी दावेदार का समर्थन किया होता तो वह किसी भी आधार पर रूस अथवा ईरान को किसी अन्य दावेदार का समर्थन करने से नहीं रोक सकता था। अतः यह कहा जा सकता है कि लॉर्ड लॉरेन्स ने अपनी इस नीति से अफगानिस्तान में होने वाले उत्तराधिकार के युद्ध को अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष में परिवर्तित नहीं होने दिया।

(ख) तटस्थता अत्यन्त कठिन—कुछ आलोचकों का यह भी मानना है कि इस नीति का पालन करना अत्यन्त कठिन था। 1867 ई. में जब शेरअली के विरोधियों ने ईरान तथा रूस से सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया तो विवश होकर लॉर्ड लॉरेन्स ने घोषित किया था कि यदि ईरान ने हेरात पर अधिकार करने का प्रयास किया तो ब्रिटिश सरकार बाध्य होकर प्रत्यक्ष रूप से कावुल के अमीर का समर्थन करेगी, परन्तु यदि ऐसा करने पर लॉरेन्स रूसियों तथा ईरानियों के अफगानिस्तान में हस्तक्षेपों को रोकने में सफल रहा तो निःसन्देह यह उसका प्रशंसात्मक कार्य था।

(ग) इस नीति ने विद्रोहों को प्रोत्साहित किया—आलोचकों का यह भी मानना है कि इस नीति ने विद्रोहों को प्रोत्साहन दिया। जो कोई भी उत्तराधिकार के युद्ध में विजयी होता था अंग्रेज उसे ही कावुल का राजा स्वीकार कर लेते थे। अतः अमीर राजा के पद को प्राप्त करना भाग्य का खेल समझने लगे क्योंकि उन्हें मालूम था कि विजयी होने पर उन्हें पूर्ण मान्यता प्राप्त हो जाएगी। परन्तु यह बात स्पष्ट नहीं हो पाती है कि यदि अंग्रेज स्वयं किसी एक पक्ष का समर्थन न करें तथा न ही किसी बाहरी शक्ति को हस्तक्षेप करने दें तो उनकी मान्यता या अमान्यता से अफगानिस्तान की राजनीति पर क्या असर पड़ता।

(घ) अंग्रेजों ने अमीर को अपना विश्वस्त मित्र बनाने का अवसर खो दिया—आलोचकों का यह भी मानना है कि यदि अंग्रेजों ने अपने प्रतिद्वन्द्वियों को पराजित करने में शेरअली की मदद की होती तो शीघ्र ही सफलता मिल जाती तथा वह अंग्रेजों का मित्र बन ज़ाता लेकिन अंग्रेजों ने बार-बार उसकी सहायता की याचना को अस्वीकार करके अमीर को अपना अच्छा मित्र बनाने का अवसर खो दिया। स्वयं शेरअली ने भी अंग्रेजों की नीति को स्वार्थपूर्ण कहा था। परन्तु सम्भवतः शेरअली को यह ज्ञान नहीं था कि हस्तक्षेप की नीति न केवल अंग्रेजों के लिए वरन् उसके लिए भी हानिकारक थी। प्रथम अफगान युद्ध द्वारा यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शाहशुजा को अफगानिस्तान का शासक बनाने में सहायता करना दोनों के लिए कितना घातक सिद्ध हुआ। इसी कारण लॉरेन्स तथा उसके साथी व्यर्थ में ही अफगानिस्तान के आन्तरिक मामलों में उलझना नहीं चाहते थे।

(ङ) इस नीति ने रूस को उत्साहित किया—कुछ आलोचकों का यह भी मानना है कि अंग्रेजों की तटस्थता की नीति के फलस्वरूप ही रूस को अफगानिस्तान तथा भारत की ओर बढ़ने का प्रोत्साहन मिला। अतः उसने (रूस ने) 1866 ई. में बुखारा में, 1873 ई. में समरकन्द तथा खीबा पर विजय प्राप्त कर ली परन्तु यदि अंग्रेज रूस को अफगानिस्तान से होकर जाने में रोकने का प्रयत्न करते तो इससे और उलझन में फंस जाते क्योंकि एक तो उन्हें अफगानिस्तान से संघर्ष करना पड़ता, दूसरा अपने क्षेत्र से दूर संघर्ष करने पर उन्हें काफी परेशानियां उठानी पड़तीं। अतः लॉरेन्स तथा उसके साथी रूस को लन्दन से ही दबाव डलवाकर रोकने के पक्ष में थे और यदि रूस अफगानिस्तान पर आक्रमण कर भी देता तो वह आक्रमणकारी समझा जाता और अफगानों की रक्षा करने वाले अंग्रेज उनके लिए मित्र समझे जाते।

अतः उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि लॉर्ड लॉरेन्स, लॉर्ड मेयो एवं लॉर्ड नार्थ ब्रुक की कुशल अकर्मण्यता की नीति एक सतर्कता तथा बुद्धिमत्तापूर्ण नीति थी।

लॉर्ड लिटन और द्वितीय अफगान युद्ध
(LORD LYTTON AND SECOND AFGHAN WAR)

1876 ई. में लॉर्ड लिटन के वायसराय बनकर आने पर अफगानिस्तान के प्रति अपनायी गयी नीति में निश्चयपूर्वक परिवर्तन आया। वह **बैन्जामिन डिजरैली** (1874-80 ई.) की रूढ़िवादी सरकार का मनोनीत व्यक्ति था। उदारवादी दल के अधीन अनिश्चित और संदिग्ध नीति के स्थान पर उसने एक उत्साहपूर्वक विदेश नीति अपनायी। डिजरैली की नीति **'गौरवपूर्ण पार्थक्य'** (Proud reserve), **वैज्ञानिक सीमाएं** (Scientific frontiers) और **प्रभाव-क्षेत्रों** (Spheres of influence) को बनाए रखने की थी। वह एशिया तथा यूरोप में रूस की बढ़ती हुई शक्ति को रोकना चाहता था। डिजरैली अफगानिस्तान के समस्त सम्बन्धों को अनिश्चित स्थिति में नहीं रखना चाहता था। लिटन को भारत में निश्चित आदेश देकर भेजा गया था कि वह अफगानिस्तान के अमीर के साथ **'अधिक निश्चित, समानान्तर तथा व्यावहारिक सन्धि'** करे तथा अफगानिस्तान में एक अंग्रेज रेजीडेण्ट भेजे, लेकिन अनेक कारणों से बाध्य होकर अफगान जनता अपने देश में अंग्रेज रेजीडेण्ट रखने को तैयार न थी अतः लॉर्ड लिटन को अफगानिस्तान के साथ एक युद्ध करना पड़ा।

युद्ध के कारण
(CAUSES OF THE BATTLE)

द्वितीय अफगान युद्ध के कारण निम्नवत् थे :

(1) **अफगान अमीर द्वारा अपने देश में अंग्रेज रेजीडेण्ट रखने को तैयार न होना**—लॉर्ड लिटन अफगानिस्तान से सन्धि करना चाहता था। अतः उसने 1873 ई. में अमीर शेर अली द्वारा प्रस्तुत सभी शर्तें स्वीकार कर लीं। इन शर्तों के बदले में लिटन शेर अली से एक शर्त मनवाना चाहता था कि शेरअली अफगानिस्तान में एक अंग्रेज रेजीडेण्ट रखने की अनुमति दे दे परन्तु शेरअली इस शर्त को मानने के लिए तैयार न हुआ क्योंकि उसे आशंका थी कि कहीं ब्रिटिश रेजीडेन्सी अफगानिस्तान में अंग्रेजों के अधिकार की पृष्ठभूमि तैयार न कर ले। साथ ही उसे यह भी भय थां कि अंग्रेज रेजीडेण्ट रखकर उसे रेजीडेण्ट की बातें स्वीकार करनी पड़ेंगी जिससे उसकी स्थिति कमजोर हो जाती।

(2) **लॉर्ड लिटन की धमकी की नीति**—लॉर्ड लिटन शेरअली द्वारा उसकी शर्त स्वीकार न करने पर उत्तेजित हो उठा अतः वह धमकियों से काम करने लगा। उसने अमीर शेरअली को चेतावनी दी कि "**रूस और ब्रिटिश साम्राज्य के बीच अफगानिस्तान की स्थिति लोहे के दो बर्तनों के बीच मिट्टी की हण्डिया के समान है, यदि शेरअली हमारा मित्र रहेगा तो इंग्लैण्ड की सैन्य शक्ति का लौहचक्र (ring of iron) उसके चारों ओर फैल जाएगा और यदि हमारा शत्रु बनेगा तो हम उसे सरकण्डे के समान तोड़कर रख देंगे।**"

(3) **अंग्रेजों द्वारा क्वेटा (Quetta) पर अधिकार**—1876 ई. में लॉर्ड लिटन ने बड़ी चातुर्यता के साथ कलात के खान एवं उसके सामन्तों के मध्य चल रहे संघर्ष में हस्तक्षेप किया और एक सन्धि द्वारा क्वेटा पर अंग्रेजी संरक्षण स्थापित करने के अधिकार प्राप्त कर लिए। क्वेटा, कान्धार को जाने वाले सीधे बोलन दर्रे के मुहाने पर स्थित है। प्रथम अफगान युद्ध के समय अंग्रेजों ने इसी दर्रे से अपनी सेनाएं भेजकर कान्धार पर आक्रमण किया था। अतः क्वेटा पर अंग्रेजों का अधिकार सुनकर अमीर शेरअली काफी क्रुद्ध हो उठा।

(4) **पेशावर सम्मेलन की असफलता**—अफगानिस्तान में ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखने के उद्देश्य से 1877 ई. में पेशावर में एक सम्मेलन आयोजित किया गया। ब्रिटिश पक्ष की ओर से सर ल्युस पैली ने भाग लिया। शेरअली का प्रतिनिधि नूर मुहम्मद था, लेकिन यह सम्मेलन अपने उद्देश्य को प्राप्त न कर सका। इस सम्मेलन की असफलता का मुख्य कारण था ब्रिटिश प्रतिनिधि द्वारा अंग्रेज रेजीडेण्ट रखने के प्रश्न पर दृढ़ रहना तथा नूर मुहम्मद द्वारा इसे स्वीकार न करना।

(5) **अफगानिस्तान में रूसी राजदूत का आगमन (जून 1878 ई.)**—1876-77 ई. में रूस ने टर्की को पराजित करके उस पर सेन स्टीफेनो की अपमानजनक सन्धि लाद दी। इस सन्धि की कुछ शर्तें यूरोपीय राष्ट्रों विशेषकर इंगलैण्ड के हितों के विरुद्ध थीं अतः रूस पर इस सन्धि पर पुनर्विचार करने हेतु दबाव डाला गया। अतः रूस को विवश होकर यूरोपीय राष्ट्रों के सम्मुख आत्म-समर्पण करना पड़ा परन्तु अपने इस अपमान का दोषी इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री डिजरैली को मानता था। अतः इंग्लैण्ड पर दबाव डालने हेतु रूस ने एक दूत ताशकन्द से काबुल को ठीक उसी दिन भेजा जिस दिन सेन स्टीफेनो की सन्धि पर पुनर्विचार के लिए यूरापीय राष्ट्रों का सम्मेलन आरम्भ हुआ था। शेरअली ने रूसी दूत का विरोध किया लेकिन शेरअली को रूस ने चेतावनी दी कि यदि रूसी दूत को किसी प्रकार की हानि पहुंची तो

उसके लिए शेरअली को दोषी ठहराया जाएगा और यदि उसने रूसी राजदूत को अफगानिस्तान जाने से रोका तो उसके विरुद्ध उसके ही भतीजे अब्दुल रहमान को खड़ा कर दिया जाएगा जो कि पर्याप्त समय से ताशकन्द में एक रूसी पेन्शनर के रूप में रह रहा है। अतः शेरअली विवश हो गया, रूसी राजदूत को अफगानिस्तान जाने दिया तथा उससे एक रक्षात्मक सन्धि भी कर ली।

इसके बाद लॉर्ड लिंटन ने भी शेरअली को एक पत्र लिखकर अफगानिस्तान में एक ब्रिटिश राजदूत रखने की मांग की तथा यह भी मांग की कि शेरअली बिना अंग्रेजों की अनुमति के किसी भी विदेशी शक्ति से सम्पर्क स्थापित न करे। अमीर शेरअली ने ब्रिटिश मिशन एवं राजदूत का स्वागत करने की बात स्वीकार नहीं की।

(6) **अफगानिस्तान में अंग्रेजों के मिशन को स्वीकृति न मिलना**—अगस्त 1878 ई. में अमीर शेरअली ने लॉर्ड लिटन का पत्र प्राप्त किया दुर्भाग्य से इन्हीं दिनों अमीर के प्रिय पुत्र अब्दुल्ला जान का देहान्त हो गया। अतः शेरअली पत्र का कोई उत्तर न दे सका। लिटन ने अमीर के शोक की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और नेविल चेम्बरलेन के नेतृत्व में एक मिशन काबुल भेज दिया। लेकिन अफगान अधिकारियों ने अली मस्जिद नामक चौकी से इस मिशन को आगे नहीं बढ़ने दिया। अतः ब्रिटिश मिशन पेशावर वापस आ गया। लॉर्ड लिटन ने इसे अंग्रेज जाति का अपमान समझा अतः वह शेरअली को इस अपमान की सजा देने का अवसर ढूंढ़ने लगा।

(7) **लॉर्ड लिटन द्वारा शेरअली को चुनौती**—लिटन ने 2 नवम्बर, 1878 ई. को एक चुनौती भेजकर शेरअली से मांग की कि वह 20 नवम्बर तक क्षमा याचना कर ले तथा हेरात (Herat) में एक ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखने के लिए सहमत हो जाए या फिर अंग्रेजी आक्रमण का सामना करने के लिए तैयार हो जाए। शेरअली का उत्तर लिटन को बहुत देर से अर्थात् 30 नवम्बर, 1878 ई. को प्राप्त हुआ लेकिन तब तक अंग्रेजी सेनाएं पूर्वी अफगानिस्तान को प्रस्थान कर चुकी थीं।

युद्ध का आरम्भ तथा घटनाएं
(WAR BEGINS)

चुनौती का अन्तिम तारीख तक उत्तर न पाने पर लॉर्ड लिटन ने अंग्रेजी सेना को आक्रमण का आदेश दे दिया। अतः 21 नवम्बर, 1878 ई. को ब्रिटिश सेनाओं ने तीन ओर से बोलन, खैबर, खुर्रम के दर्रों से अफगानिस्तान पर आक्रमण कर दिया। शेरअली ने रूसी तुर्किस्तान के राज्यपाल से सहायता मांगने का अनेक बार प्रयास किया लेकिन उसे एक ही उत्तर मिला कि बर्लिन सन्धि के कारण रूस अफगानिस्तान की सहायता नहीं कर सकता है अतः वह अंग्रेजों से सन्धि कर ले। शेरअली चिन्तित होकर रूसी तुर्किस्तान की ओर भाग गया जहां उसकी मृत्यु हो गयी। भागने से पूर्व शेरअली अपने पुत्र याकूब खां को बन्दीगृह में डाल गया था।

गण्डमक की सन्धि
(TREATY OF GANDMAK, 1879)

शेरअली के भागने पर लॉर्ड लिटन ने इसके बन्दी पुत्र याकूब खां को ही उसका उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप मई 1879 ई. में अंग्रेजों एवं याकूब खां के बीच

एक सन्धि हो गयी जिसे 'गण्डमक की सन्धि' कहा जाता है। इस सन्धि की प्रमुख धाराएं निम्नलिखित थीं :

(क) याकूब खां ने काबुल में एक स्थायी ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखना तथा हेरात एवं अन्य सीमावर्ती नगरों में अंग्रेज एजेण्ट रखना स्वीकार किया।

(ख) उसने यह भी स्वीकार किया कि वह अंग्रेजों से परामर्श किए बिना किसी भी विदेशी शक्ति से अपना सम्पर्क स्थापित नहीं करेगा।

(ग) याकूब खां ने खुर्रम दर्रे पर भी अंग्रेजों का नियन्त्रण स्थापित कराया तथा बोलन दर्रे के निकट पिशीन (Pishin) तथा सिबी (Sibi) नामक दो जिले अंग्रेजों को दे दिए।

(घ) उपर्युक्त शर्तों के बदले में ब्रिटिश सरकार ने अमीर को 6 लाख रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया तथा यह आश्वासन भी दिया कि विदेशी आक्रमण के समय भारत सरकार उसकी धन, सैनिकों एवं युद्ध-सामग्री द्वारा यथासम्भव सहायता करेगी।

गण्डमक की सन्धि लॉर्ड लिटन की अफगान नीति की सफलता की चरम सीमा मानी जाती है। उस समय लिटन ने गर्वपूर्ण शब्दों में कहा कि **"जिस प्रकार हमने शेरअली को पीटा है उससे अफगान लोग हमारा और भी आदर करेंगे।"** इसके साथ ही डिजरैली ने अत्यन्त गर्वपूर्वक कहा था, **"हमने भारतीय साम्राज्य के लिए एक वैधानिक तथा उपयुक्त सीमा प्राप्त कर ली है।"**

अंग्रेज रेजीडेण्ट की हत्या—अंग्रेजों की यह विजय चिरस्थायी नहीं रही। याकूब खां अंग्रेजों की मदद से अफगानिस्तान का शासक बना था अतः अफगान जनता न तो उसका आदर करती थी और न ही उसके प्रति स्वामीभक्त ही था। अतः अफगान सेना ने विद्रोह कर दिया और 3 सितम्बर, 1879 ई. को काबुल स्थित ब्रिटिश रेजीडेन्सी में आक्रमण करके ब्रिटिश रेजीडेण्ट कैवेगनरी के साथ-साथ उसके समस्त अंगरक्षकों की हत्या कर दी। याकूब खां ने रेजीडेण्ट की रक्षा करने का कोई प्रयास नहीं किया। लॉर्ड लिटन यह जानकर काफी क्रोधित हुआ। अतः उसके आदेश पर अंग्रेजी सेनाएं पुनः अग्रसर हुईं। जनरल रॉबर्ट्स ने पुनः काबुल पर अधिकार कर लिया। याकूब खां को बन्दी बनाकर देहरादून (भारत में) भेज दिया गया जहां कुछ समय बाद उसका देहान्त हो गया। लिटन ने अफगानिस्तान के टुकड़े-टुकड़े करने की योजना बनायी परन्तु उधर इंग्लैण्ड में अप्रैल 1880 ई. में ग्लैडस्टोन की उदारवादी सरकार सत्ता में आ गयी अतः लॉर्ड लिटन ने त्यागपत्र दे दिया।

वायसराय पद पर रिपन की नियुक्ति—लॉर्ड लिटन के त्यागपत्र देने पर ग्लैडस्टोन ने लॉर्ड रिपन को भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भारत भेजा। लॉर्ड रिपन ने भूतपूर्व अमीर शेरअली के भतीजे अब्दुर्रहमान को काबुल के अमीर के पद पर इस शर्त पर स्वीकार किया कि अंग्रेजों के परामर्श के बिना किसी भी विदेशी शक्ति से सम्पर्क स्थापित नहीं करेगा। अंग्रेज रेजीडेण्ट रखे जाने की मांग का परित्याग कर दिया गया। अफगानिस्तान के छोटे-छोटे टुकड़े करने की नीति भी त्याग दी गयी। अंग्रेजों ने अब्दुर्रहमान की हर तरह से मदद की ताकि वह अंग्रेजों का मित्र बना रहे।

युद्ध के परिणाम
(RESULTS OF BATTLE)

इस युद्ध के अग्रलिखित परिणाम हुए :

(1) अब्दुर्रहमान को अफगानिस्तान का नया अमीर घोषित किया गया तथा अंग्रेजों ने उसे 12 लाख रुपया वार्षिक देना भी स्वीकार किया।

(2) नए अमीर अब्दुर्रहमान ने पिशीन तथा सिबी के दोनों जिले अंग्रेजों के पास ही रहने दिए।

(3) नए अमीर ने यह भी स्वीकार किया कि वह बिना अंग्रेजों के परामर्श के किसी भी विदेशी शक्ति से सन्धि नहीं करेगा।

(4) इस युद्ध के परिणामस्वरूप लॉर्ड लिटन की ख्याति को पर्याप्त धक्का लगा तथा 1880 ई. में कुछ सीमा तक इंग्लैण्ड में डिजरैली के मन्त्रिमण्डल के पतन के लिए भी द्वितीय अफगान युद्ध उत्तरदायी था। इतिहासकार पी. ई. रॉबर्ट्स के अनुसार, "**किसी सीमा तक समकालीन विचार में द्वितीय अफगान युद्ध लॉर्ड लिटन की राजनीतिज्ञ के रूप में ख्याति के लिए कब्र ही प्रमाणित हुआ तथा किसी भी अन्य बात की अपेक्षा 1880 ई. को शक्तिशाली अनुदारदलीय मन्त्रिमण्डल के पतन का प्रमुख कारण बना।**"

लॉर्ड लिटन की अफगान नीति की आलोचना
(CRITICISM OF THE AFGHAN POLICY OF LORD LYTTON)

लिटन की अफगान नीति की सभी लोगों ने नैतिक तथा राजनीतिक दोनों ही दृष्टियों से आलोचना की है। वास्तव में लिटन को अफगान चरित्र का रत्ती भर भी ज्ञान नहीं था। उसने उन लोगों को वश में करने का प्रयत्न किया जो अपनी स्वाधीनता को बहुत महत्व देते थे।

(1) सर्वप्रथम विद्वानों का तर्क है कि इस युद्ध का कोई औचित्य ही नहीं था, यह व्यर्थ में ही लड़ा गया था। अफगानिस्तान के अमीर शेरअली पर आरोप था कि उसने अपने देश में रूसी राजदूत का स्वागत किया है। सर्वप्रथम शेरअली द्वारा रूसी राजदूत का स्वागत करना यह कथन ही गलत है तथा जब रूसी राजदूत वापस चला गया तो अफगानिस्तान पर आक्रमण करने का यह कारण भी समाप्त हो गया।

(2) यह कहा जाता है कि अमीर की इच्छा के विरुद्ध लॉर्ड लिटन ने ब्रिटिश मिशन को जबर्दस्ती अफगानिस्तान भेजकर महान् भूल की क्योंकि शेरअली एक स्वतन्त्र शासक था। इंग्लैण्ड अथवा रूस से सम्बन्ध स्थापित करना उसकी इच्छा पर निर्भर था।

(3) वी. ए. स्मिथ के अनुसार, "**लिटन की विदेश नीति गम्भीरता से सोची गयी तथा दक्षता से कार्यान्वित की गयी थी परन्तु उसमें एक अपवाद था कि काबुल में एक स्थायी अंग्रेजी दूत रखना एक ऐसा कार्य था जिसका फल केवल सर्वनाश था।**" और यदि लिटन अंग्रेजी राजदूत काबुल में रखने में सफल हो भी जाता तो रूस में इसकी प्रतिक्रिया आवश्यक थी जिसके लिए उसे सेना काबुल तक ले जानी पड़ती और जिसका भार पुनः भारत सरकार पर ही पड़ता।

(4) लिटन अफगानिस्तान को शक्तिहीन तथा निर्बल बनाना चाहता था, परन्तु वह अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति में असफल रहा।

(5) कुछ विचारकों का यह भी कहना है कि लॉर्ड लिटन ने प्रथम अफगान युद्ध की पराजय से कोई शिक्षा ग्रहण नहीं की। उसने अपनी उग्रवादी नीति का अनुसरण करके अंग्रेजों को जान व माल की भारी क्षति पहुंचायी।

(6) कुछ लोगों का विचार है कि लिटन तो इंग्लैण्ड के तत्कालीन प्रधानमन्त्री डिजरैली के हाथों की कठपुतली था और उसकी नीति का निर्धारण डिजरैली की इच्छा पर निर्भर होता था। लेकिन वास्तविकता कुछ और ही है, लॉर्ड क्रेनब्रुक को डिजरैली ने एक पत्र में लिखा

था, "लॉर्ड लिटन से कहा गया था कि वह रूस में अपने विरुद्ध पत्र का उत्तर मिलने तक प्रतीक्षा करे। मेरे पास अपने विचार के समर्थन में अच्छे तर्क थे अतः मैं अपनी बात पर दृढ़ था, उसने हमारी आशा की अवहेलना की। मुझे तत्कालीन भारत सचिव लॉर्ड सैलिसबरी ने आश्वासन दिया था कि किसी भी परिस्थिति में खैबर दर्रे पर आक्रमण का प्रयास नहीं किया जाएगा।" एक अन्य पत्र में डिजरैली ने सैलिसबरी को लिखा था, "यदि लिटन चुप रहता और हमारी आज्ञा मानता तो मुझे इसमें कोई आशंका नहीं कि शेरअली भी रूस के सुझाव के अनुसार अधिक विवेक से काम लेता।"

इस प्रकार अफगानिस्तान से द्वितीय युद्ध आरम्भ करने का पूर्ण श्रेय लॉर्ड लिटन को है। अन्त में यही कहा जा सकता है कि लॉर्ड लिटन ने अफगानिस्तान के प्रति उग्र नीति अपनाकर न केवल अपने ही पतन को आमन्त्रित किया, वरन् यह इंग्लैण्ड की अनुदारदलीय सरकार के पतन का कारण भी बना। लेकिन लिटन की आलोचना करने के बावजूद भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि द्वितीय अफगान युद्ध के परिणाम प्रथम अफगान युद्ध से अधिक हितकर थे। इतिहासकार डाडवैल के अनुसार, "यद्यपि इस युद्ध पर विशाल धनराशि व्यय हुई तथा असंख्य सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए, परन्तु रूस की ओर आकर्षित अमीर को देश से निष्कासित कर दिया गया, उसके स्थान पर अंग्रेज समर्थक अमीर सिंहासनासीन हुआ। इसके साथ ही रूस की महत्वाकांक्षाओं पर भी कुछ नियन्त्रण लग गया। कलात के खान पर अंग्रेजों का नियन्त्रण स्थापित हो गया तथा पिशीन और सिवी के दो महत्वपूर्ण जिलों का विलय करके विलोचिस्तान नामक नए प्रान्त का निर्माण किया गया। अत्यधिक सैनिक महत्व के नगर जहां से कान्धार के लिए भी मार्ग जाता है, क्वेटा पर भी अधिकार कर लिया गया।"

तृतीय अफगान युद्ध : पंचदेह का मामला
(THIRD AFGHAN WAR : PANJDEH INCIDENT)

रूस तीव्र गति से मध्य एशिया की ओर बढ़ रहा था अतः इंग्लैण्ड का चिन्तित होना स्वाभाविक था। जब रूस ने अफगानिस्तान की सीमा के अति समीप मर्व (Merv) नामक स्थान पर 1884 ई. में अधिकार कर लिया तो इंग्लैण्ड अत्यन्त भयभीत हो उठा। वह इस बात के लिए प्रयत्नशील था कि रूस और अफगानिस्तान के मध्य सीमा निर्धारण हो जाए। **लेकिन रूस एवं अफगानिस्तान के मध्य सीमा निर्धारित करते समय दोनों देशों में 'पंचदेह' नामक स्थान पर मतभेद हो गया जिसने उग्र रूप धारण कर लिया अतः दोनों देशों के मध्य युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गयी।** इस समय अफगानिस्तान का अमीर अब्दुर्रहमान अंग्रेजों का मित्र था अतः रूस एवं अंग्रेजों में सीधा संघर्ष होने की सम्भावना हो गयी थी लेकिन लॉर्ड डफरिन की कुशलता तथा सबसे बढ़कर अब्दुर्रहमान के व्यावहारिक ज्ञान के कारण युद्ध का भीषण संकट टल गया। अफगानिस्तान के अमीर को इस बात का ज्ञान था कि युद्ध की स्थिति में उसका देश बरबाद हो जाएगा। इस प्रकार अब्दुर्रहमान ने अफगानिस्तान की इंग्लैण्ड तथा रूस के संघर्ष से रक्षा करने के विचार से घोषणा कर दी कि वह निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि पंचदेह उसके राज्य का अंग है अथवा नहीं। उसने यह भी कहा कि यदि उसकी किसी अन्य प्रदेश से क्षतिपूर्ति कर दी जाए तो वह पंचदेह पर अपना दावा छोड़ देगा। इस प्रकार एक भीषण संघर्ष होते-होते टल गया। रूस, भारत, इंग्लैण्ड तथा अफगानिस्तान के बीच पर्याप्त विचार-विमर्श के उपरान्त जुलाई 1887 ई. में अफगानिस्तान की उत्तरी सीमा

के सम्बन्ध में समझौता हो गया। पंचदेह पर रूस का अधिकार ही स्वीकार किया गया, परन्तु एक अन्य दर्रे (जुल्फिकार दर्रे) पर अफगानिस्तान का अधिकार स्वीकार किया गया।

निःसन्देह पंचदेह के प्रश्न पर संघर्ष टल गया, परन्तु उसके परिणाम अत्यन्त महत्वपूर्ण रहे। रूस के साथ होने वाले इस संघर्ष की सम्भावना के कारण भारतीय सरकार पर विशेष आर्थिक प्रभाव पड़ा। भारतीय शासकों के सहयोग से अंग्रेजी सरकार द्वारा **'इम्पीरियल सर्विस ट्रुप्स'** (Imperial Service Troops) की स्थापना की गयी। अंग्रेजों ने उस कठिन समय में अफगानिस्तान के अमीर का जो साथ दिया था उसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों तथा अब्दुर्रहमान की मित्रता और भी घनिष्ठ हो गयी। इस उद्देश्य को सामने रखकर रावलपिण्डी में एक भव्य समारोह का आयोजन करके अमीर का भव्य स्वागत किया गया।

परन्तु रूस ने दक्षिण तथा पूरब की ओर प्रसार जारी रखा और 1895 ई. में उसने पामीर पर अधिकार कर लिया। अन्त में 1895 ई. के **एंग्लो-रसियन कन्वेंशन** (Anglo-Russian Convention) के अनुसार ऑक्सन नदी को दक्षिणी सीमा स्वीकार कर लिया गया अतः हेरात में रूस का प्रसार रुक गया। इसके बाद रूस जापान के साथ (1905 ई.) युद्ध में उलझ गया। 1907 ई. में आंग्ल-रूसी समझौता हो गया, जिससे रूस तथा इंग्लैण्ड के मध्य पुनः मधुर सम्बन्ध स्थापित हो गए।

परन्तु दोनों देशों ने इस समझौते में अमीर हबीबुल्लाह की स्वीकृति नहीं ली। अतः आंग्ल-अफगान सम्बन्ध पुनः टूटने की स्थिति में पहुंच गए। प्रथम विश्व-युद्ध में जर्मनी की प्रेरणा पर अमीर ने भारत-अफगान सीमा पार कर भारत पर आक्रमण कर दिया परन्तु वह परास्त हो गया। 1921 में एक शान्ति सन्धि की गयी जिसमें अफगानिस्तान को अपने विदेशी मामले स्वाधीनतापूर्वक चलाने के तथ्य को पुनः स्वीकार किया गया। 1922 ई. में इंग्लैण्ड तथा काबुल के बीच दूतावास स्थापित किए गए। उसके पश्चात् अफगानिस्तान तथा अंग्रेजों की ओर से किसी भी समस्या का सामना नहीं करना पड़ा।

लॉर्ड हार्डिंग
(LORD HARDINGE)

लॉर्ड हार्डिंग 1844 ई. से 1848 ई. तक भारत का गवर्नर-जनरल रहा। गवर्नर-जनरल बनने से पूर्व हार्डिंग इंग्लैण्ड की संसद का 20 वर्षों तक सदस्य रहा था, अतः वह एक अनुभवी व्यक्ति था, जिसे राजनीति की जानकारी थी। हार्डिंग को युद्ध सचिव के रूप में कार्य करने का भी अवसर प्राप्त हुआ था। हार्डिंग ने पेनिन स्यूलर युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी तथा वाटरलू के प्रसिद्ध युद्ध में भी वह भाग ले चुका था।

हार्डिंग का प्रशासन काल अनेक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। हार्डिंग ने गवर्नर-जनरल के रूप में कार्य करते हुए अनेक सुधारवादी योजनाएं बनाईं व सुधार किए। **उसके द्वारा किए गए प्रमुख कार्य निम्नवत् थे :**

1. हार्डिंग द्वारा सती-प्रथा व बाल हत्या को रोकने के सकारात्मक प्रयास किए गए।
2. अंग्रेजी शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए यह आज्ञा दी गई कि सार्वजनिक सेवाओं में नियुक्ति के लिए अंग्रेजी-शिक्षा अनिवार्य थी।
3. उड़ीसा के कुछ क्षेत्रों में प्रचलित नर-बलि प्रथा को समाप्त किया गया।
4. प्राचीन भवनों की सुरक्षा के प्रबन्ध किए गए।
5. सार्वजनिक कार्यालयों में रविवार को अवकाश लागू किया गया।

6. गंगा नदी से नहर निकालने की योजना बनाई गई।
7. भारत में रेलवे की स्थापना का भी प्रयत्न किया गया।
8. भारत में सैनिक-व्यय को कम किया गया।
9. नमक पर कर भी कम कर दिया गया।

लार्ड हार्डिंग के समय की सर्वप्रमुख घटना प्रथम सिक्ख-युद्ध[1] (1845-46 ई.) थी।इस युद्ध के द्वारा पंजाब में सिक्खों की शक्ति को गहरा धक्का पहुंचा था तथा अंग्रेजों को इससे अत्यधिक लाभ हुआ।

प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. आंग्ल-अफगान सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए।
2. अंग्रेजों की अफगान नीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
3. अफगान युद्धों के कारण व परिणाम बताइए।
4. प्रथम अफगान युद्ध के कारणों की विवेचना कीजिए।
5. लॉर्ड ऑकलैण्ड के सुधार एवं उसकी अफगान नीति का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लॉर्ड ऑकलैण्ड के सुधार बताइए।
2. प्रथम अफगान युद्ध के कारण बताइए।
3. प्रथम अफगान युद्ध के परिणाम बताइए।
4. लॉर्ड ऑकलैण्ड की अफगान नीति के दोष बताइए।
5. लॉर्ड हार्डिंग के सुधार बताइए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. लॉर्ड ऑकलैण्ड ने मेडिकल कालेज स्थापित किया :
   (अ) कलकत्ता (ब) बम्बई (स) हैदराबाद (द) दिल्ली
2. लॉर्ड हार्डिंग के समय की प्रमुख घटना थी :
   (अ) अफगान युद्ध (ब) प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम
   (स) प्रथम सिक्ख युद्ध (द) द्वितीय सिक्ख युद्ध
3. कार्यालयों में रविवार को छुट्टी का दिन किसने घोषित किया :
   (अ) बैंटिंक (ब) ऑकलैण्ड (स) हार्डिंग (द) डिजरैली
4. कुशल अकर्मण्यता की नीति किसने प्रारम्भ की :
   (अ) ऑकलैण्ड (ब) हार्डिंग (स) डलहौजी (द) लॉरेन्स
5. प्राचीन स्मारकों की सुरक्षा का प्रबन्ध किया :
   (अ) ऑकलैण्ड (ब) हार्डिंग (स) डलहौजी (द) लॉरेन्स

[उत्तर—1. (ब), 2. (स), 3. (स), 4. (द), 5. (ब)।]

1 प्रथम सिक्ख युद्ध के विस्तृत वर्णन के लिए देखिए अध्याय 8.

निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य दर्शाइए :

1. ऑकलैण्ड उदार दल से सम्बन्धित था।
2. ऑकलैण्ड ने मद्रास में मेडिकल कालेज की स्थापना की।
3. ऑकलैण्ड के शासनकाल की सर्वप्रमुख घटना प्रथम सिक्ख युद्ध थीं।
4. हार्डिंग के समय की प्रमुख घटना प्रथम अफगान युद्ध थी।
5. कुशल अकर्मण्यता की नीति ऑकलैण्ड ने प्रारम्भ की।

[उत्तर—1. सत्य, 2. सत्य, 3. असत्य, 4. असत्य, 5. असत्य।]

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :

1. ऑकलैण्ड भारत का गवर्नर-जनरल..........ई. में वना।
2. ऑकलैण्ड..........दल का था।
3. प्रथम सिक्ख युद्ध.........में प्रारम्भ हुआ।
4. प्रथम सिक्ख युद्ध की समाप्ति..........की सन्धि से हुई।
5. प्रथम सिक्ख युद्ध के वाद..........को पंजाव में रेजीडेन्ट नियुक्त किया गया।

[उत्तर—1. 1836 ई., 2. उदारवादी, 3. 1845 ई., 4. लाहौर, 5. लॉरेन्स।]

8

रणजीतसिंह एवं आंग्ल-सिक्ख सम्बन्ध
[RANJIT SINGH AND THE ANGLO-SIKH RELATIONS]

भूमिका
(INTRODUCTION)

सिक्खों का अभ्युदय (Rise of Sikhs)—सिक्खों के प्रथम गुरु, गुरु नानक थे लेकिन सिक्ख जाति के धार्मिक समुदाय को लड़ाकू सैनिक शक्ति के रूप में ढालने का श्रेय सिक्खों के दसवें और अन्तिम गुरु गोविन्द सिंह को प्राप्त है। अहमदशाह अब्दाली के लौट जाने के पश्चात् लगभग सारे पंजाब पर सिक्खों का अधिकार हो गया था। उस समय सिक्खों के 12 छोटे-छोटे राज्य पंजाब के विभिन्न भागों में स्थापित थे, ये राज्य मिस्ल कहलाते थे।

इन समस्त मिस्लों की स्थिति छोटे-छोटे गणराज्यों के समान थी। ये राज्य एक-दूसरे से बिल्कुल अलग-अलग एवं स्वतन्त्र थे। इन सब में जो थोड़ी-बहुत एकता थी वह केवल एक ही धार्मिक समुदाय और खालसा से सम्बन्धित होने पर आधारित थी। राजनीतिक दृष्टि से मिस्लों की शक्ति के इन सारे बिखरे हुए कणों को एकत्रित करके एक प्रबल राज्य स्थापित करने का महान् कार्य महाराजा रणजीतसिंह ने किया। इसलिए भारत के आधुनिक इतिहास में महाराजा रणजीतसिंह को एक अद्वितीय स्थान प्राप्त है।

रणजीतसिंह
(RANJIT SINGH)

प्रारम्भिक जीवन (Early Career)—महाराजा रणजीतसिंह का **जन्म नवम्बर, 1780** ई. में सुकुरचकिया मिस्ल के मुखिया महासिंह के घर में हुआ। महासिंह बड़े ही वीर तथा प्रतापी थे। उन्होंने अपनी छोटी-सी मिस्ल के आस-पास के भू-भागों पर विजय करके उसका विस्तार किया था फलतः सुकुरचकिया मिस्ल को सिक्खों के बारह मिस्लों में प्रमुख स्थान प्राप्त हो गया था। **रणजीतसिंह अपने माता-पिता की एकलौती सन्तान थे।** लाड़-प्यार में पलने के कारण उनकी पढ़ाई-लिखाई नहीं हो पायी। उन्हें किसी प्रकार की पुस्तक विद्या नहीं दी गयी थी, फिर भी जन्मसिद्ध प्रतिभा और प्रबल-इच्छा शक्ति के कारण छोटी आयु से ही उन्हें सफलताएं प्राप्त होने लगीं। घुड़सवारी, युद्धकला तथा हथियार चलाने का उन्होंने अच्छा अभ्यास किया था लेकिन बारह वर्ष की अवस्था में ही उनके पिता का देहान्त हो गया। फलतः उनकी माता राजकौर ने उन्हें राजसिंहासन पर बैठा दिया और स्वयं उनकी संरक्षिका बनकर राजकाज चलाने लगी। उस लूटमार के वातावरण में गद्दी को सुरक्षित रखना आसान काम नहीं था।

रणजीतसिंह की स्थिति भी वास्तव में डांवाडोल हो जाती यदि उनको सदाकौर से सहायता न मिलती। सदाकौर कनहिया मिस्ल की थी जो चतुर और महत्वाकांक्षी महिला थी।

रणजीतसिंह की विजयें

18 वर्ष की छोटी उम्र से ही रणजीतसिंह ने अपने विजय अभियान प्रारम्भ कर दिए थे यद्यपि उस समय सैनिक शक्ति अत्यन्त सीमित, राज्य बहुत छोटा तथा साधन बहुत निम्न कोटि के थे किन्तु उनमें शौर्य, साहस, पराक्रम तथा बुद्धिमत्ता और कूटनीतिज्ञता के गुण विद्यमान थे जिनके कारण ही उन्हें धीरे-धीरे सम्पूर्ण पंजाब, कश्मीर, पेशावर आदि पर विजयें प्राप्त करने में सफलता मिलती चली गयी।

रणजीतसिंह और अफगान—पंजाव अहमदशाह अव्दाली के साम्राज्य का एक भाग था परन्तु 1773 ई. में उसकी मृत्यु के पश्चात् मुल्तान, कश्मीर इत्यादि कुछ छोटे-छोटे भागों को छोड़कर शेष पर सिक्ख मिस्लों का अधिकार हो गया। 1798 ई. में अहमदशाह अव्दाली का पोता जमानशाह, जो अफगानिस्तान का अमीर था, पंजाव विजय के लिए आया। उसने शीघ्र ही लाहौर सहित पंजाव के एक विशाल भाग पर अधिकार कर लिया। उसी समय उसकी अनुपस्थिति में कावुल में विद्रोह उठ खड़ा हुआ जिससे वह शीघ्र ही कावुल चला गया। जब वह झेलम नदी पार कर रहा था तब उसकी वारह तोपें नदी के दल-दल में फंस गयीं। शाह के पास तोपें निकालने का समय नहीं था। **रणजीतसिंह ने उसे आश्वासन दिया कि मैं इन तोपों को निकलवाकर कावुल भेज दूंगा।** अफगान वादशाह ने इसके वदले में रणजीतसिंह को लाहौर का शासक बना देने का आश्वासन दिया। दोनों ने अपनी वातें पूरी कीं। रणजीतसिंह ने तोपें निकलवाकर उन्हें कावुल पहुंचा दिया और शाह जमान ने उसे लाहौर का शासक स्वीकार किया।

सिक्ख मिस्लों पर विजय—अव रणजीतसिंह ने पंजाव की छोटी-छोटी सिक्ख मिस्लों को विजय करने का कार्य आरम्भ किया। रणजीत सिंह की वढ़ती हुई शक्ति से उसके पड़ोसी मिस्लों में काफी आतंक फैल गया। अतः वे अपनी शक्ति को दृढ़ करने लगे। 1800 ई. में रणजीतसिंह को भसीन का युद्ध करना पड़ा। इस युद्ध में रणजीतसिंह की सास ने उन्हें काफी मदद की अतः सुकुरचकिया तथा कनहिया मिस्ल की सम्मिलित सेनाओं ने भांगी के गुलावसिंह, गुजरात के साहिवसिंह, वजीरावाद के जोधसिंह, रामगड़िया के जासासिंह के संयुक्त मोर्चे पर आक्रमण किया और सफलता प्राप्त की। गुजरात का साहिवसिंह भांगी जो भाग गया था वह अकालगढ़ के हुलसिंह की मदद से पुनः शक्तिशाली वन वैठा। 1803 ई. में **रणजीतसिंह ने इन्हें पराजित करके अकालगढ़ पर अधिकार कर लिया।** गुजरात पर पूर्ण रूप से 1809 ई. में अधिकार किया गया। इसके वाद रणजीतसिंह ने दालेवालिया, करोरसिंधिया तथा फैजलपुरिया मिस्लों पर अपना अधिकार कर लिया तथा भांगी मिस्ल से अमृतसर भी छीन लिया।

मालव अभियान—अव रणजीतसिंह की महत्वाकांक्षा काफी वढ़ गयी थी, वह सतलज नदी के पार के इलाकों पर अपना अधिकार करने का मनसूवा वांधने लगा। वह सतलज पार पूर्व की ओर स्थित पटियाला, नाभा और जिन्द व थानेश्वर आदि अनेक छोटे-बड़े सिक्ख राज्यों को जो सतलज तट से यमुना नदी के किनारे तक फैले हुए थे, अपने प्रभाव-क्षेत्र में लाना चाहता था।

(1) प्रथम अभियान (1806 ई.)—अपनी इस कामना को पूर्ण करने के लिए उसने 1806 ई. में अपना पहला अभियान प्रारम्भ किया। नाभा के राजा ने पटियाला के राजा के विरुद्ध रणजीतसिंह से सहायता मांगी तथा उसे आमन्त्रित किया। रणजीतसिंह नाभा के राजा

का बुलावा पाकर तुरन्त ही अपनी शक्तिशाली सेना सहित सतलज पार कर पटियाला जा पहुंचा। पटियाला का राजा रणजीतसिंह से पराजित हुआ। नाभा, जिन्द आदि के अन्य सिक्ख राजाओं ने भी रणजीतसिंह की अधीनता स्वीकार करते हुए उसे वहुमूल्य भेंटें आदि देकर प्रसन्न किया।

(2) दूसरा अभियान (1807 ई.)—दूसरे वर्ष पटियाला के साहिवसिंह तथा उसकी पत्नी औसकौर के झगड़े के निपटारे हेतु रणजीतसिंह को पुनः आमन्त्रित किया गया। इस बार रणजीतसिंह ने अम्वाला, थानेश्वर, नारायणगढ़ और फिरोजपुर तक धावा मारा। फिरोजपुर के महत्वपूर्ण दुर्ग वदनी को जीत कर अपनी सास सदाकौर को भेंट कर दिया तथा नारायणगढ़ अपने मित्र फतेहसिंह को प्रदान किया। इस प्रकार अम्वाला, मलेरकोट्टा, थानेश्वर, नारायणगढ़, नाभा तथा जिन्द आदि सतलज पार के राज्यों में रणजीतसिंह का आधिपत्य स्थापित हो गया।

अमृतसर की सन्धि, 1809 (Treaty of Amritsar)—रणजीतसिंह की महत्वाकांक्षा कम्पनी सरकार के लिए गम्भीर समस्या का रूप धारण कर रही थी अतः उसकी प्रगति को अपने भारतीय साम्राज्य के लिए संकटपूर्ण समझकर उसे रोकने के लिए कटिवद्ध हो गए, लेकिन रणजीतसिंह से युद्ध करना भी खतरे से खाली न था। अतः इस कठिन समस्या का समाधान करने के लिए कम्पनी सरकार ने रणजीतसिंह से युद्ध न करना ही श्रेयस्कर समझा। लॉर्ड मिण्टो ने सर चार्ल्स मैटकाफ को रणजीतसिंह के पास सन्धि-वार्ता के लिए भेजा। कुछ प्रारम्भिक कठिनाइयों के उपरान्त अंग्रेजों तथा रणजीतसिंह के मध्य 1809 ई. में अमृतसर की सन्धि सम्पन्न हो गयी। **इस सन्धि के द्वारा निम्न बातें तय हुईं :**

(1) सतलज नदी को रणजीतसिंह के राज्य की दक्षिणी सीमा मान लिया गया।

(2) सतलज के दक्षिण-पूर्व की ओर सिक्ख राज्य अंग्रेजों के संगठन में माने गए।

(3) लुधियाना में अंग्रेजी सेनाएं रखी गयीं।

(4) अंग्रेजों ने सतलज के उत्तर की ओर हस्तक्षेप नहीं करने का वायदा किया।

(5) रणजीतसिंह ने सतलज के पूर्व के राज्यों में हस्तक्षेप नहीं करने का वायदा किया।

इस प्रकार इस सन्धि के द्वारा कम्पनी राज्य की सीमा सतलज नदी के पास तक पहुंच गयी। रणजीतसिंह के लिए अब पूर्व की ओर अपना साम्राज्य फैलाने का रास्ता वन्द हो गया। वास्तव में अमृतसर की सीमा रणजीतसिंह की एक कूटनीतिक पराजय थी।

मुल्तान अभियान—जव पूर्व की ओर रणजीतसिंह के साम्राज्य प्रसार को रोक दिया गया तो वे पश्चिम की ओर मुड़े। 1802 ई. तथा 1807 ई. में रणजीतसिंह ने मुल्तान अभियान किए थे.लेकिन सफलता नहीं मिली। 1810 ई. में रणजीतसिंह ने दीवान मोहकमचन्द को मुल्तान पर अधिकार करने के लिए भेजा। मुल्तान शहर पर तो मोहकमचन्द ने अधिकार कर लिया लेकिन किले पर अधिकार न कर सका। 1816-17 ई. में रणजीतसिंह ने एक बार पुनः मुल्तान पर आक्रमण किया लेकिन वे किले पर अधिकार न कर सके।

1818 ई. में एक बहुत वड़ी सेना खड़गसिंह तथा मिसर दीवानचन्द के सेनापतित्व में भेजी और मुल्तान के दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

कश्मीर, अटक तथा डेराजाट पर अधिकार—कश्मीर में अतामुहम्मद खान खैल का राज्य था। रणजीतसिंह ने दीवान मोहकमचन्द को कश्मीर पर आक्रमण करने के लिए भेजा। काबुल के शाह मोहम्मद के मन्त्री फतेखां ने पहले ही कश्मीर पर आक्रमण कर रखा था। अतः रणजीतसिंह तथा फतेखां ने एक साथ मिलकर कश्मीर पर आक्रमण किया तथा पलुन्दर को

दो-तिहाई अफगानों ने व एक-तिहाई सिक्खों ने आपस में बांट लेने पर सहमति प्रकट की लेकिन कश्मीर पर विजय प्राप्त कर लेने के वाद फतेखां ने सिक्खों को एक-तिहाई भाग नहीं
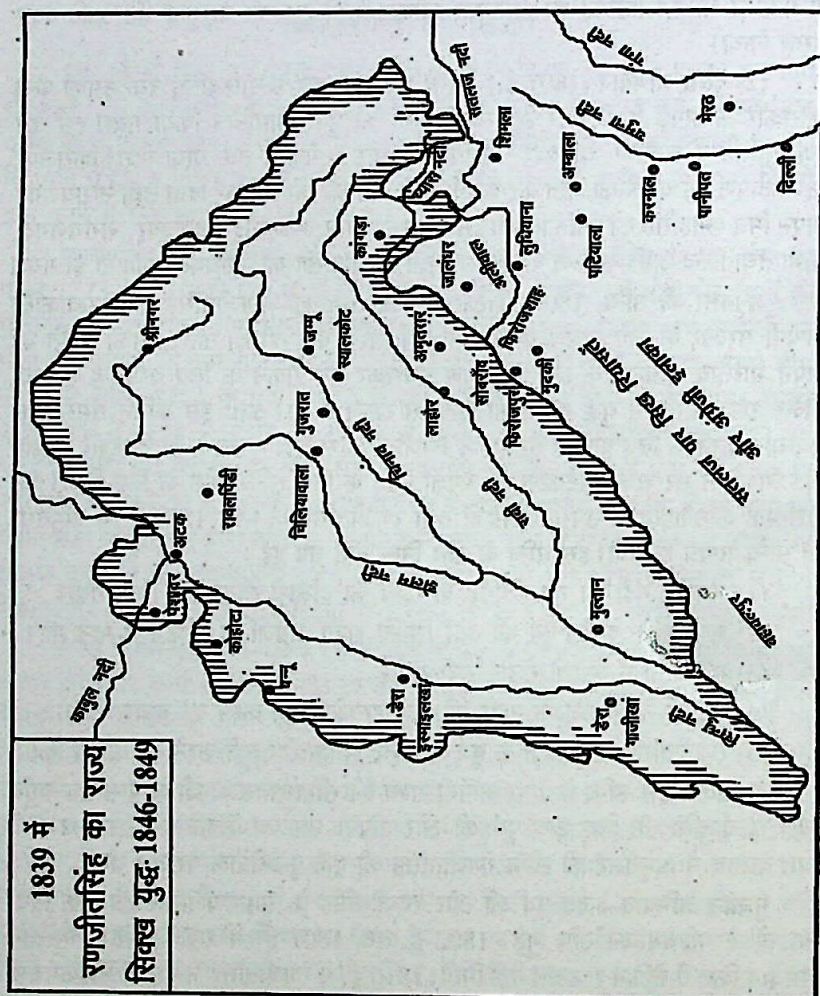
दिया, इस पर रणजीतसिंह ने उससे कोहिनूर हीरा छीन लिया। 1813 ई. में पुनः रणजीतसिंह की सेना ने हाजरों के युद्ध में अफगानों को पराजित करके अंगारा और अटक पर अधिकार कर लिया। 1819 ई. में महाराजा रणजीतसिंह ने खड़गसिंह तथा मिसर दीवान चन्द के सेनापतित्व में पुनः एक विशाल सेना कश्मीर पर आक्रमण करने के लिए भेजी। इस सेना ने सुपेन के युद्ध में विजय प्राप्त की। अतः कश्मीर का एक भाग सिक्ख साम्राज्य के अधीन आ गया। इसके बाद 1821 ई. में डेराजाट तथा 1836 ई. में लद्दाख पर भी विजय प्राप्त की।

पेशावर विजय—पेशावर विजय के लिए रणजीतसिंह की विशाल सेना बहादुरी से लड़ी, उन्हें पेशावर के लिए अफगानों से अनेक युद्ध करने पड़े जिसमें 1823 ई. का नौशीहरा का युद्ध प्रमुख है। रणजीतसिंह ने एक विशाल सेना अफगानों पर आक्रमण हेतु भेजी जिसने

पहले जहांगीरा के युद्ध में तत्पश्चात् नौशीहरा के युद्ध में अफगानों को पराजित किया। अतः पेशावर पर सिक्खों का अधिकार हो गया।

इस प्रकार रणजीतसिंह ने उत्तरी-पश्चिमी भारत में एक सिक्ख साम्राज्य की स्थापना कर ली। अफगानिस्तान के अन्दर फैली हुई अराजकता का रणजीतसिंह ने पूरा लाभ उठाया। इस प्रकार अत्यन्त अल्प अवधि में रणजीतसिंह ने विशाल साम्राज्य की स्थापना कर ली। तत्कालीन पंजाब की राजनीतिक दशा को देखते हुए रणजीतसिंह की विजयों का महत्व और वढ़ जाता है। अतः पंजाव के आपसी संघर्ष के वातावरण में एकता स्थापित करना रणजीतसिंह का महत्वपूर्ण कार्य था।

रणजीतसिंह का शासन-प्रबन्ध
(ADMINISTRATION OF RANJIT SINGH)

महाराजा रणजीतसिंह न केवल योद्धा और साम्राज्य निर्माता ही थे वरन् **उच्चकोटि के संगठनकर्ता एवं शासक भी थे।**

शासन का स्वरूप—रणजीतसिंह ने पहले सिक्ख राज्यों की शासन-व्यवस्था का स्वरूप संघात्मक था। यह खालसा संघ कहा जाता था जो कि मिस्लों के योग से वना रहता था। इन मिस्लों की शासन-व्यवस्था लोकतन्त्रात्मक प्रणाली पर आधारित थी। सभी मिस्लों के सरदार एकत्र होकर एक प्रधान का निर्वाचन करते थे जिसकी अध्यक्षता में प्रतिवर्ष अमृतसर में संघ की एक वैठक हुआ करती थी। इन बैठकों में संघ की नीति निर्धारित की जाती थी तथा शासन के नियम वनाए जाते थे। इन नियमों का पालन सभी मिस्लों के सरदार करते थे। यदि खालसा पर कोई वाहरी संकट आता था तो मिस्लों के सरदार सामूहिक रूप से उसका सामना करते थे। लेकिन इन मिस्लों में एकता का अभाव था अतः **रणजीत सिंह ने इन मिस्लों के सरदारों को पराजित करके अपना निरंकुश शासन स्थापित किया।** निरंकुश शासक होते हुए भी रणजीतसिंह सदैव जनता के कल्याण का ध्यान रखता था। उसमें धार्मिक कट्टरता विल्कुल नहीं थी। सभी धर्मावलम्वियों को वह समान नजर से देखता था। राज्य के उच्च पदों पर हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख तथा यूरोपीय सभी नियुक्त किए जाते थे।

प्रान्तीय और स्थानीय शासन—रणजीतसिंह का **राज्य चार प्रान्तों—कश्मीर, मुल्तान, पेशावर और लाहौर—में वंटा हुआ था।** इन प्रान्तों का प्रधान नाजिम होता था। इस पद पर राजकुमार अथवा रणजीतसिंह के विश्वासपात्र व्यक्ति ही चुने जाते थे। प्रान्त परगनों अथवा जिलों में वंटे होते थे। जिले का प्रधान सरदार कहलाता था। वह जिले में शान्ति-व्यवस्था बनाए रखने के लिए उत्तरदायी होता था। वह फौजदारी तथा दीवानी मामलों में निर्णय भी देता था। कृषकों से लगान वसूल करने का कार्य भी वही करता था।

जिले तालुक में विभक्त होते थे। 50 से 100 गांवों (मौजा) को मिलाकर एक तालुक वनता था। मौजा अथवा गांव प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थे। प्रत्येक गांव में एक पंचायत होती थी। ये ग्राम पंचायतें छोटे-छोटे मामलों का निपटारा भी करती थीं।

भू-राजस्व—यह राज्य की आय का प्रमुख साधन था जो बड़ी कठोरता से वसूल किया जाता था। सरकार उत्पादन का 33% से 40% तक लेती थी जो भूमि की उर्वरता के आधार पर लिया जाता था। रैपेल ग्रिफिन के अनुसार, **"महाराजा अपने कृषकों से अधिक-से-अधिक प्राप्त करने का प्रयत्न करता था परन्तु वह कृषकों के हितों की रक्षा भी करता था तथा युद्ध**

अभियान पर गयी सेना को यह आदेश दिया गया था कि खेती को नष्ट न करे।" कृषकों के लिए सेना में भी व्यवसाय के उत्तम अवसर थे।

न्याय व्यवस्था—रणजीतसिंह की न्याय व्यवस्था कठोर थी परन्तु तुरन्त प्राप्त थी। राज्य में किसी तरह का लिखित कानून अथवा दण्ड का विधान नहीं था। ग्रामों के झगड़ों का फैसला ग्राम पंचायतें करती थीं और इन निर्णयों का आधार परम्परागत रीति-रिवाज तथा सामाजिक प्रथाएं होती थीं। राज्य की सर्वोच्च अदालत का नाम अदालत-उल-आला थां। यह अदालत राजधानी लाहौर में स्थित थी। **रणजीतसिंह स्वयं उसका प्रधान न्यायाधीश था।** अतः वही राज्य के सबसे जटिल एवं बड़े मुकदमों की अपीलें सुनकर अन्तिम निर्णय देता था। राज्य का दण्ड विधान बड़ा कठोर था प्रायः अपराधियों को अंगभंग का दण्ड दिया जाता था। जुर्माना करना बहुत साधारण बात थी, घूस तथा भ्रष्टाचार के मामले स्वयं महाराजा के पास जाते थे। न्याय वास्तव में सरकार की आय का एक साधन माना जाता था।

सैन्य प्रशासन—रणजीतसिंह ने सबसे अधिक ध्यान सेना की ओर दिया। सेना के बल पर ही उसने इतने बड़े साम्राज्य की स्थापना की थी। रणजीतसिंह की सेना के दो भाग थे :

(1) **फौज-ए-आम**—यह स्थानीय सेना थी। इसके तीन विभाग होते थे—(1) पैदल, (2) घुड़सवार, (3) तोपखाना। इन तीनों विभागों को यूरोपीय विशेषज्ञों द्वारा प्रशिक्षित किया गया था। सिक्खों की सेना में पहले घुड़सवारों का विशेष महत्व था। लेकिन रणजीतसिंह जानता था कि एक-न-एक दिन उसे अंग्रेजों से अवश्य लड़ना पड़ेगा अतएव उसने अपनी सेना में पैदल सेना तथा तोपखाने पर विशेष बल दिया। उसकी सेना में इन दो अंगों की प्रधानता थी। उसकी सेना में अधिकांशतः सिक्ख तथा जाट सैनिक थे। रणजीतसिंह की सेना अनुशासन, नियन्त्रण तथा युद्ध-कौशल के लिए विख्यात थी।

(2) **फौज-ए-खास**—इस सेना का संगठन 1822 ई. में जनरल वनतूरा (Gn. Ventura) और जनरल आलार्ड (Gn. Allard) द्वारा किया गया था। इसमें चार पैदल सैनिकों की वटालियनें, दो घुड़सवार वटालियनें तथा 24 तोपें थीं। इस सेना का एक विशेष चिह्न होता था तथा ड्रिल (Drill) आदि के लिए फ्रांसीसी भाषा के शब्दों का प्रयोग होता था। सैनिकदायता तथा योग्यता में यह सेना अद्वितीय थी।

फौज-ए-बेक-वाइद (Fauj-i-beqa-waid)—यह सेना के अन्दर एक ऐसा विभाग था जिसमें केवल घुड़सवार सैनिक होते थे जो दो प्रकार के होते थे : (1) घुरचार, (2) मिसलदार। यह सेना भी वीरता के लिए प्रसिद्ध थी। रणजीतसिंह का इस सेना पर पूर्ण रूप से नियन्त्रण रहता था।

सैनिकों का वेतन—सैनिकों को नकद रुपयों में नियमित वेतन दिया जाता था। लेकिन इस सैन्य संगठन का सबसे वड़ा दोष यह था कि सैनिक तथा अफसरों की उन्नति के लिए कोई निश्चित नियम नहीं था। पेंशन की भी कोई व्यवस्था नहीं थी लेकिन कभी-कभी जागीरें दी जाती थीं। युद्ध में मारे जाने वाले सैनिकों की विधवाओं तथा वच्चों को भी किसी प्रकार की सहायता की कोई व्यवस्था नहीं थी।

विलियम बैंटिक और रणजीतसिंह—यद्यपि रणजीतसिंह निरन्तर युद्ध करते रहे और साम्राज्य विस्तार करते रहे, तथापि अंग्रेजों की वास्तविक शक्ति का मूल्यांकन करके उनके साथ भी मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते रहे लेकिन 1828 से 1835 ई. तक सिन्ध के प्रश्न को लेकर रणजीतसिंह तथा अंग्रेजों में पर्याप्त कटुता रही। इसका कारण यह था कि रणजीतसिंह तथा

अंग्रेज दोनों ही सिन्ध पर अपना अधिकार करना चाहते थे। लॉर्ड विलियम बैंटिक रणजीतसिंह का ध्यान सिन्ध से हटाना चाहता था इसलिए वह रणजीतसिंह को प्रसन्न रखना चाहता था। वह रणजीतसिंह से स्वयं भेंट करना चाहता था। इसी उद्देश्य से 1831 ई. में सतलज के तट पर रूपड़ नामक स्थान पर एक भव्य दरवार का आयोजन करके रणजीतसिंह को आमन्त्रित किया गया। रणजीतसिंह का हार्दिक स्वागत किया गया। रणजीतसिंह ने अंग्रेजों के सम्मुख सिन्ध को आपस में वांट लेने का प्रस्ताव रखा लेकिन अंग्रेजों ने इसे अस्वीकार कर दिया।

रणजीतसिंह का मूल्यांकन

निःसन्देह रणजीतसिंह भारत के महानतम सम्राटों में से एक था। अपने शासन काल में उसने इतनी लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी कि उसकी मृत्यु के 50 वर्ष उपरान्त भी पंजाव की जनता उसका स्मरण करती थी। इतिहासकार रैपल ग्रिफिन के अनुसार, **"यद्यपि उसकी मृत्यु के उपरान्त आधी शताब्दी बीत चुकी है तो भी उसके साम्राज्य में उसका नाम एक पारिवारिक शब्द के समान है; उसके चित्र अभी भी धनी एवं निर्धनों के घरों में देखे जा सकते हैं।"**

रणजीतसिंह असाधारण सैनिक प्रतिभा का स्वामी था। वह एक योग्य अश्वारोही, एक उत्तम शिकारी तथा कुशल तलवार चलाने वाला व्यक्ति था। युद्ध के विभिन्न पहलुओं का उसे ज्ञान था। इसके साथ-साथ उसमें असाधारण धैर्य, विश्वास तथा प्रेम की भावना थी। वह एक महान् विजेता था। उसने न केवल विभिन्न सिक्ख मिस्लों के विरुद्ध विजय प्राप्त की वरन् पठान जैसी युद्धप्रिय जाति का भी दृढ़तापूर्वक सामना किया। विजेता के साथ-साथ वह एक महान् साम्राज्य निर्माता भी था। एक कुशल प्रशासक के गुण भी उसमें विद्यमान थे। उसने केन्द्रीय तथा प्रान्तीय व्यवस्था को सुव्यवस्थित किया। न्याय तथा राजस्व के प्रवन्ध में सुधार किए और सैन्य व्यवस्था को भी भली-भांति सुसंगठित किया। एक कट्टर सिक्ख होते हुए भी वह अन्य धर्मों के प्रति असहिष्णुता की नीति का अनुकरण नहीं करता था। इन गुणों के अतिरिक्त उसमें कुछ चारित्रिक दोष भी थे। उसके सम्वन्ध में कहा जाता है कि उसे अफीम तथा मदिरा का शौक था तथा वह दो नर्तकियों—मोरा और वेगम की ओर विशेष आसक्त था। नैतिक दृष्टि से वह वलवान व्यक्ति नहीं था। अंग्रेजों के प्रति भी उसकी नीति दुर्वल थी। इसके अतिरिक्त, उसने अपनी शक्ति को अपने आप तक ही सीमित रखा तथा अपने उत्तराधिकारियों को राज्य के प्रवन्ध करने के अनुभव को प्राप्त करने का अवसर ही नहीं दिया, जिसके फलस्वरूप उसकी मृत्यु के शीघ्र उपरान्त ही उसके राज्य का पतन हो गया।

उपर्युक्त दोषों के वावजूद भी रणजीतसिंह एक महान् पुरुष और जन्मजात शासक था। ग्रिफिन के अनुसार, **"वह महान् था क्योंकि उसमें वे सभी गुण जिनके अभाव में सबसे बड़ी सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती विशाल मात्रा में पाए जाते हैं।"** निःसन्देह रणजीतसिंह की उपलब्धियां महान् थीं। उसने पंजाव को एक आपसी लड़ने वाले संघ के रूप में प्राप्त किया था तथा एक शक्तिशाली राज्य के रूप में परिवर्तित किया।[1]

रणजीतसिंह की मृत्यु 27 जून, 1839 ई. को हुई।

1 **"Ranjit Singh found the Punjab a waning confederacy, a prey to the factions of its chief pressed by the Afghans and Maratha and ready to submit to English supremacy and consolidated the numerous petty state into a kingdom he wrested from Kabul its fairest provinces and he gave the potent English no cause for interference." —J. D. Cunningham, *History of Sikhs*, p. 222.**

अंग्रेजों तथा सिन्ध के अमीरों के सम्बन्ध

मुगलों के पतन के वाद 1768 ई. में सिन्ध प्रान्त में स्वतन्त्र राज्य स्थापित हुआ था जहां तालपुर परिवार के अमीर शासन करते थे। हैदरावाद, खैरपुर, मीरपुर उनकी शक्ति के प्रधान केन्द्र थे। वैसे तो यह राज्य पूर्ण रूप से स्वतन्त्र थे, फिर भी खैरपुर के अमीर का अन्य राज्यों पर कुछ प्रभुत्व स्थापित था। भारत के उत्तर-पश्चिम में स्थित सिन्ध के इस प्रान्त का अपना विशेष राजनीतिक तथा व्यापारिक महत्व था। इसके एक ओर अरव सागर है तथा दूसरी ओर वोलन दर्रे होकर अफगानिस्तान जाने वाला मार्ग है। उन्नीसवीं शताव्दी के प्रारम्भिक चरण में रणजीतसिंह तथा अंग्रेज दोनों ही सिन्ध पर अपना आंधिपत्य स्थापित करना चाहते थे अतः इस प्रदेश का महत्व और बढ़ गया।

सिन्ध के अमीरों के साथ 1809 ई. की सन्धि—सर्वप्रथम भारत के अंग्रेज गवर्नर जनरल लॉर्ड मिण्टो (1807-13 ई.) ने सिन्ध के महत्व को समझकर सिन्ध के अमीरों के साथ किसी-न-किसी प्रकार सन्धि करने का प्रयास किया। इसका कारण यह था कि 1807 ई. में यूरोपीय महाद्वीप में नेपोलियन ने तिलसिट की सन्धि कर ली थी। इसके फलस्वरूप भारत पर फ्रांसीसी तथा रूसी आक्रमण की आशंका में अधिक वृद्धि हो गयी थी। अतः ऐसी स्थिति में उनका दृढ़तापूर्वक सामना करने के उद्देश्य से तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड मिण्टो ने काबुल, ईरान, पंजाब तथा सिन्ध आदि अनेक राज्यों के लिए मित्रता स्थापित करने के उद्देश्य से अनेक मिशन भेजे। सिन्ध जाने वाले मिशन के प्रयासों से 1808 ई. में सिन्ध के अमीरों तथा अंग्रेजों के मध्य समानता के आधार पर एक सन्धि हो गयी। इस सन्धि के अनुसार सिन्ध के अमीरों ने आश्वासन दिया कि वे अपने देश से होकर किसी भी आक्रमणकारी को नहीं गुजरने देंगे। 1815 ई. में वाटरलू के युद्ध में नेपोलियन की पराजय के उपरान्त भारत पर फ्रांसीसी आक्रमण की आशंका पूर्ण रूप से समाप्त हो गयी, फिर भी 1820 ई. में तत्कालीन लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने इस सन्धि की पुनरावृत्ति की।

लॉर्ड विलियम बैंटिंक तथा 1832 ई. की सन्धि—1831 ई. में रणजीतसिंह ने रूपड़ के भव्य दरवार में बैंटिंक के सामने यह प्रस्ताव रखा कि सिन्ध को कम्पनी एवं सिक्ख आपस में बांट लें लेकिन बैंटिंक सिन्ध पर अंग्रेजों का प्रभुत्व नहीं देखना चाहता था। अतः उसने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और कर्नल पोर्टिन्जर को अमीरों के पास सन्धि हेतु भेजा। चूंकि अमीर लोग रणजीतसिंह से सशंकित रहते थे अतएव अपनी परिस्थितियों से वाध्य होकर उन्होंने 1832 ई. में अंग्रेजों के साथ सन्धि कर ली। इस सन्धि के द्वारा यह निश्चित किया गया कि (1) दोनों शक्तियां एक-दूसरे के प्रति किसी प्रकार का वैमनस्य नहीं रखेंगी तथा एक-दूसरे पर अधिकार करने का प्रयास भी नहीं करेंगे। (2) ब्रिटिश सरकार की प्रार्थना पर सिन्ध प्रदेश के सभी थल तथा जल मार्ग भारतीय व्यापारियों के लिए खोल दिए गए तथा यह भी स्पष्ट किया गया कि इन मार्गों से कोई भी सैनिक सामग्री तथा सैनिक आदि नहीं भेजे जाएंगे तथा कोई भी अंग्रेज व्यापारी सिन्ध में स्थायी रूप से रहने का प्रयास नहीं करेगा।

लॉर्ड ऑकलैण्ड तथा सिन्ध—1834 ई. तथा 1836 ई. के मध्य रणजीतसिंह ने सिन्ध पर पुनः आधिपत्य करने का प्रयास किया। इससे अंग्रेजों को भी सिन्ध में अपने प्रभाव में वृद्धि करने का अवसर मिल गया। लॉर्ड ऑकलैण्ड ने सिन्ध के अमीरों को सिक्ख आक्रमण का भय दिखाया तथा अपने संरक्षण में ले लिया। 20 अप्रैल, 1838 ई. को लॉर्ड ऑकलैण्ड ने सिन्ध के अमीरों को एक अन्य सन्धि पर हस्ताक्षर करने को वाध्य किया। इसके अनुसार सिन्ध के अमीर

हैदराबाद में एक अंग्रेज रेजीडेण्ट रखने के लिए सहमत हो गए। नवम्बर 1838 ई. में प्रथम अफगान युद्ध प्रारम्भ हो गया। महाराजा रणजीतसिंह ने अंग्रेजी सेनाओं को पंजाब से नहीं गुजरने दिया। अंग्रेजों ने वाध्य होकर सिन्ध के मार्ग से अपनी सेनाएं भेजीं। अंग्रेजों का यह कार्य 1832 ई. की सन्धि का पूर्ण रूप से उल्लंघन था। सिन्ध के अमीरों ने अंग्रेजों के इस कार्य का विरोध किया। **अंग्रेजों ने अमीरों के इस कार्य को शत्रुता की संज्ञा दी तथा स्पष्ट रूप से कहा कि युद्ध के जारी रहने तक 1832 ई. की सन्धि की यह धारा कि सिन्ध प्रान्त से अंग्रेजी सेना तथा सैनिक सामग्री नहीं भेजी जाएगी, स्थगित रहेगी।** इसके अतिरिक्त अंग्रेजों ने सिन्ध के अमीरों पर 25 लाख रुपया जो उन्हें शाहशुजा को खिराज के रूप में देना था, थोप दिया। 1839 ई. के प्रारम्भ में सैनिक कार्यवाही की धमकी देकर अंग्रेजों ने सिन्ध के अमीरों को पुनः एक सन्धि करने के लिए वाध्य किया। इसके अनुसार सिन्ध के अमीरों को एक सहायक सेना के वदले 3 लाख रुपया वार्षिक देने को विवश किया गया। इसके अतिरिक्त अफगानिस्तान पर आक्रमण के लिए सिन्ध को ही आधार वनाया गया तथा भक्खर, सक्खर और करांची पर अंग्रेजों ने युद्ध काल तक अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया।

लॉर्ड एलनवरो और सिन्ध का विलय—इतने अत्याचारों के वाद भी सिन्ध के अमीर चुपचाप रहे लेकिन अंग्रेजों की इच्छा तो सिन्ध पर विजय प्राप्त करने की थी। अमीरों ने यद्यपि अपनी ओर से कोई अवसर नहीं दिया परन्तु सिन्ध स्थित ब्रिटिश रेजीडेण्ट आउटरम की शिकायत पर लॉर्ड एलनवरो ने अमीरों के कुशासन की जांच-पड़ताल करने के लिए अपने एक प्रतिनिधि चार्ल्स नैपियर को 1842 ई. में सिन्ध भेजा। रेजीडेण्ट आउटरम (Resident Outram) को वापस वुला लिया गया क्योंकि वह ईमानदार व्यक्ति था जवकि चार्ल्स नैपियर उद्दण्ड एवं चालाक था। इसी कारण उसने अपुष्ट प्रमाणों तथा निर्मूल तथ्यों के आधार पर यह घोषित किया कि अमीरों के विरुद्ध राजद्रोह का आरोप प्रमाणित हो गया है।

उपर्युक्त घोषणा के आधार पर सिन्ध के अमीरों को नवम्बर 1842 ई. में एक नयी सन्धि करने के लिए बाध्य किया गया। इस सन्धि में 1839 ई. की सन्धि की अनेक धाराओं को परिवर्तित कर दिया गया। अभी तक सहायक सेना के वदले में केवल तीन लाख रुपए दिए जाते थे, अव इनके स्थान पर विशेष प्रदेश मांगे गए। सिन्ध में चलने वाले अंग्रेजी जहाजों के ईंधन का व्यय अमीर वहन करेंगे तथा सिक्का चलाने का अधिकार अंग्रेजों को दे देंगे। यह सन्धि वहुत अपमानजनक थी। अमीरों ने सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किए भी न थे कि चार्ल्स नैपियर ने आक्रमण कर सिन्ध के उन भागों पर अधिकार कर लिया जिनकी अंग्रेजों ने मांग की थी और अमीरों को डराने के लिए ईमानगढ़ के किले पर अधिकार कर लिया। आउटरम के बाध्य करने पर 12 फरवरी, 1843 ई. को सिन्ध के अमीरों को पुनः एक इसी प्रकार की सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े। अंग्रेजों के इस प्रकार के अनुचित व्यवहार ने देशभक्त वलूचियों को क्रोधित कर दिया और उन्होंने ब्रिटिश रेजीडेण्ट के निवास पर आक्रमण कर दिया, अतः युद्ध आरम्भ हो गया।

नैपियर ऐसे अवसर की तलाश में ही था ताकि वह सिन्ध को जीतकर उसे अपने साम्राज्य का अभिन्न अंग वना सके। ब्रिटिश रेजीडेन्सी पर आक्रमण की सूचना पाते ही उसने भी युद्ध की घोषणा कर दी। 17 फरवरी, 1843 ई. को नियानी नामक स्थान पर अमीरों को बुरी तरह पराजित होना पड़ा। इस समय तक मीरपुर का अमीर पूर्ण रूप से तटस्थ था। अंग्रेजों ने उसे भी युद्ध में घसीट लिया और दावो नामक स्थान पर 27 मार्च, 1843 ई. को

उसे भी पराजित कर दिया। इन विजयों के परिणामस्वरूप मार्च, 1843 ई. में ही सिन्ध को अंग्रेजी साम्राज्य का अंग बना लिया गया। नैपियर ने सिन्ध में खूब लूटमार मचायी तथा लगभग 70,000 पौण्ड प्राप्त किए। आउटरम को भी 3,000 पौण्ड भेंट स्वरूप भेजे गए। नैपियर सिन्ध का पहला गवर्नर नियुक्त किया गया।

सिन्ध के प्रति अंग्रेजी नीति की आलोचना—सभी इतिहासकारों ने सिन्ध विलय की कटु आलोचना की है तथा इस कार्य के लिए एटनवरो तथा नैपियर दोनों की भी इस कार्य के लिए निन्दा की है। रैम्जे म्यूर ने लिखा है, **"भारत में सिन्ध प्रदेश का अधिग्रहण ही एकमात्र ऐसा है जिसके सम्बन्ध में यह उचित रूप से कहा जा सकता है कि परिस्थितिवश आवश्यकता नहीं थी और इस कारण यह दमनकारी कार्य था।"** अंग्रेजों की इस सन्धि विलय की आलोचना करते हुए निम्न तर्क दिए जा सकते हैं :

(i) **1832 ई. की सन्धि का उल्लंघन**—अंग्रेजों ने लॉर्ड विलियम बैंटिंक के कार्यकाल में सिन्ध के अमीरों से समानता के आधार पर एक सन्धि की थी। इस सन्धि में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि दोनों ही शक्तियां एक-दूसरे पर लालच भरी दृष्टि नहीं डालेंगी तथा अंग्रेज सिन्ध के मार्ग से सैन्य सामग्री एवं सैनिकों को नहीं गुजारेंगे। परन्तु सात वर्ष के अल्पकाल में ही वे अपने इस लिखित आश्वासन को भूल गए और नवम्बर 1839 ई. में उन्होंने सिन्ध में अपनी सेनाएं तथा युद्ध सामग्री भेजी। अतः अंग्रेजों का यह कार्य पूर्णरूपेण अनुचित था।

(ii) **सिन्ध के अमीरों से खिराज मांगना पूर्ण रूप से अनुचित**—अंग्रेजों का सिन्ध के अमीरों से शाहशुजा को दी जाने वाली 25 लाख रुपए की धनराशि मांगना भी पूर्ण रूप से अन्यायपूर्ण तथा अनुचित था। अमीरों ने गत तीस वर्षों से शाहशुजा को खिराज देना बन्द कर दिया था। 1833 ई. में स्वयं शाहशुजा ने अमीरों को खिराज देने से मुक्त कर दिया था। अतः ऐसी स्थिति में अंग्रेजों का अमीरों से धन मांगना पूर्ण रूप से अनुचित था तथा सैनिक कार्यवाही की धमकी देकर धन वसूल करना तो और भी अमानवीय एवं अमानुषिक था।

(iii) **अमीरों पर विद्रोह का आरोप निराधार**—लॉर्ड ऑकलैण्ड ने सिन्ध के अमीरों के साथ अत्यन्त अन्यायपूर्ण व्यवहार किया था, लेकिन ऑकलैण्ड के उत्तराधिकारी एलनवरो ने तो अमीरों के साथ अपने व्यवहार में असभ्यता का पूर्ण प्रदर्शन किया। उसने सिन्ध के अमीरों पर राजद्रोह का झूठा आरोप लगाया तथा जांच का काम नैपियर को देना भी पूर्णतया अनुचित था क्योंकि नैपियर में नैतिकता एवं सच्चाई लेशमात्र भी नहीं थी।

(iv) **सन्धि पर हस्ताक्षर होने से पूर्व ही मांगे गए प्रदेशों पर नैपियर द्वारा अधिकार करना पूर्णतया अनुचित**—लॉर्ड ऑकलैण्ड तथा लॉर्ड एटनवरो तथा चार्ल्स नैपियर ने एक के बाद एक अन्याय सिन्ध के अमीरों के साथ किए। नैपियर ने 1842 ई. में सिन्ध के अमीरों पर एक नयी सन्धि लाद दी जिसके परिणामस्वरूप अमीरों की स्थिति दासों के समान हो गयी। इस सन्धि में सहायक सेना के वदले में ली जाने वाली 3 लाख रुपए की धनराशि के स्थान पर कुछ प्रदेश मांगे गए थे। अभी अमीर कुछ उत्तर दे भी न पाए कि स्वयं नैपियर ने सन्धि में मांगे गए प्रदेशों पर अधिकार कर लिया तथा ईमानगढ़ के दुर्ग को व्यर्थ ही नष्ट कर दिया।

(v) **कम्पनी के संचालक भी चुप रहे**—निःसन्देह कम्पनी के संचालकों ने सिन्ध के विलय की कटु आलोचना की है, इस कार्य के लिए लॉर्ड एलनवरो को दोषी ठहराया परन्तु उन्होंने भी सिन्ध को उनके वास्तविक स्वामियों को वापस दिलाने का कोई प्रयास नहीं किया वरन् नैपियर को ही सिन्ध का गवर्नर नियुक्त किया।

निःसन्देह अंग्रेजों का सिन्ध के अमीरों के साथ व्यवहार कटुतापूर्ण था। मार्शमेन ने अंग्रेजों के व्यवहार की निन्दा करते हुए लिखा है, **"हम चाहे कितना तर्क उपस्थित क्यों न करें किन्तु सिन्ध के अमीरों के साथ हमारे व्यवहार से जो कलंक हमारी ईमानदारी एवं प्रतिष्ठा को लगा है उसका प्रक्षालन किसी प्रकार नहीं हो सकता।"**

यथार्थ में प्रथम अफगान युद्ध के फलस्वरूप सिन्ध का अंग्रेजी साम्राज्य में विलय अनिवार्य हो गया था और इसी कारण अंग्रेज उसे किसी-न-किसी वहाने अंग्रेजी साम्राज्य में मिलाना चाहते थे। इतिहासकार मार्टिन के अनुसार, **"सिन्ध पर बिना किसी उचित कारण के अधिकार किया गया है, सिन्ध के अमीरों को हमारा कुछ नहीं देना था, उन्होंने हमें कोई हानि भी नहीं पहुंचायी थी, किन्तु उन्हें समाप्त कर देना ही हमारी नीति के अनुकूल था और इसी कारण उनको पराजित किया गया।"**

रणजीतसिंह के बाद पंजाब की स्थिति तथा अंग्रेजी नीति
(BRITISH POLICY AND THE CONDITION OF PUNJAB AFTER RANJIT SINGH)

जब तक रणजीतसिंह जीवित था तव तक पंजाव की ओर वढ़ने की अंग्रेजों की हिम्मत नहीं हुई लेकिन उसकी मृत्यु के वाद स्थिति विल्कुल वदल गयी। रणजीतसिंह द्वारा स्थापित विशाल साम्राज्य विखर गया। उत्तराधिकार का युद्ध छिड़ जाने से पंजाव में अराजकता फैल गयी, अतः ऐसी स्थिति में अंग्रेज पंजाब विजय की योजना वनाने लगे। इस वीच सेना ने वालक दलीपसिंह को पांच साल तक गद्दी पर वैठाया तथा रानी झिन्दन उसकी संरक्षिका वनी। लेकिन अंग्रेजों की वढ़ती लालसा से युद्ध होना अनिवार्य हो गया।

प्रथम सिक्ख युद्ध
(FIRST SIKH WAR—1845-46)

कारण (Causes)—इस समय लॉर्ड हार्डिंग प्रथम भारत का गवर्नर जनरल था। इस युद्ध के अनेक कारण थे :

(1) रणजीतसिंह के समय से ही अंग्रेजों एवं सिक्खों में तनाव की उत्पत्ति—यथार्थ में अंग्रेजों तथा सिक्खों के मध्य रणजीतसिंह के जीवनकाल से ही तनाव पैदा हो गया था। अंग्रेजों ने हर स्थान पर अक्सर रणजीतसिंह को अपमानित करने तथा नीचा दिखाने का प्रयास किया था। 1809 ई. की अमृतसर की सन्धि द्वारा अंग्रेजों ने सतलज नदी के पार रणजीतसिंह के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था। सिन्ध के सम्वन्ध में भी अंग्रेजों ने रणजीतसिंह को वास्तविक स्थिति को ज्ञात नहीं होने दिया था। स्पष्ट है कि रणजीतसिंह के जीवनकाल में ही अंग्रेजों एवं सिक्खों के मध्य कटुता में पर्याप्त वृद्धि हो चुकी थी।

(2) पंजाब में अराजकता—1839 ई. में रणजीतसिंह की मृत्यु के साथ ही सम्पूर्ण पंजाब में अराजकता का राज्य हो गया तथा तीन-चार वर्षों के अल्पकाल में ही उसके अनेक पुत्रों तथा निकट सम्वन्धियों की हत्या कर दी गयी। अव सिक्ख सेना का ही वोलवाला था, लाहौर दरवार उस पर नियन्त्रण रखने में असमर्थ था। सेना के सर्वेसर्वा होते हुए किसी का जीवन सुरक्षित नहीं था अतः सुरक्षा इसी में थी कि किसी तरह सिक्ख सेना का अंग्रेजी सेना से मुकावला हो जाए तथा उसकी शक्ति कम कर दी जाए।

(3) अंग्रेजों की सैनिक गतिविधि—पंजाव में प्राप्त अराजकता का पर्याप्त फायदा उठाने के लिए अंग्रेजों ने वड़ी संख्या में अपनी सेना एकत्रित करके सतलज के निकटवर्ती प्रदेशों

में एकत्रित करना आरम्भ कर दिया। अतः अंग्रेजों की सैनिक गतिविधियों को देखकर सिक्खों के हृदय में यह विचार उत्पन्न होना स्वाभाविक था कि अंग्रेज पंजाब पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहते हैं।

(4) **सिन्ध का अंग्रेजी राज्य में विलय**—1843 ई. में अंग्रेजों ने सिन्ध प्रदेश का अंग्रेजी साम्राज्य में विलय कर दिया। इस घटना से अंग्रेजों की साम्राज्यवादी विचारधारा पूर्ण रूप से स्पष्ट हो गयी और यह बात भी स्पष्ट हो गयी कि अंग्रेज सिन्ध के समान ही पंजाब पर भी अपना अधिकार करना चाहते हैं। अब सिक्ख अंग्रेजों की साम्राज्यवादी भावना से और भी अधिक सावधान हो गए तथा उन्हें अंग्रेजों से युद्ध करने के लिए बाध्य कर दिया।

(5) **मेजर ब्राडफुट का उत्तेजनापूर्ण कार्य**—अंग्रेजों ने मि. क्लार्क के स्थान पर मेजर ब्राडफुट को लुधियाना में ब्रिटिश रेजीडेण्ट नियुक्त किया। वह अत्यन्त जिद्दी तथा क्रोधी स्वभाव का था। पद-भार संभालते ही उसने घोषित किया कि सतलज नदी के दक्षिण में स्थित महाराजा दलीपसिंह के सभी प्रदेश भविष्य में अंग्रेजों के अधिकार में समझे जाएंगे। इस घोषणा से सिक्ख सरदारों के क्रोध की कोई सीमा न रही और उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया कि अंग्रेजों के साथ युद्ध होना अनिवार्य है।

(6) **तात्कालिक कारण—सिक्खों द्वारा सतलज नदी को पार करना**—दिसम्बर 1845 ई. में सिक्ख सैनिकों ने सतलज नदी को पार करना आरम्भ कर दिया। अंग्रेज इस अवसर की प्रतीक्षा में पहले से ही थे। अतः समाचार पाते ही लॉर्ड हार्डिंग ने भी 13 दिसम्बर, 1845 ई. को सिक्खों से विधिवत् युद्ध की घोषणा कर दी।

प्रथम आंग्ल-सिक्ख युद्ध की घटनाएं—13 दिसम्बर, 1845 ई. से आरम्भ हुआ यह युद्ध तीन मास तक चलता रहा और अन्त में 9 मार्च, 1846 ई. की लाहौर सन्धि के द्वारा समाप्त हुआ। **इस युद्ध की प्रमुख घटनाएं इस प्रकार हैं :**

(1) **मुदकी का युद्ध** (Battle of Mudki—18th December, 1845)—सिक्ख सेना लालसिंह के नेतृत्व से सतलज पार करके फिरोजपुर की ओर बढ़ी। दूसरी ओर सर ह्यूगफ के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना भी लुधियाना की ओर बढ़ी। फिरोजपुर से 20 मील दूर मुदकी नामक स्थान पर दोनों सेनाओं का सामना हुआ। सिक्ख सेना 40 हजार के लगभग थी जबकि अंग्रेजों के 11 हजार सैनिक ही थे। यद्यपि सिक्ख सेना बड़ी वीरता से लड़ी लेकिन सेनापति लालसिंह के युद्धस्थल से भाग जाने पर सिक्ख सेना को पराजय का सामना करना पड़ा। इस युद्ध में सिक्खों को काफी हानि हुई।

(2) **फिरोजशाह का युद्ध** (Battle of Ferozeshah—2nd Dec., 1845)—मुदकी के उपरान्त अंग्रेजी सेनाएं सतलज से 12 मील दूर स्थित फिरोजशाह की ओर अग्रसर हुईं। फिरोजशाह में भी सिक्ख एवं अंग्रेजी सेना के मध्य भीषण संघर्ष हुआ। सिक्खों ने पूर्ण उत्साह के साथ शत्रु का सामना किया, लेकिन दुर्भाग्य से इस स्थान पर भी तेजसिंह जैसे सिक्ख सेनापति ने विश्वासघात किया। वह भी युद्धस्थल छोड़कर भाग गया। फलस्वरूप सिक्खों को पुनः पराजय का मुंह देखना पड़ा। इस सम्बन्ध में सरकार और दत्ता का कहना है, **"यदि सिक्ख नेतृत्व इस प्रकार धोखा न देता तो युद्ध का परिणाम कुछ और ही होता।"** इस युद्ध में लगभग 8,000 सिक्ख सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए तथा उन्हें 73 तोपों से वंचित होना पड़ा। इस युद्ध में अंग्रेजों को भी पर्याप्त हानि हुई, उनके 700 सैनिक मारे गए तथा 1,721 घायल हुए।

(3) **वुड्ढेवाल तथा आलीवाल के युद्ध** (Battle of Buddewal and Aliwal, 28 Jan., 1846)—21 जनवरी, 1846 ई. को रणजोड़सिंह मजीठिया (Ranjor Singh Majithia) ने सतलज नदी को पार करके लुधियाना की अंग्रेज सेना पर आक्रमण कर दिया। यह युद्ध वुड्ढेवाल में लड़ा गया जिसमें अंग्रेजों की हार हुई। परन्तु शीघ्र ही अंग्रेजों को सहायता प्राप्त हो गयी। अतः उन्होंने आगे बढ़कर 28 जनवरी, 1846 ई. को आलीवाल नामक स्थान पर सिक्खों को पराजित कर दिया।

(4) **सबराओ का युद्ध** (Battle of Subronio, 10 Feb., 1846)—10 फरवरी, 1846 ई. को सबराओ नामक स्थान पर अंग्रेजों तथा सिक्खों के मध्य अन्तिम निर्णायक युद्ध लड़ा गया। सिक्खों नें पुनः दृढ़तापूर्वक अंग्रेजों का सामना किया तथा कुछ समय तक अंग्रेजों की नाक में दम कर दिया।[1] मि. ह्वीलर का इस युद्ध के सम्बन्ध में कथन है, **"ब्रिटिशकालीन भारत के इतिहास में लड़े जाने वाले युद्धों में सबराओ का युद्ध सबसे भीषण युद्ध था। परन्तु जहां सिक्ख सेना अपने सम्मान की रक्षा के लिए अपना सब कुछ बलिदान करने को तत्पर थी वहां शामसिंह अटारीवाला के अतिरिक्त अन्य सभी सिक्ख सेनानायक विश्वासघात पर उतर आए थे।"**

इन परिस्थितियों में सिक्खों को अपार क्षति हुई। इस युद्ध में लगभग 10 हजार सिक्ख सैनिकों का वध कर दिया गया तथा सेनापति शामसिंह अटारीवाला युद्ध स्थल में ही मारा गया। सबराओ का युद्ध निर्णायक था। इस युद्ध की विजय के उपरान्त ब्रिटिश सेना ने विशाल संख्या में सतलज नदी को पार किया तथा 20 फरवरी, 1846 ई. को उसने लाहौर पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

परिणाम (Results)—इस समय तक सिक्ख पूर्णरूप से पराजित हो चुके थे, लेकिन लॉर्ड हार्डिंग ने पंजाब का अंग्रेजी साम्राज्य में विलय नहीं किया, उन्होंने सिक्खों से मार्च, 1846 में लाहौर की सन्धि कर ली। कुछ समय उपरान्त अनेक परिस्थितियों के कारण लाहौर की सन्धि में परिवर्तन करने आवश्यक हो गए थे। इसी कारण दिसम्बर 1846 ई. में सिक्खों से भैरोवाल की एक सन्धि की गयी।

लाहौर की सन्धि
(TREATY OF LAHORE, 9th MARCH, 1846)

इस सन्धि की प्रमुख धाराएं निम्न प्रकार थीं :

(1) महाराजा दलीपसिंह ने सतलज नदी के दक्षिण में स्थित अपने सभी प्रदेशों पर अपना अधिकार होने के साथ ही आश्वासन दिया कि वह भविष्य में इन प्रदेशों से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखेगा।

(2) सतलज तथा व्यास नदियों के दोआव के सभी प्रदेश एवं दुर्ग भी अंग्रेजों को सौंप दिए गए।

(3) महाराजा ने अपनी विद्रोही सेना को भंग कर देना स्वीकार किया तथा सिक्ख सेना की संख्या 20 हजार पैदल एवं 12 हजार अश्वारोहियों तक सीमित कर दी।

(4) अंग्रेजी सेना को पंजाब में आने-जाने की अनुमति मिल गयी तथा पंजाब सरकार ने यह भी स्वीकार किया कि ब्रिटिश सरकार की अनुमति के बिना किसी यूरोपीय को नौकरी पर नहीं रखा जाएगा।

1 **"The Sikh fought with the valour of heroes, the enthusiasm of crusaders and the desperation of zealots."** —***Malleson***

(5) पंजाव राज्य को युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में डेढ़ करोड़ रुपया देना पड़ा जवकि कोषागार में मात्र 50 लाख रुपया ही था अतः दलीपसिंह ने सिन्ध तथा व्यास नदियों के वीच के कश्मीर तथा हजारा सहित सभी पर्वतीय प्रदेश एक करोड़ रुपए के वदले कम्पनी को दे दिए।

(6) महाराजा की रक्षा हेतु 1846 ई. तक एक ब्रिटिश सेना भी लाहौर में रखी गयी।

(7) दलीपसिंह को पंजाव का महाराजा स्वीकार किया गया। उसकी माता झिन्दन को उसकी संरक्षिका तथा सरदार लालसिंह को उसका प्रधानमन्त्री नियुक्त किया गया।

(8) ब्रिटिश गवर्नर जनरल ने आश्वासन दिया कि वह लाहौर सरकार के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

परन्तु उपर्युक्त सन्धि के अनुसार कार्य चलाना कठिन हो गया। अंग्रेजों ने लाहौर दरवार के एक डोगरा सरदार को एक अन्य सन्धि द्वारा कश्मीर का प्रदेश एक लाख रुपए में वेच दिया। रानी झिन्दन तथा सरदार लालसिंह को अंग्रेजों का यह कार्य अच्छा नहीं लगा। अतः रानी झिन्दन तथा लालसिंह ने कश्मीर के गवर्नर शेख इमानुद्दीन के पुत्र को भड़का कर विद्रोह करवा दिया लेकिन ब्रिटिश सरकार को इस वात की सूचना मिल गयी कि यह विद्रोह रानी एवं उसके प्रधानमन्त्री द्वारा करवाया गया है अतः उन्हें उनके पदों से हटा दिया गया। 12 दिसम्वर, 1846 ई. को अंग्रेजों ने सिक्खों से भैरोवाल की सन्धि करके लाहौर की सन्धि में सुधार करके पुनरावृत्ति की।

भैरोवाल की सन्धि

(TREATY OF BHAIROWAL, 16th DEC., 1846)

इस सन्धि की शर्तें निम्नवत् थीं :

(1) अव लाहौर की प्रशासनिक व्यवस्था का उत्तरदायित्व आठ सदस्यों की एक समिति को सौंपा गया। ये सभी आठ सदस्य अंग्रेज समर्थक थे। इस समिति को महाराजा दलीपसिंह के अल्पवयस्क रहने तक कार्य संभालना था तथा लाहौर स्थित ब्रिटिश रेजीडेण्ट के अनुसार कार्य करना था।

(2) लाहौर में शान्ति तथा सुव्यवस्था वनाए रखने के उद्देश्य से वहां स्थायी रूप से एक अंग्रेजी सेना निश्चित की गयी। लाहौर सरकार को इस सेना के व्यय के लिए 22 लाख रुपया वार्षिक देना होता था।

(3) यह निश्चित किया गया कि दलीपसिंह के 4 सितम्बर, 1854 में वयस्क होने तक यह व्यवस्था चलती रहेगी।

इस प्रकार भैरोवाल की सन्धि के द्वारा पंजाव पर अंग्रेजों का वास्तविक अधिकार हो गया।

प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. रणजीतसिंह की नीति तथा कार्यों का वर्णन कीजिए। रणजीतसिंह की प्रशासनिक-व्यवस्था पर भी प्रकाश डालिए।
2. अंग्रेजों व सिक्खों के पारस्परिक सम्वन्धों पर प्रकाश डालिए।
3. अंग्रेजों ने पंजाव पर किस प्रकार अधिकार किया? वर्णन कीजिए।
4. रणजीतसिंह की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।
5. रणजीतसिंह की प्रशासनिक-व्यवस्था की विवेचना कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. रणजीतसिंह की सैन्य नीति पर प्रकाश डालिए।
2. रणजीतसिंह के राजस्व सुधार वताइए।
3. रणजीतसिंह की विजयों का उल्लेख कीजिए।
4. लाहौर की सन्धि की प्रमुख धाराएं वताइए।
5. भैरोंवाल की सन्धि की प्रमुख शर्तें वताइए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. रणजीतसिंह का जन्म किस मिस्ल में हुआ था?
   (अ) दालेवालिया (व) करोरसिंधिया (स) फैजलपुरिया (द) सकुर चकिया
2. रणजीत सिंह के पिता की मृत्यु होने पर किसने उसके संरक्षक के रूप में कार्य किया?
   (अ) चाचा (व) वड़े भाई (स) ताऊ (द) मां
3. लाहौर की सन्धि सिक्खों ने किससे की थी?
   (अ) अंग्रेज (व) मराठा (स) मुगल (द) अफगान
4. सवराओ का युद्ध सिक्खों ने किससे लड़ा था?
   (अ) मराठा (व) अंग्रेज (स) मुगल (द) अफगान
5. खालसा संघ का स्वरूप था :
   (अ) राजतन्त्रात्मक (व) धार्मिक
   (स) गणतन्त्र (द) उपरोक्त में कोई नहीं

[उत्तर—1. (द), 2. (द), 3. (अ), 4. (व), 5. (स)।]

निम्नलिखित वाक्यों में सत्य/असत्य दर्शाइए :

1. रणजीतसिंह की शासन-व्यवस्था गणतन्त्रात्मक थी।
2. रणजीतसिंह के समय राज्यों को मिस्ल कहते थे।
3. रणजीतसिंह ने अपनी सेना को जनरल वनतूरा से प्रशिक्षित कराया था।
4. फौज-ए-वेक वाइद का गठन रणजीतसिंह ने किया था।
5. रणजीत सिंह की शासन-व्यवस्था उच्च कोटि की थी।

[उत्तर—1. असत्य, 2. सत्य, 3. सत्य, 4. सत्य, 5. सत्य।]

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1. रणजीतसिंह का राज्य .... प्रान्तों में विभक्त था।
2. अमृतसर की सन्धि .... ई. में हुई।
3. रणजीतसिंह ने सभी मिस्लों पर अधिकार कर एक .... सिक्ख राज्य की स्थापना की।
4. प्रथम सिक्ख युद्ध के समय भारत का गवर्नर जनरल .... था।
5. मुदकी के युद्ध में सिक्ख सेना .... हुई।

[उत्तर—1. चार, 2. 1809 ई., 3. शक्तिशाली, 4. लॉर्ड हार्डिंग, 5. पराजित।]

9

लॉर्ड डलहौजी
[LORD DALHOUSIE]

लॉर्ड डलहौजी (1848 ई.—1856 ई.)
(LORD DALHOUSIE)

1848 ई. में लॉर्ड डलहौजी भारत का गवर्नर जनरल होकर भारत आया। वह स्कॉटलैण्ड के अभिजात व्यक्ति का पुत्र तथा कार्यक्षमता एवं विस्तृत जानकारी के लिए प्रसिद्ध था। इस समय उसकी आयु 36 वर्ष थी।

डलहौजी के सुधार
(REFORMS OF DALHOUSIE)

एक ओर जहां लॉर्ड डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति के कारण कटु आलोचना की जाती है वहीं दूसरी ओर उसके अनेक कल्याणकारी सुधारों के कारण आलोचक उसकी प्रशंसा भी करते हैं। इस सम्बन्ध में **सर रिचर्ड टैम्पल** का कथन है, **''एक प्रशासक के रूप में लॉर्ड डलहौजी से इंगलैण्ड से भारत आने वाले योग्य व्यक्तियों में से कोई भी उससे आगे निकलना तो क्या उसकी समानता भी नहीं कर पाया।''**[1]

डलहौजी एक महान् प्रशासक तथा सुधारक था। उसने अनेक महत्वपूर्ण सुधार किए। निःसन्देह ये सभी सुधार अंग्रेजी हितों की वृद्धि करने तथा शक्ति का केन्द्रीकरण करने के उद्देश्य से ही किए थे परन्तु इनसे साधारण जनता भी पर्याप्त मात्रा में लाभान्वित हुई। **अपने कार्यकाल में उसने निम्नांकित सुधार किए :**

प्रशासनिक सुधार
(ADMINISTRATIVE REFORMS)

प्रशासनिक क्षेत्र में लॉर्ड डलहौजी ने केन्द्रीकरण की नीति का अनुकरण किया तथा गवर्नर जनरल की स्थिति को सुदृढ़ बनाया। **इस सम्बन्ध में उसने निम्नलिखित कार्य किए :**

(1) **बंगाल में लैफ्टीनेण्ट गवर्नर की नियुक्ति**—डलहौजी ने बंगाल की प्रशासन व्यवस्था के लिए नए लैफ्टीनेण्ट गवर्नर की नियुक्ति की, इससे पूर्व भारत का गवर्नर जनरल ही बंगाल प्रान्त की प्रशासनिक व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होता था, परन्तु इस समय तक भारत में अंग्रेजी साम्राज्य का काफी विस्तार हो चुका था, जिससे गवर्नर जनरल के कार्यों में पर्याप्त

1. **"As an imperial administrator he had never been surpassed and seldom equalled by any of the illustrious men whom England has sent forth to govern India."**
—*Sir Richard Temple*

वृद्धि हो गयी थी। अव लैफ्टीनेण्ट गवर्नर की नियुक्ति करके उसे वंगाल के प्रशासन संभालने के उत्तरदायित्व से मुक्त कर दिया गया अतः लैफ्टीनेण्ट गवर्नर ही वंगाल की प्रवन्ध व्यवस्था देखता था। गवर्नर जनरल का कार्य केवल देखरेख तक सीमित रह गया था।

(2) **नॉन-रेग्युलेशन प्रणाली को अपनाया**—नव विजित प्रदेशों की प्रशासनिक व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता थी, अतः इन प्रदेशों में **'नॉन-रेग्युलेशन प्रणाली'** (Non-Regulation System) को अपनाया गया। इस प्रणाली के अन्तर्गत नव विजित प्रदेश पंजाव, अवध, वर्मा तथा मध्य प्रदेश की प्रशासनिक व्यवस्था का उत्तरदायित्व चीफ कमिश्नरों को दिया गया। **ये चीफ कमिश्नर अपने कार्यों के लिए गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद् के प्रति उत्तरदायी होते थे।** इन चीफ कमिश्नरों को सैनिक, असैनिक, वैधानिक, कार्यकारी तथा न्यायिक सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त थे। इस प्रकार की व्यवस्था की ओर भली-भांति ध्यान दिया जाने लगा। वंगाल, मद्रास तथा वम्वई आदि प्रान्तों को गवर्नरों के अधीन ही रहने दिया गया तथा उन्हें रेग्युलेशन प्रान्तों का नाम दिया गया।

(3) **भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न विभागों की स्थापना**—केन्द्रीय सरकार के विभिन्न कार्यों को पृथक्-पृथक् वर्ग में विभाजित किया गया तथा उन्हें विभिन्न विभागों को सौंप दिया गया। इससे पहले की अपेक्षा कार्य अधिक कुशलता से होने लगा। प्रान्तों को भी अनेक विभागों में विभाजित किया गया। इसकी प्रशासनिक व्यवस्था डिप्टी कमिश्नरों को सौंपी गयी।

अंग्रेजी साम्राज्य अव पर्याप्त रूप से विस्तृत हो चुका था। इस कारण शिमला जैसे केन्द्रीय स्थान को ग्रीष्मकालीन राजधानी वनाया गया।

सैन्य सुधार
(MILITARY REFORMS)

डलहौजी ने विलीनीकरण की नीति का अनुसरण कर अंग्रेजी साम्राज्य का पर्याप्त विस्तार किया था। अव पश्चिम में उसकी सीमा अफगानिस्तान को छू रही थी। अफगानिस्तान के अमीरों का अंग्रेजों के साथ सन्तोषजनक व्यवहार नहीं था तथा रूस के आक्रमण की भी आशंका थी, अतः इसी कारण लॉर्ड डलहौजी ने सैनिक सुधारों की आवश्यकता महसूस की। **उसके द्वारा किए गए प्रमुख सैन्य सुधार निम्नलिखित थे :**

(1) उसने सेना को बंगाल से हस्तान्तरित करके धीरे-धीरे पश्चिम की ओर ले जाना प्रारम्भ किया।

(2) वंगाल के तोपखाने के कार्यालय को कलकत्ता से स्थानान्तरित करके मेरठ भेज दिया गया।

धीरे-धीरे सेना का मुख्य कार्यालय कलकत्ता से शिमला लाया गया। इस समय तक शिमला ग्रीष्मकालीन राजधानी भी वन चुका था। अतः शिमला के महत्व में विशेष वृद्धि हो गयी। भारतीय सेना में होने वाले विद्रोहों को रोकने के लिए उसे छोटी-छोटी टुकड़ियों में विभाजित कर दिया गया और इन टुकड़ियों को एक-दूसरे से पृथक् कर दिया। भारतीय सैनिकों की प्रतिक्रिया को रोकने के विचार से सेना में गोरखों की भर्ती करके अनेक सैनिक दस्ते तैयार किए गए। पंजाव में भी एक अनियमित सेना रखी गयी जिसे पंजाव सरकार के अधीन रखा गया। **इस प्रकार सेना के सम्बन्ध में लॉर्ड डलहौजी की नीति 'कम करने, पृथक् करने तथा विभाजित करने' की थी।**

रेलवे व्यवस्था
(RAILWAYS)

भारत में सर्वप्रथम रेलगाड़ी डलहौजी के कार्यकाल में ही चलनी प्रारम्भ हुई थी। 1853 ई. में बम्बई तथा थाना (Thana) के बीच 23 मील लम्बी रेलवे लाइन बिछायी गयी। लॉर्ड डलहौजी ने भारत में तीन प्रमुख उद्देश्यों को सामने रखकर ही रेलवे लाइन बिछायी थी : (1) रेलवे की सहायता से सेना सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचायी जा सकेगी। (2) विस्तृत भारतीय साम्राज्य पर सरलतापूर्वक शासन किया जा सकेगा तथा शान्ति एवं व्यवस्था भी बनाये रखी जा सकती है। (3) इसके अतिरि रेलवे लाइन बिछाने का ठेका अंग्रेज पूंजीपतियों को देने से उसकी अपनी ही जाति के लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। निःसन्देह रेलवे लाइन बिछाने के पीछे लॉर्ड डलहौजी के उद्देश्य कुछ भी रहे हों, लेकिन इससे भारतीय जनता को पर्याप्त लाभ हुआ। यात्रा करना सरल तथा सुविधाजनक हो गया जिससे भारत में

राष्ट्रीयता के प्रसार में भी पर्याप्त सहायता मिली। 1857 ई. में सर एडविन आर्नोल्ड (Sir Adwin Arnold) ने लिखा था, **"रेलें भारत के लिए वह कार्य करेंगी जो अनेक राजवंश भी न कर सके, जिसे अकबर भी अपनी विलक्षण प्रतिभा से न कर सका तथा जिसे अपने विद्रोहों तथा अत्याचारों से टीपू सुल्तान भी न कर सका। वे भारत को एक राष्ट्र बना सकेंगी।"**

डाक तथा तार विभाग
(POSTS AND TELEGRAPH)

भारत में डलहौजी के कार्यकाल में ही बड़े-बड़े नगरों में आधुनिक ढंग के डाकखानों तथा तार घरों की स्थापना की गयी। अभी तक भारत में डाक-व्यवस्था सुचारु नहीं थी। डाक की फीस पत्र लिखने वाले से नहीं वरन् पत्र की दूरी पर निर्भर करती थी। इस व्यवस्था से जनता को पर्याप्त असुविधा थी तथा उनको धोखा दिए जाने की भी सम्भावना थी। लॉर्ड डलहौजी ने इन दोषों को दूर किया। **उसने टिकट लगाने की प्रणाली चलायी तथा सम्पूर्ण देश में समान डाक फीस रखी।** यह फीस पत्र भेजने वालों से टिकट के रूप में ली जाती थी। इससे डाक-व्यवस्था अत्यन्त लाभदायक हो गयी।

लॉर्ड डलहौजी के कार्यकाल में ही भारत में सर्वप्रथम तार की लाइन विछायी गयी। तार की सहायता से कलकत्ता का पेशावर के साथ, वम्बई को मद्रास के साथ तथा अन्य महत्वपूर्ण नगरों का पारस्परिक सम्वन्ध स्थापित किया गया। इस तार विभाग ने 1857 ई. की क्रान्ति के समय ब्रिटिश सरकार की विशेष सहायता की थी।

सार्वजनिक निर्माण कार्य
(PUBLIC WORK)

सार्वजनिक निर्माण विभाग की स्थापना—लॉर्ड डलहौजी के भारत आने से पूर्व सार्वजनिक निर्माण कार्य एक सैनिक परिषद् के अधीन होते थे। परिणामंस्वरूप केवल सैनिक-सम्वन्धी कार्यों को ही किया जाता था। इस प्रकार से जनसाधारण के कल्याण कार्यों की पर्याप्त उपेक्षा की जाती थी। **अतः डलहौजी ने एक सार्वजनिक निर्माण विभाग (P. W. D.) की स्थापना की।** इस विभाग के प्रयासों के परिणामस्वरूप ही जनसाधारण की भलाई के लिए अनेक नहरों, सड़कों और पुलों का निर्माण किया गया। कलकत्ता से पेशावर तक एक राष्ट्रीय राजमार्ग का निर्माण करवाया गया। थोड़े-वहुत परिवर्तनों के साथ आज भी यह राजमार्ग हमारे काम आ रहा है। इसी प्रकार के अन्य राजमार्गों का देश के अन्य भागों में भी निर्माण किया गया। गंगा नदी से हरिद्वार की सुप्रसिद्ध गंगा नहर का निर्माण भी इसी काल में किया गया। इसके साथ ही पंजाव में वारी दोआव नहर का निर्माण कार्य भी प्रारम्भ किया गया। देश में अच्छे इन्जीनियरों की मांग की पूर्ति के लिए रुड़की में एक इन्जीनियरिंग कॉलेज स्थापित किया गया, अव यह इन्जीनियरिंग कॉलेज एक विश्वविद्यालय के रूप में है।

व्यापारिक सुधार
(COMMERCIAL REFORMS)

डलहौजी ने अंग्रेज व्यापारियों तथा पूंजीपतियों के हितों को ध्यान में रखकर अनेक व्यापारिक सुधार भी किए। इसी कारण अनेक इतिहासकारों ने कहा है कि व्यापारिक क्षेत्र में भी अपनी साम्राज्यवादी नीति का ही प्रयोग किया। अंग्रेज व्यापारियों के स्वार्थों की पूर्ति करने के उद्देश्य से लॉर्ड डलहौजी ने खुले व्यापार (Free Trade) की नीति का अनुकरण कर उनके व्यापार पर लगे सभी प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया। बन्दरगाहों से निर्यात किए

जाने वाले माल पर लगायी जाने वाली चुंगी को तथा अन्य अनेक प्रकार के करों को समाप्त कर दिया। परिणामस्वरूप इंगलैण्ड का निर्मित माल भारत में आकर सस्ता बिकने लगा तथा भारत में हाथ से निर्मित माल उसका सामना न कर सका। इस प्रकार भारतीय गृह-उद्योग चौपट हो गए।

शिक्षा सम्बन्धी सुधार
(EDUCATIONAL REFORMS)

अपने कार्यकाल में लॉर्ड डलहौज़ी ने शिक्षा के क्षेत्र में भी अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए। 1854 ई. में सर चार्ल्स वुड जो कि 'बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल' के अध्यक्ष थे, का इस सम्बन्ध में एक पत्र प्राप्त हुआ। इतिहास में यह पत्र 'वुड्स डिस्पैच' (Wood's Despatch) के नाम से विख्यात है। **इस पत्र में निम्न प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए थे :**

(1) सभी प्रेसीडेन्सियों में लन्दन विश्वविद्यालय के नमूने पर विश्वविद्यालय स्थापित किए जाएं। ये विश्वविद्यालय केवल परीक्षा लेने का कार्य ही करें तथा अध्ययन कार्य न करें।

(2) इन विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत इण्टर अथवा डिग्री तक की शिक्षा के लिए कॉलेजों की स्थापना की जाए।

(3) प्रत्येक विभाग में एक शिक्षा विभाग की स्थापना की जाए।

(4) हाईस्कूलों तथा एंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूलों (Anglo Vernacular School) में शिक्षा का माध्यम प्रान्त की स्थानीय भाषा को ही बनाया जाए।

(5) शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु प्रशिक्षण केन्द्र (Training School) स्थापित किए जाएं।

(6) शिक्षा को पूर्णरूपेण धर्म-निरपेक्ष रखा जाए।

(7) प्राइवेट संस्थाओं को मान्यता प्रदान कर तथा अनुदान देकर स्कूल खोलने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

(8) प्रत्येक प्रान्त में शिक्षा कार्य का निरीक्षण करने के लिए शिक्षा निदेशक (Director of Public Instruction) नियुक्त किया जाए तथा उसकी सहायता के लिए इन्स्पैक्टर नियुक्त किया जाए।

वुड्स डिस्पैच के निर्देशानुसार मद्रास, कलकत्ता तथा बम्बई में विश्वविद्यालय स्थापित किए गए। अल्पकाल में भारत के सभी बड़े-बड़े नगरों में कॉलेज तथा स्कूल स्थापित होने लगे।

व्यपगत का सिद्धान्त
(DOCTRINE OF LAPSE)

लॉर्ड डलहौजी ने रियासतों को ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बनाने के लिए **'व्यपगत के सिद्धान्त'** का पालन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार पैतृक वारिस न होने पर रियासतों का विलय अंग्रेजी राज्य में किया जा सकता था। **जून 1854 ई. में डलहौजी ने भारतीय हिन्दू रियासतों को तीन भागों में बांटा : स्वतन्त्र, अधीनस्थ व आश्रित।** स्वतन्त्र रियासतों को वारिस न होने पर गोद लेने का अधिकार था। अधीनस्थ राज्यों को अंग्रेजी सरकार गोद लेने का अधिकार दे सकती थी। आश्रित रियासतों को गोद लेने का अधिकार न था। यद्यपि डलहौजी का यह वर्गीकरण अनुचित था, किन्तु उसने इसी का पालन करते हुए भारत में अनेक रियासतों का अंग्रेजी साम्राज्य में विलय कर साम्राज्य विस्तार किया। **व्यपगत के सिद्धान्त के द्वारा अनेक रियासतों का विलय किया जिनमें प्रमुख सतारा, झांसी, नागपुर, सम्बलपुर व तंजौर आदि थीं।**

हण्टर व अन्य अनेक यूरोपीय विद्वानों ने डलहौजी के व्यपगत के सिद्धान्त को उचित वताया है। पी. ई. रॉवर्ट्स ने भी **व्यपगत के सिद्धान्त के विषय में तीन तथ्यों को स्पष्ट किया है :**

(i) रॉवर्ट्स के अनुसार डलहौजी इस सिद्धान्त का आविष्कारक नहीं था। मराठों द्वारा इस सिद्धान्त का पहले से ही प्रयोग किया जा रहा था।
(ii) डलहौजी ने इस सिद्धान्त को केवल आश्रित राज्यों पर लागू किया था।
(iii) इस सिंद्धान्त के लागू करने में डलहौजी का उद्देश्य उन राज्यों का हित करना था।

इसी प्रकार डव्लू. डव्लू. हण्टर ने व्यपगत के सिद्धान्त के समर्थन में निम्नलिखित तर्क दिए हैं :

(i) इस सिद्धान्त के द्वारा राजाओं द्वारा पुत्र के गोद लेने पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया था। गोद लिए गए पुत्रों को राज सिंहासन पर वैठना प्रतिवन्धित किया गया था।
(ii) ब्रिटिश प्रशासन सक्षम था, अतः ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन आने से राज्यों की स्थिति सुधरती।
(iii) राजाओं के लिए पेन्शन की व्यवस्था की गई थी।
(iv) भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को सुदृढ़ वनाने व शान्ति वनाए रखने के लिए यह आवश्यक था।

किन्तु अधिकांश इतिहासकारों ने इस सिद्धान्त की आलोचना की है। ऐसे विद्वानों में प्रमुख केय, स्लीमेन व अनेक भारतीय इतिहासकार हैं। इन विद्वानों ने इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए निम्नलिखित विचार व्यक्त किए हैं :

(i) डलहौजी को राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं था। इससे भारतीयों की धार्मिक भावनाओं पर भी आघात हुआ।
(ii) कुशल शासन-व्यवस्था के नाम पर अन्य राज्यों पर अधिकार कर लेना असंगत था।
(iii) राज्य राजा के पुत्र को उत्तराधिकार में मिलता था। अतः गोद लिए पुत्र भी राज्य ग्रहण करने के अधिकारी थे।
(iv) मराठों में व्यपगत का सिद्धान्त प्रचलित अवश्य था, किन्तु इसको कभी भी कठोरतापूर्वक लागू नहीं किया गया।
(v) डलहौजी ने सभी राज्यों पर (चाहे वे आश्रित थे अथवा नहीं) इस सिद्धान्त को लागू करने का प्रयत्न किया।

इस सिद्धान्त के द्वारा डलहौजी ने अंग्रेजी साम्राज्य का तो विस्तार कर दिया किन्तु इन रियासतों में वह कुशल प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित न कर सका, परिणामस्वरूप सभी राज्यों में असन्तोष की भावना उत्पन्न होने लगी। प्रो. एम. एस. जैन ने लिखा है कि राजघरानों की सम्पत्ति को नीलाम करवाकर, पेन्शन व जागीरों की समाप्ति, दरवारियों व सैनिकों को पदच्युत करके उसने अपनी नीति से सामन्तों व राजघरानों में ही नहीं वरन् जनता में भी असन्तोष उत्पन्न किया। **इसके अतिरिक्त इस नीति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि रियासतों को अंग्रेजी नीति का विश्वास न रहा तथा उनमें यह भय उत्पन्न होने लगा कि अंग्रेजी सरकार किसी भी राज्य का इस सिद्धान्त के द्वारा विलय कर सकती है।** अतः यह सिद्धान्त 1857 ई. के विद्रोह का एक कारण वना।

पंजाब पर अधिकार
(ANNEXATION OF PUNJAB)

लॉर्ड हार्डिंग के समय में हुए प्रथम सिक्ख युद्ध में यद्यपि अंग्रेजों ने सिक्खों को परास्त किया था, किन्तु उनकी शक्ति का पूर्णतः विनाश नहीं किया गया था। लॉर्ड डलहौजी ने गवर्नर-जनरल बनने के उपरान्त अपनी साम्राज्यवादी नीति के अनुरूप पंजाब पर अपनी दृष्टि केन्द्रित की तथा विभिन्न आरोप व बहानों के द्वारा पंजाब पर आक्रमण करने का अवसर ढूंढ़ा। **पंजाब में अंग्रेजों के हस्तक्षेप से वहां विद्रोह की स्थिति उत्पन्न हो गई।** अतः डलहौजी ने 10 अक्टूबर, 1848 ई. को सिक्खों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। किन्तु वास्तव में यह युद्ध 22 नवम्बर, 1848 ई. को प्रारम्भ हो सका। **यह युद्ध चार स्थानों पर लड़ा गया।** ये चार स्थान थे—रामनगर का युद्ध (22 नवम्बर, 1848), मुल्तान का युद्ध (दिसम्बर-जनवरी 1848-1849), चिलियानवाला युद्ध (13 जनवरी, 1849) तथा गुजरात का युद्ध (21 फरवरी, 1849 ई.)। **इनमें गुजरात का युद्ध निर्णायक प्रमाणित हुआ तथा इसी के साथ द्वितीय सिक्ख युद्ध समाप्त हो गया।**

इस प्रकार द्वितीय सिक्ख युद्ध से पंजाब पर अंग्रेजों का आधिपत्य स्थापित हो गया।[1] महाराजा दिलीप सिंह को पेन्शन देकर इंग्लैण्ड भेज दिया गया, ताकि पंजाब में पुनः विद्रोह न हो सके। सिक्ख सेना को भी इसी कारणवश भंग कर दिया गया।

द्वितीय बर्मा युद्ध (1852 ई.)
(SECOND BURMESE WAR)

जनवरी, 1848 ई. में लॉर्ड डलहौजी भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया। अतः उसी के शासनकाल में 1852 ई. में द्वितीय बर्मा युद्ध आरम्भ हुआ। इससे पूर्व यान्दावू की सन्धि के द्वारा प्रथम बर्मा युद्ध की समाप्ति हो गयी थी परन्तु बर्मा का नया राजा सन्धि की शर्तों को मानने के लिए तैयार न था। **इसके अतिरिक्त भी इस युद्ध के अनेक कारण थे।**

कारण (Causes)

द्वितीय बर्मा युद्ध के लिए निम्नलिखित कारण प्रमुख रूप से उत्तरदायी थे :

(1) लॉर्ड डलहौजी का सभी यूरोपीय शक्तियों से बर्मा को अलग रखने का प्रयास—डलहौजी के कार्यकाल में फ्रांस तथा अमेरिका आदि देश सागरों की ओर अत्यन्त तीव्र गति से अग्रसर हो रहे थे। लॉर्ड डलहौजी को आशंका थी कि कहीं कोई देश बर्मा में अपना स्थान न बना ले, ऐसा हो जाने पर ब्रिटिश हितों को पर्याप्त आघात पहुंचता। इसी कारण डलहौजी ने किसी प्रकार बर्मा पर अंग्रेज़ी आधिपत्य स्थापित करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था।

(2) अंग्रेज व्यापारियों की शिकायतें—प्रथम बर्मा युद्ध के पश्चात् अनेक अंग्रेज व्यापारी बर्मा में बस गए थे चूंकि इन अंग्रेज व्यापारियों के व्यापारिक अधिकार स्पष्ट नहीं थे, इसलिए कभी-कभी बर्मा की सरकार तथा अंग्रेज व्यापारियों में संघर्ष हो जाता था। अधिकांश व्यापारी प्रायः करों से बचने का प्रयास करते थे। बर्मी अधिकारी कर की चोरी में अंग्रेज व्यापारियों पर भारी जुर्माने करते थे। शेफर्ड तथा लुईस दो इसी प्रकार के अंग्रेज व्यापारी थे जिनके दोषी होने पर बर्मा की सरकार ने भारी जुर्माने किए थे। अतः बर्मा में निवास करने वाले अंग्रेज व्यापारियों ने लॉर्ड डलहौजी के पास इस सम्बन्ध में एक आवेदन-पत्र भेजा। डलहौजी तो बहाने की खोज में पहले ही था। अतः उसने इस आवदेन-पत्र के आधार पर यह आरोप

1 अंग्रेजों ने पंजाब पर 29 मार्च, 1949 को अधिकार किया था।

लगाया कि वह (बर्मा) यान्दाबू की सन्धि का उल्लंघन कर रहा है और उसने एक पत्र भेजकर मांग की कि बर्मा की सरकार अंग्रेज व्यापारियों की क्षतिपूर्ति करे।

(3) नए शासक द्वारा यान्दाबू की सन्धि का उल्लंघन—प्रथम बर्मा युद्ध की समाप्ति पर 1826 ई. में यान्दाबू की सन्धि सम्पन्न हुई थी परन्तु बर्मा के नए शासक धारावादी ने इस सन्धि का पालन करना अस्वीकार कर दिया तथा बर्मा में स्थित ब्रिटिश रेजीडेण्ट से भी चले जाने के लिए कहा। नए शासक ने अपने देश के विधान का पालन करते हुए यान्दाबू की सन्धि का पालन करना अस्वीकार कर दिया था। बर्मा में नए शासक पर पुरानी सन्धियां लागू नहीं समझी जाती थीं, परन्तु अंग्रेजों को इसका इस प्रकार कार्य करना निःसन्देह बुरा लगा और वे इसका प्रतिशोध लेने को तैयार हो गए।

(4) कमाण्डर लैम्बर्ट का रंगून जाना—अपनी मांगों को स्वीकार कराने के उद्देश्य से लॉर्ड डलहौजी ने जल सेना अधिकारी लैम्बर्ट को तीन विशाल युद्धपोतों के साथ रंगून भेजा। शान्ति-वार्ता के लिए जंगी जहाजों को भेजना आश्चर्यजनक था। अतः बर्मा के शासक ने अंग्रेज व्यापारियों की शिकायतों को दूर करने का आश्वासन दिया तथा उन्हें प्रसन्न करने के विचार से रंगून के गवर्नर को भी उसके पद से हटा दिया क्योंकि बर्मा का शासक जंगी जहाजों का अर्थ भली-भांति जानता था।

युद्ध का प्रारम्भ (War begins)—इस आश्वासन के उपरान्त कमाण्डर लैम्बर्ट को शान्त हो जाना चाहिए था, मगर उसने ऐसा नहीं किया, वह तो रंगून में लड़ाई उकसाने के लिए ही पहुंचा था। अब उसने आरोप लगाया कि रंगून के नए गवर्नर ने अंग्रेज प्रतिनिधियों से न मिलकर अंग्रेजों का अपमान किया है। अपने सम्मान की रक्षा के लिए उसने बर्मा के शासक के एक शाही जहाज **'रॉयल यलोशिप'** को पकड़कर भगा लेने का प्रयास किया। इस घटना पर बर्मा की जनता भड़क उठी और उसने भगा ले जाने वाले जहाज पर गोलाबारी प्रारम्भ कर दी। प्रत्युत्तर में अंग्रेजों ने भी गोलियां चलायीं। **इस प्रकार 1852 ई. में बर्मा का द्वितीय युद्ध प्रारम्भ हो गया।**

घटनाएं (Events)—डलहौजी जल सेना अधिकारी लैम्बर्ट के जहाजों पर गोलियां चलाए जाने से उत्तेजित हो गया अतः उसने बर्मा सरकार से कहा कि वह क्षमा याचना करे अथवा क्षतिपूर्ति के रूप में 12,000 पौण्ड दे अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाए। बर्मा सरकार को उपर्युक्त चेतावनी देने के पश्चात् डलहौजी युद्ध की तैयारी में लग गया। लेकिन बर्मा सरकार ने इन चेतावनी का कोई उत्तर नहीं भेजा। चेतावनी के बावजूद भी उत्तर न आने पर प्रथम बर्मा युद्ध के अनुभवी जनरल गाडविन को 5,800 सैनिकों तथा अनेक जंगी जहाजों के साथ बर्मा भेजा गया। गाडविन की सेना ने 14 अप्रैल, 1852 ई. तक मर्ताबन तथा रंगून पर अधिकार कर लिया। मई 1852 ई. में अंग्रेजों ने बसीन सहित पीगू के सम्पूर्ण सागर तट पर अधिकार कर लिया। सितम्बर 1852 ई. में डलहौजी स्वयं बर्मा पहुंचा। उसने अक्टूबर मास में प्रोम तथा नवम्बर मास में पीगू पर अधिकार कर लिया। कम्पनी के संचालकों की इच्छा थी कि अंग्रेजी सेनाएं आगे तक पंहुच कर सम्पूर्ण बर्मा पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लें, लेकिन डलहौजी प्रोम तथा पीगू पर अधिकार करके ही सन्तुष्ट हो गया। अतः दिसम्बर 1852 ई. **की एक घोषणा के अनुसार प्रोम तथा पीगू अर्थात् बर्मा के निचले भागों** (Lower Burma) **को अंग्रेजी साम्राज्य का अंग बना लिया गया।**

परिणाम (Results)—द्वितीय वर्मा युद्ध के परिणाम अंग्रेजों के लिए अत्यन्त लाभकारी थे :

(1) उपर्युक्त विजित प्रदेशों को अंग्रेजी साम्राज्य का अंग बना लिया गया और लोअर बर्मा (Lower Burma) के नाम से एक नए प्रान्त का गठन किया गया, जिसकी राजधानी रंगून बनायी गयी।

(2) अपर वर्मा (Upper Burma) अर्थात् स्वतन्त्र बर्मा के लिए अब समुद्र तट पर पहुंचने का कोई मार्ग नहीं था अतः उसे किसी भी प्रकार की विदेशी सहायता प्राप्त होने की कोई सम्भावना न रही।

(3) बंगाल की खाड़ी के पूर्व में स्थित सम्पूर्ण सागर तट पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

(4) लोअर वर्मा की विजय से उत्तरी बर्मा की विजय का मार्ग प्रशस्त हो गया तथा लोअर बर्मा की विजय से कम्पनी के व्यापार में भी आश्चर्यजनक वृद्धि हुई।

आलोचना (Criticism)—द्वितीय बर्मा युद्ध को भड़काने तथा वर्मा के निचले हिस्सों का अंग्रेजी साम्राज्य में विलय करने पर लॉर्ड डलहौजी की कटु आलोचना हुई। आलोचकों का कथन था कि शेफर्ड तथा लुईस जैसे व्यापारियों की शिकायत पर अंग्रेजों का बर्मा की सरकार से उलझना उचित नहीं था। साथ ही बर्मा सरकार से व्यापारियों की क्षतिपूर्ति करने की मांग करना भी किसी प्रकार उचित नहीं था। सबसे अनुचित बात जल सेनापति लैम्बर्ट को विशाल युद्धपोतों के साथ रंगून भेजना थी। कमाण्डर लैम्बर्ट द्वारा 'रॉयल यलोशिप' को पकड़ कर भगा ले जाना भी अनुचित था तथा अन्त में बर्मा के निचले हिस्सों का अंग्रेजी साम्राज्य में विलय किसी प्रकार उचित न था। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, "**साम्राज्यवाद केवल अपने उद्देश्यों में ही रुचि रखता है तथा उस उद्देश्य को प्राप्त करने के साधनों की ओर कोई ध्यान नहीं देता है। इसलिए इसे अनुचित कहना केवल नेत्रहीन को नेत्रहीन कहने के समान है।**"

अवध
(OUDH)

अवध के साथ अंग्रेजों का सम्बन्ध क्लाइव के प्रशासन काल में हुआ था। बक्सर के युद्ध के पश्चात् क्लाइव ने अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सन्धि की। यह सन्धि, मई, 1765 ई. में की गई थी तथा इसे '**इलाहाबाद की सन्धि**' कहा जाता है। **इस सन्धि की प्रमुख धाराएं निम्नलिखित थीं :**

(1) **शुजाउद्दौला को अवध का प्रदेश पुनः सौंप दिया गया,** परन्तु उससे कड़ा तथा इलाहाबाद के दो जिले छीन लिएं गए।

(2) शुजाउद्दौला ने **युद्ध की क्षतिपूर्ति के लिए अंग्रेजों को पचास लाख रुपए देना स्वीकार किया।**

(3) अंग्रेजों ने अवध के **नवाब** को सैनिक सहायता देना स्वीकार किया, किन्तु इन **सेनाओं का व्यय उसे ही सहन करना था।**

(4) कम्पनी को **अवध के प्रदेशों में बिना कोई कर दिए व्यापार करने की अनुमति** मिल गई।

(5) अवध के नवाव से लिए गए **कड़ा तथा इलाहाबाद के जिले मुगल सम्राट को दे दिए गए।**

(6) मुगल सम्राट **शाहआलम के लिए 26 लाख रुपया वार्षिक पेन्शन निश्चित** कर दी गई।

(7) **मुगल सम्राट शाहआलम ने प्रसन्न होकर बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी अंग्रेजों को सौंप दी** अर्थात् अव इन तीनों प्रदेशों से कर एकत्रित करने का अधिकार अंग्रेजों को मिल गया।

इस प्रकार इलाहावाद की सन्धि के द्वारा अंग्रेजों व अवध के नवाब के मध्य मित्रता स्थापित हो गई। अंग्रेजों ने अवध के नवाब से मित्रता इसलिए की थी ताकि वह मराठों का साथ न दे, इसी कारणवश वारेन हेस्टिंग्ज ने 1773 में अवध के नवाव के साथ पुनः बनारस की सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार, 50 लाख रुपए लेकर इलाहावाद व कड़ा जिलों को पुनः अवध को लौटा दिया गया। अवध के नवाव ने अंग्रेजी सेना की सहायता लेने के वदले में दो लाख दस हजार रुपया प्रतिमास देना स्वीकार किया, किन्तु यह सन्धि अधिक समय तक कायम न रह सकी। 1775 ई. में अवध के नवाब शुजाउद्दौला की मृत्यु हो गई व उसका पुत्र आसफुद्दौला अवध का नवाव बना। अंग्रेजों द्वारा यह तर्क दिया गया कि 'वनारस की सन्धि' केवल शुजाउद्दौला के साथ की गई थी, अतः उसकी मृत्यु के साथ ही इसे समाप्त माना जाएगा। अतः 1775 ई. में नवाब आसफुद्दौला के साथ 'फैजाबाद की सन्धि' अंग्रेजों ने की। इस सन्धि के द्वारा :

(i) बनारस तथा गाजीपुर को कम्पनी के अधीन कर दिया गया।
(ii) अंग्रेजी सेना की सहायता के बदले में ली जाने वाली राशि बढ़ा दी गई। अब 74 लाख रुपए प्रतिवर्ष लिए जाने थे।
(iii) कम्पनी की रकम चुकाने के लिए शुजाउद्दौला की बेगमों से धन वसूलने में आसफुद्दौला की सहायता की गई।

इस सन्धि ने अवध को अत्यधिक हानि पहुंचाई व अवध आर्थिक दृष्टि से जर्जर हो गया। अवध के आन्तरिक मामलों में भी अंग्रेजों का हस्तक्षेप बढ़ गया। अंग्रेज अपनी सेना की सहायता के वदले में 74 लाख रुपए प्रतिवर्ष अवध से लेते थे, जिससे अवध का राजकोष रिक्त हो गया। अवध की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए अवध के नवाब के अनुरोध पर लॉर्ड कार्नवालिस ने यह रकम घटाकर 50 लाख रुपए वार्षिक कर दी, किन्तु बाद में सर जान शोर ने अवध के नवाव पर सेना में वृद्धि करने तथा उसके लिए अतिरिक्त साढ़े पांच लाख रुपया देने के लिए दवाव डाला। **नवाब द्वारा ऐसा करने में अपनी असमर्थता जताने पर जान शोर स्वयं लखनऊ पहुंचा तथा उसने अवध के दीवान भाउलाल को पदच्युत कर दिया।** इसके साथ ही उसने नवाव को अंग्रेजों की वातें मानने के लिए विवश किया। इस आघात से नवाव आसफुद्दौला की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् अवध के सिंहासन के लिए नवाव के भाई सआदत अली व पुत्र वजीर अली के मध्य संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में शोर ने सआदत अली का साथ दिया व 1798 ई. में उसे नवाव घोषित कर दिया। सआदत अली के साथ अंग्रेजों ने एक समझौता किया, जिसके द्वारा निम्नलिखित बातें तय की गईं हैं :

(i) सैनिक खर्च 50 लाख से वढ़ाकर 74 लाख रुपया प्रतिवर्ष कर दिया गया अर्थात् अब इतनी धनराशि प्रतिवर्ष अंग्रेजों को अवध के नवाब से प्राप्त होनी थी।

(ii) नवाव वनाने में सहायता के वदले में सआदत अली ने अंग्रेजों को 12 लाख रुपए दिए।
(iii) वजीर अली को डेढ़ लाख रुपया पेन्शन दी जानी थी।
(iv) इलाहावाद के किले की मरम्मत के लिए सआदत अली ने आठ लाख रुपया अंग्रेजों को दिया।

इस प्रकार अवध में अंग्रेजी हस्तक्षेप व प्रभाव वढ़ता ही गया।

वेलेजली के भारत आगमन के समय लगभग दस हजार ब्रिटिश सेना अवध की सुरक्षा के लिए वहां तैनात थी। इस सेना के खर्च हेतु अवध का नवाब प्रतिवर्ष 74 लाख रुपए देता था। गवर्नर जनरल का पद सम्भालते ही वेलेजली ने अवध पर दबाव डालने की नीति अपनाई। इन दिनों अवध को अफगानिस्तान के शासक जमानशाह, सिक्खों तथा मराठों का भय था। अवध का नवाब सआदत अली स्वयं इन आक्रमणों का सामना करने में असमर्थ था। अतः वेलेजली ने परिस्थितियों का फायदा उठाते हुए नवाव के पास प्रस्ताव भेजा कि वह अपनी सेना में कमी करे तथा कम्पनी की सेना में वृद्धि करे, किन्तु नवाब ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। वेलेजली ने उस पर दवाव डालना आरम्भ कर दिया। अन्त में भयभीत होकर अवध के नवाब ने भी 10 नवम्वर, 1801 ई. में सहायक सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिए। इसके अतिरिक्त नवाब के पास कोई दूसरा विकल्प ही नहीं था। यह सन्धि भी उसी प्रकार थी जिस प्रकार कम्पनी और निजाम के वीच हुई थी। इस सन्धि की मुख्य व्यवस्था यह थी कि कम्पनी की सेना का खर्च पूरा करने के लिए किसी वार्षिक शुल्क के स्थान पर अवध राज्य का बड़ा क्षेत्र कम्पनी के अधिकार-क्षेत्र में दे दिया जाए।

लॉर्ड वेलेजली के समय अवध के नवाब पर अंग्रेजों का पूर्ण नियन्त्रण हो चुका था। आन्तरिक शासन में नवाब नाम-मात्र को स्वतन्त्र था। उसे अंग्रेज रेजिडेण्ट की आज्ञा का पालन करना होता था। नवाब के हाथ में वास्तविक सत्ता नहीं थी, उसकी अपनी सेना भी नहीं थी तथा वाह्य आक्रमण से उसकी सुरक्षा का दायित्व अंग्रेजों पर था। **इस कारण नवाब का शासन खराब होता गया।** नवाब और उसके ताल्लुकेदारों के अत्याचार जनता पर वढ़ रहे थे और इससे वचने का भी कोई उपाय नहीं था क्योंकि आन्तरिक विद्रोह और वाह्य आक्रमण से नवाव की सुरक्षा अंग्रेजों पर निर्भर थी। **अवध के खराव शासन के लिए अंग्रेज ही जिम्मेदार थे।** वे केवल अपने हित में शासन में हस्तक्षेप करते थे। ऐसी स्थिति में कोई योग्य शासक भी शासन की बुराइयों को दूर नहीं कर सकता था। **अवध के नवाब को अनेक बार धमकी दी गई कि यदि उसके शासन में सुधार नहीं हुआ तो उसका राज्य अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाएगा,** लेकिन अवध को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित नहीं किया गया। **इसका प्रमुख कारण यह था कि अवध का हर नवाब अंग्रेजों के प्रति वफादार था।**

लॉर्ड विलियम वैंटिंक के समय अवध की स्थिति काफी दयनीय थी। उस समय अवध का नवाव नसीरुद्दीन हैदर था। **उसके शासनकाल में अवध राज्य भ्रष्टाचार, कुशासन और अव्यवस्था का केन्द्र था।** नसीरुद्दीन स्वयं तो सुधार लाना ही नहीं चाहता था, बल्कि योग्य मन्त्रियों के सुझाव की भी उपेक्षा करता था। कम्पनी के संचालक मण्डल के आदेश पर विलियम बैंटिंक 1831 ई. में अवध गया और नवाव को शासन में सुधार लाने की उसने धमकी दी। नवाब के मन्त्री हकीम मेंहदी ने शासन में सुधार का प्रयत्न किया और इसके लिए अंग्रेजों से सहायता मांगी, लेकिन बैंटिंक ने इन्कार कर दिया। अवध की स्थिति पूर्ववत् रही

और बैंटिंक ने भी कोई सुधार नहीं किया। वास्तव में वह शासन की कुव्यवस्था से अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाने का आधार वनाना चाहता था।''

1847 ई. में लॉर्ड हार्डिंज ने पुनः अवध की ओर ध्यान दिया। **उसने अवध के नवाब वाजिदअली शाह को चेतावनी दी कि यदि दो वर्षों में शासन में सुधार नहीं हुआ तो अवध पर अंग्रेज अधिकार कर लेंगे।** नवाब शासन में कोई सुधार नहीं ला सका, किन्तु द्वितीय आंग्ल-सिक्ख युद्ध के प्रारम्भ हो जाने से अवध उस समय बच गया।

लॉर्ड डलहौजी साम्राज्यवादी प्रशासक था। अवध राज्य उसकी अपहरण-नीति का शिकार वन गया। अंग्रेज अवध के राज्य को कम्पनी-साम्राज्य में मिलाने के लिए वहाना ढूंढ़ ही रहे थे। अवध के नवाव पर कुशासन का आरोप लगाया गया। इसी आधार पर भूतपूर्व गवर्नर-जनरल ने भी नवाब को उसका राज्य छीनने की धमकी दी थी। डलहौजी ने भी वही आधार लिया। **अवध राज्य में प्रशासनिक अव्यवस्था और भ्रष्टाचार का बोलबाला था। वाजिदअली शाह के समय प्रशासनिक अव्यवस्था और भ्रष्टाचार अत्यधिक था।** डलहौजी ने 1849 ई. में कर्नल स्लीमैन को अवध का रेजिडेण्ट नियुक्त किया। **स्लीमैन ने अवध राज्य में व्याप्त प्रशासनिक त्रुटियों, सैनिक दुर्वलता, नवाव की चरित्र सम्बन्धी कमजोरी और आर्थिक दुर्व्यवस्था की एक रिपोर्ट कम्पनी के संचालक-मण्डल के समक्ष पेश की।** 1854 ई. में जनरल आउट्रम अवध में रेजिडेण्ट नियुक्त हुआ। आउट्रम की रिपोर्ट भी कर्नल स्लीमैन के कथन की पुष्टि करती थी। अतः संचालक मण्डल की सहमति पाकर डलहौजी ने अवध को कम्पनी साम्राज्य में मिलाने की योजना बना ली। रेजिडेण्ट आउट्रम को अवध के नवाब से नई सन्धि करने का आदेश दिया गया। **सन्धिपत्र में नवाब द्वारा स्वेच्छा से राज्य अर्पित करने की बात कही गई थी।** सन्धिपत्र पर अवध के नवाव वाजिदअली शाह ने हस्ताक्षर नहीं किया। अवध के नवाब के विरुद्ध सैनिक भेजे गए और उसे वन्दी वनाकर कलकत्ता भेज दिया गया।

इस प्रकार डलहौजी ने अंग्रेजी साम्राज्य का समर्थन व सहयोग करने वाले राज्यों को भी नहीं छोड़ा। अवध के नवाव प्रारम्भ से ही अंग्रेजों के समर्थक रहे थे। अंग्रेजों ने अवध के शासक नवाव वाजिद अली शाह पर आरोप लगाया वि, **''ब्रिटिश सरकार ईश्वर और मनुष्य दोनों की दृष्टि में गुनहगार होती, यदि वह ऐसे कुशासन को जारी रखने में हाथ बंटाती, जिससे लाखों लोगों को कष्ट पहुंचता है।''** इस प्रकार कुशासन का आरोप लगाकर 23 फरवरी, 1856 ई. को उपर्युक्त घोषणा के द्वारा अवध को अंग्रेजी साम्राज्य का अंग बना लिया गया। इस घोषणा से अत्यधिक असन्तोष उत्पन्न हुआ तथा भारत के अन्य राज्यों के शासक भी यह सोचने पर विवश हुए कि अंग्रेजों से मधुर सम्बन्ध वनाए रखने से कोई लाभ नहीं है। तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश डालते हुए मालेसन ने लिखा है, **''अवध को अंग्रेजी साम्राज्य में मिलाए जाने तथा वहां नवीन शासन पद्धति की स्थापना किए जाने के परिणामस्वरूप, मुसलमान, कुलीन वर्ग, सैनिक, सिपाही और किसान सब अंग्रेजों के विरुद्ध हो गए तथा अवध असन्तोष का केन्द्र बन गया।''**

अवध के विलय का औचित्य

अवध को कुशासन के आधार पर अंग्रेजी राज्य में मिलाया गया, लेकिन यह प्रमाणित करना कठिन है कि अवध का शासन उतना खराब था जितना कि स्लीमैन अपनी रिपोर्ट में वतलाता है। **स्लीमैन जानता था कि डलहौजी अवध को कम्पनी-राज्य में मिलाना चाहता है। अतः डलहौजी को प्रसन्न करने के लिए अवध के सम्बन्ध में खराब रिपोर्ट तैयार करना स्लीमैन के लिए स्वाभाविक था। आउट्रम की रिपोर्ट का आधार स्लीमैन की रिपोर्ट थी।** अनेक अंग्रेज लेखकों ने भी अवध के शासन के सम्बन्ध में लिखा है। उनके अनुसार भी स्पष्ट होता है कि अवध में

कुशासन का इतना बोलबाला नहीं था जितना कि स्लीमैन और आउट्रम ने बतलाया। **अवध के शासन की अच्छाइयों के बारे में भी हमें जानकारी मिलती है।** 1818 ई. में लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने नवाब को उचित शासन के लिए बधाई दी थी। विशप हीवर और कैप्टन लोकिट का कथन है कि अवध के निवासी अंग्रेजों के शासन में जाना पसन्द नहीं करते थे। **इस प्रकार अवध का शासन उतना बुरा नहीं था जितना कि अंग्रेज साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने बतलाया तथा जिसके आधार पर अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना उचित माना जाए।**

डलहौजी तथा उसके समर्थकों का तर्क है कि अवध के नवाब को शासन में सुधार लाने के लिए बार-बार कहा गया, लेकिन उसने इस ओर ध्यान नहीं दिया, इसलिए अवध का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना आवश्यक हो गया। **यह तर्क उचित नहीं क्योंकि जिन नवाबों ने सुधार के लिए प्रयत्न किए उन्हें अंग्रेजों से कोई सहयोग नहीं मिला।** वजीर हकीम मेंहदी ने बैंटिंक से सुधार के लिए सहायता मांगी तो बैंटिंक ने सहायता देने से स्पष्ट इन्कार किया था। 1848 ई. में जब अवध के तत्कालीन वजीर ने सुधार के लिए अंग्रेजों से सहायता मांगी तो उसे भी अस्वीकार किया गया। **इस प्रकार अंग्रेज गवर्नर नवाबों को सुधार के लिए केवल धमकी देते थे, वे नवाबों को किसी प्रकार का सहयोग नहीं देना चाहते थे, अतः अंग्रेज अधिकारियों की अवध में सुधार सम्बन्धी बहानेबाजी के पीछे उनकी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति छिपी थी।** अवध के वास्तविक शासक अंग्रेज ही थे और तब तक अवध के शासन में सुधार सम्भव नहीं था जब तक अंग्रेज अधिकारी नवाब को सहयोग न देते। स्पष्ट है, अंग्रेज गवर्नर-जनरल अवध के शासन में सुधार के इच्छुक नहीं थे, शासन की खराबी को, अवध को कम्पनी-राज्य में मिलाने का बहाना बनाना चाहते थे।

अवध के अंग्रेजी राज्य में मिलने से वहां के नागरिकों को कोई लाभ नहीं हुआ। अंग्रेज अधिकारियों ने लखनऊ के महलों को बर्बाद किया, खजाने लूटे, दुर्बल स्त्रियों को अपमानित किया और नवाब की व्यक्तिगत वस्तुओं को बाजारों में बेचा। अंग्रेजों की नई भूमि-व्यवस्था में जमींदारों की हानि हुई। किसानों को अधिक लगान देने के कारण कष्ट हुआ। अवध की सेना के साठ हजार सैनिकों में से पचास हजार को निकाल दिया गया। वस्तुओं की कीमतें काफी बढ़ गईं। नवीन न्याय-व्यवस्था 1857 ई. के विद्रोह के समय स्पष्ट हो गई जब अवध के ताल्लुकेदारों और नागरिकों ने बड़े पैमाने पर विद्रोह में भाग लिया।[1]

डलहौजी का मूल्यांकन
(ESTIMATE OF DALHOUSIE)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अपने कार्यकाल में लॉर्ड डलहौजी ने अनेक उपयोगी सुधार किए तथा उसने भारत में आधुनिक युग के आरम्भ करने में योगदान दिया।[2] दुर्भाग्यवश उसने सभी सुधार इतनी तीव्र गति से किए कि जनता उनको समझने में असफल रही तथा उसने उन्हें हानिकारक समझा। दीर्घकाल तक भारतीय रेलवे इन्जन को भूत ही समझते रहे। उसी प्रकार वे तार के खम्भों को पृथ्वी पर एक भार समझते थे। रेलें, नहरों तथा पुलों के ठेके बड़े-बड़े अंग्रेज ठेकेदारों को दिए गए, परिणामस्वरूप भारतीय डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति से असन्तुष्ट हो गए। **मुक्त व्यापार (Free Trade) नीति के कारण अनेक भारतीय उद्योग असफल हो गए तथा सहस्रों व्यक्ति बेकार हो गए।** वे सभी डलहौजी से अत्यन्त दुःखी हो गए

1 कुमार एवं कुमार, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 97.
2 "Lord Dalhousie converted the stationary India of Lord Wellesley into the progressive India of our own day." —W. W. Hunter, *Lord Dalhousie*, p. 179.

तथा अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। इस प्रकार लॉर्ड डलहौजी के सुधार भी 1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम के कारण वने।

डलहौजी की इतिहासकारों ने अत्यन्त प्रशंसा की है। डलहौजी ने प्रशासनिक व्यवस्था को जो स्वरूप प्रदान किया वह अभी भी समुचित संशोधनों के साथ विद्यमान है। रैम्जे म्योर ने डलहौजी के विषय में लिखा है, "डलहौजी विशाल योग्यता, शक्ति, अथक ऊर्जा, दृढ़ संकल्पी, अपने उद्देश्यों में सत्यनिष्ठ तथा अपने देश की महत्ता ने प्रति पूर्णतया राजभक्त व्यक्ति था।"[1]

प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में डलहौजी के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।
2. डलहौजी के सुधारों पर प्रकाश डालिए।
3. "डलहौजी ने भारत में आधुनिक युग का श्री गणेश किया।" विवेचना कीजिए।
4. डलहौजी के प्रशासनिक कार्यों की विवेचना कीजिए।
5. व्यपगत का सिद्धान्त क्या था? प्रकाश डालिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. डलहौजी के सार्वजनिक कार्य वताइए।
2. डलहौजी द्वारा किए गए प्रशासनिक सुधारों का मूल्यांकन कीजिए।
3. डलहौजी के सैन्य-सुधार बताइए।
4. डलहौजी के शिक्षा के क्षेत्र में किए गए कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।
5. 'वुड्स डिस्पैच' पर नोट लिखिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारत में रेलवे किस वर्प प्रारम्भ हुआ?
   (अ) 1850 (व) 1852
   (स) 1853 (द) 1855
2. पत्र पर टिकट लगाने की व्यवस्था किस गवर्नर-जनरल के समय में प्रारम्भ हुई?
   (अ) वैंटिंक (व) हार्डिंग
   (स) डलहौजी (द) कैनिंग
3. निम्नलिखित में से किसमें नान-रेग्युलेशन प्रणाली नहीं लागू की गई?
   (अ) अवध (व) पंजाव
   (स) वर्मा (द) वंगाल
4. 'वुड्स-डिस्पैच' कव तैयार किया गया :
   (अ) 1850 ई. (व) 1852 ई.
   (स) 1853 ई. (द) 1854 ई.
5. व्यपगत का सिद्धान्त भारत में किसने लागू किया?
   (अ) वैंटिंक (व) हार्डिंग
   (स) डलहौजी (द) कैनिंग

[उत्तर—1. (स), 2. (स), 3. (द), 4. (द), 5. (स)।]

1 "द मेकिंग ऑफ ब्रिटिश इण्डिया", पृ. 337.

निम्नलिखित वाक्यों में सत्य/असत्य दर्शाइए :

1. बैंटिंक द्वारा व्यपगत का सिद्धान्त लागू किया गया।
2. डलहौजी भारत का वायसराय था।
3. डलहौजी ने भारत में रेलवे-व्यवस्था लागू की।
4. सार्वजनिक निर्माण विभाग की स्थापना डलहौजी ने की थी।

[उत्तर—1. असत्य, 2. असत्य, 3. सत्य, 4. सत्य।]

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :

1. डलहौजी एक .... प्रवृत्ति का व्यक्ति था।
2. नान रेग्युलेटिंग क्षेत्र में कमिश्नर सीधे .... के प्रति उत्तरदायी होता था।
3. भारत में पहली रेल वम्वई व .... बीच चली थी।
4. डलहौजी को .... भारत का निर्माता कहा जाता है।
5. वुड्स डिस्पैच की घोषणा .... के प्रशासन काल में की गई।

[उत्तर—1. साम्राज्यवादी, 2. गवर्नर-जनरल, 3. थाना, 4. आधुनिक, 5. डलहौजी।]

10

लॉर्ड रिपन एवं लॉर्ड कर्जन का प्रशासन

[THE ADMINISTRATION OF LORD RIPON AND LORD CURZON]

लॉर्ड रिपन (1880 ई.—1884 ई.)
(LORD RIPON)

लॉर्ड रिपन बड़ा ही उदार तथा सुधारवादी वायसराय था तथा राजनीतिक एवं सामाजिक सुधारों में उसकी बड़ी रुचि थी। प्रजातन्त्र सरकार तथा स्वायत्त शासन का वह सच्चा समर्थक था और वह भारतीयों को भी इसकी शिक्षा देना चाहता था। वास्तव में, यदि भारतीयों को किसी अंग्रेज वायसराय से स्नेह था तो वह लॉर्ड रिपन से था। 1880 ई. से 1884 ई. तक वह भारत का वायसराय रहा। वह प्रथम वायसराय था जिसने भारतीयों तथा अंग्रेजों में कोई अन्तर नहीं समझा तथा भारतीयों को अंग्रेजों के समान ही अधिकार दिलाने का प्रयास किया। उसे भारतीयों से सच्ची सहानुभूति थी तथा वह यथार्थ में उनका कल्याण चाहता था। इसी कारण वह भारत में अत्यन्त लोकप्रिय हो गया। उसके पूर्व अंग्रेजी सरकार तथा अधिकारी भारतीयों की उपेक्षा करके अपनी इच्छानुसार कार्य करते थे। उन्हें भारतीयों की तनिक भी चिन्ता न थी। **यथार्थ में वह अपने पूर्वगामी वायसराय लॉर्ड लिटन का पूर्णरूप से विपरीत था।**

लॉर्ड रिपन के प्रमुख सुधार
(REFORMS OF LORD RIPON)

लॉर्ड विलियम बैंटिंक की भांति लॉर्ड रिपन भी बड़ा सुधारवादी वायसराय था। वह भारतीयों का सच्चा हितैषी तथा शुभ-चिन्तक था और उन्हें वह सुखी तथा सम्पन्न बनाना चाहता था फलतः उसने अनेक ऐसे सुधार किए जिससे भारतीय जनता का बड़ा कल्याण हुआ। **उसके द्वारा किए गए प्रमुख सुधार निम्नलिखित हैं :**

(1) वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट को समाप्त करना (Repeal of Vernacular Press Act)—लॉर्ड लिटन ने अपने कार्यकाल में अनेक अन्यायपूर्ण तथा अनुचित कार्य किए थे। उसके इस प्रकार के कार्यों में एक कार्य 1878 ई. का वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट पारित करना भी था। **लॉर्ड लिटन ने इस एक्ट द्वारा विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्रों पर अनेक प्रतिबन्ध लगा दिए परन्तु अंग्रेजी समाचार-पत्रों को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र छोड़ दिया।** भारतीयों ने इस एक्ट का घोर विरोध किया। सौभाग्य से लॉर्ड रिपन को भारतीयों से वास्तविक सहानुभूति थी, इसी कारण उसने 1882 ई. में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट को समाप्त कर सभी

समाचार-पत्रों को समान रूप से स्वतन्त्रता प्रदान की परिणामस्वरूप वह भारतीयों में अत्यन्त लोकप्रिय हो गया।

(2) **स्थानीय स्वशासन को प्रोत्साहित करना** (Development of Local Self Government)—स्थानीय स्वशासन को प्रोत्साहन देना, लॉर्ड रिपन का एक महत्वपूर्ण कार्य था। उसे ब्रिटिश सरकार का यह विचार स्वीकार नहीं था कि भारतीय स्थानीय स्वशासन में किसी प्रकार की रुचि नहीं रखेंगे। उसका विचार था कि स्थानीय स्वशासन व्यवस्था का भारत में उचित ढंग से परीक्षण नहीं किया गया। स्थानीय स्वशासन के कारण जनता को अपना कार्य स्वयं करने का अवसर ही नहीं दिया गया था। उसका विचार था कि स्थानीय संस्थाओं तथा गैर-सरकारी सदस्यों पर अधिक विश्वास किया जाए। इसी विचार से प्रोत्साहित होकर 1882 ई. में स्थानीय स्वशासन के सम्बन्ध में अपना प्रसिद्ध प्रस्ताव पारित किया। उसका यह प्रस्ताव भारत में स्थानीय स्वशासन के सम्बन्ध के विकास में एक महत्वपूर्ण चरण था। इस प्रस्ताव के अनुसार न केवल बड़े-बड़े शहरों तथा नगरों में नगरपालिकाओं का गठन किया गया वरन् सम्पूर्ण भारत में जिला परिषदों तथा स्थानीय निकायों की स्थापना की गयी। इन स्थानीय संस्थाओं को स्थानीय स्वास्थ्य, सफाई, शिक्षा आदि विषयों का उत्तरदायित्व दिया गया। इसके साथ ही प्रान्तीय सरकारों को आदेश दिए गए कि वे इन स्थानीय संस्थाओं को एक निश्चित राजस्व सौंप दें।

इन स्थानीय संस्थाओं तथा नगरपालिकाओं को अपने-अपने क्षेत्र में पर्याप्त स्वतन्त्रता प्रदान की गयी। इन संस्थाओं के अधिकांश सदस्य भी गैर-सरकारी ही होते थे। सरकारी सदस्य केवल एक-तिहाई (1/3) होते थे। यह निश्चय किया गया कि इन स्थानीय संस्थाओं पर कम-से-कम सरकारी नियन्त्रण हो वह बाह्य रूप से होना चाहिए न कि आन्तरिक रूप से। लॉर्ड रिपन इन संस्थाओं के कार्य का निरीक्षण करने के पक्ष में था ताकि ये संस्थाएं भली-भांति कार्य कर सकें। यदि ये संस्थाएं ऋण लेना चाहती थीं अथवा स्वीकृत करों के अतिरिक्त कोई अन्य कर लगाना चाहती थीं तो उन्हें राजकीय स्वीकृति लेना अनिवार्य था। सरकारी कर्मचारी केवल असाधारण परिस्थितियों में ही इन संस्थाओं के कार्य में हस्तक्षेप कर सकते थे। इतिहासकार राबर्ट्स के विचार में इस प्रकार का नियन्त्रण अनुचित नहीं था। उसके अनुसार, "**इस प्रकार की स्वतन्त्र संस्थाओं के उचित ढंग से कार्य करने की प्रणाली एक पीढ़ी से नहीं सीखी जाती और इसी कारण कुछ-न-कुछ नियन्त्रण आवश्यक है।**" उपर्युक्त सुधारों के कारण ही रिपन को भारत में '**स्थानीय स्वशासन का जनक**'[1] कहा जाता है।

(3) **शिक्षा में सुधार 'हण्टर आयोग'** (Hunter Commission on Education)—लॉर्ड रिपन को भली-भांति ज्ञात था कि बड़ी संख्या में शिक्षित होने पर ही भारतीयों का उत्थान सम्भव है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रसार करने के उद्देश्य से ही उसने 1882 ई. में **सर विलियम हण्टर** की अध्यक्षता में एक आयोग गठित किया। इस आयोग को गठित करने का पहला उद्देश्य यह था कि यह आयोग शिक्षा के प्रसार के लिए अपने सुझाव प्रस्तुत करे तथा 1854 ई. के '**वुड्स डिस्पैच**' (Wood's Despatch) के उपरान्त शिक्षा के क्षेत्र में हुई प्रगति पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करे। इस आयोग ने सिफारिश की कि नगरपालिकाओं एवं जिला परिषदों को प्रारम्भिक शिक्षा का उत्तरदायित्व सौंप देना चाहिए तथा उनके कार्य का निरीक्षण करने के लिए निरीक्षक होने चाहिए। उच्च शिक्षा का कार्य यथासम्भव प्राइवेट संस्थाओं को दे देना

1 **Father of the Local Self Government.**

चाहिए तथा सरकार उन्हें अनुदान दे। सरकार को धीरे-धीरे स्वयं को इस मुकाबले से हटा लेना चाहिए। यह भी सिफारिश की गयी कि शिक्षा संस्थाओं में नागरिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाए क्योंकि मुसलमानों में शिक्षा का प्रसार बहुत कम है, अतः उसने शिक्षा प्रसार के लिए विशेष कार्य करने की अपील की। आयोग ने यह भी सिफारिश की कि प्रान्तीय आय का एक निश्चित प्रतिशत शिक्षा पर व्यय किया जाना चाहिए। सरकार ने 'हण्टर आयोग' की अनेक सिफारिशों को स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप विद्यालयों तथा महाविद्यालयों की संख्या में असाधारण वृद्धि हो गयी। पंजाब में 1882 ई. में एक विश्वविद्यालय स्थापित किया गया।

(4) **आर्थिक सुधार** (Financial Reforms)—अपने कार्यकाल में लॉर्ड रिपन ने आर्थिक क्षेत्र में दो महत्वपूर्ण कार्य किए। उसने लॉर्ड मेयो द्वारा प्रतिपादित आर्थिक विकेन्द्रीकरण की नीति का अनुसरण करते हुए समस्त राजस्व को **'इम्पीरियल, प्रान्तीय तथा विभाजित'** तीन वर्गों (Imperial, Provincial, Divided) में विभाजित कर दिया। इम्पीरियल भाग पर केन्द्र का अधिकार था जबकि प्रान्तीय भाग पर प्रान्तों का अधिकार होता था। विभाजित भाग का केन्द्र तथा प्रान्तों के बीच विभाजन हो जाता था। प्रान्तीय सरकार के घाटे को पूरा करने के उद्देश्य से केन्द्रीय सरकार ने उन्हें भू-राजस्व का कुछ भाग देना भी स्वीकार कर लिया। आरम्भ में यह व्यवस्था 5 वर्ष के लिए की गयी थी परन्तु इसकी अवधि में निरन्तर वृद्धि की गयी। इसके अतिरिक्त, रिपन ने स्वतन्त्र व्यापार की नीति (Policy of Free Trade) का और भी विकास किया। अनेक वस्तुओं से 8 प्रतिशत कर समाप्त कर दिया गया। केवल राजनीतिक कारणों से शराब, शस्त्रों एवं बारूद आदि वस्तुओं पर ही यह कर रहने दिया गया। नमक कर में भी कमी की गयी थी।

(5) **नागरिक सेवाओं में सुधार** (Civil Service recruitment)—लॉर्ड रिपन के वायसराय बनने से पूर्व भारतवासियों के लिए भारतीय सिविल सेवा में आना अत्यन्त कठिन था। भारतीयों को यह परीक्षा देने इंगलैण्ड जाना पड़ता था तथा इसमें सम्मिलित होने की अधिकतम आयु 18 वर्ष थी। लॉर्ड रिपन ने इंगलैण्ड के उच्च्व अधिकारियों को यह परामर्श दिया कि इन परीक्षाओं का आयोजन इंगलैण्ड के साथ-साथ भारत में भी होना चाहिए लेकिन उसका यह सुझाव अस्वीकार कर दिया गया। मगर लॉर्ड रिपन ने प्रत्याशियों की आयु में वृद्धि कराने में सफलता प्राप्त कर ही ली। अब यह आयु 22 वर्ष कर दी गयी जिसके फलस्वरूप भारतीयों का परीक्षा में सम्मिलित होना सरल हो गया।

(6) **फैक्टरी एक्ट** (Factory Act)—लॉर्ड रिपन के कार्यकाल में 1881 ई. में प्रथम फैक्टरी एक्ट पारित किया गया, इसके अन्तर्गत सात से बाहर वर्ष तक की आयु के बच्चों के काम करने के घण्टे निश्चित कर दिंए गए तथा अब उनसे प्रतिदिन अधिक-से-अधिक नौ घण्टे काम लिया जा सकता था। इसके अतिरिक्त, उद्योगपतियों को खतरनाक मशीनों के चारों ओर जंगला लगवाने के भी आदेश दिए गए। इस अधिनियम को लागू कराने के लिए अधिकारियों की भी नियुक्ति की गयी।

(7) **जनगणना** (Census)—लॉर्ड रिपन के आगमन से पूर्व भारतीयों को एक अनियन्त्रित भीड़ समझा जाता था तथा किसी भी व्यवसाय ने उनकी संख्या का ठीक-ठीक पता लगाना उचित नहीं समझा। परन्तु लॉर्ड रिपन अपने सभी सुधारों को वैज्ञानिक ढंग प्रदान करना चाहता था अतः उसका यह प्रयास भारतीयों का ठीक-ठीक पता लगाने पर ही पूर्ण हो सकता

था अतः उसकी इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु भारत में 1881 ई. में प्रथम बार जनगणना की गयी। लॉर्ड रिपन के इस कार्य से उसकी लोकप्रियता में काफी वृद्धि हुई।

(8) इल्बर्ट बिल विवाद (Ilbert Bill controversy)—लॉर्ड रिपन द्वारा इल्बर्ट बिल पारित कराने के प्रयास ने भारतीयों में राजनीतिक जागृति लाने में विशेष योग दिया। 1873 ई. के फौजदारी दण्ड संहिता (Criminal Procedure Code) के अन्तर्गत किसी भी भारतीय न्यायाधीश को यूरोपीय अपराधियों के मुकदमे सुनने का अधिकार नहीं था। यह पूर्ण रूप से अन्याय था तथा उच्च्व पदों पर आसीन भारतीयों के लिए असहनीय था। रिपन ने इस अन्याय को दूर करने के उद्देश्य से अपनी परिषद् के विधि सदस्य इल्बर्ट (Ilbert) की सहायता के लिए बिल पारित कराने का प्रयास किया। अतः 2 फरवरी, 1883 ई. को एक बिल प्रस्तुत किया गया। विधेयक का उद्देश्य था कि **"जाति-भेद पर आधारित सभी न्यायिक अयोग्यताएं तुरंन्त समाप्त कर दी जाएं और भारतीय तथा यूरोपीय न्यायाधीशों की शक्तियां समान कर दी जाएं।"**

परन्तु जैसे ही बिल प्रस्तुत किया गया उसका घोर विरोध किया गया। यूरोपीय लोगों ने इसे अपने विशेषाधिकारों पर कुठाराघात बताया। वास्तव में, झगड़ा करने वाले बड़े-बड़े उद्यानों वाले यूरोपीय स्वामी थे। उन्होंने भारत और लन्दन में इस हेतु प्रचार किया और कहा, **"क्या हमारा निर्णय काले लोग करेंगे? क्या वे हमें जेल भेजेंगे? क्या वे हम पर आज्ञा चलाएंगे? कभी नहीं। यह असम्भव है। यह अधिक अच्छा है कि भारत में अंग्रेजी राज्य ही समाप्त हो जाए परन्तु यह ठीक नहीं है कि इस प्रकार के तिरष्कृत कानूनों के अधीन रहें। उनके अनुसार वायसराय ने अपने ही देशवासियों पर प्रहार किया है।"** स्पष्ट है कि यूरोपियनों के इतने कड़े विरोध के आगे रिपन को झुकना पड़ा और यह बिल पास नहीं हो सका।

इस बिल के पारित न होने से भारतीयों में निराशा की लहर दौड़ गयी। उन्हें अब अंग्रेजों से किसी प्रकार के न्याय की उम्मीद न रही लेकिन इससे भारतीयों में राजनीतिक चेतना का संचार हुआ।

रिपन का मूल्यांकन
(ESTIMATE OF RIPON)

रिपन की इतिहासकारों एवं अन्य प्रमुख व्यक्तियों ने बहुत प्रशंसा की है। पं. मदन मोहन मालवीय ने लिखा है, **"रिपन भारत के प्रख्यात गवर्नर जनरलों में सबसे महान् और प्रिय था।"**[1] फ्लोरेन्स नाइटिंगेल ने रिपन को **'भारत का उद्धारक'** की संज्ञा दी और उसके शासन को **'भारत के स्वर्णयुग का आरम्भ'** कहा। दूसरी ओर अर्नाल्ड ह्वाइट (Arnold White) ने कहा कि उसनें **'भारत के खो जाने के द्वार खोल दिए।'** रिपन भारतीयों में बहुत लोकप्रिय था और भारतीय उसे **'सज्जन रिपन'** (Ripon the good and birtuous) के नाम से स्मरण करते थे। रिपन यद्यपि अधिक बौद्धिक तथा प्रशासकीय क्षमता वाला व्यक्ति नहीं था किन्तु फिर भी उसके कार्यों ने उसे भारतीयों में लोकप्रिय बना दिया। रिपन स्वभाव से ही उदारवादी था तथा उसकी विचारधारा अन्य गवर्नर जनरलों से भिन्न थी। पी. ई. रावर्ट्स ने उसके विषय में लिखा है, **"वह ग्लैडस्टन युग का वास्तविक उदारवादी था जिसकी शान्ति, स्वतन्त्र व्यापार तथा स्वशासन में निष्ठा थी।"**[2] पंडित मदन मोहन मालवीय ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1909

1 "Ripon was the greatest and the most beloved Viceroys whom India has known."
2 "He was a true liberal of the Gladstonian era with a strong belief in the virtues of peace, laissez faire and self-government."
—Roberts, *History of British India*, p. 463.

ई. के वार्षिक अधिवेशन में कहा था कि "रिपन भारतीय वायसरायों में सबसे अधिक लोकप्रिय था। शिक्षित भारतीयों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जनक एलन आक्टेवियन ह्यूम और सर विलियम. वेडरवर्न के अतिरिक्त किसी अन्य अंग्रेज को इतना मान नहीं दिया जितना रिपन को। रिपन को यह मान इसलिए मिला कि उसने स्थानीय स्वशासन की योजना आरम्भ की..........क्योंकि उसने 1858 ई. की घोषणा को कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया, जातीय भेदभाव समाप्त करने का प्रयत्न किया और भारतीय प्रजा तथा यूरोपीय प्रजा को समानता देने का प्रयास किया।..........वह उन महानतम् व्यक्तियों में से था जो स्वाभाविक रूप से न्यायप्रिय हैं तथा स्वतन्त्रता से आशीर्वाद को सब मनुष्यों तक पहुंचाना चाहते हैं।"

1884 में लॉर्ड रिपन ने त्यागपत्र दे दिया। जब वह शिमला से बम्बई गया तो मार्ग में हजारों भारतीयों ने हृदय से उसका भव्य स्वागत किया तथा अश्रुपूर्ण नेत्रों से विदाई दी। सम्भवतः इस प्रकार का स्नेह अन्य किसी वायसराय के प्रति प्रदर्शित नहीं किया गया। वास्तव में उसकी इस यात्रा की तुलना एक विजय यात्रा से की जा सकती है जिसका उदाहरण ब्रिटिश भारत के इतिहास में पहले देखने को नहीं मिलता है। लाला लाजपतराय ने कहा था, **"भारतीयों के विचार में लॉर्ड रिपन प्रथम वायसराय था जिसने 1858 ई. में भारतीयों को महारानी विक्टोरिया द्वारा दिए गए आश्वासनों को सच्ची लगन से पूरा करने का प्रयास किया।"**

लॉर्ड कर्जन (1898 ई.—1905 ई.)
(LORD CURZON)

लॉर्ड कर्जन 1898 ई. में वायसराय नियुक्त होकर भारत आया। विद्यार्थी जीवन से ही वह वायसराय बनने का स्वप्न देखा करता था। लॉर्ड कर्जन अत्यन्त परिश्रमी तथा योग्य प्रशासक था।1898 ई. से 1905 ई. तक उसने भारत के वायसराय के पद पर कार्य किया। इस पद पर नियुक्ति से पूर्व वह तीन बार भारत की यात्रा कर चुका था तथा भारत में सुधारों का एक नया युग आरम्भ होता है। उसने प्रशासनिक ढांचे में अनेक परिवर्तन किए। यथार्थ में, डलहौजी के बाद किसी भी वायसराय ने इतने सुधार नहीं किए जितने लॉर्ड कर्जन ने, लेकिन उसने कुछ ऐसे कार्य किए जिन्होंने उसके सुधारों पर पानी फेर दिया तथा उनके परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तनों के कारण जनता लॉर्ड कर्जन की विरोधी हो गयी। **उसके द्वारा किए गए प्रमुख सुधार निम्नलिखित हैं :**

अकाल तथा प्लेग
(FAMINES & PLAGUE)

जिस समय लॉर्ड कर्जन ने भारत के वायसराय का पद संभाला उस समय तक भारत की जनता लॉर्ड एल्गिन के कार्यकाल में पड़ने वाले अकाल तथा प्लेग की महामारी के संकटों से अभी तक पूर्ण रूप से मुक्त नहीं हुई थी कि 1897-98 ई. के अकाल से भी भीषण 1899-1900 ई. के अकाल का सामना करना पड़ा। अल्पकाल में ही केवल ब्रिटिश भारत के लगभग 19 लाख व्यक्ति काल के ग्रास बन गए। लॉर्ड कर्जन ने अकाल से पीड़ित क्षेत्रों का दौरा करके देश तथा विदेश से सहायता की अपील की। लॉर्ड मैक्डोनल की अध्यक्षता में एक अकाल आयोग की स्थापना की गयी। इस आयोग की सिफारिश पर कालान्तर में अकाल की रोकथाम करने के लिए अनेक महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली कार्य किए गए। कर्जन ने इस आयोग की अनेक सिफारिशों को स्वीकार करके सहकारी समितियों की स्थापना की तथा कृषि उत्पादनों में वृद्धि करने के लिए अनेक उपाय किए। अतः लॉर्ड कर्जन् के सुधार

एवं राहत कार्यों से 1901 ई. के उपरान्त कुछ समय तक अकाल से मुक्ति मिल गयी परन्तु कर्जन के सम्पूर्ण कार्यकाल में प्लेग की महामारी का प्रकोप बना रहा। उसके भारत से जाने के समय तक लगभग 9,00,000 व्यक्ति प्लेग के शिकार हो चुके थे।

कृषि सम्बन्धी सुधार
(REFORMS IN AGRICULTURE)

देश में पड़ने वाले अकालों के कारण कृषि के महत्व में पर्याप्त वृद्धि हो गयी थी; अब तक कृषि भी एक प्रकार से उपेक्षित थी वह मात्र आय का साधन थी अतः वैज्ञानिक ढंग से कृषि में सुधार का कोई प्रयास नहीं किया गया था। **लॉर्ड कर्जन ने एक वैज्ञानिक के समान कृषि समस्या का समाधान कर उसमें सुधार करने के लिए निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य किए :**

(1) पंजाब भूमि हस्तान्तरण अधिनियम, 1900 ई. (Punjab Land Alienation Act, 1900)—कृषि दशा सुधार हेतु लॉर्ड कर्जन ने सर्वप्रथम 1900 ई. में पंजाब भूमि हस्तान्तरण अधिनियम पारित करके यह निश्चित किया कि कोई अकृषक वर्ग का व्यक्ति, किसी भी कृषक की भूमि नहीं खरीद सकता। कृषक वर्ग अपनी भूमि को 20 वर्ष से अधिक रहन नहीं रख सकता तथा ऋण की अदायगी में किसी भी स्थिति में भूमि नीलाम नहीं की जा सकती। इस कानून ने एक ओर तो कृषक वर्ग को महाजनों के पंजों से मुक्ति दिला दी तथा दूसरी ओर सेना पर पड़ने वाले दूषित प्रभावों को भी रोक दिया क्योंकि पंजाब की सेना में अधिकांशतः कृषक वर्ग के ही व्यक्ति थे।

(2) कृषि बैंक (Agricultural Bank)—किसानों की आर्थिक समस्याओं का समाधान करने के उद्देश्य से कृषि बैंक स्थापित किए गए ताकि कृषकों को कम ब्याज पर धन ऋण के रूप में मिल सके। इन बैंकों ने शनैः-शनैः महाजनों का स्थान प्राप्त कर लिया।

(3) सहकारी ऋण समितियां (Co-operative Credit Societies)—कृषक वर्ग में अपनी सहायता स्वयं करने तथा आत्मविश्वास की भावनाएं जाग्रत करने के विचार से सहकारी समितियों की स्थापना की गयी। 1904 ई. में 'सहकारी ऋण समिति कानून' का एक विशेष अधिनियम पारित करके ग्रामों में सहकारी समितियों की स्थापना की गयी।

(4) कृषि विभाग की स्थापना (Imperial Department of Agriculture)—1901 ई. में भारत में कृषि विभाग की स्थापना की गयी। इसका उद्देश्य यह था कि अब सरकार कृषि की ओर भली प्रकार ध्यान दे सके। इस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी इंस्पैक्टर जनरल था।

(5) कृषि अनुसन्धान संस्थान की स्थापना (Agriculture Research Institute)—लॉर्ड कर्जन की इच्छा थी कि कृषि के क्षेत्र में वैज्ञानिक पद्धतियों को लागू किया जाए। इसी भावना से प्रेरित होकर उसने बंगाल में पूसा (Pusa) नामक स्थान पर एक 'कृषि अनुसन्धान संस्थान' को कृषि के क्षेत्र में अनुसन्धान करने तथा कृषि की दशा में सुधार लाने के लिए विभिन्न उपायों हेतु कार्य सौंपा।

(6) सिंचाई सुविधाएं (Irrigation facilities)—भारतीय सिंचाई समस्याओं पर विचार करने हेतु 1901 ई. में एक आयोग नियुक्त किया गया। 1903 ई. में इस आयोग ने अपनी सिफारिश प्रस्तुत कीं कि आगामी 20 वर्षों में सिंचाई पर लगभग 44 करोड़ रुपया व्यय किया जाए। अतः इस आयोग की सिफारिशों पर अनेक नहरों का निर्माण किया गया।

(7) **लगान एकत्रित करने में अधिक लचीलापन**—राजकीय कर्मचारी अकाल के समय में भी कृषकों से अत्यन्त कठोरता से लगान वसूल करते थे। 1902 ई. में एक प्रस्ताव पारित करके सुझाव दिया गया कि अकाल के समय अथवा सूखा पड़ने की स्थिति में लगान कम कर देना चाहिए तथा उसे इतनी कठोरता से वसूल नहीं किया जाना चाहिए। इस प्रस्ताव में कहा गया कि "**सरकार की मांग मौसम की प्रकृति के अनुसार बदलती रहनी चाहिए।**"

फ्रेजर के अनुसार, "**उपर्युक्त सुधारों के द्वारा लॉर्ड कर्जन ने भारतीय कृषकों की दशा में पर्याप्त सुधार किया।**"

आर्थिक सुधार
(FINANCIAL REFORMS)

(1) प्रशासनिक क्षेत्र में तो कर्जन ने केन्द्रीकरण की नीति का अनुसरण किया परन्तु आर्थिक क्षेत्र में उसने अपने पूर्वगामी वायसरायों की विकेन्द्रीकरण की नीति का ही अनुसरण किया। राजस्व में से प्रत्येक प्रान्त का भाग निश्चित कर दिया गया तथा प्रान्तीय बचत को प्रान्तीय सरकार के पास रखने का फैसला किया गया।

(2) एक विशेष एक्ट पारित करके अंग्रेजी पौण्ड को भी भारत में सरकारी सिक्का स्वीकार किया गया। विनिमय की दर 15 रुपए प्रति पौण्ड निश्चित की गयी।

(3) अभी तक 500 रुपए वार्षिक आय वालों को आय कर देना होता था अब निर्णय किया गया कि 1,000 रुपए वार्षिक आय वाले व्यक्ति ही आय कर देंगे।

(4) नमक कर में पुनः कमी की गयी।

रेलवे (Railways)—अकाल आयोग ने 1901 ई. में अपनी रिपोर्ट में रेलों पर विचार किए जाने की आवश्यकता पर जोर दिया था। इसी कारण लॉर्ड कर्जन ने इस ओर ध्यान दिया। उसने सर थामस रॉबर्ट्सन नामक विशेषज्ञ की सेवाएं प्राप्त करके उसके परामर्श पर अनेक कार्य किए। इससे पूर्व रेलवे का कार्य कुछ कम्पनियां या सार्वजनिक निर्माण विभाग करता था लेकिन कर्जन ने 1905 ई. में रेलवे बोर्ड की स्थापना की। इस बोर्ड के प्रयासों के परिणामस्वरूप लगभग 28,150 मील लम्बी रेलवे लाइन बिछायी गयी। लॉर्ड कर्जन के त्यागपत्र देने के समय भी लगभग 3,167 मील रेलवे लाइन बिछाने का कार्य चल रहा था। इससे व्यापार में काफी सुगमता हो गयी।

प्राचीन स्मारक सुरक्षा अधिनियम
(ANCIENT MONUMENT PROTECTION ACT)

कर्जन ने प्राचीन भवनों की सुरक्षा के लिए प्राचीन स्मारक सुरक्षा अधिनियम पारित किया जिसके द्वारा प्राचीन स्मारकों को हानि पहुंचाना कानूनी अपराध घोषित किया गया। इस कार्य का उत्तरदायित्व संभालने के लिए 1904 ई. में '**पुरातत्व विभाग**' (Archaeological Department) स्थापित किया गया। इस विभाग के प्रयासों के परिणामस्वरूप प्राचीन ऐतिहासिक स्थानों की रक्षा हो सकी तथा वे नष्ट होने से बच गए। अनेक स्थानों पर खुदाई का कार्य भी किया गया जिससे भारतीय इतिहास की बिखरी शृंखलाओं को जोड़ा जा सके।

पुलिस सुधार
(POLICE REFORMS)

लॉर्ड कर्ज़न ने पुलिस विभाग के दोषों को दूर करने के उद्देश्य से 1902 ई. में फ्रेजर की अध्यक्षता में एक पुलिस आयोग गठित किया। इस आयोग को प्रत्येक प्रान्त की पुलिस

व्यवस्था का अध्ययन करके रिपोर्ट पेश करने को कहा गया। इस आयोग ने पुलिस व्यवस्था में अनेक दोष पाए और कहा कि **"पुलिस बल में कार्यकुशलता बिल्कुल नहीं है। इसको प्रायः भ्रष्ट तथा अन्यायी समझा जाता है तथा यह जनता का हार्दिक सहयोग प्राप्त करने में पूर्ण रूप से असमर्थ रहा है।"**

पुलिस व्यवस्था में सुधार करने हेतु इस आयोग ने अनेक सुझाव दिए अतः इन सुझावों को स्वीकार कर पुलिस व्यवस्था में अनेक सुधार किए गए।

सैन्य सुधार
(MILITARY REFORMS)

लॉर्ड कर्जन ने सेना में भी अनेक सुधार किए। देशी सेनाओं को फिर से अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित किया गया। तोपखाने के सैनिकों को अधिक अच्छी बन्दूकें देने की व्यवस्था की गयी। 1901 ई. में **कर्जन ने 'इम्पीरियल कैडेट कोर'** (Imperial Cadet Core) **की स्थापना की।** यह देशी राजकुमारों तथा कुलीन वंशीय सैनिकों की सेना थी। लॉर्ड कर्जन के काल में भारतीय सेनाओं का विदेशों में भी प्रयोग किया गया तथा समुद्र तट की सुरक्षा की व्यवस्था की गयी लेकिन बाद में कर्जन के तत्कालीन प्रधान सेनापति लॉर्ड किचनर से विवाद हो जाने पर सेना में सुधार-सम्बन्धी कार्यों में मन्दी आ गयी।

व्यापार तथा व्यापारिक सुधार
(COMMERCIAL REFORMS)

जहां एक ओर व्यापार तथा उद्योगों के विकास के लिए रेलों का जाल बिछाया गया वहीं दूसरी ओर **'व्यापार तथा उद्योग विभाग'** (Department of Commerce & Industry) की भी स्थापना की गयी। वायसराय की परिषद् के छः वरिष्ठ सदस्य इस विभाग की देखभाल करते थे। इस विभाग की स्थापना के फलस्वरूप कारखानों की स्थापना में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई तथा व्यापार की भी विशेष उन्नति हुई।

प्रशासनिक सुधार
(ADMINISTRATIVE REFORMS)

लॉर्ड कर्जन ने प्रशासनिक व्यवस्था में अनेक दोष पाए। इन दोषों के कारण अनेक महत्वपूर्ण विषय लम्बे समय तक या तो फाइलों में ही पड़े रहते थे अथवा एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर में चक्कर काटते रहते थे जिससे किसी भी विषय का निर्णय नहीं हो पाता था। लॉर्ड कर्जन ने इन दोषों को दूर किया तथा विभिन्न विभागों के अधिकारियों को टिप्पणी लिखने के स्थान पर परस्पर मिलकर निर्णय कर लेने का परामर्श दिया। इससे प्रशासनिक व्यवस्था में दक्षता आयी तथा समस्त कार्य शीघ्रता से होने लगे। शासन कार्यों में दक्षता लाने के उद्देश्य से ही राजकीय कर्मचारियों को अवकाश-सम्बन्धी अनेक सुविधाएं प्रदान करने के साथ-साथ उनके वेतन में भी वृद्धि की गयी।

शैक्षिक सुधार
(EDUCATIONAL REFORMS)

लॉर्ड कर्जन ने एक **'विश्वविद्यालय आयोग'** का गठन किया। इसका अध्यक्ष सर थामस रैले था। 1902 ई. के अन्त में इस आयोग ने रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी। परन्तु लॉर्ड कर्जन ने विरोधों की परवाह न करते हुए 1904 ई. में **'भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम'** (Indian University Act) पारित किया। इस अधिनियम की धाराएं अग्र थीं :

(1) विश्वविद्यालय की सीनेटों (Senate) का आकार पहले की अपेक्षा छोटा कर दिया गया। साथ ही निर्वाचित सदस्यों के स्थान पर सरकार द्वारा मनोनीत सदस्यों का बहुमत रखा गया।

(2) विश्वविद्यालय के लिए परीक्षाएं आयोजित करने के साथ-साथ अध्ययन करना भी अनिवार्य कर दिया गया।

(3) महाविद्यालयों को मान्यता प्रदान करने के नियमों को और कठोर बना दिया गया।

(4) प्रत्येक विद्यालय का अधिकार-क्षेत्र निश्चित कर दिया गया और उसके द्वारा उसके अन्तर्गत प्रत्येक कॉलेज का निरीक्षण करना अनिवार्य कर दिया गया।

(5) 12वीं कक्षा तक अध्यापन कराने वाले द्वितीय श्रेणी के कॉलेजों को बन्द कराने का निर्णय किया गया।

(6) कॉलेजों में कम-से-कम फीस निश्चित करने का प्रस्ताव भी था। यह फीस पहले की अपेक्षा कहीं अधिक थी।

(7) सम्पूर्ण देश में समान शिक्षा प्रणाली लागू करने के उद्देश्य से एक शिक्षा महानिदेशक की भी नियुक्ति की गयी।

(8) प्राइमरी विद्यालयों में परीक्षाएं समाप्त करने का भी सुझाव प्रस्तुत किया गया।

यद्यपि उपर्युक्त शिक्षा-सम्बन्धी सुधार लॉर्ड कर्जन के कार्यकाल की चार मुख्य सफलताओं में गिना जाता है, किन्तु भारतीय जनता ने इसका कड़ा विरोध किया। शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी नियन्त्रण की वृद्धि को भारतीय जनता ने अनुचित ठहराया।

कलकत्ता निगम पर राजकीय नियन्त्रण
(CALCUTTA CORPORATION ACT)

लॉर्ड. कर्जन का स्थानीय स्वशासन में जरा भी विश्वास नहीं था अतः वह यथासम्भव सार्वजनिक निर्माण विभाग को समाप्त करने का प्रयास करने लगा। यथार्थ में कर्जन के आने से पूर्व रिपन विरोधी तत्व इस पर कुठाराघात करने का प्रयास कर रहे थे तथा उन्होंने कलकत्ता निगम के अधिकारों को सीमित करने के उद्देश्य से बंगाल की विधान सभा में एक बिल प्रस्तुत किया था। इस बिल में कलकत्ता निगम के अधिकार को कार्यकारिणी को सौंप देने का प्रस्ताव अवश्य था, परन्तु इसमें मनोनीत सदस्यों के बहुमत को बनाए रखा गया था। कर्जन ने इस बिल का अध्ययन करके उसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन किए तथा 1900 ई. में इसे पारित कर दिया। इस संशोधन के अनुसार कलकत्ता नगर निगम के सदस्यों की संख्या घटाकर 75 के स्थान पर 50 कर दी गयी। 25 वही सदस्य कम किए गए जो जनता द्वारा निर्वाचित होते थे। इस प्रकार कलकत्ता नगर निगम में मनोनीत सदस्यों का बहुमत हो गया अतः वह एक आंग्ल भारतीय संस्था बनकर रह गयी।

जनता ने इस एक्ट का कड़ा विरोध किया। कलकत्ता में विशाल आन्दोलन हुआ। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा कुछ अन्य नेताओं के प्रयासों के परिणामस्वरूप 1923 ई. में इस अन्याय को समाप्त कर दिया गया।

बंगाल-विभाजन तथा उसका विरोध

इस समय बंगाल प्रान्त बहुत विशाल था। इसकी जनसंख्या लगभग 8 करोड़ तथा क्षेत्रफल 2 लाख वर्ग मील था। इतने विशाल प्रान्त की देखभाल करना लैफ्टीनेण्ट गवर्नर के लिए सम्भव नहीं था अतः इसी उद्देश्य से कर्जन ने बंगाल-विभाजन की योजना बनायी और 1905 ई. में बंगाल को दो भागों में विभक्त कर दिया गया। असम तथा बंगाल के लगभग

15 पूर्वी जिलों को मिलाकर **'पूर्वी बंगाल तथा असम'** नाम से एक नया प्रान्त बनाया गया। इस नए प्रान्त की राजधानी ढाका थी। इस प्रान्त में मुसलमान अधिक थे तथा हिन्दू जनता की संख्या कम थी।

भारतीय जनता ने बंगाल-विभाजन का कड़ा विरोध किया। इस विरोध ने राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। **भारतीय जनता का विचार था कि बंगाल का विभाजन बंगालवासियों की राष्ट्रीयता की भावना को दबाने के लिए किया गया है। वह इसे अंग्रेजों का एक षड्यन्त्र मानती थी।** इस कड़े विरोध के बावजूद भी कर्जन ने बंगाल-विभाजन को वापस नहीं लिया।

परन्तु भारतीय जनता बंगाल-विभाजन का निरन्तर विरोध करती रही अतः 1911 ई. में दिल्ली दरबार के अवसर पर ब्रिटिश सम्राट् जार्ज पंचम के काल में बंगाल-विभाजन को समाप्त कर दिया गया।

कर्जन का मूल्यांकन
(ESTIMATE OF LORD CURZON)

लॉर्ड कर्जन की सफलता के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी विचारधाराएं हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि भारतीयों में जो असन्तोष फैला उसके लिए लॉर्ड कर्जन बहुत बड़े अंश में उत्तरदायी था। वह भारतीयों को घोर घृणा की दृष्टि से देखता था और उन्हें शासन के सर्वथा अयोग्य समझता था। उसका यह विश्वास था कि ईश्वर ने अंग्रेजों को भारत पर शासन करने के लिए भेजा है और ईश्वरेच्छा से ही यहां पर शासन कर रहा है। उसने सात वर्षों तक भारतीय शासन में सुयोग्यता पैदा करने का अथक प्रयास किया। लॉर्ड डलहौजी के अतिरिक्त अन्य कोई गवर्नर जनरल ऐसा नहीं था जिसने इतनी कुशलतापूर्वक शासन किया हो। प्रो. एस. गोपाल ने कर्जन का मूल्यांकन करते हुए लिखा है, **"कर्जन के व्यक्तित्व का मूल्यांकन वही है जो सम्भवतः उसने अपने सर्वश्रेष्ठ सिविल सर्वेण्ट एण्टनी मैक्डोनल के विषय में कहा था, "एक अद्भुत जीव......सबसे योग्य प्रशासक जो इस देश में है, परन्तु जिसमें मानव भावना लेशमात्र भी नहीं है।"**[1] वह भारतीयों का कल्याण तो करना चाहता था, परन्तु भारतीयों के सहयोग तथा समर्थन की उसने कभी चिन्ता न की। उसने जो कुछ भी किया उसे अत्यन्त द्रुतगति और लोकमत की उपेक्षा करके किया। यही उसकी सबसे बड़ी भूल थी। सीतलवाड ने कर्जन के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए लिखा है, **"लॉर्ड कर्जन बड़ा ही प्रतिभावान, योग्य तथा परिश्रमी वायसराय था और उसने सम्पूर्ण शासन की मशीन में चूड़ान्त योग्यता उत्पन्न कर दी परन्तु वह बड़ा ही साम्राज्यवादी था और ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार तथा प्रभाव को बढ़ाने का स्वप्न देखा करता था।"**[2] मॉण्टेग्यू ने कर्जन के सम्बन्ध में लिखा कि **"लॉर्ड कर्जन एक ऐसे मोटर ड्राइवर की भांति था जिसने अपनी सारी शक्ति तथा समय उस मशीन के विभिन्न पुर्जों की पालिश करने में लगा दिया परन्तु वह बिना किसी गन्तव्य के उसे चलाता गया।"**[3] पी. ई. रॉबर्ट्स ने कर्जन के कार्यों के सम्बन्ध में लिखा

---

1 **"The best assessment of Curzon's personality as Viceroy would seem to be his own comment on his ablest Civil Servant, Anthony Macdonell : 'a strange creative—by far the most capable administrator that we have in the country, but destitute of a ray of human emotion'."** —S.Gopal, *British Policy in India*, p. 227.

2 **"Lord Curzon was a very talented, efficient and hard working Viceroy and he brought the whole administrative machine to a pitch of efficiency. He was, however, great imperialist and always had visions of enlarging the extent and influence of the British Empire."** —*Seetalvad*

3 **"Lord Curzon was like a motor driver, who spent all his energy and time in polishing the different parts of the machinery but he drove it without any destination."** —*Montague*

है, "उसके छः वर्ष के शासन में आलोचना करने वाले चाहे कितनी भूलों, कितनी विफलताओं का पता लगाएं और भूल तथा विफलताएं दोनों मनुष्य की संगिनी हैं किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि लॉर्ड कर्जन का नाम भारत के महान् गवर्नर जनरलों में अग्रगण्य रहेगा।"[1]

लॉर्ड कर्जन और तिब्बत से सम्बन्ध
(RELATIONS WITH TIBET DURING LORD CURZON'S TENURE)

19वीं शताब्दी तक तिब्बत चीन के प्रभाव-क्षेत्र के अन्तर्गत समझा जाता था लेकिन अब तिब्वती लोग चीन से स्वतन्त्र होने की दृढ़ इच्छा प्रकट करने लगे। नए दलाई लामा ने अपने आप को शक्तिशाली शासक के रूप में प्रमाणित किया। अपने प्रदेश से चीनी प्रभाव को समाप्त कराने के लिए दलाई लामा तिब्बत में रूसी प्रभाव का स्वागत कर रहा था। दलाई लामा धीरे-धीरे मि. डौरजिफ (Mr. Dorgief) नामक एक मंगोलियन के प्रभाव में आ गया जो कि जन्म से रूसी था। 1898 ई. में दलाई लामा ने रूस की बौद्ध जनता से धार्मिक कार्यों हेतु धन इकट्ठा करने हेतु डौरजिफ को रूस भेजा। डौरजिफ आगामी वर्षों में अनेक बार रूस गया। 1900 तथा 1901 ई. में उसने रूस के शासक जार से भी मुलाकात की। रूसी समाचार-पत्रों में डौरजिफ की यात्राओं को विशेष महत्व दिया गया। लेकिन भारत सरकार के लिए तिब्बत में रूस का बढ़ता प्रभाव संकट का प्रश्न बना हुआ था। इस समय भारत का वायसराय लॉर्ड कर्जन था। कर्जन तिब्बत में बढ़ते हुए रूसी प्रभाव को सहन करने के लिए तैयार न था।

अतः लॉर्ड कर्जन ने इंग्लैण्ड की सरकार को इस बात के लिए बाध्य करना आरम्भ किया कि वह कर्जन को तिब्बत में एक मिशन भेजने की अनुमति दे। लेकिन इंग्लैण्ड की सरकार इसके लिए तैयार न थी क्योंकि उस समय यूरोप में जर्मनी शक्तिशाली होता जा रहा था अतः इंग्लैण्ड रूस के साथ अपने सारे मतभेदों को भुला कर मधुर सम्बन्ध स्थापित करने में प्रयत्नशील था। इस समय तिब्बत में अंग्रेजी मिशन भेजने का अर्थ रूस को अप्रसन्न करना ही होता। अब लॉर्ड कर्जन ने ब्रिटिश सरकार के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि रूसी प्रभाव को रोकने के विषय पर चीनी प्रतिनिधियों से सिक्किम की सीमा से 15 मील उत्तर में स्थित खाम्बा जोंग में बातचीत की जाए। इस बातचीत के माध्यम से लॉर्ड कर्जन तिब्बत के साथ अपने सम्बन्धों को सुधारना चाहता था। इंग्लैण्ड की सरकार ने अनिच्छापूर्वक कर्जन के प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी।

इंग्लैण्ड की सरकार से स्वीकृति मिल जाने पर कर्जन ने कर्नल यंग हसबैण्ड (Col. Young Husband) की अध्यक्षता में एक अंग्रेजी मिशन खाम्बा जोंग भेज दिया। चीनी प्रतिनिधि भी सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए आ गए। लेकिन तिब्बती प्रतिनिधियों ने इस शर्त पर सम्मेलन में शामिल होना स्वीकार किया कि अंग्रेजी मिशन तिब्बती सीमा से बाहर अपनी सीमा में चला जाए। कर्नल हसबैण्ड ने तिब्बती प्रतिनिधियों की शर्त को स्वीकार कर लिया लेकिन इसी बीच तिब्बती सेनाएं खाम्बा जोंग के समीपवर्ती प्रदेशों में एकत्रित होना आरम्भ हो गयीं। अंग्रेजी सरकार के लिए यह स्थिति असहनीय थी। अतः कर्जन ने इंग्लैण्ड की सरकार से ग्यान्त्से (Gyantse) तक बढ़ने की आज्ञा मांगी। इंग्लैण्ड की सरकार ने इस

1 "Whatever errors, whatever failures and both error and failure are inseparable from human agency—critics may detect in his six years of office, it cannot be doubted that Lord Curzon's name will stand amongst the foremost of those that make up the illustrious role of the Governor-General of India."
—P. E. Roberts, *History of British India*, p. 57.

शर्त पर अनुमति दी कि क्षतिपूर्ति के उपरान्त अंग्रेजी सेनाएं वापस आ जाएंगी। स्वीकृति मिलते ही अंग्रेजी सेनाओं ने मार्च 1904 ई. में ग्यान्त्से की ओर बढ़ना आरम्भ किया।
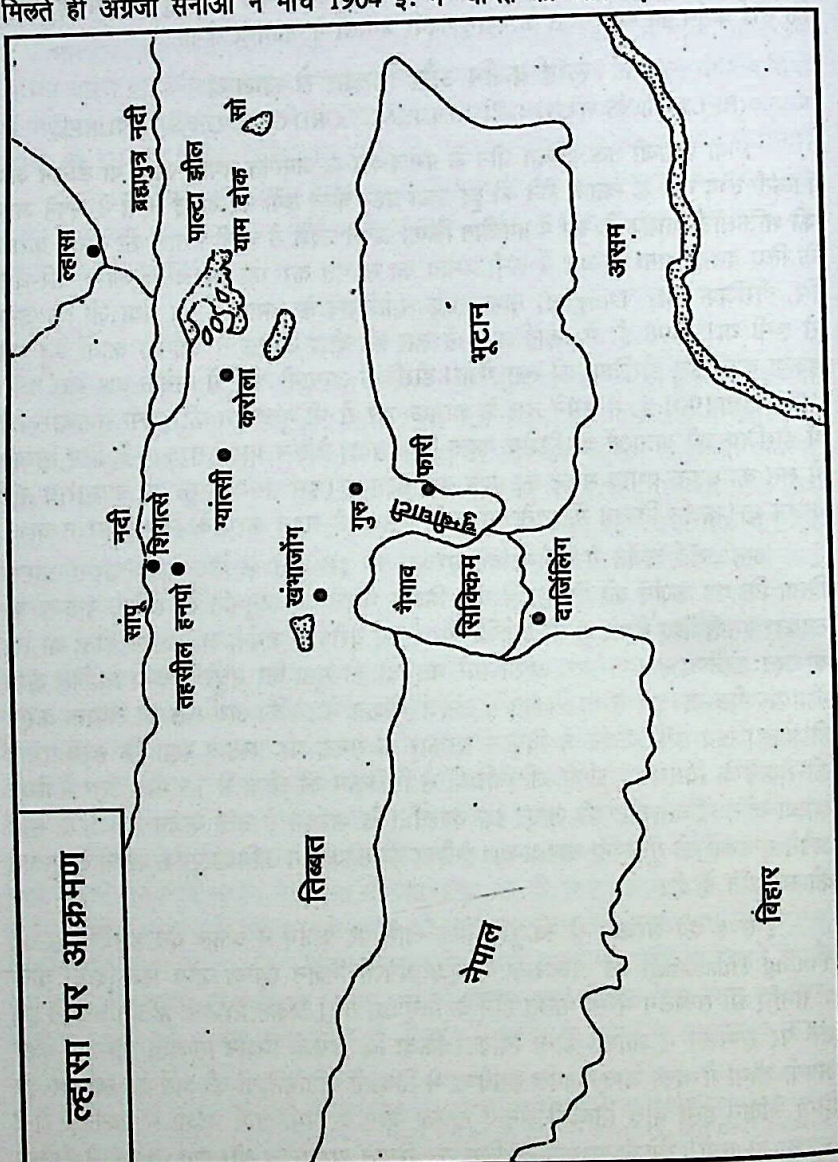
तिब्बती सेनाओं ने गुरू (Guru) नामक स्थान पर अंग्रेजी सेनाओं को रोकने का प्रयास किया लेकिन अंग्रेजी सेना ने उन्हें बुरी तरह पराजित कर दिया। 11 अप्रैल, 1904 ई. को अंग्रेजों ने ग्यान्त्से पर अधिकार कर लिया। इस पराजय के बाद भी दलाई लामा सन्धि के लिए तैयार नहीं हुआ, अतः इंग्लैण्ड की सरकार ने विवश होकर अंग्रेजी सेनाओं को तिब्बत की राजधानी ल्हासा (Lhasa) तक बढ़ने की अनुमति दे दी। अगस्त 1904 ई. में तिब्बती सेनाओं को

पराजित करके अंग्रेजी सेनाओं ने ल्हासा में प्रवेश कर लिया। **दलाई लामा तिब्बत से भाग गया, लेकिन भागने से पूर्व अपने एक प्रतिनिधि को अंग्रेजों से सन्धि करने का अधिकार दे गया। अतः अंग्रेजों ने 7 सितम्बर, 1904 ई. को इस प्रतिनिधि से सन्धि कर ली।**

ल्हासा की सन्धि
(TREATY OF LHASA)

इस सन्धि के निर्णय निम्नलिखित थे :

(1) भारत तथा तिब्बत के व्यापार में वृद्धि करने के विचार से तिब्बत में यातुंग, ग्यान्त्से तथा गरतोक नामक स्थानों पर व्यापारिक केन्द्र स्थापित किए जाएंगे।

(2) ग्यान्त्से में एक अंग्रेज रेजीडेण्ट रहेगा जिसे आवश्यकता पड़ने पर ल्हासा भी भेजा जा सकता है।

(3) तिब्बती युद्ध क्षतिपूर्ति के रूप में अंग्रेजों को 75 लाख रुपया देंगे जिसे वे एक-एक लाख की 75 किस्तों में अदा करेंगे।

(4) तिब्बतियों द्वारा क्षतिपूर्ति की धनराशि अदा न किए जाने तक अंग्रेज सिक्किम एवं चुम्बी घाटी (Chumbi Valley) को बन्धक के रूप में अपने अधिकार में रखेंगे।

(5) किसी भी विदेशी प्रतिनिधि को तिब्बत में आने की अनुमति नहीं दी जाएगी तथा किसी भी विदेशी राज्य को तिब्बत में रेल, सड़क, तार तथा खानों के सम्बन्ध में कोई सुविधा नहीं दी जाएगी।

रूसी सरकार ने इस सन्धि का कड़ा विरोध किया। भारत मन्त्री जॉन ब्राडरिक ने भी अनुभव किया कि तिब्बत से की गयी सन्धि की शर्तें बड़ी कठोर हैं। परिणामस्वरूप इस सन्धि की शर्तों पर पुनर्विचार किया गया। पुनर्विचार के बाद इस सन्धि की शर्तों को नर्म कर दिया गया, क्षतिपूर्ति की राशि घटाकर 25 लाख रुपये कर दी गयी तथा यह भी निश्चित किया गया कि तीन वार्षिक किस्तों के उपरान्त चुम्बी घाटी को खाली कर दिया जाएगा। ग्यान्त्से स्थित ब्रिटिश रेजीडेण्ट का ल्हासा जाने का अधिकार भी समाप्त कर दिया गया।

लॉर्ड कर्जन की तिब्बत नीति की आलोचना
(CRITICISM OF CURZON'S TIBETAN POLICY)

लॉर्ड कर्जन द्वारा तिब्बत के सम्बन्ध में अपनायी गयी नीति की आलोचना की गयी। आलोचकों के अनुसार, एक स्वतन्त्र देश तिब्बत को किसी भी देश के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने की पूर्ण आजादी थी। वह चाहे रूस से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करे चाहे भारत सरकार के साथ अतः इस प्रकार तिब्बत के आन्तरिक मामलों में अंग्रेजों द्वारा हस्तक्षेप करना पूर्णतया अनुचित था। लॉर्ड कर्जन की तिब्बत नीति के विरोध में यह भी कहा जाता है कि इस नीति ने इंग्लैण्ड में ब्रिटिश सरकार के लिए परेशानी उत्पन्न कर दी। इंग्लैण्ड की सरकार जर्मनी की बढ़ती हुई शक्ति से काफी चिन्तित थी इसी कारण वह रूस से अपने सम्बन्ध अच्छे बनाना चाहती थी लेकिन कर्जन की नीति ने इंग्लैण्ड तथा रूस के मैत्री सम्बन्धों में बाधा उत्पन्न कर दी। इसके साथ-साथ आलोचकों का यह भी तर्क है कि इस नीति के अनुसरण से अंग्रेजों को कोई लाभ नहीं हुआ। **लोवत फ्रेजर के अनुसार, "हम अपने व्यावहारिक क्षेत्र को वैसे विस्तृत नहीं कर सके जैसी कि हमें आशा थी और हमने भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर अपने लिए व्यर्थ में एक नयी विकट स्थिति उत्पन्न कर दी है।"** परन्तु कर्जन की तिब्बत नीति की आलोचना करने में यह स्मरण रखना चाहिए कि इसने ल्हासा को रूसी प्रभाव का नवीन केन्द्र बनाने की योजना को असफल कर दिया।

प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. लॉर्ड रिपन द्वारा किए गए सुधारों का उल्लेख कीजिए।
2. लॉर्ड कर्जन द्वारा किए गए सुधारों का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
3. लॉर्ड रिपन को 'सज्जन रिपन' क्यों कहा जाता है? समीक्षा कीजिए।
4. लॉर्ड रिपन के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।
5. लॉर्ड कर्जन के कार्यों की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लॉर्ड रिपन द्वारा स्थानीय स्वशासन के विकास के लिए किए गए कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. लॉर्ड रिपन का मूल्यांकन कीजिए।
3. लॉर्ड कर्जन के कृषि सम्वन्धी सुधारों पर प्रकाश डालिए।
4. लॉर्ड कर्जन के शैक्षिक सुधारों की समीक्षा कीजिए।
5. लॉर्ड कर्जन द्वारा वंगाल का विभाजन क्यों किया गया?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट को किस वायसराय ने समाप्त किया :
   (अ) लिटन (व) रिपन (स) कर्जन (द) मिण्टो
2. स्थानीय स्वशासन को प्रोत्साहित करने वाला वायसराय था :
   (अ) रिपन (व) लिटन (स) वैंटिंक (द) कर्जन
3. भारत में जनगणना किस वायसराय ने प्रारम्भ कराई?
   (अ) वैंटिंक (व) डलहौजी (स) रिपन (द) कर्जन
4. प्राचीन स्मारक सुरक्षा अधिनियम पारित कराया :
   (अ) वैंटिंक (व) डलहौजी (स) लिटन (द) कर्जन
5. भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम कव पारित हुआ?
   (अ) 1900 ई. (व) 1902 ई. (स) 1904 ई. (द) 1906 ई.

[उत्तर—1. (व), 2. (अ), 3. (स), 4. (द), 5. (स)।]

निम्नलिखित वाक्यों में सत्य/असत्य दर्शाइए :

1. लॉर्ड कर्जन ने 1901 ई. में इम्पीरियल कैडट कोर की स्थापना की।
2. भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम को कर्जन ने पारित कराया।
3. रिपन ने वंगाल का विभाजन किया।
4. कर्जन ने स्थानीय स्वशासन का विकास किया।
5. लॉर्ड रिपन ने फैक्टरी एक्ट पारित कराया।

[उत्तर—1. सत्य, 2. सत्य, 3. असत्य, 4. असत्य, 5. सत्य।]

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :

1. इल्वर्ट विल .... व्यवस्था से सम्वन्धित था।
2. लॉर्ड रिपन को .... रिपन के नाम से जाना जाता है।
3. बंगाल विभाजन का मुख्य उद्देश्य .... था।
4. भारत में प्रथम जनगणना .... ई. में हुई।
5. कर्जन ने कलकत्ता निगम पर राजकीय नियन्त्रक .... किया।

[उत्तर—1. न्यायिक, 2. सज्जन, 3. राजनीतिक, 4. 1881, 5. स्थापित]

11

1909 ई. एवं 1919 ई. के भारतीय अधिनियम

[INDIAN ACTS OF 1909 AND 1919]

भूमिका
(INTRODUCTION)

1858 ई. के भारतीय अधिनियम का भारत के संवैधानिक एवं राजनीतिक इतिहास में अत्यधिक महत्व है क्योंकि यही वह अधिनियम था जिसके द्वारा भारतीय शासन को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से छीनकर ब्रिटिश ताज (Crown) के अधीन कर दिया गया। इस प्रकार इस अधिनियम के पारित होने से भारत पर से ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त हो गया। **वास्तव में, 1784 ई. के पिट्स इण्डिया एक्ट के पश्चात् से ही कम्पनी की संवैधानिक शक्ति घटने लगी थी क्योंकि दोहरे शासन (Dual rule) से प्रशासन प्रभावित हो रहा था।** उस समय भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में इतना भ्रष्टाचार था कि इंग्लैण्ड से लोग यहां आकर अपनी जेवें भरने के लिए, अखबारों में विज्ञापन देते थे कि उन्हें ईस्ट इण्डिया कम्पनी में नौकरी दिलाने वाले को पुरस्कृत किया जाएगा। इस प्रकार 1857 ई. तक आते-आते ईस्ट इण्डिया कम्पनी में भ्रष्टाचार तथा भारतीयों पर अत्याचार इतना अधिक बढ़ गया कि भारतीय अब और अधिक सहने की स्थिति में न थे। इसी का परिणाम 1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के रूप में देखने को मिला।

1858 ई. का अधिनियम
(ACT OF 1858)

1857 ई. में इंग्लैण्ड में आम चुनाव (General Elections) हुए तथा प्रधानमन्त्री के पद पर लॉर्ड पामर्स्टन बैठे। पामर्स्टन के लिए कहा जाता है कि वे **'गृह नीति में अनुदार तथा विदेश नीति में उदार'** थे।[1] पामर्स्टन ने तत्कालीन भारतीय स्थिति का अवलोकन किया व वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारत को अब सीधे अंग्रेजी ताज के अधीन लेना आवश्यक है। पामर्स्टन द्वारा यह निर्णय लेने के प्रमुखतया तीन कारण थे :

(i) प्रशासनिक क्षमता (Administrative inefficiency)—पामर्स्टन का मानना था कि तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था अत्यन्त असुविधाजनक है जिससे प्रशासनिक क्षमता घटती है। पामर्स्टन के अनुसार भारतीय प्रशासन का उत्तरदायित्व निदेशकों (Directors), नियन्त्रण

1 "Conservative at home, liaberal abroad."

मण्डल (Board of Control), तथा गवर्नर-जनरल (Governor-General) में वंटा होने के कारण उचित प्रशासन का अंभाव भारत में है। उसने कहा, **"दोहरी शासन-व्यवस्था असुविधाजनक, फूहड़ तथा जटिल है।"**[1] अतः इस व्यवस्था को परिवर्तित कर एक सुचारु एवं सुदृढ़ शासन-व्यवस्था की भारत में स्थापना करना आवश्यक था।

(ii) **प्रजातान्त्रिक सिद्धान्त** (Democratic Prindiples)—पामर्स्टन का विचार था कि इंग्लैण्ड एक प्रजातान्त्रिक देश है, अतः भारत में भी शासन ऐसी संस्था के द्वारा होना चाहिए जो कि इंग्लैण्ड की संसद के प्रति उत्तरदाई हो। उसने कहा, **"भारतीय शासन की बागडोर एक ऐसी संस्था के हाथ में है जो न तो संसद के प्रति उत्तरदायी है और न ही ताज के द्वारा नियुक्त।"** पामर्स्टन का विचार था भारत में शासन ऐसी संस्था के द्वारा होना चाहिए जो इंग्लैण्ड की संसद के प्रति उत्तरदायी हो।

(iii) 1857 ई. **का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम** (First War of Independence)—1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की प्रशासनिक कमजोरियों को स्पष्ट कर दिया। इस घटना ने इंग्लैण्ड की सरकार की आंखें खोल दीं तथा उनको यह स्पष्ट हो गया कि यदि भारत के सम्वन्ध में शीघ्र ही कोई निर्णय नहीं लिया गया तो भारत उनके हाथ से निकल सकता है।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए पामर्स्टन ने 12 फरवरी, 1858 ई. को इंग्लैण्ड की संसद में एक विल प्रस्तुत किया, जिसमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन को भारत से समाप्त कर भारत को व्रिटिश ताज के आधीन करने का प्रस्ताव किया गया था। पामर्स्टन ने इस विल को संसद में प्रस्तुत करते समय संसद में महत्वपूर्ण भाषण दिया जिसमें उसने इस बिल को पारित करने की आवश्यकता पर वल दिया।[2] ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इस बिल का घोर विरोध किया तथा इसके विरोध में अपना शासन भारत में जारी रखने के पक्ष में इंग्लैण्ड की संसद में **'विरोध पत्र'** (Grand Petition) प्रस्तुत किया।

पामर्स्टन के प्रयासों के पश्चात् भी यह विल उसके शासनकाल में पारित न हो सका। कुछ समय पश्चात् स्टैनली ने **कामन सभा** (इंग्लैण्ड की संसद का निचला सदन) में चौदह प्रस्ताव प्रस्तुत किए जिन्हें संसद ने स्वीकार कर लिया। इन्हीं प्रस्तावों के आधार पर 1858 ई. के भारत सरकार अधिनियम की रूप-रेखा तैयार की गई। अन्ततः 30 अप्रैल, 1858 ई. को यह विल पारित कर दिया गया तथा 2 अगस्त, 1858 ई. को इसे महारानी विक्टोरिया के द्वारा अपनी स्वीकृति प्रदान की गई। इस प्रकार यह विल अधिनियम वन गया। इसी के आधार पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के निदेशकों (Directors) की अन्तिम वैठक हुई तथा कार्यभार व्रिटिश ताज को सौंप दिया गया।

मुख्य धाराएं (Main Provisions)—1858 ई. के भारतीय अधिनियम की प्रमुख धाराएं निम्नलिखित थीं :

1. इस अधिनियम के द्वारा भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन को पूर्णतः समाप्त कर दिया गया तथा भारतीय प्रशासन सम्वन्धी सभी अधिकार पूर्णतः अंग्रेजी ताज को सौंप

---

1 **"The system of double government is inconvienient, cumbrous and complex."** —*Palmerston*

2 **"I see no reason, either on the score of principle or on the score of augmentation of the patronage or on the score of time or constitutional danger, why we should not atonce pass the measure."** —*Palmerston*

दिए गए। कम्पनी की सेना को भी इंग्लैण्ड के प्रशासन के अधीन कर दिया गया तथा इस वात की स्पष्ट घोषणा की गई कि अव भारत पर प्रशासन साम्राज्ञी के नाम से किया जाएगा।

2. भारत में सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी **'गवर्नर-जनरल'** होता था उसका पदनाम अव **'गवर्नर-जनरल तथा वायसराय'** (Governor-General & Viceroy) कर दिया गया क्योंकि अव वह भारत में अंग्रेजी ताज के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता था। 'गवर्नर-जनरल तथा वायसराय' की नियुक्ति अंग्रेजी ताज के द्वारा की जानी थी। प्रान्तीय गवर्नरों को गवर्नर-जनरल नियुक्त कर सकता था, किन्तु इसके लिए अंग्रेजी ताज की स्वीकृति लेना अनिवार्य कर दिया गया।

3. नियन्त्रण मण्डल (Board of Control) तथा निदेशकों (Directors) के पदों को समाप्त कर दिया गया तथा उसके स्थान पर **भारत सचिव** के पद का सृजन किया गया। भारत सचिव (Secretary of State of India) कैविनेट स्तर का मन्त्री होता था जो कि संसद के प्रति उत्तरदायी था। उसके पास वे समस्त अधिकार थे जो पहले नियन्त्रण मण्डल तथा निदेशकों में निहित थे। भारत सचिव का कार्यालय लन्दन में ही स्थित था।

4. भारत सचिव की सहायतार्थ एक परिषद (Council) की स्थापना की गई, जिसमें 15 सदस्य थे जिनमें से आठ सदस्य साम्राज्ञी के द्वारा नियुक्त (मनोनीत) किए जाते थे।

5. भारत में शासन के निरीक्षण, निर्देशन का उत्तरदायित्व भारत-सचिव पर ही था।

6. भारत सचिव तथा उसके कार्यालय का समस्त खर्चा भारतीय राजस्व से वसूल किया जाना था, अर्थात् उसका खर्चा भारतीयों को वहन करना था।

7. भारत सचिव के लिए भारतीय प्रगति का लेखा-जोखा प्रतिवर्ष इंग्लैण्ड की संसद में प्रस्तुत करना आवश्यक था।

8. किसी वाह्य आक्रमण का सामना करने के अतिरिक्त किसी भी युद्ध के लिए (भारत की सीमा से वाहर) इंग्लैण्ड की संसद से अनुमति लेना आवश्यक था। भारत में भी कोई युद्ध होने पर भारत सचिव का यह दायित्व था कि वह इस युद्ध के विषय में अंग्रेजी संसद को तत्काल सूचित करे।

9. भारत में लोक सेवाओं में नियुक्ति प्रतियोगी परीक्षाओं के द्वारा किए जाने का निर्णय किया गया। इस सम्बन्ध में आवश्यक कार्यवाही करने के अधिकार भारत मन्त्री को दिए गए जिससे यह अपेक्षा की गई थी कि वह लोक सेवा आयोग के सदस्यों से विचार-विमर्श कर इस सम्बन्ध में आवश्यक नियम वनाए।

10. ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा स्वीकार की गई सभी सन्धियां अंग्रेजी ताज को मान्य होंगी।

1858 ई. के अधिनियम की आलोचना (Criticism of the Act of 1858)—1858 ई. का अधिनियम एक महत्वपूर्ण दस्तावेज था, किन्तु इसमें अनेक दोष थे, अत: इस अधिनियम की कटु आलोचना की गई। कनिंघम ने लिखा है, "**इस अधिनियम में कोई ठोस परिवर्तन के स्थान पर नाम मात्र के परिवर्तन हुए।**"[1] इस अधिनियम के प्रमुख दोष निम्नलिखित थे :

(i) भारत सचिव तथा उसके कार्यालय का खर्चा भारतीय राजस्व से लिया जाना पूर्णत: तर्कहीन था क्योंकि भारत सचिव भी अन्य सभी सचिवों के समान कैविनेट स्तर का मन्त्री होता था। जव अन्य सभी सचिवों का खर्चा ब्रिटिश राजस्व से वहन किया जाता था तो केवल

1 "It created rather a formal than a substantial change."

भारत सचिव के मामले में ऐसा न करना असंगत था। अतः भारतीयों द्वारा इस अधिनियम की आलोचना की गई।

(ii) इस अधिनियम के द्वारा प्रशासन में भारतीयों को भागीदार नहीं बनाया गया था।

(iii) भारत सचिव में अत्यधिक शक्तियां एवं अधिकार निहित थे जिनका शीघ्र ही दुरुपयोग होने लगा। इसी कारण भारत सचिव तथा गवर्नर-जनरलों में भी परस्पर झगड़े होने लगे। उदाहरण के तौर पर, लॉर्ड नार्थब्रुक तथा लॉर्ड सेल्सबरी, लॉर्ड एल्गिन तथा सर हेनरी फाउलर तथा लॉर्ड मिण्टो एवं मार्ले में हुए मतभेदों का उल्लेख किया जा सकता है।

(iv) इंग्लैण्ड की संसद भारत सचिव पर पूर्ण विश्वास करती थी तथा भारतीय मामलों में कोई रुचि नहीं लेती थी। उल्लेखनीय है कि भारत के विषय में इंग्लैण्ड की संसद में कभी लम्बी बहस नहीं हुई तथा जब भारत के बजट सम्बन्धी वार्षिक बैठक होती थी तब अधिकांश कुर्सियां संसद में खाली रहती थीं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 1858 ई. के अधिनियम से न तो कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए थे और न ही भारतीयों को इससे विशेष लाभ हुआ। इसी कारण रैम्जे म्योर ने लिखा है, **"एक राजनीतिक शक्ति के रूप में, 1858 ई. से बहुत पहले ही, कम्पनी समाप्त हो चुकी थी। 1858 ई. के अधिनियम ने कम्पनी के शव को केवल भली-भांति दफनाने का कार्य किया।"**[1]

1858 ई. के अधिनियम का महत्व (Significance of the act of 1858)—यद्यपि इस अधिनियम से कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं हुए थे, किन्तु फिर भी इस अधिनियम के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। इस अधिनियम के द्वारा सुधारों एवं परिवर्तनों की एक प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जिसकी अन्ततः परिणति 1947 ई. के स्वतन्त्रता अधिनियम के रूप में हुई। इस अधिनियम के निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रभाव हुए :

(i) भारत में दोहरी प्रशासनिक व्यवस्था की समाप्ति हुई।
(ii) भारतीय विषय ब्रिटिश संसद में बहस के स्पष्ट मुद्दे बन गए।
(iii) भारत सचिव व उसकी परिषद की स्थापना किए जाने से भारतीय प्रशासन की सुचारुता में वृद्धि हुई क्योंकि इनको भारत की विस्तृत जानकारी रहती थी।
(iv) भारतीय रियासतों व ब्रिटिश सरकार के सम्बन्धों में मधुरता आई क्योंकि अब उन्हें अपने राज्य छिनने का भय न रहा।
(v) ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अत्याचारी शासन समाप्त होने से भारतीयों में इस आशा का संचार हुआ कि अब उनकी स्थिति सुधरेगी।

इस प्रकार 1858 ई. के अधिनियम से अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन भी हुए। इस सन्दर्भ में कूपलैण्ड ने लिखा है, **"परिवर्तन से अत्यधिक महत्वपूर्ण विचार यह है कि इसने आंग्ल-भारतीयों के इतिहास के एक अध्याय को बन्द कर दिया और एक नवीन अध्याय की शुरूआत की।"** इसी प्रकार के विचार जी. एन. सिंह ने भी व्यक्त किए हैं।[2]

---

1 "The company was long dead as a political power before 1858. The act of 1858 merely gave a decent burial to the corpse of the company." —*Ramsay Muir*

2 "It closed one great period of Indian history and ushered in another great era—the direct rule of Crown. It rang the deathknell of the trading company." —*G. N. Singh*

महारानी विक्टोरिया का घोषणा-पत्र
(QUEEN VICTORIA'S PROCLAMATION)

भारत को ब्रिटिश ताज के अधिकार में लेने की प्रसन्नता में एक समारोह का आयोजन किया गया। यह आयोजन इलाहाबाद में 1 नवम्बर, 1858 ई. को आयोजित किया गया। इस अवसर पर भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड कैनिंग ने महारानी विक्टोरिया के एक घोषणा-पत्र को पढ़ा। इस घोषणा-पत्र में निम्नलिखित प्रमुख वातें कही गयी थीं :

(i) भारतीय रियासतों को आश्वासन दिया गया था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ किए गए उनके समझौतों व सन्धियों को ब्रिटिश सरकार भी मानेगी।
(ii) विना भेद-भाव व पक्षपात के योग्यता के आधार पर शासन के उच्च पदों पर भी भारतीयों को नियुक्त किया जाएगा।
(iii) भारत सम्बन्धी कानूनों का निर्माण करते समय भारत की परम्पराओं का ध्यान रखा जाएगा।
(iv) भारतीयों के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।
(v) शान्ति की स्थापना होने के पश्चात् सार्वजनिक हित के कार्य किए जाएंगे।

यह घोषणापत्र अनेक दृष्टिकोणों से विशेष महत्व का था क्योंकि इसने भारत में एक नई नीति की नींव डाली। यह घोषणा-पत्र 1917 ई. तक भारतीय संविधान का प्रमुख आधार वना रहा। (1917 ई. में एक अन्य घोषणा-पत्र की घोषणा की गयी थी।) इस घोषणा-पत्र के द्वारा भारतीय रियासतों पर छलपूर्वक अधिकार करने की नीति समाप्त हो गयी। इस घोषणापत्र से भारतीयों में नई आशा का संचार हुआ और वे सोचने लगे कि अव उनकी समस्याओं का समाधान हो सकेगा। डॉ. मुकर्जी ने लिखा है कि इस घोषणा-पत्र से एक नवीन युग का आविर्भाव हुआ। कुछ विद्वानों ने इसे **'मैग्नाकार्टा'** (Magna Carta) की संज्ञा दी है। डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है, **"भारतीयों के लिए इस घोषणा-पत्र ने स्वर्ग को धरती पर ला दिया। इसने भारतीयों के लिए शान्ति, समृद्धि, धर्म की रक्षा, समान व्यवहार तथा सबसे अधिक ऊंची नौकरियों पर नियुक्ति का वायदा किया।"**[1] किन्तु, डॉ. ईश्वरी प्रसाद के इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि वास्तव में, इनमें से कुछ भी भारतीयों को प्राप्त नहीं हुआ था।

1861 ई. का भारत परिषद अधिनियम
(INDIAN COUNCIL ACT OF 1861)

1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम ने अंग्रेजों की आंखें खोलने का कार्य किया। उनकी यह धारणा कि भारत में कभी भी राष्ट्रवादी भावनाएं जन्म नहीं ले सकतीं, अतः भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन नहीं हो सकता, भ्रामक प्रमाणित हो गई। भारत को अपने हाथ से निकलने से वचाने के उद्देश्य से ही अंग्रेजों ने 1858 ई. का अधिनियम पारित किया तथा भारत को अपने हाथों में ले लिया। इस प्रकार, यद्यपि 1858 ई. के अधिनियम से एक नवीन युग का आविर्भाव हुआ, किन्तु यह अधिनियम एक स्थायी एवं सुदृढ़ शासन की भारत में स्थापना न कर सका। इस अधिनियम के पारित होने के पश्चात् भी भारतीय शासन पद्धति में अनेक दोष थे जिनका निवारण किया जाना आवश्यक था, इनमें से प्रमुख अग्रवत् थे :

---

1 "To the people of India the proclamation brought a new heaven on the earth. It promised them peace and prosperity, protection of their religion, equality of treatment with other subjects of the Queen and above all promised to them a share in the highest services of the state, if so qualified." —*Ishwari Prasad*

(1) 1858 ई. के अधिनियम के द्वारा इंग्लैण्ड से होने वाले निर्देशन व आदेशों में ही परिवर्तन हुआ। इस अधिनियम का भारतीय प्रशासनिक प्रणाली पर विशेष प्रभाव न पड़ा अतः भारतीय असन्तुष्ट थे, तथा सुधार कराना चाहते थे।

(2) 1857 ई. की क्रान्ति ने स्पष्ट कर दिया था कि भारतीय संवैधानिक प्रणाली से भी सन्तुष्ट न थे तथा उसमें संशोधन चाहते थे। भारतीय संविधान सभा में सदस्य बनना चाहते थे ताकि भारतीय संवैधानिक प्रगति के लिए वे प्रयत्न कर सकें किन्तु 1858 ई. के अधिनियम द्वारा भारतीयों को यह अधिकार प्रदान नहीं किया गया था। 1858 ई. में यह मामला इंग्लैण्ड की संसद में उठाया गया किन्तु ग्लैडस्टन ने यह कहा कि **''जब भारत का एक बड़ा भाग अभी भी अंग्रेज़ों का विरोध कर रहा है तो ऐसे में भारतीयों को प्रतिनिधित्व प्रदान करना उचित नहीं है''**[1] ऐसा करने से इन्कार कर दिया। यद्यपि दूसरी ओर सैय्यद अहमद खां का कहना था कि **''यदि काउन्सिल में एक भी हिन्दुस्तानी सदस्य होता तो जनता कभी भी हथियार उठाने की गलती न करती।''**[2] इस समय तक अनेक अंग्रेज भी यह मानने लगे थे कि भारतीयों को प्रतिनिधित्व दिया जाना आवश्यक है।[3]

(3) भारत में रेग्यूलेटिंग अधिनियम के द्वारा शक्ति के केन्द्रीकरण (Centralization) की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जो 1833 ई. के चार्टर अधिनियम (Charter Act) के द्वारा पूर्ण हुई। यद्यपि ऐसा इसलिए किया गया था ताकि ब्रिटिश भारत में एकसमान नियम लागू हो सकें, किन्तु शीघ्र ही इस व्यवस्था के दोष सामने आने लगे। इस व्यवस्था में निम्नलिखित दोष थे :

(i) इस व्यवस्था से प्रान्तीय सरकारें यह अनुभव करने लगीं जैसे कि वे बंगाल की कौंसिल के आधीन हो गयी हों। अतः वे निरन्तर शिकायतें कर रही थीं।
(ii) गवर्नर-जनरल की लेजिस्लेटिव काउन्सिल अत्यन्त शक्तिशाली हो गई थी। यहां तक कि अनेक बार वह गवर्नर-जनरल का आदेश मानने से इन्कार कर देती थी। इसी कारण इसे **'मिनी संसद'** (Parliament in miniature) भी कहा जाता था।
(iii) मिनी संसद ऐसे नियम बनाने में असफल रही थी जो सभी प्रान्तों की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ हो।

इस प्रकार उपरोक्त परिस्थितियों के कारण भारत की स्थिति अत्यन्त खराब थी। इसी कारण भारत सचिव चार्ल्स वुड ने संसद में कहा, **''भारत में बढ़ती हुई परेशानियों के प्रति आंखें बन्द रखना हमारी मूर्खता होगी। इसलिए हमें अपनी सभी संस्थाओं को शीघ्र ही अच्छी स्थिति में लाने का प्रयास करना चाहिए।''**[4]

1860 ई. में भारत के वायसराय लॉर्ड कैनिंग ने भारत सचिव को एक पत्र लिखकर भारतीय समस्याओं से अवगत कराया तथा इसी पत्र में भारतीय समस्याओं को सुलझाने के लिए अनेक सुझाव भी दिए। इन्हीं सुझावों के आधार पर भारत सचिव ने एक विधेयक (Bill)

1 "Impolitic to grant it when a considerable portion of the native were still in arms against the British." —*Gladstone*
2 "Had there been a native of Hindustan in the same legislative council, the people would never have fallen into such errors." —*Syed Ahmad Khan*
3 "The addition of the native element (to the Council) has, I think become necessary." —*Sir Bartle Frere*
4 "It would be fully to shut our eyes to the increasing difficulties of our position in India and it is an additional reason why we should make the earliest endeavour to put all over institutions on soundest possible foundation." —*Sir Charles Wood*

तैयार किया व 6 जून, 1861 ई. को संसद में प्रस्तुत किया जो पारित होने के पश्चात् 1861 ई. का भारतीय अधिनियम कहलाया।

मुख्य धाराएं (Main Provisions)—1861 ई. के अधिनियम की मुख्य धाराएं निम्नलिखित थीं :

(i) वायसराय की कार्यकारिणी सभा के सदस्यों में एक सदस्य की वृद्धि की गई। इस प्रकार अव कार्यकारिणी सभा में कुल पांच सदस्य हो गए।

(ii) कानून वनाने के लिए लेजिस्लेटिव कौंसिल में भी सदस्यों की संख्या बढ़ायी गयी। इस कौंसिल में अव कम से कम 6 व अधिक से अधिक 12 सदस्य वढ़ाए जा सकते थे। इन अतिरिक्त सदस्यों का कार्यकाल 2 वर्ष था तथा ये सदस्य वायसराय द्वारा नियुक्त किये जाते थे जिनमें भारतीय सदस्य भी हो सकते थे।

(iii) भारत मन्त्री कमाण्डर-इन-चीफ को इस लेजिस्लेटिव कौंसिल का विशेष सदस्य नियुक्त कर सकते थे।

(iv) गवर्नर जनरल को नियम बनाने व आदेश देने का अधिकार मिला। अपनी अनुपस्थिति में वह कौंसिल के किसी भी सदस्य को सभापति मनोनीत कर सकता था। गवर्नर-जनरल को कार्य-विभाजन का अधिकार भी प्रदान किया गया। इस प्रकार **विभाग-प्रणाली (Portfolio System)** का जन्म हुआ, जो आज भी विद्यमान है। वायसराय अकेला कोई कानून नहीं वना सकता था।

(v) लेजिस्लेटिव कौंसिल का कार्य केवल कानून वनाना था, वह कार्य पालिका के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी। गवर्नर-जनरल कौंसिल के किसी भी प्रस्ताव को अस्वीकार कर सकता था तथा उसे अध्यादेश जारी करने का अधिकार था।

(vi) प्रत्येक प्रान्त के गवर्नर को यह अधिकार प्रदान किया गया कि वह अपनी परिषद में कम से कम चार व अधिक से अधिक आठ सदस्यों को नियुक्त कर सकता है। परिषद का कार्य मुख्यतः प्रान्त के लिए कानून वनाना था, किन्तु अन्तिम स्वीकृति वायसराय की ही होती थी।

(vii) वायसराय किसी भी प्रान्त का विभाजन कर सकता था अथवा उसकी सीमाएं घटा अथवा बढ़ा सकता था।

(viii) कुछ विशेष विभागों—सार्वजनिक ऋण, अर्थ, मुद्रा, डाकखाने, तार, धर्म इत्यादि कुछ विषयों के अतिरिक्त अन्य विषयों में केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय का भेदभाव नहीं किया गया।

महत्व (Significance)—1861 ई. का भारतीय कौंसिल अधिनियम कुछ दृष्टिकोणों से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इस अधिनियम की सर्वप्रमुख विशेषता यह थी कि इसने भारतीयों को भी संवैधानिक कार्यों में भागीदार वनाया। इसके अतिरिक्त, विभाग-प्रणाली (Portfolio system) के लागू किए जाने से इसने प्रशासनिक क्षमता को भी वढ़ाया। इस अधिनियम के द्वारा ही प्रान्तों को भी अपने प्रान्त से सम्बन्धित कानून बनाने का अधिकार दिया गया। इन्हीं कारणोंवश अनेक विद्वानों ने इस अधिनियम की प्रशंसा की है। कूपलैण्ड ने लिखा है, **"भारतीयों को परिषदों में सदस्यता प्रदान करके और कानून सम्बन्धी शक्तियां देकर भारतीयकरण और विकेन्द्रीकरण की ऐसी नीति का श्रीगणेश हुआ जो आगे चलकर स्वायत्त शासन का आधार बनी।"** इसी प्रकार ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है, "यह अधिनियम भारत में प्रतिनिधि संस्थाओं का तथा व्यवस्था बनाने के कार्य के विभाजन का प्रारम्भ किए जाने के कारण संवैधानिक

इतिहास में विशेष महत्व रखता है।" इसी प्रकार गुरुमुखनिहालसिंह ने भी इस अधिनियम की अत्यन्त प्रशंसा की है।[1]

आलोचना (Criticism)—उपरोक्त विशेषताओं के पश्चात् भी भारतीय इस अधिनियम से सन्तुष्ट न थे। भारतीयो की आशाओं व अपेक्षाओं को यह अधिनियम पूर्ण न कर सका। इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त विधायी सुविधाएं केवल छायामात्र ही थीं। यद्यपि इस अधिनियम के द्वारा भारतीयों को भी लेजिस्लेटिव कौंसिल का सदस्य वनाया गया, किन्तु वायसराय केवल राजा, नवाव तथा अन्य धनी व्यक्तियों को ही कौंसिल का सदस्य मनोनीत करते थे जिन्हें स्वयं भारतीयों की समस्याओं के विषय में विशेष जानकारी नहीं थी और न हीं वे भारतीयों के हित में वोलते थे। इसके अतिरिक्त इस अधिनियम के द्वारा गवर्नर-जनरल को अत्यधिक शंक्तियां दी गयी थीं जिन्होंने उसे सर्वशक्तिमान वना दिया।

इस प्रकार, इस अधिनियम से भारतीयों को विशेष लाभ न हुआ तथा वे और अधिकारों के लिए पूर्ववत् संघर्षरत रहे।

1892 ई. का भारत परिषद अधिनियम
(INDIAN COUNCIL ACT OF 1892)

1858 ई. के अधिनियम के द्वारा भारत में ब्रिटिश ताज का शासन लागू किया गया। भारतीयों को इस परिवर्तन से अनेक अपेक्षाएं थीं जो कि पूर्ण न हो सकीं। भारतीयों में आक्रोश की भावनाओं को दवाने के लिए अंग्रेजी सरकार ने 1861 ई. का अधिनियम पारित किया किन्तु वह भी भारतीयों की आशाओं पर खरा न उतर सका। अतः अंग्रेजी सरकार ने 1892 ई. में एक अधिनियम पारित किया। **इस अधिनियम को पारित करने के निम्नलिखित कारण थे :**

(i) **1861 ई. का अधिनियम** (Act of 1861)—1861 ई. के अधिनियम से भारतीयों को वहुत अपेक्षाएं थीं। इस अधिनियम के द्वारा यद्यपि विभागीय-प्रणाली (Portfolio system) लागू किया गया तथा भारतीयों को प्रतिनिधित्व दिया गया किन्तु भारतीय इससे सन्तुष्ट न थे क्योंकि भारतीयों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतिनिधि अंग्रेजों के द्वारा ही मनोनीत किए जाते थे अतः वे सव अंग्रेजों के ही सम्पर्क में होते थे। भारतीयों की समस्याओं के विषय में उन्हें कोई ज्ञान नहीं था। अतः भारतीय पुनः सुधारों की मांग कर रहे थे।

(ii) **राष्ट्रीयता की भावना प्रवल**—1861 ई. से 1892 ई. तक के अन्तराल में भारत में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गए थे। 1870 ई. के पश्चात् धार्मिक आन्दोलनों (ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी), पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव, आर्थिक शोषण तथा अंग्रेजों की निरंकुश नीतियों के परिणामस्वरूप भारतीयों में राष्ट्रीय भावना अत्यन्त प्रवल हो गयी थी, अतः भारत में एक वार फिर विद्रोह न उत्पन्न हो जाए, इस भय से अंग्रेजी सरकार ने भारतीयों को सन्तुष्ट करने के लिए इस अधिनियम को पारित किया। इस खतरे को तत्कालीन वायसराय लॉर्ड रिपन ने भांप लिया था, जैसा कि उसके इस कथन से स्पष्ट होता है, **"एक आन्दोलन प्रारम्भ हो गया है जोकि प्रत्येक वर्ष और अधिक तेजी और शक्ति से आगे वढ़ेगा।"**[2]

1 "The Indian council act of 1861, is important in the constitutional history of India for two chief reasons; first, because it enabled the Governor-General to associate the people of the land with the work of legislation, and secondly, by restoring legislative powers to the Govt. of Bombay and Madras." —*G. N. Singh*

2 "A movement has begun which will advance with greater rapidity and force every year." —*Lord Rippon*

(iii) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना (Foundation of Indian National Congress)—1885 ई. से पूर्व भारत में कोई ऐसी राष्ट्रीय संस्था नहीं थी जो कि भारतीयों की समस्याओं के समाधान के लिए संघर्ष कर सकती। 1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई जिसने भारतीयों को संघर्ष करने के लिए एक आधार प्रदान कर दिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सरकार के समक्ष अनेक मांगें रखीं जिनमें प्रमुख निम्न थीं :

(अ) वायसराय की कार्यपरिषद में सदस्यों की संख्या वढ़ाई जाए तथा उसमें चुने हुए प्रतिनिधि हों।

(व) सभी प्रान्तों में भी इसी प्रकार की परिषदों की स्थापना की जाए।

(स) वजट पर बहस करने का अधिकार इन कौंसिलों को हो।

(द) कौंसिल में भारतीयों को प्रतिनिधित्व दिया जाए।

इस प्रकार कांग्रेस ने संवैधानिक अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना प्रारम्भ किया। सरकार ने कांग्रेस को सन्तुष्ट करने के लिए यह अधिनियम पारित किया। जी. एन. सिंह ने लिखा है, "**1892 ई. का अधिनियम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्यों का प्रथम परिणाम था।**"[1]

1892 ई. के अधिनियम की प्रमुख धाराएं (Main Provisions of the Act of 1892)—1892 ई. के अधिनियम की प्रमुख धाराएं निम्नलिखित थीं :

(i) इस अधिनियम के द्वारा विधान परिषदों की सदस्य संख्या में वृद्धि की गई। केन्द्रीय विधान मण्डल में कम से कम 10 और अधिक से अधिक 16 अतिरिक्त सदस्यों की नियुक्ति की गई।

(ii) मद्रास और वम्वई के प्रान्तीय विधानमण्डलों में सभा के अध्यक्ष एवं महधिवक्ता को छोड़कर अतिरिक्त सदस्यों की संख्या कम से कम 4 और अधिकतम 20 निश्चित की गयी।

(iii) वंगाल विधानमण्डल में अतिरिक्त सदस्यों की संख्या अधिकतम 20 निर्धारित की गयी थी।

(iv) उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त में कम से कम 9 एवं अधिकतम 15 अतिरिक्त सदस्यों की नियुक्ति की व्यवस्था थी।

(v) विधान परिषदों में 2/5 गैर-सरकारी सदस्यों का होना आवश्यक था।

(vi) सदस्य अप्रत्यक्ष रूप से चुने जाने थे किन्तु सरकारी स्वीकृति आवश्यक थी।

(vii) वायसराय, भारत सचिव की अनुमति से अपनी कार्यकारी परिषद में सदस्यों की संख्या वढ़ा सकता था।

(viii) केन्द्रीय एवं प्रान्तीय विधानमण्डलों के सदस्यों को वार्षिक आय-व्यय विवरण (वजट) पर वहस करने का अधिकार प्रदान कर दिया गया।

(ix) केन्द्रीय एवं प्रान्तीय विधायकों को सार्वजनिक मामलों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया।

आलोचना (Criticism)—1892 ई. के अधिनियम की भारतीयों के द्वारा तीव्र आलोचना की गई क्योंकि यह अधिनियम जनता की अपेक्षाओं को पूर्ण न कर सका। गोपालकृष्ण गोखले, फिरोजशाह मेहता, दादाभाई नौरोजी, डब्लू. सी. वनर्जी, सी. वाई. चिन्तामणि, मदन मोहन मालवीय आदि सभी नेताओं ने इस अधिनियम का विरोध किया। इस अधिनियम से भारतीयों को कोई लाभ न था क्योंकि इसमें अग्रलिखित दोष थे :

1 "The Indian council act of 1892 was tne first result of the work of Indian National Congress." —*G. N. Singh*

(i) इस अधिनियम का एक प्रमुख दोष यह था कि इसमें अप्रत्यक्ष चुनाव पद्धति को लागू किया गया था। इस प्रकार चुने हुए प्रतिनिधि वास्तव में जनता के चुने प्रतिनिधि नहीं थे।[1]

(ii) विधान सभाओं के कार्यक्षेत्र अत्यन्त सीमित थे तथा उनमें केन्द्रीय सरकार का अत्यधिक हस्तक्षेप था।

(iii) इस अधिनियम के द्वारा सरकारी फिजूलखर्ची रोकने का कोई प्रयास नहीं किया गया। विधान परिषदों में बजट पर बहस करने का अधिकार अवश्य दिया गया किन्तु तब जबकि वह कार्य परिषद द्वारा पहले ही तय हो जाता था, तथा उसमें कोई फेर-बदल करना सम्भव न था।[2]

(iv) विभिन्न सम्प्रदायों को प्रतिनिधित्व सही तरीके से नहीं दिया गया।

(v) भारतीय सदस्यों को अत्यन्त अल्प सुविधाएं व अवसर प्राप्त थे। जैसा कि चिन्तामणि ने लिखा है, **"सदस्यों को जो सुविधाएं व अवसर प्राप्त थे वे अत्यन्त सीमित थे तथा उनमें से कोई भी उपयोगी प्रमाणित न हुआ।"**

इस प्रकार उपरोक्त दोषों के कारण भारतीयों ने इस अधिनियम की घोर आलोचना की। गोपालकृष्ण गोखले ने कहा, **"अधिनियम की कार्यवाही ने खोखलेपन को प्रमाणित कर दिया।"**[3]

महत्व (Significance)—यद्यपि 1892 ई. के अधिनियम में अनेक दोष थे फिर भी इस अधिनियम को भारतीय संवैधानिक विकास का एक प्रमुख स्तम्भ माना जा सकता है क्योंकि यह अधिनियम 1861 ई. के अधिनियम से निश्चित रूप से अग्रणीय था। इस अधिनियम में निम्नलिखित विशेष बातें थीं :

(i) इस अधिनियम के द्वारा अप्रत्यक्ष ही सही, किन्तु निर्वाचन प्रणाली का जन्म हुआ।

(ii) इस अधिनियम के द्वारा ही पहली बार बजट पर बहस करने का अधिकार परिषदों को दिया गया।

(iii) इस अधिनियम के द्वारा प्रतिनिधि सरकार की ओर एक कदम आगे बढ़ने का अवसर मिला।

इस अधिनियम की प्रशंसा करते हुए लॉर्ड कर्जन ने कहा, **"यह अधिनियम एक महान् व महत्वपूर्ण प्रस्ताव है तथा इसके द्वारा एक निर्णायक कदम, एक कदम आगे की ओर बढ़ाया गया है।"**[4] इसी प्रकार कीथ ने इस अधिनियम के विषय में लिखा, "बजट पर वाद-विवाद एवं प्रश्न पूछने सम्बन्धी अतिरिक्त शक्तियां अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं, लेकिन प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त का प्रारम्भ एवं प्रान्तों के सम्बन्ध में इस प्रणाली के अत्यधिक लाभ हैं।"

उपरोक्त विशेषताओं के उपरान्त भी अधिकांश भारतीय इस अधिनियम से सन्तुष्ट न थे तथा उन्होंने इस अधिनियम की आलोचना की। फिरोजशाह मेहता का इस सन्दर्भ में कथन उल्लेखनीय है, **"यह अधिनियम रुक-रुक कर बढ़ने वाला एक असन्तोषजनक कदम है। यह विधेयक एक ऐसे विशाल इंजन के समान है जिसमें उसे चालू करने वाले आवश्यक पदार्थ को**

1 "We must not omit to mention that the reforms of 1892 did not provide for the election of the representatives to the legislative council." —*P. Sitaramaiyya*

2 "The budget could be discussed but not until after the estimates had already been settled." —*Smith*

3 "The actual working of the act manifested its hollowness." —*Gopal Krishna Gokhale*

4 "This bill is not perhaps a great and heroic measure but at the sometime it does make a decisive step, a step in advance." —*Lord Curzon*

हटा दिया गया है। प्रश्नोत्तर एवं बजट पर वाद-विवाद के अधिकार तो दिए गए हैं परन्तु निर्वाचनरूपी जीवन शक्ति का इसमें अभाव है।''

1909 ई. का अधिनियम
(THE ACT OF 1909 A. D.)

भारतीय संवैधानिक व्यवस्था में परिवर्तन हेतु 1909 ई. में एक अधिनियम पारित किया गया जिसे **मार्ले-मिण्टो सुधार अधिनियम**[1] (Morley-Minto Reform Act) भी कहा जाता है। इस अधिनियम का भारतीय संवैधानिक एवं राजनीतिक इतिहास में अत्यधिक महत्व है क्योंकि इसका व्यापक प्रभाव भारतीय राजनीति पर पड़ा था।

पारित होने के कारण
(CAUSES FOR ITS ENACTMENT)

1909 ई. के अधिनियम को पारित किए जाने के लिए अनेक कारण उत्तरदायी थे, **जिनमें से कुछ प्रमुख कारण निम्नवत् थे :**

(i) **1892 ई. के अधिनियम के प्रति असन्तोष** (Discontent due to the Act of 1892)—1909 ई. के अधिनियम के पारित किए जाने से पहले 1892 ई. के अधिनियम द्वारा जनता की अपेक्षाओं को सरकार पूरा न कर सकी। इस अधिनियम में अनेक दोष थे। **उदाहरणार्थ—अप्रत्यक्ष चुनाव पद्धति, प्रान्तों में केन्द्र का अत्यधिक हस्तक्षेप तथा भारतीयों को प्रतिनिधित्व प्रदान नहीं किया गया था।** भारतीय जनता व कांग्रेस इन वातों का विरोध कर रही थी तथा उन्होंने सरकार के विरुद्ध अनेक आन्दोलन भी किए। अतः सरकार ने 1909 ई. में यह अधिनियम पारित किया।

(ii) **भारतीयों की दयनीय स्थिति** (Diplorable Condition of the Indians)—1892 ई. के अधिनियम से तो जनसाधारण त्रस्त था ही, उसी समय अनेक प्राकृतिक विपदाओं ने स्थिति को और खराब कर दिया। इसी समय भारत के कुछ भागों में प्लेग व मलेरिया महामारी के रूप में फैला। इसके अतिरिक्त 1896-97 ई. व 1899-1900 ई. में अकाल भी पड़ा, जिसने भारतीयों की स्थिति को दयनीय वना दिया। **विश्व के अनेक देशों द्वारा भारतीय सरकार की कटु आलोचना की गयी। भारतीयों की स्थिति को सुधारने के लिए कांग्रेसी नेता निरन्तर सुधारों की मांग कर रहे थे।**

(iii) **लॉर्ड कर्जन का शासनकाल** (Tenure of Lord Curzon)—लॉर्ड कर्जन ने भारत में 1898 ई. से 1905 ई. तक वायसराय के रूप में शासन किया। लॉर्ड कर्जन यद्यपि एक योग्य व्यक्ति था, किन्तु उसकी निरंकुशतावादी नीतियों ने भारत की स्थिति को और बिगाड़ दिया। **भारतीय जनता जिस समय अकाल के कारण भुखमरी का सामना कर रही थी, उसी समय कर्जन ने कलकत्ता में विक्टोरिया स्मारक बनवाने में लाखों रुपया खर्च किया, जिससे भारतीयों में रोष उत्पन्न हुआ।** उसके शासनकाल में कुछ स्थानों पर भूमिकर (Land Revenue) 25% वढ़ा दिया गया। एक ओर अकाल के कारण भूखे मरने की स्थिति दूसरी ओर भूमिकर का बढ़ाया जाना जनता को आन्दोलन करने के लिए प्रेरित करना था। उसके शासनकाल में साम्राज्यवादी प्रवृत्तियां वढ़ीं तथा नौकरशाही (Bureaucracy) के प्रति पक्षपात ने सरकार व जनता के बीच की दूरी को बढ़ाया। कर्जन ने 1905 ई. में बंगाल के विभाजन (Partition

1 1909 ई. में मिण्टो वायसराय तथा मार्ले भारत सचिव था। इनके नामों पर इस अधिनियम को मार्ले-मिण्टो सुधार अधिनियम कहा गया।

of Bengal) की भी घोषणा की जिससे सम्पूर्ण भारत में भीषणा असन्तोष उत्पन्न हुआ। इसी के परिणामस्वरूप भारत में **उग्रवादी आन्दोलन** (Extremist Movement) का भी जन्म हुआ, जिसने अंग्रेजी शासन की जड़ों को हिला दिया। अतः 1909 ई. के अधिनियम के द्वारा सरकार भारतीयों के वढ़ते हुए आक्रोश को ठण्डा करना चाहती थी।

(iv) **वैदेशिक घटनाओं का प्रभाव** (Effects of events abroad)—इसी समय विश्व में अनेक देशों में ऐसी घटनाएं हुईं जिन्होंने भारतीय आन्दोलनकारियों का उत्साह वर्धन किया। **एबीसीनियां द्वारा इटली को परास्त करना तथा रूस पर जापान की विजय कुछ ऐसी ही घटनाएं थीं।** जापान की विजय ने स्पष्ट कर दिया कि राष्ट्रीय भावना से एक शक्तिशाली व विशाल देश को भी पराजित किया जा सकता है। इस विजय ने पश्चिम के आधिपत्य को चुनौती दी। इसके अतिरिक्त इटली के एकीकरण का हिन्दी में वर्णन भी इस समय उपलब्ध हुआ जिसमें मैजिनी, गैरीवाल्डी व कैवूर के कार्यों ने भारतीयों को उत्साहित किया तथा वे अधिकारों के प्रति और अधिक संघर्षशील हो गए।

(v) **उग्रवादी नेताओं का आविर्भाव** (Rise of Extremist Leaders)—कांग्रेस ने 1885 ई. से 1905 ई. तक उदारवादी नीति (Liberal Policy) अपनायी थी, किन्तु जव सरकार ने उसकी मांगों की ओर ध्यान न दिया तो कांग्रेस के युवा नेताओं में रोष उत्पन्न होने लगा तथा उनकी विचारधारा उग्रवादी होने लगी। इस प्रकार उस समय अनेक उग्रवादी नेताओं का आविर्भाव हुआ, जिनमें वालगंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल व लाला लाजपतराय प्रमुख थे। तिलक ने भाषणों व 'केसरी' अखवार के माध्यम से भारतीयों को उनके गौरवमयी अतीत की याद दिलायी। पाल ने वंगाल में वंगाल के विभाजन पर अंग्रेजी शासन के उद्देश्यों से जनता को अवगत कराया। लाला लाजपतराय ने अपने जोशीले भाषणों के द्वारा पंजाव को जाग्रत किया। उग्रवादी नेताओं के प्रभाव से सम्पूर्ण भारत में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध आन्दोलन होने लगे। तिलक ने कहा, "**एक विदेशी अच्छी सरकार से एक कम अच्छी राष्ट्रीय सरकार अधिक उपयोगी व उत्तम है।**" पंजाव में दंगे इतने भड़क उठे कि सरकार ने लाला लाजपत राय को वन्दी वना लिया, किन्तु इसके परिणाम व्यापक हुए। सम्पूर्ण पंजाव में आन्दोलन और तीव्र हो गया। जी. एन. सिंह. ने तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, "**लाला लाजपत राय को बन्दी बनाने के परिणामस्वरूप देश के विभिन्न भागों में गम्भीर व्याकुलता उत्पन्न हो गयी जिससे सम्पूर्ण देश के युवा वर्ग में स्थिति का सामना करने के लिए दृढ़ता उत्पन्न हुई तथा वे उग्रवाद तथा कुछ लोग तो हिंसा व आतंकवाद के अनुयायी बन गए।**"[1]

(vi) **आतंकवादियों का जन्म** (Rise of terrorists)—भारतीयों की समस्याओं के प्रति अंग्रेजी सरकार की उदासीनता के कारण कुछ युवा राष्ट्रवादी आतंकवादियों (Terrorists) में परिवर्तित हो गए। इन आतंकवादियों ने ढाका के मजिस्ट्रेट तथा नासिक के कलेक्टर की हत्या कर दी। आतंकवादियों का जोर वढ़ता जा रहा था जिससे अंग्रेज अधिकारियों में भय व्याप्त हो गया। अतः 1919 ई. का अधिनियम पारित करके सरकार इनको रोकना चाहती थी।

(vii) **मोर्ले की भारत सचिव के रूप में नियुक्ति** (Appointment of Lord Morley as Secretary of State for India)—भारत में जव उग्रवाद का जन्म हो रहा था तभी इंग्लैण्ड

1 "The deportation of Lala Lajpat Rai caused a great consternation among the people in various parts of the country and it had the effect of stiffening the backs of youngmen especially in Bengal and of convering them into extremists and even believers in violence and terrorism." —*G. N. Singh*

में उदार दल (Liberal party) की सरकार वनी। तत्पश्चात् मोर्ले को भारत सचिव (Secretary of State for India) वनाया गया। **मोर्ले उदारवादी था तथा सुधारों में विश्वास रखता था। भारत की स्थिति को देखते हुए वह सुधार करना चाहता था, अतः उसने वायसराय मिण्टो से सम्बन्ध स्थापित कर अपनी इच्छा व्यक्त की।** अतः भारत में सुधार करने के उद्देश्य से एक समिति (committee) की नियुक्ति 1906 ई. में की गयी। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट वायसराय को दी जिसने अपनी कौंसिल से परामर्श करने के पश्चात् रिपोर्ट मोर्ले को भेज दी। मोर्ले ने उस रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात् इस आदेश के साथ वायसराय मिण्टो को वापस किया कि इस रिपोर्ट के विषय में जनता की राय जानने के लिए इसे प्रान्तीय सरकारों के पास भिजवा दें। इस कार्यवाही में लगभग दो वर्ष का समय लगा किन्तु इसी वीच वायसराय मिण्टो ने मुस्लिम लीग के नेताओं से सम्पर्क कर कुछ मांगें उनकी भी इस रिपोर्ट में जुड़वा दीं। **इन मांगों में सर्वप्रथम साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति (Communal Electoral System) थी, जिसका भविष्य में भारतीय राजनीति व राष्ट्रीय आन्दोलन पर गम्भीर प्रभाव पड़ा।**

इस प्रकार संशोधित यह रिपोर्ट 1909 ई. में इंग्लैण्ड की संसद में विधेयक (Bill) के रूप में प्रस्तुत की गयी जिसे संसद ने पारित कर दिया। इस प्रकार 1909 का अधिनियम पारित हो गया।

1909 ई. के अधिनियम की प्रमुख धाराएं
(MAIN PROVISIONS OF THE ACT OF 1909)

1909 ई. के अधिनियम में अनेक धाराएं थीं जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नवत् थीं :

(1) इस अधिनियम के द्वारा केन्द्रीय तथा सभी प्रान्तीय विधान सभाओं में सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गयी। इस अधिनियम से सदस्य संख्या में निम्नलिखित परिवर्तन हुए :

क्रम	विधान परिषद	सदस्य संख्या 1909 ई. से पूर्व	सदस्य संख्या 1909 ई. के अधिनियम के द्वारा
1.	केन्द्रीय विधान सभा	25	68
2.	मद्रास व वम्वई	24—24	46—46
3.	पंजाव	10	24
4.	वंगाल	21	52
5.	उ. प. प्रान्त	16	47

(2) प्रान्तीय सभाओं के सदस्य अधिकांश गैर-सरकारी होने थे, किन्तु उनकी नियुक्ति अप्रत्यक्ष चुनाव पद्धति के द्वारा होनी थी।

(3) प्रांन्तीय सभाओं में सदस्यों का निर्वाचन सम्प्रदाय के आधार पर।

(4) प्रान्तीय सभाओं को वहस करने व पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार प्रदान।

(5) प्रान्तीय सभाएं केवल सार्वजनिक मामलों पर वहस कर सकती थीं, सैनिक व विदेशी मामलों पर नहीं।

(6) प्रान्तों में भी कार्यकारी समिति (Executive Council) का निर्माण किया जा सकता था, किन्तु यह गवर्नर की इच्छा पर निर्भर था।

(7) प्रान्तीय सभाओं में मुसलमानों को अपने प्रतिनिधि अलग से चुनने का अधिकार प्रदान।

(8) केन्द्रीय सभा का अध्यक्ष किसी भी प्रस्ताव को अस्वीकृत कर सकता था।

(9) पहली वार वायसराय की कार्यकारिणी समिति में भारतीय अधिकारियों को स्थान प्रदान किया गया।

(10) सरकार द्वारा राजनीतिक अपराधी घोषित व्यक्ति सभा के सदस्य नहीं हो सकते थे।

मूल्यांकन
(EVALUATION)

1909 ई. का अधिनियम अंग्रेजी सरकार के दृष्टिकोण से अत्यन्त सुधारवादी तथा प्रगतिशील था। **इस अधिनियम में निम्नलिखित प्रमुख गुण थे :**

(1) इस अधिनियम के द्वारा सभाओं के सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गयी तथा भारतीयों को पहली वार प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। इस दृष्टिकोण से इस अधिनियम द्वारा प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों का विकास हुआ।

(2) सभाओं को बजट पर बहस करने का अधिकार दिया गया। इस प्रकार सैनिक खर्च पर अत्यधिक व्यय करने पर सभा में वहस की जा सकती है।

(3) भारतीय मुसलमानों को इस अधिनियम के द्वारा प्रसन्न किया गया।

(4) प्रान्तों में भी कार्यकारी समिति की स्थापना की जा सकती थी।

उपरोक्त गुणों के पश्चात् भी भारतीयों द्वारा इस अधिनियम की कटु आलोचना की गयी, क्योंकि उनकी किसी भी मांग को स्वीकार नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी देने को कहा गया वह वास्तविक नहीं था। यही कारण है कि कहा जाता है कि 1909 ई. के सुधारों ने **भारतीयों को सार नहीं छाया** (Shadow not the substance) **प्रदान की।** इस अधिनियम के पश्चात् भी सम्पूर्ण शक्ति अंग्रेजों के हाथों में ही केन्द्रित रही। **इस अधिनियम में निम्नलिखित प्रमुख दोष थे :**

(1) भारतीय काफी समय से स्वायत्त शासन की मांग कर रहे थे, इस अधिनियम के द्वारा ऐसा नहीं किया गया।

(2) संसदीय प्रणाली स्थापित करने का दिखावा किया गया जिससे सरकारी कार्यों में अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी।

(3) निर्वाचन प्रणाली अत्यन्त दोषपूर्ण स्थापित की गयी। **निर्वाचन प्रणाली में निम्नलिखित दोष थे :**

(i) मतदाताओं की संख्या को बढ़ाया नहीं गया। अतः वोट देने का अधिकार कुछ ही लोगों तक सीमित रहा।

(ii) मतदाताओं व निर्वाचित प्रतिनिधि के मध्य सम्पर्क कायम करने की कोई व्यवस्था नहीं की गयी।[1]

(iii) स्त्रियों को वोट देने का अधिकार नहीं दिया गया।

(iv) मतदाताओं की संख्या कम होने से उन पर प्रभाव डाला जा सकता था।

(v) निर्वाचन प्रणाली का सवसे प्रमुख दोष पृथक् साम्प्रदायिक प्रणाली को स्थापित करना था। इससे मुसलमानों को अलग प्रतिनिधि निर्वाचित करने का अधिकार मिल गया। इस व्यवस्था ने भारत में साम्प्रदायिकता का वीज बो दिया। पं. जवाहरलाल नेहरू ने इसकी आलोचना करते हुए लिखा, "**मुसलमानों के चारों ओर एक ऐसा राजनीतिक घेरा डाल दिया**

1 **"There is absolutely no connection between the supposed primary voter and the man who sits as his representative in the Legislative Council."**
—Montford Report

गया जिससे वे शेष भारत से अलग हो गए और शताब्दियों से हम जो एक होने का प्रयत्न कर रहे थे उसके उल्टे प्रभाव हो गए।" इसी प्रकार के विचार पी. ई. रॉबर्ट्स ने भी लिखे हैं, **"साम्प्रदायिक चुनाव पद्धतियों ने विभिन्न समुदायों में भेद उत्पन्न कर दिया और उनके हितों का मेल असम्भव बना दिया।"**[1]

(4) यद्यपि इस अधिनियम के द्वारा विधान सभाओं में सदस्यों की संख्या बढ़ी, किन्तु निर्वाचन प्रणाली दोषपूर्ण होने के कारण सरकार के समर्थक ही सदस्य नियुक्त होते थे, अतः स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ा। इसके अतिरिक्त विधान सभा के सदस्यों के अधिकारों में भी वृद्धि नहीं की गयी थी, अतः मात्र संख्या बढ़ाने से कोई लाभ होने की सम्भावना न थी। इसी कारण कूपलैण्ड ने लिखा है, **"विधान सभाएं संसद से अधिक दरबार नजर आते थे।"**[2] इसी प्रकार के विचार डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने भी व्यक्त किए हैं। उनके शब्दों में, **"विधान सभाएं जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले विधायकों के स्थान पर अजायबघर के रूप में बदल गयी थीं।"**[3]

(5) इस अधिनियम के द्वारा विधानसभाओं को वहस का अधिकार दिया गया। वाससराय को इतने अधिकार दिए गए कि वह किसी भी प्रस्ताव को अस्वीकार कर सकता था। अतः इस सुविधा का महत्व समाप्त हो गया।

(6) प्रान्तों में कार्यकारी परिषद वनाने की अनुमति प्रदान की गयी, किन्तु गवर्नर की इच्छा के विना ऐसा करना सम्भव न था।

इस प्रकार 1909 ई. का सुधार अधिनियम अपने उद्देश्य में असफल रहा।[4] इसअधिनियम में इतने दोष व्याप्त थे कि भारतीयों द्वारा इसका विरोध किया जाना स्वाभाविक ही था। भारतीयों की आशाओं पर तुषारापात करने वाले इस अधिनियम का सवसे प्रमुख परिणाम इसके द्वारा साम्प्रदायिकता को बढ़ाना था। भारतीय संवैधानिक सुधार रिपोर्ट में इस अधिनियम के विषय में लिखा है, **"यह इतिहास के सिद्धान्तों के विरुद्ध था। इसने वर्गों एवं सम्प्रदायों में दूरी बढ़ाने का प्रयास किया। यह स्वायत्त शासन के सिद्धान्त के विकास में एक भारी रुकावट था।"**[5]

1919 ई. का भारतीय अधिनियम
(THE INDIAN ACT OF 1919 A. D.)

1919 ई. में सरकार द्वारा एक अन्य अधिनियम पारित किया गया जो **माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड अधिनियम** (Montague-Chelmsford Act) के नाम से प्रख्यात है। चेम्सफोर्ड उस समय वायसराय था तथा माण्टेग्यू भारत सचिव। इन्हीं के नाम पर इस अधिनियम का यह नाम पड़ा।

1919 ई. के अधिनियम को पारित किए जाने के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी थे :

(1) **मार्ले-मिण्टो अधिनियम के प्रति असन्तोष** (Discontent due to Morley-Minto Reform Act)—1909 ई. में पारित मार्ले-मिण्टो अधिनियम से भारतीयों को बहुत अपेक्षाएं

---

1 "The principle of class representation........created a distinction between the different classes of the community and made the fusion of their interests impossible." —P. E. Roberts, *History of British India*, p. 572.

2 "The Legislative Councils looked more like Darbars than Parliaments." —*Coupland*

3 "The Councils were transferred into a museum rather than Legislatures representing the will of the people." —*Ishwari Prasad*

4 "The Reforms of 1909 failed in their objective." —*Keith*

5 "It was opposed to the teaching of the history. It perpetuated divisions by creeds and classes. It stereotyped existing relations and was a very serious hindrance to the development of the self-governing principle." —*The Report on Indian Constitution Reforms* (1918)

थीं, किन्तु इसके पारित होने पर भारतीयों को घोर निराशा हुई। भारतीय **स्वशासन** (Home Rule) की मांग कर रहे थे, किन्तु अंग्रेजी सरकार कुछ भी देने को तैयार न थी। अतः भारतीयों में व्यापक असन्तोष का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। गांधीजी ने 1909 ई. के अधिनियम की आलोचना करते हुए लिखा, **"मार्ले-मिण्टो सुधारों ने हमारे सब कार्यों पर पानी फेर दिया है। यदि पृथक् निर्वाचन प्रणाली स्वीकार न की गयी होती तो अब तक हम अपने मतभेदों को दूर कर लेते।"** कीथ ने लिखा है, **"1909 ई. के सुधार ....उग्रवादियों की मांगों को सन्तुष्ट नहीं कर सकते थे।"**[1]

(2) प्रथम विश्व-युद्ध का प्रभाव (Effects of First World War)—प्रथम विश्व-युद्ध का भारतीय राजनीति पर व्यापक प्रभाव पड़ा। भारतीयों ने अंग्रेजी सरकार से तमाम मतभेद होते हुए भी इस युद्ध में अंग्रेजों की सहायता की तथा विभिन्न मोर्चों पर असाधारण वीरता का परिचय दिया। अंग्रेजों ने घोषणा की कि यह युद्ध वे प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों की रक्षा के लिए लड़ रहे हैं। इस युद्ध में भाग लेकर भारतीयों में भी प्रजातान्त्रिक भावनाएं प्रबल हुईं। जिस प्रकार से भारतीयों ने अंग्रेजों का साथ दिया था, उससे उन्हें विश्वास होने लगा था कि युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारत को **स्वायत्त शासन** (Home Rule) दे दिया जाएगा। प्रथम विश्व-युद्ध का एक अन्य परिणाम यह हुआ कि इससे भारतीय मुसलमान अंग्रेजों के विरुद्ध हो गए क्योंकि अंग्रेजों ने उन्हें छला था। अतः हिन्दू-मुसलमानों में पारस्परिक सहयोग बढ़ा। अतः 1919 ई. का अधिनियम पारित करके अंग्रेजों ने भारतीयों को सन्तुष्ट करने का प्रयास किया।

(3) क्रान्तिकारी आन्दोलन (Terrorist Movement)—1909 ई. के अधिनियम के कारण भारतीयों में असन्तोष बढ़ा। परिणामस्वरूप अनेक उग्रवादी अब क्रान्तिकारियों में परिणत होने लगे। रासबिहारी बोस ने वायसराय लॉर्ड हार्डिंग पर बम फेंका। विदेशों में भी क्रान्तिकारियों ने अपने अड्डे स्थापित किए तथा भारत में क्रान्तिकारी गतिविधियों के कार्यान्वयन में सहायता दी। इस दिशा में **'गदर दल'** (Gadar Party) का नाम उल्लेखनीय है। इसकी सहायता से क्रान्तिकारियों ने सरकार का तख्ता उलटने का प्रयास किया। बढ़ते हुए आतंकवाद से अंग्रेजी सरकार भयभीत हो गयी तथा भारतीयों को सन्तुष्ट करने के उद्देश्य से 1919 ई. का अधिनियम पारित किया।

(4) उदारवादी व उग्रवादी में समझौता (Congress reunited)—1907 ई. में कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में कांग्रेस के सदस्यों में मतभेद उत्पन्न हो गया तथा कांग्रेस दो भागों में विभक्त हो गयी—उदारवादी (Moderates or Liberals) तथा उग्रवादी (Extremists)। कांग्रेस के इस विभाजन का सरकार ने लाभ उठाया व उग्रवादी आन्दोलन व नेताओं का कठोरतापूर्वक दमन कर दिया। ऐनी वेसेण्ट ने इस स्थिति को भांपा तथा कांग्रेस को पुनः एक करने का प्रयास किया। ऐनी वेसेण्ट को अन्ततः अपने उद्देश्य में सफलता मिली तथा 1916 ई. में कांग्रेस पुनः एक हो गयी। इस प्रकार पुनः सशक्त हुई कांग्रेस ने एक बार फिर अंग्रेजी सरकार का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। अतः 1919 ई. का अधिनियम पारित कर सरकार ने भारतीयों को सन्तुष्ट करने का प्रयास किया।

(5) लखनऊ समझौता (Lucknow Pact)—1909 ई. के अधिनियम ने हिन्दू व मुसलमानों की दूरी को बढ़ा दिया था। अंग्रेजों ने मुसलमानों के मन में यह भरने का प्रयास किया कि हिन्दू उनका भला नहीं चाहते। किन्तु, 1912 ई. में जब बंगाल के विभाजन को

1 **"The reforms of 1919.......was clearly unliked to satisfy the extremists demands."** —***Keith***

समाप्त कर दिया गया तो मुसलमानों को गहरा आघात पहुंचा व वे पुनः कांग्रेस के समीप आने का प्रयत्न करने लगे। अन्ततः 1916 ई. में लखनऊ में **कांग्रेस व मुस्लिम लीग में समझौता हो गया जिसे 'लखनऊ समझौता'** (Lucknow Pact) **कहा गया।** कांग्रेस व मुस्लिम लीग का समझौता कराने में तिलक, ऐनी वेसेण्ट व जिन्ना का प्रमुख हाथ रहा था। कांग्रेस व मुस्लिम लीग के समझौते से सरकार घबरा गयी व भारतीयों को शान्त करने के उद्देश्य से उसने 1919 ई. का अधिनियम पारित किया।

(6) महात्मा गांधी का भारतीय राजनीति में पदार्पण (Mahatma Gandhi enters into the Indian Politics)—महात्मा गांधी 1915 ई. में दक्षिण अफ्रीका से भारत आ गए। भारत की स्थिति को समझने में उन्होंने लगभग दो वर्ष का समय लगाया, तत्पश्चात् वे सक्रिय राजनीति में उतर आए तथा भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना को प्रवल करने लगे। अंग्रेज सरकार महात्मा गांधी की दक्षिण अफ्रीका में सफलता देख चुकी थी, अतः उनकी क्षमता से परिचित थी। अतः इस अधिनियम को पारित करने के लिए सरकार विवश हुई।

(7) होमरूल आन्दोलन (Home Rule Movement)—भारतीय काफी समय से स्वशासन की मांग कर रहे थे। 1915 ई. में तिलक ने पूना में व ऐनी वेसेण्ट ने मद्रास में **'होमरूल लीग'** (Home Rule League) की स्थापना की तथा होम रूल आन्दोलन आरम्भ किया। यह आन्दोलन शीघ्र ही अत्यधिक प्रवल हो गया। अनेक प्रमुख नेताओं ने भी इसका समर्थन किया। इस आन्दोलन ने सम्पूर्ण भारत में राष्ट्रीयता की भावनाएं प्रवाहित कर दीं। अंग्रेजी सरकार शक्तिशाली होते हुए भी इस आन्दोलन से घवरा उठी व ऐनी बेसेण्ट को वन्दी बना लिया गया, किन्तु इसका परिणाम उल्टा हुआ। सम्पूर्ण भारत में आन्दोलन और अधिक शक्तिशाली हो उठा।

अन्ततः उपरोक्त सभी कारणों के परिणामस्वरूप भारत सचिव माण्टेग्यू ने घोषणा की, **क्राउन की यह नीति है और भारत सरकार भी इससे पूर्णतया सहमत है कि शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों का अधिक से अधिक सहयोग प्राप्त कर साम्राज्य के अन्तर्गत भारतवर्ष में उत्तरदायी शासन की स्थापना की जाए और स्वशासन की संस्थाएं क्रमशः उन्नत बनायी जाएं।"**[1] इस प्रकार पहली बार भारत में उत्तरदायी शासन की मांग को स्वीकार किया गया, अतः इस घोषणा का ऐतिहासिक महत्व है।

1919 ई. के अधिनियम की प्रमुख धाराएं
(MAIN PROVISIONS OF THE ACT OF 1919 A. D.)

1917 ई. में की गयी भारत सचिव माण्टेग्यू की घोषणा के आधार पर ही 1919 ई. के अधिनियम की धाराओं का निर्माण किया गया। **1919 ई. के अधिनियम की प्रमुख धाराएं निम्नलिखित थीं :**

(1) भारत सचिव व इंग्लैण्ड की संसद के भारतीय शासन पर नियन्त्रण में कमी की गयी। भारत सचिव के कार्यालय का सम्पूर्ण खर्च भी ब्रिटिश राजस्व से ही लिया जाना था। इससे पहले यह खर्च भारतीय राजस्व से लिया जाता था, जिसका भारतीय विरोध कर रहे थे।

1 "It is the declared policy of the Parliament to provide for the increasing association of Indians in every branch of Indian administration, and for gradual development of self governing institutions with a view to the progressive realisation of responsible government in British India as an integral part of Empire."

(2) इंग्लैण्ड में भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में एक नवीन पद का सृजन किया गया। इस नए पदाधिकारी को **भारतीय उच्चायुक्त** (Indian High Commissioner) कहा गया। भारतीय उच्चायुक्त को भारत सचिव से अनेक अधिकार लेकर दे दिए गए। भारतीय उच्चायुक्त की नियुक्ति भारत सरकार द्वारा की जानी थी तथा उसका खर्च भी भारत को ही वहन करना था।

(3) गवर्नर-जनरल व गवर्नरों के अधिकारों में वृद्धि की गयी जिनका उपयोग स्वेच्छा से कर सकते थे।

(4) भारतीयों की यह मांग कि साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति (Communal Electoral System) समाप्त कर दिया जाए, को स्वीकार नहीं किया गया। इसके विपरीत इस प्रणाली को और बढ़ावा दिया गया।

(5) केन्द्रीय शासन व्यवस्था में उत्तरदायी शासन लागू नहीं किया गया। अतः केन्द्रीय शासन पूर्ववत् स्वेच्छाचारी तथा नौकरशाही (Bureaucracy) के नियन्त्रण में ही रहा।

(6) गवर्नर-जनरल की कार्यकारी परिषद में भारतीय सदस्यों की संख्या को बढ़ाया गया।

(7) एक सदन (House) वाले केन्द्रीय विधानमण्डल का पुनर्संगठन किया गया। अव दो सदन वाले विधान मण्डल की व्यवस्था की गयी। उच्च सदन को **राज्य परिषद** (Council of State) तथा निचले सदन को **केन्द्रीय विधानसभा** (Central Legislative Assembly) कहा गया।

(8) केन्द्रीय विधान सभा में 143 सदस्य तथा राज्य परिषद में 60 सदस्य होते थे। दोनों सदनों में निर्वाचित सदस्यों का वहुमत रखा गया और चुनाव पद्धति प्रत्यक्ष कर दी गयी। केन्द्रीय विधान सभा का कार्यकाल 3 वर्ष तथा राज्य परिषद का कार्यकाल 5 वर्ष था। इस कार्यकाल को गवर्नर-जनरल बढ़ा सकता था।

(9) प्रत्यक्ष चुनाव पद्धति को लागू किया गया।

(10) केन्द्रीय विधान मण्डल को विस्तृत अधिकार दिए गए जिनमें कानून बनाने, कानूनों को परिवर्तन करने तथा वजट पर वहस आदि प्रमुख थे।

(11) इस अधिनियम से देशी रियासतों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

(12) **प्रान्तों में उत्तरदायी शासन लागू करने का प्रयत्न किया गया।** प्रान्तीय मामलों में स्वायत्तता प्रदान की गयी। **इसे निम्नवत् तालिका से समझा जा सकता है :**

भारतीय प्रशासन

↓

केन्द्रीय विषय	**प्रान्तीय विषय**
(i) सुरक्षा	(i) चिकित्सा
(ii) विदेशी मामले	(ii) सार्वजनिक स्वास्थ्य
(iii) राजनीतिक सम्वन्ध	(iii) सफाई
(iv) वित्त आदि	(iv) शिक्षा आदि

तालिका से स्पष्ट है कि महत्वपूर्ण विषयों को केन्द्र के अधीन ही रखा गया था।

(13) प्रान्तीय विधान परिषदों में सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गयी। प्रत्येक में निर्वाचित सदस्यों को वहुमत प्रदान किया गया।

(14) इस अधिनियम के द्वारा एक महत्वपूर्ण कार्य प्रान्तों में **द्वैध शासन प्रणाली** (Diarchy) का लागू किया जाना था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रान्तीय विषयों (Provincial Subjects) को दो भागों में वांटा गया—**संरक्षित विषय** (Reserved Subject) तथा **हस्तान्तरित विषय** (Transferred Subjects)। संरक्षित विषयों को गवर्नर की कार्यकारी परिषद (Executive Council) के अधीन किया गया। इन विषयों पर प्रान्तीय विधानसभाओं का नियन्त्रण नहीं था। हस्तान्तरित विषयों पर विधानसभाओं के मन्त्रियों द्वारा प्रशासन किया जाना था। ये मन्त्री विधानसभाओं के प्रति उत्तरदायी थे। **संरक्षित विषयों में प्रमुख**—पुलिस, न्याय-व्यवस्था, वित्त, सिंचाई, भू-राजस्व, शान्ति-व्यवस्था, उद्योग, जेल, समाचार-पत्र सेन्सर थे। **हस्तान्तरित विषयों में प्रमुख**—सार्वजनिक स्वास्थ्य, सफाई, चिकित्सा, शिक्षा, कृषि, कृषि समितियां व स्थानीय प्रशासन थे। इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों में स्थापित की गयी द्वैध शासन प्रणाली को निम्न तालिका से समझा जा सकता है :

प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली

↓

कुल विषय

↓

संरक्षित विषय	**हस्तान्तरित विषय**	
(i) पुलिस	(i) सार्वजनिक स्वास्थ्य	मन्त्रियों द्वारा प्रशासित (To be ruled by the Ministers responsible to the Assembly)
(ii) न्याय-व्यवस्था	(ii) सफाई	
(iii) वित्त	(iii) चिकित्सा	
(iv) सिंचाई	(iv) शिक्षा	
(v) भू-राजस्व	(v) कृषि	
(vi) शान्ति-व्यवस्था	(vi) कृषि समितियां	
(vii) उद्योग	(vii) स्थानीय प्रशासन	
(viii) जेल, इत्यादि		
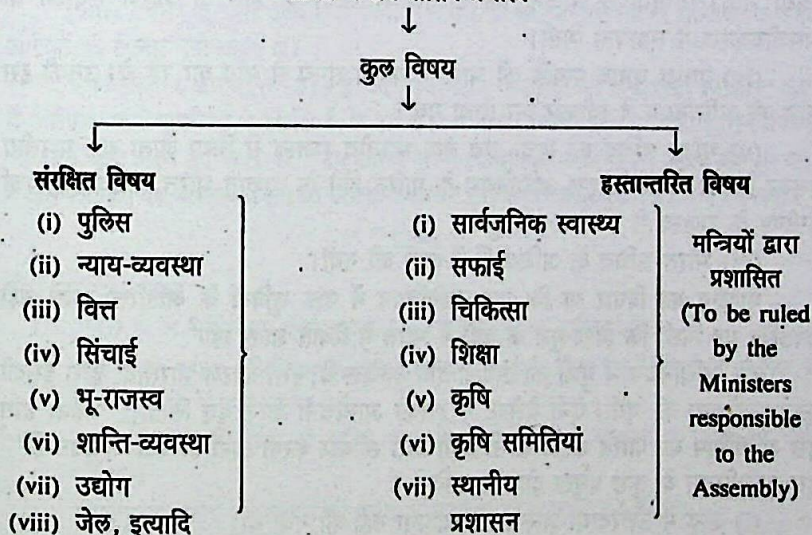
उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि सब महत्वपूर्ण विषयों को संरक्षित विषय बनाकर कार्यकारी परिषद के अधीन रखा गया था।

(15) इस अधिनियम के द्वारा एक लोक सेवा आयोग की स्थापना की गयी। भारत सचिव को इस आयोग की नियुक्ति का कार्य सौंपा गया।

(16) इस अधिनियम के लागू किए जाने के 10 वर्षों के अन्दर ही एक आयोग[1] की नियुक्ति की जानी थी जिसका कार्य इस अधिनियम के प्रति प्रतिक्रियाओं की रिपोर्ट इंग्लैण्ड की संसद को देना था।

1 इसी धारा के अन्तर्गत 1927-28 ई. में साइमन आयोग (Simon Commission) की नियुक्ति की गयी थी।

1919 ई. के अधिनियम का मूल्यांकन
(EVALUATION OF THE ACT OF 1919 A. D.)

1919 ई. के अधिनियम का भारतीय संवैधानिक इतिहास में वहुत महत्व है। इसने कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किए, इसी कारण कुछ इतिहासकारों ने इसे भारतीय संविधान का 'ब्लू प्रिन्ट' माना है। श्री निवासन ने लिखा है, **"यह नौकरशाही शासन की पद्धति का प्रथम उल्लंघन और प्रतिनिधात्मक शासन का वास्तविक प्रारम्भ था।"**[1] इस अधिनियम में निम्नलिखित प्रमुख गुण थे :

(i) दो सदनों वाली केन्द्रीय सभा की स्थापना की गयी जिससे भविष्य में संवैधानिक विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ।

(ii) इस अधिनियम के द्वारा मताधिकार (Franchise) को विस्तृत किया गया। इससे जनसाधारण अपने अधिकारों के प्रति सजग हुआ तो भारत में राजनीतिक चेतना का विकास हुआ।

(iii) भारतीयों को प्रान्तों में उत्तरदायी प्रशासन करने का पहली बार अवसर प्रदान किया गया। विभागों के राजनीतिक अध्यक्ष भारतीयों के होने के कारण सेवाओं के भारतीयकरण में सहायता मिली।

(iv) प्रत्यक्ष चुनाव पद्धति की भारतीय काफी समय से मांग कर रहे थे। उनकी इस मांग को अधिनियम में स्वीकार कर लिया गया।

(v) भारत सचिव का खर्चा अव तक भारतीय राजस्व से लिया जाता था। भारतीय इसका विरोध करते थे। इस अधिनियम के पारित होने के पश्चात् भारत सचिव का खर्चा इंग्लैण्ड के राजस्व से ही लेना तय हुआ।

(vi) भारत सचिव के अधिकारों में कमी की गयी।

माण्टेग्यू का विचार था कि उक्त अधिनियम में उक्त खूबियों के अतिरिक्त सबसे बड़ी उपलब्धि यह मिली कि विश्व-युद्ध के वर्षों में भारत में स्थिति शान्त रही।[2]

इस अधिनियम में गुणों की अपेक्षा दोष अधिक थे, इसी कारण भारतीयों द्वारा इसकी कटु आलोचना की गयी। ऐनी वेसेण्ट ने इसकी आलोचना करते हुए लिखा, **"अंग्रेजों द्वारा इस अधिनियम को पारित करना व भारतीयों द्वारा स्वीकार करना दोनों ही बातें अनुचित हैं।"**[3] इस अधिनियम के कुछ प्रमुख दोष निम्नांकित हैं :

(i) केन्द्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना नहीं की गयी थी।

(ii) इस अधिनियम ने साम्प्रदायिकता को वढ़ाया।

(iii) 1920 ई. में वर्षा वहुत कम हुई थी, अतः भारत की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी, इसके अतिरिक्त तत्कालीन भारत का राजनीतिक वातावरण भी किसी भी प्रकार के संवैधानिक परीक्षण के लिए उचित न था क्योंकि रौलट एक्ट व जलियांवाला काण्ड के कारण सम्पूर्ण भारत में आन्दोलन हो रहे थे। ऐसे प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली (Diarchy) लागू करना अनुचित था। संयुक्त प्रान्त के ले. गवर्नर हरकोर्ट वटलर (Harcourt Butler) ने भी इस वात को स्वीकार करते हुए लिखा, **"माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों को बहुत कम लोगों ने स्वीकार किया है। लगभग**

1 N. Shri Nivasan, *Democratic Govt. in India*, p. 41.
2 "I have kept India quiet at a critical period of the war." —*Montague*
3. "The scheme is unworthy of England to offer and unworthy of India to accept." —*A. Beasant*

सभी स्थानीय सरकारों ने इसकी निन्दा की है। एक वास्तविक प्रशासक होने के नाते हम महसूस करते हैं कि द्वैध शासन प्रणाली पूर्णतया तथा निश्चित रूप से असफल होगी।''[1]

(iv) द्वैध शासन प्रणाली सिद्धान्ततः दोषपूर्ण थी। एक प्रान्त में दो शासन करने वाली संस्थाएं कैसे कार्य कर सकती हैं? द्वैध शासन प्रणाली के अन्तर्गत यही किया गया था, अतः इसका असफल होना स्वाभाविक था।[2]

(v) द्वैध शासन प्रणाली के अन्तर्गत विषयों का विभाजन भी अत्यन्त अतार्किक एवं अव्यावहारिक था। ऐसे विभाग जो एक-दूसरे से सम्बन्धित थे, अलग-अलग संस्थाओं के अंधीन कर दिए गए थे। उदाहरण के लिए सिंचाई व कृषि का अभीष्ट सम्बन्ध है, किन्तु दोनों को अलग-अलग कर दिया गया था। मद्रास के तत्कालीन मन्त्री श्री के. वी. रेड्डी ने लिखा है, **''मैं विकास मन्त्री था किन्तु वन-विभाग हमारे अधिकार में नहीं था। मैं कृषि मन्त्री था, किन्तु सिंचाई विभाग पृथक् था।''**[3]

(vi) हस्तान्तरित विषयों के लिए पृथक् वित्त की व्यवस्था नहीं थी।

(vii) गवर्नर को अत्यधिक शक्ति प्रदान की गयी थी। गवर्नर किसी भी मन्त्री के प्रस्ताव को अस्वीकार कर सकता था। इसी कारण चिन्तामणि ने कहा, **''वास्तविक शक्ति गवर्नर में निहित थी, मन्त्रियों के पास नहीं।''**

(viii) गवर्नर के पास अत्यधिक अधिकार होने के कारण नौकरशाही मन्त्रियों व उनके आदेशों की चिन्ता नहीं करते थे।

अतः उपरोक्त कारणों से 1919 ई. का अधिनियम भारतीयों की अपेक्षाओं को शान्त करने में असफल रहा। कूपलैण्ड ने 1919 ई. के अधिनियम द्वारा प्रान्तों में स्थापित द्वैध शासन प्रणाली की आलोचना करते हुए लिखा है, **''द्वैध शासन अपने रचयिताओं के प्राथमिक उद्देश्य को पूरा करने में असफल रहा। यह भारतीय जनता को उत्तरदायी शासन का वास्तविक प्रशिक्षण प्रदान न कर सका।''**[4]

प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. 1909 ई. के अधिनियम की प्रमुख धाराओं एवं महत्व का वर्णन कीजिए।
2. मार्ले-मिण्टो सुधार अधिनियम के द्वारा कौन-कौनसे सुधार किए गए? भारतीयों के फिर भी असन्तुष्ट रहने के क्या कारण थे?
3. 1909 ई. के अधिनियम को पारित करने के कारणों, प्रमुख धाराओं व महत्व का वर्णन कीजिए।
4. माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड अधिनियम की प्रमुख धाराओं व महत्व का वर्णन कीजिए।
5. 1919 ई. के अधिनियम को पारित करने के कारणों पर प्रकाश डालिए। 1919 ई. के अधिनियम का महत्व भी बताइए।

---

1 "The Montague Chelmsford reforms scheme has got very few friends left. Practically all the local governments have condemned it. What we all feel as practical administrator is that the diarchial arrangement is absolutely and inevitably bound to fail." —*Harcourt Butler*

2 "Diarchy is a hybrid system which can not continue, as no country or province can be successfully governed by two independ cabinets." —*Sir Reginald Croddock*

3 "I was minister for development minus the forests. I was the minister for agriculture minus irrigation." —*K. V. Reddy*

4 "Diarchy failed in its primary purpose which its authors intended to serve. It did not provide any real training of responsible Government to the people."
—Coupland. *The Constitutional Problem in India*, Part I, p. 73.

6. 1919 ई. के अधिनियम के द्वारा प्रान्तों में लागू की गयी द्वैध-शासन प्रणाली का वर्णन कीजिए। द्वैध शासन प्रणाली क्यों असफल रही?
7. 1919 ई. के अधिनियम की मुख्य धाराओं पर प्रकाश डालिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 1909 ई. के अधिनियम के पारित होने के कारण बताइए।
2. 1909 ई. के अधिनियम की प्रमुख धाराएं कौन-कौन-सी थीं?
3. 1909 ई. के अधिनियम का मूल्यांकन कीजिए।
4. द्वैध शासन प्रणाली से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।
5. 1919 ई. के अधिनियम का मूल्यांकन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति किस अधिनियम से लागू हुई?
(अ) 1892 ई. (ब) 1909 ई. (स) 1919 ई. (द) 1935 ई.
2. 1909 ई. का अधिनियम पारित होते समय वायसराय था :
(अ) कर्जन (ब) मिण्टो (स) लिटन (द) माण्टेग्यू
3. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने पाकिस्तान का जन्मदाता माना है :
(अ) जिन्ना (ब) माउण्टबैटन (स) मिण्टो (द) लियाकत अली
4. प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली किस अधिनियम से लागू की गई :
(अ) 1892 ई. (ब) 1909 ई. (स) 1919 ई. (द) 1935 ई.
5. 'भारतीय उच्चायुक्त' का पद किस अधिनियम से सृजित हुआ :
(अ) 1909 ई. (ब) 1919 ई. (स) 1935 ई. (द) 1947 ई.

[उत्तर—1. (ब), 2. (ब), 3. (स), 4. (स), 5. (ब)।]

निम्नलिखित वाक्यों में सत्य/असत्य दर्शाइए :

1. 1909 ई. के अधिनियम के पारित होते समय भारत-सचिव मोर्ले था।
2. 1909 ई. के अधिनियम द्वारा प्रस्तावित साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति का कांग्रेस द्वारा स्वागत किया गया।
3. 1909 ई. के अधिनियम ने भारत के विभाजन के बीज बो दिए।
4. 1919 ई. के अधिनियम ने केन्द्र में द्वैध शासन प्रणाली लागू की।
5. 1919 ई. के अधिनियम के द्वारा प्रान्तीय विषयों को संरक्षित व हस्तान्तरित विषयों में बांट दिया गया।

[उत्तर—1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य, 4. असत्य, 5. सत्य।]

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :

1. 1909 ई. के सुधारों ने भारतीयों को सार नहीं .... प्रदान की।
2. 1909 ई. के अधिनियम द्वारा .... को शेष भारत से अलग करने का प्रयास किया गया।
3. 1916 ई. में कांग्रेस व .... के बीच समझौता हुआ।
4. 1919 ई. के अधिनियम ने .... में द्वैध शासन प्रणाली की स्थापना की।
5. संरक्षित विषयों का प्रशासन .... द्वारा किया जाना था।

[उत्तर—1. छाया, 2. मुसलमानों, 3. मुस्लिम लीग, 4. प्रान्तों, 5. गवर्नर की कार्यकारी परिषद।]

12

1935 ई. का अधिनियम

[THE ACT OF 1935]

1935 ई. का अधिनियम
(ACT OF 1935)

पारित होने के लिए उत्तरदायी परिस्थितियां (Conditions for the Passing of the Act)—ब्रिटिश सरकार ने 1919 ई. में माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड अधिनियम पारित किया था। ब्रिटिश सरकार का विचार था कि इस अधिनियम के द्वारा भारतीयों को इतनी सुविधाएं प्रदान कर दी गयी हैं कि भारतीय निकट भविष्य में किसी सुधार की मांग नहीं करेंगे। अंग्रेजी सरकार का ऐसा सोचना भ्रामक था, क्योंकि 1919 ई. के अधिनियम से भारतीय सन्तुष्ट नहीं थे तथा कांग्रेस ने इसके द्वारा किये गये सुधारों को **'अपर्याप्त, असन्तोषजनक व निराशापूर्ण'** (Inadequate, unsatisfactory and disappointing) कहा। 1919 ई. के अधिनियम के द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली की स्थापना की गयी थी। इस व्यवस्था का भी कालान्तर में विरोध किया गया तथा भारतीय स्थिति पर विचार करने के लिए ब्रिटिश सरकार को समय से पूर्व ही **साइमन आयोग** (Simon Commission) भारत भेजना पड़ा। साइमन आयोग भी असफल रहा तथा जनसाधारण में बढ़ते हुए आक्रोश को शान्त न कर सका। इस आयोग की रिपोर्ट का विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा विरोध किया गया, क्योंकि इसके द्वारा भारतीयों की मांगों की ओर ध्यान नहीं दिया गया था, जैसा कि सर एण्ड्रूज ने कहा, **''इसने असहयोग आन्दोलन से सम्पूर्ण देश में पैदा हुए परिवर्तन और जनता की अभिलाषाओं तथा आकांक्षाओं की पूर्ण उपेक्षा की।''**

भारतवासियों द्वारा साइमन कमीशन का विरोध करने पर भारत सचिव लार्ड ब्रेकनहेड ने भारतीयों को ऐसा संविधान बनाने की चुनौती दी जो सर्वमान्य हो। भारतीयों ने इस चुनौती को स्वीकार किया तथा इस कार्य के लिए 8 सदस्यों की एक समिति का गठन किया। इस समिति के अध्यक्ष पं. मोतीलाल नेहरू थे। इस समिति ने जो रिपोर्ट प्रस्तुत की उसे **'नेहरू रिपोर्ट'** (Nehru Report) कहा गया। इस रिपोर्ट का अधिकांश भारतीय नेताओं द्वारा स्वागत किया गया, किन्तु जिन्ना इससे सहमत न हुए, फलतः इस रिपोर्ट की संस्तुतियों को कार्यान्वित न किया जा सका। भारतीय संवैधानिक समस्या को सुलझाने के लिए तीन गोलमेज सम्मेलन (Round Table Conference) लन्दन में हुए, किन्तु भारतीय समस्या का निदान न हो सका। 1932 ई. में इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री मैकूडानल्ड ने **'साम्प्रदायिक समझौता'** (Communal Award) की घोषणा की। इस समझौते के द्वारा केवल हिन्दुओं व मुसलमानें में ही मतभेद

उत्पन्न करने का प्रयास ही नहीं किया गया वरन् विभिन्न सम्प्रदायों की एकता को भी भंग करने का प्रयास किया गया। गांधीजी द्वारा इसका घोर विरोध किया गया तथा उन्होंने इसके विरुद्ध आमरण अनशन किया। अन्ततः **पूना समझौते** (Poona Pact) के द्वारा साम्प्रदायिक समझौते को वापस ले लिया गया।

लन्दन में हुए गोलमेज सम्मेलनों में भारत के भावी संविधान की रूपरेखा पर हुए विचार-विमर्श को इंग्लैण्ड की सरकार ने **'श्वेत-पत्र'** के रूप में प्रकाशित किया। इस श्वेत-पत्र को संसद के दोनों सदनों की एक सम्मिलित संयुक्त समिति के समक्ष रखा गया। उस पर विचार-विमर्श करने के उपरान्त इस समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट के आधार पर ही 1935 ई. का भारतीय अधिनियम पारित कराया गया।

1935 ई. के अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं
(SALIENT FEATURES OF THE ACT OF 1935)

1935 ई. का भारतीय अधिनियम सबसे विशाल, विस्तृत एवं जटिल दस्तावेज था। कुछ दृष्टिकोणों से यह अधिनियम अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इस अधिनियम से स्वतन्त्र भारत के संविधान में अनेक बातें ली गयी हैं। उल्लेखनीय है कि इस अधिनियम को पूर्णरूप से कभी लागू ही नहीं किया जा सका।

1935 ई. के अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित थीं :

(1) अखिल भारतीय संघ का प्रस्ताव (Proposal of Indian Union)—1935 ई. के अधिनियम की सर्वप्रमुख विशेषता पहली बार भारत में संघात्मक शासन प्रणाली को लागू किया जाना था। सभी भारतीय प्रान्तों व राज्यों का एक संघ बनाने का प्रस्ताव था। संघ के दोनों सदनों[1] में राज्यों को उचित प्रतिनिधित्व दिया गया था। संघीय असेम्बली में 375 में से 125 व कौंसिल ऑफ स्टेट में 260 में से 104 सदस्य नियुक्त करने का उन्हें अधिकार था। संघीय शासन की मूलभूत आवश्यकताओं व संघीय न्यायालय की भी स्थापना की गयी थी, किन्तु संघ के निर्माण की प्रक्रिया को अत्यन्त जटिल बना दिया गया था। संघ के सदस्यों में एक ओर तो अंग्रेजों के अधीन प्रान्त सम्मिलित थे तथा दूसरी ओर देशी रियासतें थीं जिनका शासन वहां के राजा की स्वेच्छाचारिता पर आधारित था। अतः दोनों के स्वरूप में एकरूपता नहीं थी। भारतीय संघ को बनाने के लिए दो प्रमुख शर्तें रखी गयी थीं जिनका उद्देश्य स्वतन्त्र भारतीय रियासतों को अधिक से अधिक संघ में शामिल करना था। **ये शर्तें निम्नवत् थीं :**

(i) कम से कम इतने राज्य भारतीय संघ में सम्मिलित हों जिन्हें कौंसिल ऑफ स्टेट में कम से कम 52 प्रतिनिधि भेजने का अधिकार हो।

(ii) इन रियासतों की जनसंख्या समस्त रियासतों की जनसंख्या की आधी से कम न हो।

इन शर्तों के कारण 1935 ई. के अधिनियम में वर्णित संघ की स्थापना कभी न हो सकी, क्योंकि संघ बनाने के लिए आवश्यक संख्या में रियासतों ने इसके लिए स्वीकृति न दी। अधिकांश रियासतों के शासक ऐसी केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत संगठित होने के लिए तैयार न थे।

(2) केन्द्र में द्वैध शासन प्रणाली की स्थापना (Diarchy at the Centre)—1919 ई. के अधिनियम के द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन पद्धति की स्थापना लागू की गयी थी जो कि

1 दो सदन संघीय असेम्बली व कौंसिल ऑफ स्टेट थे।

पूर्णतया असफल रही। इसके पश्चात् भी 1935 ई. के अधिनियम के द्वारा केन्द्र में द्वैध शासन प्रणाली की स्थापना की गयी जिससे अंग्रेजी सरकार की नीति स्पष्ट होती थी कि वे भारतीयों को किसी भी प्रकार की शक्ति देना नहीं चाहते थे।

1935 ई. के अधिनियम के द्वारा केन्द्र के विषय को दो भागों में वांट दिया गया—**संरक्षित (Reserved)** तथा **हस्तान्तरित (Transferred)** विषय। संरक्षित विषयों के अन्तर्गत प्रतिरक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध, धार्मिक विषय तथा आदिवासी क्षेत्र थे। इन विषयों का प्रशासन गवर्नर-जनरल कार्यपालिका (Executive) के सदस्यों की सहायता से करता था। कार्यपालिका के सदस्यों की संख्या 3 थी तथा इनको गवर्नर-जनरल के द्वारा ही मनोनीत किया जाता था। अतः गवर्नर-जनरल जिस प्रकार से चाहता शासन कर सकता था।

हस्तान्तरित विषयों के अन्तर्गत शेष सभी विषय थे। मन्त्रिपरिषद् के परामर्श से गवर्नर-जनरल इन विषयों की प्रशासनिक व्यवस्था करता था। मन्त्रिपरिषद के मन्त्री व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी होते थे। गवर्नर-जनरल मन्त्रिपरिषद के निर्णय व सुझावों को मानने के लिए बाध्य न था। गवर्नर-जनरल को अपार शक्तियां प्रदान की गयी थीं, अतः वास्तविक शासन गवर्नर-जनरल के हाथों में ही केन्द्रित था। इसी कारण इस अधिनियम की आलोचना करते हुए जिन्ना ने कहा, **"इस अधिनियम में 98 प्रतिशत गवर्नर जनरल के विशेषाधिकार तथा व्यक्तिगत निर्णय हैं तथा 2 प्रतिशत अधिकार मन्त्रियों के हैं।"** चर्चिल ने इस विषय में कहा था, **"गवर्नर जनरल को हिटलर व मुसोलिनी के समान अधिकार दे दिये गये हैं। अपनी स्वेच्छा से वह किसी भी कानून को पारित कर सकता है अथवा संविधान को बदल सकता है।"**[1]

(3) शासन के विषयों की सूचना—1935 ई. के अधिनियम के द्वारा शासन की तीन सूचियों की प्रथा अपनायी गयी। **केन्द्रीय सूची** में सम्पूर्ण देश से सम्बन्ध रखने वाले विषय थे, जिनकी संख्या 59 थी। **राज्यों के अधिकार क्षेत्र** में 54 तथा **समवर्ती सूची** में 36 विषय थे। उक्त विषयों के विषय में मतभेद होने पर संघीय न्यायालय को न्याय करने का अधिकार नहीं दिया गया था। ऐसे मामलों का निर्णय भी गवर्नर-जनरल के द्वारा किया जाना था।

(4) प्रान्तीय स्वायत्तता (Provincial Autonomy)—1935 ई. के अधिनियम की एक अन्य प्रमुख विशेषता प्रान्तों को स्वायत्तता प्रदान किया जाना था। 1919 ई. के अधिनियम के द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली की स्थापना की गयी थी, जिसका घोर विरोध किया गया था। इस अधिनियम के द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली को समाप्त करके स्वायत्त शासन की स्थापना की गयी तथा प्रान्तों को नवीन संवैधानिक अधिकार प्रदान किये गये। प्रशासन का कार्य गवर्नर मन्त्रिपरिषद के परामर्श पर करता था। मन्त्रिपरिषद विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी थी। गवर्नरों से यह अपेक्षा की गयी थी कि वे मन्त्रिपरिषद के सुझावों के अनुसार ही कार्य करें, **किन्तु प्रान्तीय स्वायत्तता के बावजूद भी गवर्नरों को इतनी शक्तियां प्रदान कर दी गयीं कि स्वायत्तता नाममात्र की रह गयी। उदाहरणार्थ, इस नियम के अनुसार गवर्नरों को निम्नलिखित अधिकार भी दिये गये :**

(i) गवर्नर मन्त्रियों को पदच्युत कर सकता था।

(ii) गवर्नर व्यक्तिगत निर्णय लेने के लिए स्वतन्त्र था तथा मन्त्रियों के परामर्श व इच्छा को ठुकरा सकता था।

1 **"He (Governor-General) is armed with all powers of Hitler and Mussolini. By a stroke of his pen he can scatter the constitution and decree any law to be passed."** —*Churchill*

इसके अतिरिक्त विशेष परिस्थितियों में गवर्नर-जनरल भी प्रान्तों के मामले में हस्तक्षेप कर सकता था। गवर्नर-जनरल को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त थे :

(i) गवर्नर-जनरल उत्तरदायी शासन का अन्त कर सकता था।
(ii) गवर्नर-जनरल प्रान्तों के गवर्नरों को आवश्यक निर्देश प्रदान कर सकता था व प्रदेशों पर शासन करने का सम्पूर्ण भार गवर्नर पर हो जाता था।

इस प्रकार इस अधिनियम के द्वारा प्रदत्त प्रान्तीय स्वायत्तता दिखावा मात्र ही थी।

(5) रक्षा कवचों की व्यवस्था (Arrangement of Safeguards)—1935 ई. के अधिनियम को पारित करने से पूर्व अंग्रेजी सरकार ने अपनी सुरक्षा हेतु अनेक रक्षा कवचों की व्यवस्था की। इसी दृष्टि से इस अधिनियम के अन्तर्गत इस प्रकार की व्यवस्था की घोषणा की थी जो कभी कार्यान्वित न हो सके। इतना ही नहीं, इस बात का भी विशेष ध्यान रखा गया था कि यदि यह व्यवस्था लागू भी हो जाए तो भी गवर्नर-जनरल व गवर्नर को इतने अधिकार दिये गये थे कि अंग्रेजी सरकार का किसी प्रकार अहित न हो सके। भारतीय मन्त्री व ब्रिटिश संसद को भी इतने अधिकार दिये गये थे कि भारतीय राष्ट्रीय भावनाओं को कुचला जा सके।

(6) संघीय न्यायालय की स्थापना (Establishment of Federal Court)—1935 ई. के अधिनियम के द्वारा एक संघीय न्यायालय की भी स्थापना का प्रावधान किया गया था। इस न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश व दो अन्य न्यायाधीश भी नियुक्त किये जाने थे। इस न्यायालय में 6 न्यायाधीश तक नियुक्त किये जा सकते थे। इस न्यायालय के लिए न्यायाधीशों की नियुक्ति इंग्लैण्ड के सम्राट के द्वारा की जाती थी। इस न्यायालय के निर्णय के विरोध में इंग्लैण्ड की प्रिवी कौंसिल में अपील की जा सकती थी।

(7) केन्द्रीय विधान मण्डल (Federal Legislatures)—1935 ई. के अधिनियम के अनुसार संघीय विधानमण्डल का स्वरूप दो सदन वाला था। उच्च सदन को राज्य परिषद् (Council of States) और निचले सदन को संघीय विधान सभा (Federal Assembly) कहते थे। राज्य परिषद के सदस्यों को चुनने का अधिकार सीमित लोगों को ही था। संघीय विधान सभा में 375 सदस्य होते थे जिनमें से 125 भारतीय नरेशों के प्रतिनिधि और मुसलमानों के 80 सदस्य होते थे। संघीय विधान सभा के अधिकार सीमित थे। गवर्नर जनरल की अनुमति के बिना कोई वित्तीय विधेयक प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। वह किसी भी विधेयक को अस्वीकार कर सकता था।

(8) भारतीय कौंसिल की समाप्ति (Abolition of Indian Council)—भारत में भारतीय कौंसिल के विरोध को देखते हुए भारतीय कौंसिल को समाप्त कर दिया गया। उसका स्थान भारत सचिव के सलाहकारों ने ले लिया। भारत सचिव की सलाहकार समिति में अधिकतम 6 सदस्य हो सकते थे। इनमें से आधे ऐसे होते थे जो कम से कम 10 वर्ष तक भारत सरकार की सेवा में रह चुके हों तथा उन्हें भारत से वापस लौटकर दो वर्ष से अधिक समय न हुआ हो। इस प्रकार भारत सचिव का नियन्त्रण उन क्षेत्रों तक ही सीमित रह गया जिनमें गवर्नर जनरल संघीय मन्त्रिमण्डल की सलाह नहीं मानता था अथवा अपने विशेष अधिकारों का प्रयास करता था।

मूल्यांकन
(EVALUATION)

अंग्रेज सरकार का विचार था कि इस अधिनियम के पारित होने के पश्चात् भारतीय समस्या का समाधान हो जायेगा क्योंकि उनके विचार से भारतीयों को अनेक सुविधाएं प्रदान

की गयी थीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह अधिनियम 1919 ई. के अधिनियम की तुलना में वेहतर था। **इस अधिनियम के कुछ प्रमुख गुण निम्नवत् थें :**

(i) प्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति (Direct Electoral System)—चुनावों में प्रत्यक्ष पद्धति लागू करने के लिए भारतीय लम्बे समय से संघर्ष कर रहे थे। इस अधिनियम के द्वारा प्रान्तों में प्रत्यक्ष चुनाव पद्धति लागू की गयी।

(ii) प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली समाप्त (Abolition of Diarchy in Provinces)—1919 ई. के अधिनियम के द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली की स्थापना की गयी थी। भारतीयों ने इसके दुष्परिणामों के कारण इसका घोर विरोध किया था। द्वैध शासन प्रणाली अत्यन्त दोषपूर्ण थी तथा प्रशासनिक क्षमता पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता था। 1935 ई. के अधिनियम के द्वारा प्रान्तों में विद्यमान इस प्रणाली को समाप्त कर दिया गया।

(iii) विधान सभाओं के सदस्यों में वृद्धि (Increase in the Members of Legislative Assemblies)—1935 ई. के अधिनियम के द्वारा विधान सभाओं के सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गयी जिससे भारतीयों को वहुत लाभ हुआ। अव अधिक संख्या में भारतीय विधान सभाओं के सदस्य बन सकते थे। इस अधिनियम के परिणामस्वरूप ही पहली बार भारतीयों को संयुक्त उत्तरदायित्व के रूप में मन्त्रिमण्डल बनाने का अवसर प्राप्त हुआ।

(iv) मतदाताओं की संख्या में वृद्धि (Increased number of Voters)—1935 ई. के अधिनियम के द्वारा मतदाताओं के लिए आवश्यक अर्हताओं में कमी कर दीं गयी। अतः चुनाव के समय मतदाताओं (Voters) की संख्या में वृद्धि हुई।

1935 ई. के अधिनियम में उपरोक्त विशेषताएं थीं, किन्तु इसमें गुणों की अपेक्षा कहीं अधिक दोष थे। भारतीयों को प्रत्यक्ष रूप से जो कुछ भी प्रदान किया गया था वह गवर्नर-जनरल व गवर्नरों को अत्यधिक शक्तियां प्रदान करके अप्रत्यक्ष रूप से छीन लिया गया। भारतीयों की पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग को स्वीकार करना तो दूर औपनिवेशिक स्वराज्य (Colonial Self Government) भी प्रदान नहीं किया गया था। संघीय विधान सभा में प्रत्यक्ष चुनाव पद्धति भी लागू नहीं की गयी। इसी कारण इंग्लैण्ड में मजदूर दल के नेता एटली (Atlee) ने कहा था कि **इस अधिनियम से संघीय स्तर पर रूढ़िवादी और प्रतिक्रियावादी तत्वों को इतनी अधिक प्रधानता दी गयी है किसी भी प्रकार का प्रजातान्त्रिक विकास सम्भव नहीं है।** भारतीय सिविल सेवा (I. C. S.) पर भी भारतीय सचिव का ही नियन्त्रण विद्यमान रहा।

इस अधिनियम के प्रमुख दोष निम्नलिखित थे :

(i) भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान नहीं (Colonial Self Government Denied)—इस अधिनियम के द्वारा भारत की स्थिति पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया क्योंकि इस अधिनियम की कोई प्रस्तावना (Preamble) नहीं थी। यदि प्रस्तावना होती तो सम्भवतः भारत की औपनिवेशिक स्थिति पर प्रकाश डाला जाता जिसके लिए भारतीय काफी समय से संघर्ष कर रहे थे। अतः स्वराज्य मिलना तो दूर औपनिवेशिक स्वराज्य भी भारतीयों को प्रदान नहीं किया गया तथा इंग्लैण्ड की संसद की सम्प्रभुता को वनाये रखा गया।

(ii) केन्द्र में द्वैध शासन प्रणाली (Diarchy at Centre)—1919 ई. के अधिनियम के द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली की स्थापना की गयी थी जो कि पूर्णतया असफल रही थी तथा भारतीयों द्वारा उसका विरोध किया गया था। इसके पश्चात् भी 1935 ई. के अधिनियम के

द्वारा इस व्यवस्था को केन्द्र में लागू किया गया। अतः इससे स्पष्ट हो गया था कि अंग्रेज भारतीयों को किसी प्रकार की सुविधा देने के पक्ष में न थे।

(iii) साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व (Communal Representative System)—1919 ई. के अधिनियम के द्वारा साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति को लागू किया गया था। भारतीय साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति (Communal Electoral System) का विरोध कर रहे थे तथा इसे समाप्त किये जाने की मांग कर रहे थे क्योंकि इससे राष्ट्रवादी भावनाएं आहत होती थीं। अंग्रेज अधिकारी विभाजन करो व शासन करो (Divide and Rule) नीति का पालन कर रहे थे, अतः उन्होंने इसे समाप्त न किया। इसी कारण फजलुल हक ने इस अधिनियम की आलोचना करते हुए कहा, **"यह (1935 ई. का अधिनियम) न हिन्दू राज्य था न मुसलमानी राज्य, यह केवल अंग्रेजी राज्य था।"**[1]

(iv) देशी रियासतों को महत्व (Importance give to the States)—इस अधिनियम के द्वारा देशी राज्यों को विशेष महत्व दिया गया था। उनको व्यवस्थापिका सभा में अधिक स्थान देकर उनके महत्व को बढ़ाया गया था। रियासतों के प्रतिनिधि भी राजाओं के द्वारा मनोनीत किये जाते थे। रियासतों की जनता को अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार न था।

(v) अंग्रेजी सरकार का नियन्त्रण (Control of the British Govt.)—इस अधिनियम के द्वारा गवर्नर-जनरल व गवर्नरों के अधिकारों में वृद्धि की गयी थी। इस प्रकार भारतीय प्रशासन पर इंग्लैण्ड का पूर्ण नियन्त्रण था। संरकार के समस्त उच्च पदों पर भी अंग्रेजी अधिकारी ही नियुक्त थे। ये अधिकारी भारतीय सचिव के प्रति उत्तरदायी थे, अतः मनमाने तरीके से कार्य करते थे। इसी कारण पं. जवाहरलाल नेहरू ने इस अधिनियम के विषय में कहा था, **"यह अधिनियम एक ऐसी मोटर के समान है जिसमें अवरोध तो सब उपस्थित हैं, किन्तु इंजन है ही नहीं।"**[2]

(vi) जनतान्त्रिक शासन पद्धति की उपेक्षा (Democratic set up Ignored)—1935 ई. के अधिनियम के द्वारा जनतान्त्रिक शक्तियों की पूर्णरूपेण उपेक्षा की गयी। विश्व के प्रत्येक संघ में निचले सदन में सदस्य जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधित्व होते हैं, किन्तु इस अधिनियम द्वारा निचले सदन में अप्रत्यक्ष चुनाव पद्धति अपनायी गयी थी। मताधिकार भी सीमित था तथा मत देने के लिए योग्यता का आधार सम्पत्ति को रखा गया था। इसके अतिरिक्त उच्च सदन को निचले सदन की अपेक्षा कहीं अधिक अधिकार दिये गये थे, जो सर्वथा जनतान्त्रिक सिद्धान्तों के विरोधी थे। विश्व के प्रत्येक संघ में निचले सदन को ही अधिकार दिये जाते हैं, किन्तु इस अधिनियम ने ऐसा नहीं किया था। इसी कारण पं. मदन मोहन मालवीय ने इस अधिनियम की आलोचना करते हुए कहा, **"नया अधिनियम हम पर थोपा गया है। बाहर से यह जनतन्त्रीय शासन-व्यवस्था से मिलता-जुलता है, किन्तु भीतर से पूर्णतया खोखला है।"**[3]

(vii) संघीय न्यायालय के अल्प अधिकार (Limited Rights of Federal Courts)—इस अधिनियम के द्वारा एक संघीय न्यायालय की स्थापना की गयी थी, किन्तु इसके अधिकार सीमित थे। प्रत्येक संघीय शासन व्यवस्था में संघीय न्यायालय न्याय करने वाली सर्वोच्च संस्था होती है। इस अधिनियम द्वारा स्थापित व्यवस्था में न्याय की सर्वोच्च संस्था

1 **"It was neither a Hindu Raj nor Muslims Raj but the British Raj."** —***Fazal-ul-Huqe***

2 **"It is a motor with all breaks but no engine."**

3 **"The new Act has been thrust upon us. It has a somewhat democratic appearance outwardly, but it is absolutely hollow from in side."** —***Pt. M. M. Malviya***

संघीय न्यायालय न होकर इंग्लैण्ड की संसद थी। संघीय न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध इंग्लैण्ड की प्रिवी कौंसिल में अपील की जा सकती थी।

(viii) प्रान्तीय प्रशासन में दोष (Defects in the Provincial Administration)— 1935 ई. के अधिनियम के द्वारा प्रान्तों में स्वायत्त शासन की व्यवस्था की गयी थी, किन्तु गवर्नरों को अत्यधिक अधिकार दिये जाने के कारण उसका महत्व ही समाप्त हो गया था। प्रान्तीय स्वायत्तता के पश्चात् भी गवर्नर की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं किया जा सकता था। इसी कारण राजगोपालाचारी ने इसकी आलोचना करते हुए लिखा, **"नया संविधान द्वैध शासन प्रणाली की अपेक्षा अधिक खराब है।"**[1]

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि 1935 ई. के अधिनियम में गुण कम दोष अधिक थे। इसी कारण जिन्ना ने इस अधिनियम की कटु आलोचना की तथा कहा, **"1935 ई. का अधिनियम पूर्णतया सड़ा हुआ, मौलिक रूप से खराब तथा पूर्णतया अस्वीकरणीय है।"**[2] पं. जवाहरलाल नेहरू ने भी इस अधिनियम का विश्लेषण करते हुए लिखा है, **"इस अधिनियम के द्वारा संघात्मक ढांचा इस प्रकार बनाया गया है कि वास्तविक उन्नति करना असम्भव है। यह ढांचा प्रतिक्रियावादी (Reactionary) है और इसमें आत्मविश्वास के अंकुर भी नहीं हैं, क्रान्तिकारी परिवर्तन का तो प्रश्न ही क्या है। यह अधिनियम अंग्रेजी सरकार तथा राजाओं, जमींदारों तथा अन्य प्रतिक्रियावादी संस्थाओं के मध्य सम्बन्धों को दृढ़ करता है........। भारतीय धन, सैनिक तथा विदेशी मामले पूर्णरूप से अंग्रेजों के अधीन हैं। इस अधिनियम से अंग्रेजों की विजय और भी अधिक शक्तिशाली हो गयी।"**

कूपलैण्ड ने इस अधिनियम को 1919 ई. के अधिनियम से प्रगति की ओर एक कदम आगे बताया है, किन्तु इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता। इंग्लैण्ड के मजदूर दल (Labour Party) के नेता ऐटली तक ने इस अधिनियम की आलोचना की तथा कहा कि इसके द्वारा जिन रक्षा कवचों की हत्या की गयी है वह कानून को लोचपूर्णता प्रदान नहीं करती और न ही यह कानून भारत के किसी वर्ग को सन्तोष प्रदान कर सका। इस अधिनियम का विरोध करते हुए उसने कहा कि भारतीयों को भावी सरकार का दायित्व प्रदान करना चाहिए। इस विधेयक में न तो ऐसा किया गया है और न ऐसा करने का उद्देश्य प्रस्तुत किया गया है। ऐटली के शब्दों में, **"इस अधिनियम का आधारभूत सिद्धान्त अविश्वास है।"**[3] प्रो. लॉस्की ने भी इस अधिनियम की आलोचना करते हुए लिखा, **"यह संविधान आधुनिक युग के निकृष्टतम संविधानों की निकृष्टतम विशेषताओं से युक्त है।"** उपरोक्त दोषों के कारण ही इस अधिनियम का भारतीयों द्वारा विरोध किया गया तथा इसे पूर्णतया लागू न किया जा सका।

प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल
(CONGRESS MINISTRIES IN THE PROVINCES)

भारतीय सरकार ने घोषणा की थी कि 1935 ई. का अधिनियम 1 अप्रैल, 1937 ई. से कार्यान्वित किया जाएगा। केन्द्र में इस अधिनियम को लागू किए जाने के लिए आवश्यक था कि पर्याप्त संख्या में देशी रियासतें संघ में सम्मिलित हों। यह शर्त कभी पूरी न हो सकी, अतः भारतीय संघ बनाना सम्भव न हुआ, किन्तु 1 अप्रैल, 1937 ई. से प्रान्तों के लिए इसकी धाराएं लागू हो गयीं।

1 "The new constitution is worse than Dyarchy." —*Raj Gopalachari*
2 "Thoroughly rotten, fundamentally bad and totally unacceptable." —*Jinnah*
3 "The Keynote of the Bill is mistrust" —*Atlee*

1935 ई. के अधिनियम से यद्यपि लगभग सभी भारतीय दल असहमत थे, किन्तु उन्होंने इस अधिनियम का बहिष्कार अथवा सरकार के साथ असहयोग करना उचित नहीं समझा। कांग्रेस ने भी यह निर्णय लिया कि इसके अन्तर्गत निर्वाचनों में भाग लेकर प्रान्तीय स्वायत्त शासन की योजना को विफल प्रमाणित किया जाए। अत: 1937 ई. में हुए चुनावों में कांग्रेस व अन्य दलों ने उसमें भाग लिया। इन चुनावों के परिणाम आश्चर्यजनक थे व कांग्रेस को उसकी अपेक्षा से भी अधिक सफलता प्राप्त हुई। प्रान्तीय निर्वाचनों में 54% मतदाताओं ने मतदान में भाग लिया। कांग्रेस को 808 में से 711 सामान्य स्थानों पर सफलता प्राप्त हुई। इन चुनावों में कांग्रेस को जो सफलता प्राप्त हुई वह निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है।[1]

प्रान्त	कुल स्थान	कांग्रेस को प्राप्त स्थान	प्रतिशत
मद्रास	215	159	74
बिहार	152	95	65
मध्य प्रान्त	112	70	62.5
संयुक्त प्रान्त	228	133	59
उड़ीसा	60	36	60

बंगाल, असम व उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त में कांग्रेस को बहुमत प्राप्त न हो सका, किन्तु यह वहां का सबसे बड़ा बहुसंख्यक दल बन गया। सिन्ध में कांग्रेस की स्थिति अल्पसंख्यक दल की थी।

पद ग्रहण करना—कांग्रेस को चुनावों में अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई। इस सफ़लता ने प्रमाणित कर दिया कि इंग्लैण्ड की अनुदारदलीय सरकार की विचारधारा गलत थी। अंग्रेजी सरकार यह मानती थी कि भारतीय जनता अंग्रेजी शासन पर विश्वास करती है तथा उसी को बनाए रखना चाहती है। **कांग्रेस की अभूतपूर्व विजय ने यह स्पष्ट कर दिया कि सरकार ने यह विचार झूठे व भ्रामक हैं।** कांग्रेस के विदेशी शासन से मुक्ति दिलाने व जनहितैषी सरकार की स्थापना करने के वायदों को जनता ने न्यायसंगत प्रमाणित कर दिया।

कांग्रेस की सफलता के पश्चात् सरकार ने सफल उम्मीदवारों से प्रान्तों में पद ग्रहण करने के लिए कहा, किन्तु कांग्रेस ने मन्त्रिमण्डल बनाना स्वीकार नहीं किया। पं. नेहरू ने इस प्रश्न पर प्रकाश डालते हुए कहा, "**अधिनियम की शर्तों के अनुसार पद और मन्त्रालय स्वीकार करने का अर्थ यह होगा कि हमारा इस अधिनियम का विरोध करना झूठ है और हम खुद ही अपनी बुराई कर रहे हैं। राष्ट्रीय सम्मान या आत्मसम्मान इस स्थिति को स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि इसका अनिवार्य अभिप्राय यह होगा कि हम साम्राज्यवाद के दमन यन्त्र के साथ कुछ सहयोग कर रहे हैं और अपने लोगों के शोषण और दमन में हम साझेदार बन जाएंगे।**" कांग्रेस का विचार था कि इस अधिनियम के अनुसार भारतीयों पर उत्तरदायित्व तो आएगा, परन्तु उनके पास शक्ति नहीं होगी। कांग्रेस का विचार था कि गवर्नर को इतनी शक्तियां दी गयी हैं कि वह उत्तरदायी व स्वायत्त शासन को चलने नहीं देगा। महात्मा गांधी ने कहा कि गवर्नर यह आश्वासन दें कि वे अपनी शक्तियों का प्रयोग वैधानिक साधनों के लिए ही करेंगे, किन्तु गवर्नर इसके लिंए तैयार न थे। ऐसी स्थिति में कांग्रेस के नेताओं की दृष्टि से मन्त्रिमण्डल उचित न था। पं. नेहरू ने कहा, "**मुझे पूर्ण विश्वांस है कि कांग्रेस के लिए पद ग्रहण करना या**

1 ताराचन्द: 'भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास', खण्ड IV, पृ. 2[illegible]

इसके लिए आगा-पीछा करना बड़ी भूल होगी। हम ऐसी खाई में गिर जाएंगे जिसमें से निकलना कठिन होगा।" गांधीजी ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किए।

तीन माह तक इसी प्रकार गतिरोध बना रहा। इस समस्या पर विचार-विमर्श हुआ। अन्ततः 21 जून, 1937 ई. को कांग्रेस की मांग को स्वीकार कर लिया गया। वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो ने कहा कि कांग्रेस की आशंका उचित है, अतः उन्होंने कांग्रेस को आश्वासन दिया। वायसराय ने कहा, **"प्रान्त का कार्यकारी प्राधिकरण गवर्नर के नाम पर चलता है, परन्तु मन्त्रिमण्डल के क्षेत्र में गवर्नर प्रतिबन्धित है कि कार्यकारी प्राधिकरण का उपयोग मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार करे (कुछ अतिसीमित और निर्दिष्ट क्षेत्रों को छोड़कर) इस संशय का कोई आधार नहीं है कि गवर्नर स्वतन्त्र है और उसको प्रान्त के दैनिक प्रशासन में हस्तक्षेप करने की शक्ति प्राप्त है। गवर्नर को कुछ उत्तरदायित्व सौंपे गए हैं इन्हीं की सीमा में वह अपनी शक्ति का उपयोग कर सकता है।"**[1]

वायसराय के उक्त आश्वासन से कांग्रेस पर अनुकूल प्रभाव पड़ा व 7 जुलाई, 1937 ई. को कांग्रेस के सदस्यों ने पद ग्रहण कर लिए। 6 प्रान्तों में कांग्रेस की सरकारें बन गयीं। कुछ समय पश्चात् असम तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त में भी कांग्रेस के मन्त्रिमण्डल बन गए।

कांग्रेस की इस विजय से सर्वाधिक आहत मुस्लिम लीग हुई। कांग्रेसी नेता मुस्लिम लीग के सदस्यों को मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित किए जाने के पक्ष में थे। उनका विचार था कि यदि विधान सभाओं में मुस्लिम लीग के पृथक् अस्तित्व को समाप्त कर दिया जाए तो ऐसा करना सम्भव था, किन्तु इसके लिए मुस्लिम लीग सहमत न हुई। अतः मुस्लिम लीग ने यह प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया कि कांग्रेसी शासन में मुसलमानों का विरोध किया जा रहा है। कांग्रेस ने इन आरोपों का खण्डन करने के साथ-साथ मुस्लिम लीग से अपील की कि वह संघीय न्यायालय द्वारा इन आरोपों की जांच करवा सकती है। गवर्नर ने भी इन आरोपों को बेबुनियाद कहा। इसके साथ-साथ कांग्रेसी नेताओं ने जन सम्पर्क कार्यक्रम द्वारा मुसलमानों में कांग्रेस की लोकप्रियता बढ़ाने का प्रयास किया।

मन्त्रिमण्डलों में कार्य—इस प्रकार प्रान्तों में स्वायत्त शासन व्यवस्था प्रारम्भ हुई व लगभग ढाई वर्षों तक यह व्यवस्था चलती रही। इस अल्पकाल में कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने लोककल्याणी व प्रशासनिक क्षेत्रों में अत्यधिक कार्य किया व अनेक उपलब्धियां प्राप्त कीं। सभी प्रान्तों में प्रारम्भिक शिक्षा, ग्राम्य विकास, पंचायती राज विकास, उद्योग, भूमि सुधार, कृषि, श्रम, दलित वर्ग उत्थान, नशाबन्दी जैसे कार्य किए गए। बम्बई तथा मद्रास की सरकारों से सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान छीनी गयी सम्पत्ति को भी लौटाया। अनेक प्रान्तों में किसानों को ऋण देने के नियम बनाए गए। अकाल के समय राहत देने के लिए भी कानून पारित किए गए। बिहार में पट्टेदारी का नियम बना जिसके अनुसार लगान की बकाया काफी कम कर दी गयी। लगान तय करने का पुराना तरीका हटा दिया गया। लगान वसूली के अधिकार सीमित कर दिए गए। अन्य प्रान्तों में भी ऐसे ही अनेक सुधार किए गए।

गांधीजी ने प्राथमिक शिक्षा के लिए एक नवीन प्रयोग किया। गांधीजी शिक्षा-व्यय की समस्या को हल करना चाहते थे तथा साथ ही शिक्षा को सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रदान करना चाहते थे। इस पद्धति को गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा कहा। यह अनेक प्रान्तों में लागू की गयी। प्रौढ़ शिक्षा की ओर भी उचित ध्यान दिया गया।

---

1 फिलिप्स, सी. एच. द इवोल्यूशन ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, पृ. 334-335.

स्वायत्त शासनकाल के दौरान जहां कहीं भी गवर्नरों ने अपनी विशेष शक्तियों का प्रयोग करना चाहा वहां-वहां उसका विरोध किया गया। सवसे शक्तिशाली विरोध तव हुआ जव संयुक्त प्रान्त व बिहार के मन्त्रिमण्डल ने राजनीतिक वन्दियों की रिहाई का प्रश्न उठाया। गवर्नर इसके लिए तैयार न थे। उनका विचार था कि इसने प्रान्त में शान्ति व व्यवस्था को खतरा उत्पन्न हो जाएगा। गवर्नर के इस हस्तक्षेप के कारण इन प्रान्तों में मन्त्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिया। इससे सरकार घवरा उठी क्योंकि अन्य प्रान्तों में भी कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों द्वारा त्यागपत्र देने की वात उठने लगी थी। अन्ततः अंग्रेजी सरकार को इस वात के लिए विवश होना पड़ा कि प्रत्येक राजनीतिक वन्दी की रिहाई उसके व्यक्तिगत मामले के आधार पर की जाएगी। इस प्रकार राजनीतिक वन्दियों को मुक्त कराने में मन्त्रिमण्डल सफल रहे।

मन्त्रिमण्डलों द्वारा त्यागपत्र—3 सितम्बर, 1939 ई. को द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। भारतीय यद्यपि ब्रिटेन व उसके मित्र राष्ट्रों से सहानुभूति रखते थे, किन्तु युद्ध में भाग लेने के लिए तैयार न थे, जवं तक कि उन्हें स्वतन्त्रता प्रदान न कर दी जाए। पं. नेहरू ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था, "**संसार में युद्ध की अफवाहें फैली हुई हैं और त्रास छा रहा है। भारत साम्राज्यवादी आक्रमण में किसी के हाथ की कठपुतली नहीं बनेगा।**" किन्तु, वायसराय ने भारत को विना मन्त्रिमण्डलों की अनुमति लिए युद्ध में सम्मिलित कर दिया। कांग्रेस ने इसका विरोध किया तथा कहा कि स्वयं परतन्त्र रहते हुए स्वतन्त्रता के सिद्धान्त के लिए युद्ध करना हास्यास्पद है। वायसराय लिनलिथगो ने इसके प्रत्युत्तर में कहा कि युद्ध समाप्त होने पर भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों व सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों से विचार-विमर्श के उपरान्त भारतीय संविधान में आवश्यक परिवर्तन किए जाएंगे। वायसराय की इस घोषणा से स्पष्ट हो गया कि अंग्रेज सरकार भारत को स्वतन्त्रता-प्रदान करने की इच्छुक न थी। अतः विरोध प्रदर्शन हेतु कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिए।

मूल्यांकन
(EVALUATION)

कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने विभिन्न राज्यों में लगभग ढाई वर्ष तक शासन किया। इस अल्पकालीन समय में ही कांग्रेसी नेताओं ने अपनी योग्यता का असाधारण प्रदर्शन किया तथा यह प्रमाणित कर दिखाया कि वे शासन करने में सक्षम हैं। कूपलैण्ड जो कांग्रेस का घोर आलोचक था, तक ने कांग्रेसी सरकारों के कार्यों की प्रशंसा की है। कूपलैण्ड ने लिखा है, "**सरकारों में स्थिरता थी। मन्त्री योग्य, परिश्रमी व जनता के प्रति कर्तव्य-परायण थे। ये प्रशासन तन्त्र को भली-भांति समझते थे और वित्त के मामले में माने हुए सिद्धान्तों का उपयोग करते थे।**"[1] यह कहा जाता है कि सामाजिक पिछड़ेपन को मिटाने के लिए वास्तव में आमूल सुधार की आवश्यकता है और यह काम भारतीय स्वशासन के द्वारा ही हो सकता है। इन मन्त्रिमण्डलों के कार्यों ने इस बात की पुष्टि कर दी। वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने भी उनके कार्यों की प्रशंसा की। उसके शब्दों में, "**गत ढाई वर्ष में बहुत अच्छे जनहित कार्य हुए।**"[2] संयुक्त प्रान्त के गवर्नर हैरी हेग तथा मद्रास के गवर्नर एस्कीन ने भी मन्त्रियों के काम की प्रशंसा की। सेमुअल होर ने संसद में उनके कार्यों की प्रशंसा करते हुए कहा, "**भारत में प्रान्तीय स्वायत्त शासन को वड़ी संवैधानिक सफलता प्राप्त हुई है।**"[3]

1 कूपलैण्ड, द इण्डियन प्राब्लम, खण्ड II, पृ. 156.
2 वही, पृ. 157.
3 हडसन, द ग्रेट डिवाइड, पृ. 70.

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इन ढाई वर्षों के काल में पहली वार भारतीय जनसाधारण की वास्तविक समस्याओं की ओर ध्यान दिया गया व कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों द्वारा समस्याओं का निराकरण करने का प्रयत्न किया गया। यह नि:सन्देह एक वड़ी उपलब्धि थी।

प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. 1935 ई. के भारतीय अधिनियम की मुख्य धाराओं व महत्व का वर्णन कीजिए।
2. 1935 ई. के अधिनियम के गुण एवं दोषों पर प्रकाश डालिए।
3. 1935 ई. के अधिनियम का मूल्यांकन कीजिए।
4. 1935 ई. के अधिनियम द्वारा कौन-कौन से प्रमुख परिवर्तन हुए? वर्णन कीजिए।
5. 1935 ई. के अधिनियम की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
6. 1935 ई. के अधिनियम द्वारा प्रान्तीय स्वायत्तता प्रदान करने से भारतीयों को क्या लाभ हुआ? वर्णन कीजिए।
7. 1937 ई. में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों के कार्यरत होने व उनके द्वारा किए गए प्रमुख कार्यों पर प्रकाश डालिए।
8. कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों द्वारा किए गए कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 1935 ई. के अधिनियम पारित होने की परिस्थितियां वताइए।
2. 1935 ई. के अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं वताइए।
3. केन्द्र में द्वैध शासन की स्थापना पर प्रकाश डालिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. केन्द्र में द्वैध शासन की स्थापना किस अधिनियम द्वारा की गई :
   (अ) 1892 (व) 1909 (स) 1919 (द) 1935
2. प्रान्तों को स्वायत्तता किस अधिनियम ने प्रदान की :
   (अ) 1892 (व) 1909 (स) 1919 (द) 1935
3. प्रान्तों में चुनाव किस वर्ष हुए :
   (अ) 1935 (व) 1937 (स) 1939 (द) 1941

[उत्तर—1. (द), 2. (द), 3. (व)।]

निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य दर्शाइए :

1. 1935 ई. के अधिनियम द्वारा अखिल भारतीय संघ का प्रस्ताव किया गया था।
2. 1935 ई. के अधिनियम द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन की स्थापना की गई।
3. 1935 ई. के अधिनियम द्वारा प्रान्तों को स्वायत्तता प्रदान की गई।

[उत्तर—1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य।]

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :

1. '1935 ई. का अधिनियम एक ऐसी मोटर है जिसमें ब्रेक हैं इंजन नहीं' कथन .... का है।
2. 1935 ई. के अधिनियम पारित करने से पूर्व अंग्रेजी सरकार ने अनेक .... की व्यवस्था की।
3. 1935 ई. के अधिनियम के द्वारा एक .... की स्थापना की गई।

[उत्तर—1. जवाहरलाल नेहरू, 2. रक्षा कवच, 3. संघ।]

13

साम्प्रदायिकता का विकास
[GROWTH OF COMMUNALISM]

उदय के कारण
(CAUSES OF RISE)

अंग्रेज भारत में मुसलमानों के उत्तराधिकारी वने थे, अतः प्रारम्भ में वे मुसलमानों को सदैव सन्देह की दृष्टि से देखते थे तथा उनको शिक्षा, प्रशासन, व्यवसाय, आदि सभी क्षेत्रों में उपेक्षित करते थे। अंग्रेजों को यह भय रहता था कि भारतीय मुसलमान कहीं अपने खोए हुए साम्राज्य को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न न करें। 18वीं शताब्दी के अन्त में, अरव में हुए बहावी आन्दोलन का प्रभाव भारतीय मुसलमानों पर भी पड़ा था। यद्यपि बहावी आन्दोलन की प्रकृति धार्मिक थी, किन्तु भारतीय मुसलमानों को, इस आन्दोलन ने, उनके दलित वर्ग होने का आभास कराया था। परिणामस्वरूप, बंगाल के अनेक सर्वहारा आन्दोलनों में मुसलमानों ने भाग लिया। यद्यपि इन आन्दोलनों को सरकार ने शक्ति के द्वारा कुचल दिया, किन्तु मुसलमानों पर अंग्रेजों का विश्वास और कम हो गया। 1857 ई. में हुए प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के समय अंग्रेजों का यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया कि भारतीय मुसलमान अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए उत्सुक हैं।

अंग्रेजों की मुसलमानों को उपेक्षित करने की नीति से मुसलमानों में साम्प्रदायिकता की भावना का जन्म होने लगा। अल्पसंख्यक होने के कारण उनमें असुरक्षा की भावना जन्म लेने लगी। उनको लगने लगा कि यदि अंग्रेजों की यह नीति रही तो हिन्दू उन्नति करते जाएंगे तथा मुसलमानों की दशा दिन-प्रतिदिन खराब होती जाएगी। 1871 ई. में, एक अंग्रेज लेखक विलियम हण्टर ने **'दि इण्डियन मुसलमान्स'** (The Indian Musalmans) नामक पुस्तक लिखी, जिसमें उसने लिखा कि यदि भारत के मुसलमानों के प्रति अंग्रेजों की यही नीति रही तो भारत में हिन्दू व मुसलमान एक हो जाएंगे तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए खतरा उत्पन्न हो जाएगा। अतः अंग्रेजों द्वारा मुसलमानों को अपने पक्ष में करना आवश्यक है। इस विचार का गम्भीर प्रभाव हुआ तथा मुसलमानों के प्रति अंग्रेजों का रुख वदलने लगा। शीघ्र ही उन्होंने मुसलमानों का पक्ष लेना तथा साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देना शुरू कर दिया। इस प्रकार अंग्रेजों ने **'फूट डालो, राज करो'** की नीति का पालन करते हुए हिन्दू व मुसलमानों की दूरी वढ़ानी प्रारम्भ कर दी। प्रो. विपिन चन्द्रा ने लिखा है कि साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहित करने के लिए अंग्रेजों ने विभिन्न कार्य किए। प्रो. विपिन चन्द्रा के शब्दों में, **"सबसे पहले हिन्दुओं, मुसलमानों व सिखों को निरन्तर ऐसे अलग सम्प्रदाय मानकर, जिनमें कोई समानता नहीं थी, यह कहा गया कि भारत न तो एक राष्ट्र था और न ही इसमें राष्ट्रीयता का आंचलिक**

अथवा स्थानीय साहचर्य विद्यमान था। दूसरे, साम्प्रदायिकों को शासकीय प्रश्रय प्रदान किया गया। तीसरे, साम्प्रदायिक अखबारों तथा व्यक्तियों के प्रति राष्ट्रीय अखबारों तथा व्यक्तियों की तुलना में असाधारण सहनशीलता का रवैया अपनाया गया। चौथे, साम्प्रदायिक मांगों को तुरन्त स्वीकार किया गया।''

भारत में साम्प्रदायिकता का प्रारम्भ 19वीं शताब्दी के अन्त में हुआ। सर सैयद अहमद खां यद्यपि एक महान शिक्षाशास्त्री तथा समाज सुधारक थे, किन्तु राजनीतिक क्षेत्र में वे घोर रूढ़िवादी तथा निष्ठावादी थे। प्रारम्भ में सर सैयद अहमद खां राष्ट्रवादी थे तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता में विश्वास रखते थे। वह समाज सुधारक होने के नाते भारतीयों के पिछड़ेपन को दूर करना चाहते थे। उनका विचार था कि भारतीय मुसलमानों के पिछड़ेपन का कारण रूढ़िवादिता एवं विचारों की संकीर्णता है तथा इन कमियों को शिक्षा के द्वारा दूर किया जा सकता है, अतः उन्होंने अलीगढ़ में **मोहम्मडन ऐंग्लो ओरिएण्टल कॉलेज**' की स्थापना की, जो बाद में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के रूप में स्थापित हुआ। इस कॉलेज की स्थापना किए जाने के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए स्वयं सर सैयद अहमद खां ने कहा था, **''मोहम्मडन ऐंग्लो ओरिएण्टल कॉलेज की नींव रखने का मुख्य उद्देश्य यह है कि पूर्वी ज्ञान का पश्चिमी साहित्य तथा विज्ञान से मेल किया जाए, मुसलमानों को ब्रिटिश ताज की उपयोगी प्रजा बनाया जाए और उनमें राजभक्ति पैदा की जाए जो दरिद्रता व दासता के कारण नहीं, वरन् अंग्रेजों के अच्छे शासन से प्राप्त होने वाले सुखों की वास्तविक स्तुति के कारण उत्पन्न हो।''**[1] 1885 ई. में कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् सर सैयद अहमद खां के विचारों में भारी परिवर्तन होने लगा, तथा शनैः-शनैः वह हिन्दुओं के विरोधी होते चले गए। उनके विचारों में परिवर्तन लाने में 'मोहम्मडन ऐंग्लो ओरिएण्टल कॉलेज' के प्रधानाचार्य बेक का प्रमुख हाथ था। उसने सर सैयद अहमद खां को समझाया कि कांग्रेस में मुसलमानों का भविष्य आंग्ल मुसलमान सहयोग पर ही निर्भर है, अन्यथा भारतीय मुसलमानों को हिन्दुओं की दया पर निर्भर रहने के लिए विवश होना पड़ेगा। अतः कांग्रेस का विरोध करने के लिए 1887-88 ई. में सर सैयद अहमद ने कांग्रेस के विरुद्ध प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया तथा अगस्त, 1888 ई. में इसी उद्देश्य से **'यूनाइटेड पेट्रिऑटिक ऐसोसियेशन'** नामक संस्था की स्थापना की। यह संस्था विशेष सफल न हो सकी व कुछ ही वर्षों में समाप्त हो गयी। तब सर सैयद अहमद खां ने यह प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया, कि यदि भारत से ब्रिटिश शासन समाप्त हो गया तथा शक्ति भारत को हस्तान्तरित की गयी तो हिन्दू, मुसलमानों पर शासन करेंगे। इस प्रचार से उन्हें पहले की अपेक्षा अधिक सफलता मिली। प्रारम्भ में सर सैयद अहमद खां ने अपने कार्यकलापों को राजनीति से दूर रखा था क्योंकि अंग्रेज ऐसे कार्यों को पसन्द नहीं करते थे, किन्तु जब कांग्रेस अंग्रेजों का विरोध करने लगी तो अंग्रेजों ने मुसलमानों को भी राजनीति में उतरने के लिए प्रोत्साहित किया, ताकि उनका प्रयोग कांग्रेस के विरुद्ध किया जा सके। 1898 ई. में सर सैयद अहमद खां की मृत्यु के पश्चात् उनका कार्य नवाब मोहसिन-उल-हक ने संभाल लिया।

1 **"The chief object of founding the M. A. O. College was to reconcile oriental learning with western literature and science to make the Muslims of India worthy and useful subjects of the British crown, to inspire them that loyalty which springs not from servile submission to foreign rule but from a genuine appreciation of the blessings of good government."** —***Sir Syed Ahmad Khan***

बंगाल-विभाजन व मुस्लिम लीग की स्थापना
(THE PARTITION OF BENGAL AND THE MUSLIM LEAGUE)

हिन्दुओं व मुसलमानों में दूरी बढ़ाने के लिए प्रशासकीय सुविधा के नाम पर लॉर्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन किया। बंगाल के विभाजन से हिन्दुओं के अतिरिक्त आमतौर पर मुसलमान भी विरोधी थे, किन्तु मुसलमानों को बंग-भंग के पक्ष में करने के लिए ब्रिटिश नौकरशाही ने अत्यधिक प्रयास किए। स्वयं लॉर्ड कर्जन ने बंगाल का दौरा किया तथा कुछ सीमा तक अपने उद्देश्य में सफलता भी प्राप्त की। ढाका का नवाब सलीमुल्ला बंग-भंग का समर्थन करने को तैयार हो गया, किन्तु फिर भी अधिकांश मुसलमानों ने बंग-भंग का विरोध ही किया।

अपनी इस चाल को असफल होते देखकर सरकार ने भारतीय मुसलमानों को कांग्रेस विरोधी किसी संस्था को बनाने के लिए प्रेरित किया, तथा इसी उद्देश्य से अंग्रेजों के समर्थक ढाका के नवाव सलीमुल्ला ने दिसम्बर, 1990 ई. में **'मोहम्मडन एजूकेशनल कॉन्फ्रेंस'** के समय ढाका में मुसलमानों के अलग राजनीतिक संगठन बनाने का प्रस्ताव रखा, जिसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकार का समर्थन करना तथा मुसलमानों के स्वार्थों की रक्षा करना हो। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि इसके द्वारा कांग्रेस के निरन्तर बढ़ते हुए प्रभाव को रोकना तथा मुसलमान नौजवानों को राजनीति में प्रवेश करने के लिए आधार प्रदान किया जायेगा। नवाव सलीमुल्ला के प्रस्ताव को स्वीकार किया गया तथा 30 **दिसम्बर, 1906 ई. को नवाब बकर-उल-मुल्क की अध्यक्षता में 'मुस्लिम लीग' की स्थापना का निर्णय लिया गया।** इस प्रकार मुस्लिम लीग के उद्देश्यों से स्पष्ट है कि वे मुसलमानों में भारत के प्रति नहीं वरन् ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति निष्ठा बढ़ाने के लिए उत्सुक थे तथा उनसे मधुर सम्बन्ध रखना चाहते थे। अतः अंग्रेज अपने उद्देश्य में सफल हो गए तथा मुसलमानों को अपने पक्ष में रखने के लिए उन्होंने मुसलमानों को अधिक से अधिक सुविधाएं प्रदान करने का प्रयास किया। इससे अंग्रेजी सरकार को दोहरा लाभ होता था। प्रथम तो यह कि मुसलमान अंग्रेजों को अपना शुभचिन्तक समझकर उनके और करीब आते थे तथा दूसरा यह कि कांग्रेस या हिन्दुओं द्वारा मुसलमानों को दी जाने वाली सुविधाओं का विरोध किया जाता था, तो अंग्रेज मुसलमानों को भड़काकर कि हिन्दू उनका भला नहीं चाहते, दोनों की दूरी और बढ़ा देते थे। उदाहरण के लिए, वायसराय लॉर्ड मिण्टो के प्रशासन काल में उनके निजी सचिव स्मिथ ने अलीगढ़ कॉलेज के प्रधानाचार्य को पत्र लिखकर, मुसलमानों का एक प्रतिनिधि मण्डल अपनी मांगों के साथ वायसराय से मिलने भेजने के लिए कहा। अतः **आगा खां के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मण्डल वायसराय से अक्टूबर, 1906 ई. में मिला। इस प्रतिनिधि मण्डल ने निम्नलिखित मांगें वायसराय के समक्ष रखीं :**

(i) मुसलमानों के लिए पृथक् चुनाव क्षेत्र।
(ii) विधान मण्डलों में मुसलमानों को उनकी जनसंख्या से अधिक स्थान।
(iii) सरकारी नौकरियों में मुसलमानों को अधिक स्थान।
(iv) मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना में सरकारी अनुदान।
(v) गवर्नर जनरल की कौंसिल में यदि भारतीयों को रखा जाए तो मुसलमानों का भी ध्यान रखा जाए।

अतः लॉर्ड मिण्टो ने घोषणा की, **"आपकी यह मांग बिल्कुल सही है कि आप लोगों का महत्व आपकी संख्या से न आंका जाए, बल्कि आपके सम्प्रदाय के राजनीतिक महत्व को**

देखा जाए, और उसने साम्राज्य की जो सेवाएं की हैं, उनका ध्यान रखा जाए। मैं आपसे पूर्णरूपेण सहमत हूं।" रजनी पामदत्त ने लिखा है कि इस प्रकार उसने एक ऐसी नीति का श्रीगणेश किया जिससे सचमुच ही गांवों और शहरों में जहर फैलने वाला था और भारत नरक बन जाने वाला था। इस नीति ने प्रत्येक जनवादी चुनाव प्रणाली पर आघात किया। साम्प्रदायिक संगठनों तथा साम्प्रदायिक विरोध को बढ़ावा देने का इससे अच्छा कोई साधन नहीं हो सकता था। इस नीति को 1909 ई. के अधिनियम द्वारा भारत में स्थापित कर दिया गया। इस अधिनियम की आलोचना करते हुए डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है, **"पाकिस्तान के वास्तविक संस्थापक जिन्ना अथवा रहीमतुल्ला नहीं वरन् लॉर्ड मिण्टो थे।"**[1]

साम्प्रदायिकता का विकास

यद्यपि अंग्रेजों ने हिन्दुओं व मुसलमानों में दूरी वढ़ाने के लिए ही 'मुस्लिम लीग' की स्थापना के लिए प्रयत्न किया था, किन्तु उल्लेखनीय है कि मुस्लिम लीग को सारे मुसलमानों का समर्थन कभी प्राप्त न हो सका। राष्ट्रवादी मुसलमान सदैव कांग्रेस के समर्थक रहे। यहां तक कि जिन्ना भी प्रारम्भ में मुस्लिम लीग के घोर विरोधी थे। उन्होंने 1909 ई. के अधिनियम द्वारा मुसलमानों को अलग प्रतिनिधित्व दिए जाने की भी आलोचना की थी। जिन्ना के समान ही अनेक प्रमुख मुसलमान नेता—अबुल कलाम आजाद, नवाव सैयद मुहम्मद मौलाना नोमानी, मौलाना मुहम्मद अली, हसन इमाम, हकीम अजमल खां, आदि 'मुस्लिम लीग' के विरोधी थे। अतः धीरे-धीरे मुस्लिम लीग की नीतियों में भी परिवर्तन हुआ तथा 1913 ई. में, मुस्लिम लीग ने घोषणा की, कि उसका उद्देश्य **'साम्राज्य के अन्दर स्वराज्य'** प्राप्त करना तथा अन्य सम्प्रदायों के साथ सहयोग करना है। 1914 ई. में, प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने व तुर्की के सुल्तान के अंग्रेजों के विरुद्ध होने के कारण, भारतीय मुसलमान भी अंग्रेजों के विरुद्ध होने लगे, क्योंकि तुर्की का सुल्तान मुसलमानों का खलीफा था। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने भी 'मुस्लिम लीग' को अपनी नीतियों में परिवर्तन करने के लिए प्रेरित किया। इसी समय जिन्ना ने भी कांग्रेस व मुस्लिम लीग को निकट लाने का प्रयत्न किया, जिसका परिणाम 1916 ई. के **'लखनऊ समझौते'** के रूप में सामने आया। इस समझौते के परिणामस्वरूप, जो योजना तैयार की गयी, उसको ब्रिटिश अधिकारियों के समक्ष रखने के लिए भेजे गए दल के सदस्य जिन्ना, श्रीनिवास शास्त्री, तेजबहादुर सप्रू व वजीर हसन थे। प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के वाद भी कुछ वर्षों तक कांग्रेस व लीग साथ-साथ कार्य करते रहे तथा असहयोग आन्दोलन व खिलाफत आन्दोलन परस्पर सहयोग से चलाए गए। सड़कों पर हिन्दू-मुस्लिम एकता के स्वागत में प्रदर्शन किए गए, किन्तु दुर्भाग्यवश यह एकता अधिक समय तक न कायम रह सकी। अगस्त, 1921 ई. में केरल के मालाबार क्षेत्र में मोपला विद्रोह हुआ। मोपला मुसलमान किसान थे तथा उनकी स्थिति दयनीय थी। नम्बूदरी जमींदारों व साहूकारों ने उनकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त खराव कर दी थी। 1921 ई. के वर्षों में मोपलों की स्थिति और भी शोचनीय हो गयी। अतः मोपलों ने विद्रोह कर दिया। वास्तव में यह सामन्ती शोषण के विरुद्ध किसानों का विद्रोह था जिसका स्वरूप आर्थिक था, किन्तु सरकार ने इस अवसर से लाभ उठाया तथा इस विद्रोह को साम्प्रदायिक रूप प्रदान करने की चेष्टा की। इससे पुनः साम्प्रदायिकता की भावना प्रवल होने लगी। **कांग्रेस की नीतियों से सहमत न**

1 "The real father of Pakistan was not Jinnah or Rahimtullah but Lord Minto."
—*Dr. Rajendra Prasad*

होने के कारण 1921 ई. में जिन्ना ने स्वयं को कांग्रेस से अलग कर लिया, तथा फरवरी, 1922 ई. में गांधीजी द्वारा असहयोग आन्दोलन वन्द किए जाने की घोषणा से खिलाफत कमेटी के सभी सदस्यों ने कांग्रेस का विरोध किया। इस प्रकार असहयोग व खिलाफत आन्दोलनों नें जिन राष्ट्रीय हितों के लिए संघर्ष करने वाली क्रान्तिकारी शक्तियों को संगठित किया था, वे आन्दोलन वापस लिए जाने से ढह गयीं। अतः एक बार पुनः हिन्दुओं व मुसलमानों में दूरी वढ़ गयी, जिसको प्रोत्साहित करने में अंग्रेजों ने कोई कसर न छोड़ी। अतः सारे भारत में जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगे होने लगे। साम्प्रदायिक प्रतिक्रियावाद तीव्र हो गया। हिन्दुओं की रक्षा के लिए हिन्दू महासभा व मुसलमानों की रक्षा के लिए मुस्लिम लीग प्रयत्न कर रही थीं। जिन्ना मुस्लिम लीग के प्रमुख नेता वन गए। कुछ राष्ट्रवादी मुसलमानों के अतिरिक्त शेष मुस्लिम लीग के समर्थक वन गए। 1923 ई. में फजली हुसैन ने पंजाब में **'यूनियनिस्ट दल'** की स्थापना की तथा जनसंख्या के आधार पर मुसलमानों के लिए प्रतिनिधित्व की मांग की। 1923 ई. में चितरंजन दास ने वंगाल में प्रान्तीय मुसलमान नेताओं से समझौता करके लखनऊ समझौते से अधिक सुविधाएं प्रदान कीं। 1928 ई. में भारत में **'साइमन कमीशन'** का कांग्रेस द्वारा वहिष्कार किया गया। मुस्लिम लीग में इस विषय को लेकर मतभेद उत्पन्न हो गया तथा वह दो गुटों में विभक्त हो गयी। जिन्ना के नेतृत्व वाले गुट ने साइमन कमीशन का वहिष्कार किया, किन्तु शफी मुहम्मद के नेतृत्व वाले गुट ने साइमन कमीशन का समर्थन किया। 1928 ई. में ही नेहरू रिपोर्ट पर विचार करने के लिए सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया गया। जिन्ना, नेहरू रिपोर्ट को कुछ संशोधनों के साथ मानने को तैयार थे, किन्तु कांग्रेस जिन्ना के संशोधनों को स्वीकार न कर सकी। मुस्लिम लीग के दूसरे गुट ने नेहरू रिपोर्ट की कटु आलेचना की तथा मौलाना मुहम्मद अली अधिवेशन का बहिष्कार करके चले गए। मौहम्मद शफी ने जिन्ना के नेतृत्व वाली मुस्लिम लीग को क्षीण वनाने के लिए 31 दिसम्वर, 1928 को दिल्ली में आगा खां के नेतृत्व में **'आल पार्टीज मुस्लिम कॉन्फ्रेंस'** आयोजित की। इस सम्मेलन में यह पारित किया गया कि मुसलमानों को बहुसंख्यक प्रान्तों में वहुमत और अल्पसंख्यक प्रान्तों में अधिप्रतिनिधित्व, जो उस तक मिला हुआ था, कायम रहे। इससे जिन्ना को भारी आघात लगा। उसने अपनी स्थिति सुधारने के लिए 14-सूत्री कार्यक्रम बनाया, परन्तु जिन्ना की स्थिति में परिवर्तन न हुआ। अतः 1929 ई. में, जिन्ना दुःखी होकर इंग्लैण्ड चले गए। भारत की संवैधानिक समस्या को हल करने के लिए हुए गोलमेज सम्मेलनों में भी मुस्लिम लीग ने पृथकतावादी रुख अपनाया। अतः इंग्लैण्ड की सरकार ने **'कम्यूनल एवार्ड'** (Communal Award) की घोषणा की, जिसके द्वारा साम्प्रदायिकता को और अधिक बढ़ाने का प्रयास किया गया। इसी समय, जिन्ना पुनः भारत आ गए तथा मुस्लिम लीग को आगामी चुनावों के लिए संगठित करना प्रारम्भ कर दिया। 1937 ई. में हुए चुनाव में कांग्रेस को भारी सफलता मिली। मुस्लिम लीग को विशेष सफलता न मिली, किन्तु अल्पसंख्यक प्रान्तों में लीग सफल रही। इन चुनावों के पश्चात् मुस्लिम लीग के नेताओं ने कांग्रेस से प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों के विषय में समझौता करने का प्रयास किया, किन्तु कांग्रेस ने उनके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इससे कांग्रेस और मुस्लिम लीग के मध्य दूरी और वढ़ गयी। जिन्ना ने मुस्लिम लीग को सशक्त व संगठित करने के प्रयास और तेज किए। उसने विभिन्न मुस्लिम दलों व संगठनों को मुस्लिम लीग में मिलाने का प्रयास किया ताकि मुस्लिम लीग, भारतीय मुसलमानों की प्रमुख संस्था का रूप ले सके। जिन्ना को उसके प्रयत्नों में सफलता मिली तथा

शीघ्र ही पंजाव के प्रमुख मुसलमान नेता फजल-उल-हक, आदि उसका नेतृन्व स्वीकार करने लगे। **मुस्लिम लीग ने कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध यह प्रचार भी किया कि हिन्दू राज्यों में मुसलमानों पर अत्याचार होते हैं।** इसके अतिरिक्त कांग्रेस प्रशासन द्वारा मुसलमानों पर अत्याचारों की जांच के लिए पीरपुर के राजा मोहम्मद मेंहदी की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गयी। इसी प्रकार विहार में भी समिति वनायी गयी। पीरपुर व शरीफ समितियों की रिपोर्ट से लीग यह स्थापित करना चाहती थी कि संसदात्मक प्रणाली भारत के लिए उचित नहीं है। **जिन्ना किसी ऐसी योजना को लागू करना चाहते थे, जिससे मुसलमानों व लीग को कांग्रेस पर निर्भर न रहना पड़े।** 1930 ई. में इकवाल द्वारा मुसलमानों के लिए पृथक् राज्य, के विचार पर भी जिन्ना विचार कर रहे थे। 1938 ई. में मुस्लिम लीग की कार्यकारिणी के सदस्य इंग्लैण्ड में भारत सचिव से मिले तथा भारत के विभाजन के विषय में चर्चा की। भारतमन्त्री की सहमति प्राप्त होने पर जिन्ना ने अपनी कार्यवाही और तीव्र की। 1939 ई. में कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों द्वारा त्याग-पत्र दिए जाने पर जिन्ना ने 22 दिसम्वर, 1939 ई. को 'मुक्ति दिवस' मनाया तथा अपने भाषणों में कांग्रेस व लीग के लिए समान अधिकारों की बात की। उसने यह घोषणा की, कि मुसलमानों की सहमति के विना किसी संविधान के लागू करने पर मुसलमान उसका घोर विरोध करेंगे।

23 मार्च, 1940 ई. को हुए मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन में लाहौर प्रस्ताव (पाकिस्तान बनाने का) पारित किया गया। वास्तव में मुसलमानों के लिए पृथक् राज्य की भावना कोई नवीन नहीं थी। 1930 ई. **में कवि इकबाल ने, 1933 ई. में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में कुछ विद्यार्थियों ने इसे प्रस्तुत किया था।** तव मुस्लिम लीग के नेताओं ने इसे **'हवाई उड़ान'** व **'अव्यावहारिक'** मानकर अस्वीकार कर दिया था। जुलाई, 1939 ई. में सर सिकन्दर हयात खां ने भी एक ऐसी ही योजना प्रकाशित की थी। लाहौर प्रस्ताव की रूपरेखा प्रमुख रूप से फजल-उल-हक, सिकन्दर हयात खां व खलीफ उज्जमां ने इसका अनुमोदन किया था। इस प्रस्ताव में कहा गया था, **"इस देश में कोई भी संवैधानिक योजना उस समय तक मुसलमानों को स्वीकृत नहीं होगी जब तक वह इस आधार पर न बनी हो कि उत्तर-पश्चिमी और पूर्वी भारत में मुसलमानों के बहुसंख्यक भौगोलिक दृष्टि से संलग्न क्षेत्रों को पृथक् स्वायत्त सम्पन्न स्वतन्त्र राज्यों में परिणत न किया जाए।"** यद्यपि यह मांग प्रारम्भ में सौदेवाजी करने का एक तरीका था, किन्तु 1940-46 ई. के मध्य कांग्रेस से समझौते के लिए केन्द्रीय सरकार में हिन्दू-मुस्लिम समानता की मांग करना, कांग्रेस द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता था, क्योंकि जनसंख्या में वे मुश्किल से एक-चौथाई थे। इस मांग को स्वीकार करना प्रजातन्त्र विरोधी तो होता ही, इससे कांग्रेस का राष्ट्रीय स्वरूप भी समाप्त हो जाता। अतः यह स्पष्ट होने लगा था कि देश का विभाजन ही भारतीय संवैधानिक समस्या को हल करने का एकमात्र तरीका है। पाकिस्तान की योजना वनाने में यद्यपि जिन्ना का विशेष योगदान न था, किन्तु इस योजना को व्यावहारिक रूप प्रदान करने में उनका प्रमुख हाथ था। रजनी पामदत्त ने लिखा है कि **जिन्ना को जिस प्रकार इस योजना को कार्यान्वित करने में मुसलमानों का समर्थन मिला उससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक हद तक जनता की सच्ची-भावनाओं व आकांक्षाओं को व्यक्त करता था।** 1946 ई. के चुनावों में मुस्लिम लीग को मिली सफलता ने भी यह स्पष्ट कर दिया कि मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने वाली वास्तविक संस्था वही है, अतः मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान की मांग और प्रवल हो गयी। अतः जिन्ना ने घोषणा की, **"भारत का विरोध भारत और अंग्रेजों के**

मध्य नहीं, वरन् कांग्रेस व मुस्लिम लीग के बीच है। जब तक पाकिस्तान नहीं दिया जाएगा तब तक कोई समस्या हल नहीं हो सकती।" एक नहीं वरन् दो विधान सभाएं वनाना होंगी, जिनमें से एक भारत का व दूसरा पाकिस्तान का संविधान बनाएगी। जिन्ना ने यह भी कहा कि उसे अंग्रेजों की ईमानदारी पर सन्देह नहीं है, किन्तु उन लोगों की ईमानदारी पर शक है जो मुसलमानों को पाकिस्तान दिए विना समझौते की वात करते हैं। इस प्रकार भारत के विभाजन की भूमिका तैयार हो रही थी।

प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता के विकास का वर्णन कीजिए।
2. भारत में अंग्रेजों ने मुस्लिम लीग को किस प्रकार कांग्रेस के विरुद्ध करने का प्रयास किया? वर्णन कीजिएं।
3. भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता के विकास पर संक्षिप्त निवन्ध लिखिए।
4. आधुनिक भारत में पृथकतावादी आन्दोलन की विवेचना कीजिए।
5. 1906 से 1947 ई. तक मुस्लिम लीग की भूमिका का आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
6. मुस्लिम लीग पर एक निवन्ध लिखिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता के उदय पर प्रकाश डालिए।
2. मुस्लिम लीग की स्थापना की परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।
3. लाहौर प्रस्ताव क्या था?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मुक्ति दिवस मनाने की घोषणा की थी?
   (अ) गांधी (व) नेहरू (स) जिन्ना (द) पटेल
2. 'द इण्डियन मुसलमान्स' के लेखक् थे :
   (अ) नेहरू (व) गांधी (स) जिन्ना (द) विंलियम हण्टर
3. मुस्लिम लीग की स्थापना हुई :
   (अ) 1885 (व) 1892 (स) 1906 (द) 1919

[उत्तर—1. (स), 2. (द), 3. (स)।]

निम्नलिखित वाक्यों में सत्य/असत्य दर्शाइए :

1. मुस्लिम लीग की स्थापना का निर्णय नवाव वकर-उल-मुल्क की अध्यक्षता में लिया गया।
2. 1906 ई. में मुसलमानों का प्रतिनिधिमण्डल जिन्ना के नेतृत्व में मिण्टो से मिला।
3. फजली हुसैन ने 'यूनियनिस्ट दल' की स्थापना की।

[उत्तर—1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य।]

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :

1. विलियम हण्टर ने .... पुस्तक लिखी।
2. सर सैयद अहमद खां ने .... की स्थापना की।
3. मुसलमानों के लिए पृथक राज्य की कल्पना 1930 में .... ने की थी।

[उत्तर—1. द इण्डियन मुसलमान्स, 2. यूनाटेड पैट्रिआटिक एसोसिएशन, 3. कवि इकवाल।]

14

1935 ई. से 1947 ई. तक संवैधानिक विकास

[THE CONSTITUTIONAL DEVELOPMENT FROM 1935 TO 1947]

क्रिप्स योजना
(CRIPPS MISSION)

1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ ही भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन वास्तविक अर्थों में प्रारम्भ हो गया था। 1930 ई. तक विभिन्न चरणों को पार करते हुए कांग्रेस ने अपना लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता की प्राप्ति निर्धारित कर लिया था, किन्तु सरकार पूर्ण स्वतन्त्रता तो क्या औपनिवेशिक स्वराज्य भी भारतीयों को देने के लिए तैयार न थी। 1935 ई. में एक अधिनियम पारित किया गया, जिसके द्वारा केन्द्र में वैध शासन-प्रणाली की स्थापना की गयी। **अतः यह अधिनियम भारतीयों को सन्तुष्ट न कर सका तथा भारतीयों की भावना पूर्ववत् बनी रही।** सितम्बर, 1939 ई. में द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने पर इंग्लैण्ड ने भारतीयों की ओर से भी जर्मनी, इटली व जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी तथा भारत रक्षा अधिनियम पारित करके भारत में कार्यरत् नौकरशाही को युद्ध-प्रयासों हेतु विशेष अधिकार प्रदान किए। मित्र राष्ट्रों ने यह भी घोषणा की कि वे प्रजातन्त्र को सुरक्षित करने की भावना से युद्ध कर रहे हैं। कांग्रेस ने सरकार से अनुरोध किया कि वह अपने उद्देश्यों को स्पष्ट करें तथा 14 सितम्बर, 1939 ई. को कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित करके सरकार से भारतीयों को आत्मनिर्णय का अधिकार प्रदान करने के लिए कहा। कांग्रेस ने यह भी स्पष्ट किया कि लोकतन्त्र की रक्षा के लिए किए जा रहे युद्ध में भारत को तव ही सम्मिलित किया जाना चाहिए जव पहले भारत में लोकतन्त्र की स्थापना की जाए। **स्वयं गुलाम होते हुए, लोकतन्त्र की रक्षा के नाम पर, द्वितीय विश्वयुद्ध में भाग लेना हास्यास्पद है।** मौलाना आजाद ने अंग्रेजी सरकार की इस नीति की भर्त्सना करते हुए कहा, **"वायसराय की इस कार्यवाही ने यह स्पष्ट कर दिया कि अंग्रेजी सरकार भारत को अपने हाथ का खिलौना समझती है। वह युद्ध जैसे महत्वपूर्ण मामले में भी भारतीयों की इच्छा जानना आवश्यक नहीं समझती।"**[1]

1 **"The Viceroy's action proved that the British Government looked on India as a creature of its will and was not willing to recognize India's right to decide her course for itself even in a matter like war."** —*Maulana Azad*

किन्तु सरकार ने टालमटोल की नीति का सहारा लिया तथा अपने उद्देश्यों को स्पष्ट करना नहीं चाहती थी। अन्त में 17 अक्टूबर, 1939 ई. को वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो ने घोषणा की, **''भारत में ब्रिटिश शासन का उद्देश्य औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना करना है।''** इस घोषणा से भारतीयों को अत्यन्त निराशा हुई। अतः 22 अक्टूबर, 1939 ई. को कांग्रेस ने एक 'निन्दा प्रस्ताव' पारित किया तथा सभी मन्त्रालयों से त्यागपत्र देने का अनुरोध किया। अतः कांग्रेस ने 8 प्रदेशों में प्रान्तीय मन्त्रालयों से त्यागपत्र दे दिए। मुस्लिम लीग ने वायसराय की उक्त घोषणा को इन शर्तों पर स्वीकार करने को कहा कि कांग्रेस-शासित प्रदेशों में मुसलमानों के साथ न्याय किया जाए तथा मुस्लिम लीग से परामर्श के बिना भारतीय संवैधानिक मामले में कोई निर्णय नहीं लिया जाए। कांग्रेस द्वारा प्रान्तीय मन्त्रालयों से त्यागपत्र देने पर मुस्लिम लीग द्वारा प्रसन्नता व्यक्त की गयी तथा लीग ने 22 अक्टूबर, 1939 ई. को **'मुक्ति दिवस'** (Deliverance Day) मनाया। मुस्लिम-लीग ने एक प्रस्ताव पारित करके कहा, **''चूंकि कांग्रेस ने हिन्दू राज्य की स्थापना की है इसलिए यह सभा कांग्रेस शासन की समाप्ति पर राहत की सांस लेती है तथा आज के दिन को अधिनायकवाद, दमन तथा अन्याय से मुक्ति का दिवस मानती है।''** इस प्रकार सरकार हिन्दू व मुसलमानों में फूट डलवाने में सफल हो गयी। सरकार की इन नीतियों के पश्चात् भी कांग्रेस युद्धकाल में अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन करना नहीं चाहती थी। पं. जवाहरलाल नेहरू ने ऐसे ही विचार व्यक्त करते हुए कहा कि इंग्लैण्ड की कठिनाई को भारत के लिए सुअवसर नहीं मानना चाहिए। ऐसे समय में इंग्लैण्ड को परेशानी में डालना भारतीय प्रतिष्ठा के विरुद्ध है, जब वह जीवन और मृत्यु के बीच संघर्ष कर रहा है। गांधीजी के भी ऐसे ही विचार थे। अतः 27 जुलाई, 1940 ई. को कांग्रेस ने पुनः सरकार से निवेदन किया कि वह भारत की स्वतन्त्रता की मांग को स्वीकार कर ले तो भारत इंग्लैण्ड की इस संकट की घड़ी में सहायता करने को तैयार है, किन्तु प्रधानमन्त्री चर्चिल इस शर्त को स्वीकार करने को तैयार न था। चर्चिल ने कहा, **''मैं इंग्लैण्ड का प्रधानमन्त्री इसलिए नहीं वना हूं कि ब्रिटिश साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दूं।''**[1] अतः वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो ने 8 अगस्त, 1940 ई. को एक घोषणा की जो **'अगस्त प्रस्ताव'** (August Proposals) के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें भारतीयों को गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी सभा तथा युद्ध परामर्श समिति में शामिल करने को कहा गया था। इसमें यह भी प्रस्ताव था कि युद्ध की समाप्ति पर एक समिति बनायी जाएगी जो भारत के भावी संविधान की रूपरेखा का निर्धारण करेगी। इस समिति में कांग्रेस, मुस्लिम लीग व इसी प्रकार के अन्य दल भी भाग लेंगे।

क्रिप्स मिशन भेजने के कारण
(CAUSES OF SENDING THE CRIPPS MISSION)

इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का कोई प्रश्न ही नहीं था। अतः कांग्रेस द्वारा इसे अस्वीकृत कर दिया गया। ऐसी स्थिति में कांग्रेस ने सरकार का विरोध करने के लिए सत्याग्रह प्रारम्भ करने का निर्णय किया, किन्तु इस बार सत्याग्रह का स्वरूप बदल कर व्यक्तिगत कर दिया गया क्योंकि परिस्थितियों को देखते हुए जन सत्याग्रह के हिंसात्मक आन्दोलन में परिणत होने की सम्भावना थी। गांधीजी ने सत्याग्रह को प्रारम्भ करने के लिए विनोबा भावे को चुना। तत्पश्चात् पं. जवाहरलाल नेहरू को सत्याग्रह करना था। धीरे-धीरे सभी प्रमुख नेताओं ने

1 **"I have not become his Magesty's First minister to liquidate the British Empire."** —*Churchill*

सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया। अतः सरकार ने सत्याग्रहियों को बन्दी वनाना प्रारम्भ कर दिया। अक्टूवर, 1940 ई. से अप्रैल, 1941 ई. तक लगभग वीस हजार सत्याग्रहियों को वन्दी वनाया गया, किन्तु गांधीजी ने सत्याग्रह को जारी रखा। 1941 ई. में मित्र राष्ट्रों की स्थिति विश्व-युद्ध में गम्भीर हो गयी। जापान ने रंगून पर अधिकार कर लिया तथा उसके भारत पर आक्रमण की सम्भावना उत्पन्न हो गयी। वायसराय ने अपनी कार्यकारी परिषद् में सदस्यों की संख्या में भी वृद्धि कर ली, किन्तु कांग्रेस ने अपने सदस्यों को प्रतिनिधि के रूप में नहीं भेजा। मुस्लिम लीग ने भी अपने प्रतिनिधि नहीं भेजे क्योंकि उनकी पाकिस्तान वनाने की मांग को स्वीकार नहीं किया गया था। अतः अन्तर्राष्ट्रीय स्तर व भारत दोनों में ही इंग्लैण्ड की स्थिति खराव थी। चीन व अमरीका भी इंग्लैण्ड पर भारतीयों की मांग को स्वीकार करने व भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करने के लिए दवाव डाल रहे थे क्योंकि उनका विचार था कि यदि इंग्लैण्ड भारतीयों को स्वतन्त्रता प्रदान करने का आश्वासन दे दे तो भारतीय अवश्य ही उन्हें युद्ध में सहायता करेंगे।[1] 1941 ई. में ही जापान के कारण भारत के लिए उत्पन्न संकट को देखते हुए कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने देश की सुरक्षा के लिए आवश्यक समझते हुए इस सत्याग्रह आन्दोलन को स्थगित करने का निर्णय किया। गांधीजी ने कांग्रेस के नेतृत्व से त्यागपत्र दे दिया तथा कांग्रेस ने इस आन्दोलन के स्थगन की घोषणा कर दी।

क्रिप्स मिशन का आगमन व प्रस्ताव
(ARRIVAL OF CRIPPS MISSION AND ITS PROPOSALS)

तत्कालीन स्थिति को देखते हुए तथा चीन के राष्ट्रपति च्यांग काई शेक, अमरीका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट तथा आस्ट्रेलिया के दवाव के कारण भारत की समस्या पर विचार करने व सुलझाने के लिए सर स्टेफर्ड क्रिप्स को भारत भेजा गया। सर स्टेफर्ड क्रिप्स समाजवादी विचारधारा से प्रभावित थे तथा वह 23 मार्च, 1942 ई. को दिल्ली पहुंचे। उन्होंने कांग्रेस, मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, हरिजनों, राजाओं व उदारवादी नेताओं से विचार-विमर्श किया तथा 30 मार्च, 1942 ई. को कुछ प्रस्तावों की घोषणा की। क्रिप्स ने अपने प्रस्तावों को स्पष्ट करते हुए कहा, "**इस योजना का उद्देश्य एक नवीन भारतीय संघ की स्थापना करना है। भारतीय संघ एक गण-राज्य बनेगा जिसका इंग्लैण्ड व अन्य डोमिनियनों से सम्बन्ध रहेगा। यह सम्बन्ध सम्राट के प्रति आमनिष्ठा द्वारा होगा, परन्तु भारत का दर्जा सब तरह से डोमिनियमों के बराबर होगा और वह अपने आन्तरिक या बाह्य मामलों में किसी प्रकार से अधीन नहीं रहेगा।**" इस योजना के दो भाग थे। पहले भाग में द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारत में डोमिनियन स्थापित करने की योजना थी। इस भाग में कहा गया था कि युद्ध की समाप्ति पर एक निर्वाचित संविधान सभा के द्वारा नवीन संविधान की रूपरेखा तैयार की जाएगी। इस प्रकार रचित नवीन संविधान को, इंग्लैण्ड की सरकार, इन शर्तों के साथ स्वीकार करेगी कि यदि कोई प्रान्त पूर्ण स्वतन्त्रता चाहे तो सरकार को कोई आपत्ति नहीं होगी, तथा नवीन संविधान को तैयार करने वाली संविधान सभा तथा इंग्लैण्ड में एक सन्धि होगी जिसमें अंग्रेजी सरकार द्वारा धार्मिक व जातीय अल्पसंख्यकों को दिए गए सन्धि आश्वासनों का वर्णन होगा। यदि कोई भारतीय राज्य (रियासत) नए भारतीय संविधान को स्वीकार करना चाहे तो उसे अंग्रेजों के साथ एक नवीन सन्धि करनी होगी। क्रिप्स द्वारा घोषित योजना के दूसरे भाग में

1 **"Unless the Indian nettle was grasped immediately and urgently, the danger will be daily increasing."**

युद्धकालीन व्यवस्था का उल्लेख था। 1935 ई. के संविधान में परिवर्तन नहीं किया गया था। यह स्वीकार किया गया था कि भारत के सैनिक, नैतिक और भौतिक साधनों को संगठित करने के कार्य का उत्तरदायित्व भारत सरकार पर है, जो उसे भारतीयों के सहयोग से करना है। अतः इंग्लैण्ड की सरकार के द्वारा भारतीय नेताओं को देश विषयक परामर्श के लिए आमन्त्रित किया जाना है।

क्रिप्स योजना के अन्तर्गत (युद्ध के पश्चात्) मुख्यतया निम्नलिखित बातें कहीं गयी थीं :

1. **अधिराज्य की स्थापना** (Establishment of Dominion)—युद्ध की समाप्ति पर भारत को एक अधिराज्य का दर्जा दिया जाएगा तथा भारत राष्ट्रमण्डल (Commonwealth) का सदस्य रहेगा। भारत को राष्ट्रमण्डल की सदस्यता छोड़ने का भी अधिकार होगा।

2. **संविधान सभा की स्थापना** (Constitution Assembly)—युद्ध के पश्चात् भारत के संविधान का निर्माण करने के लिए एक संविधान सभा की स्थापना की जाएगी। इसमें ब्रिटिश भारत तथा भारतीय रियासतों के प्रतिनिधि होने थे।

3. **रियासतों को पृथक रहने का अधिकार** (Right given to the States to keep aloof)—इंग्लैण्ड की सरकार संविधान सभा द्वारा बनाए गए संविधान को उसी रूप में स्वीकार कर लेगी, परन्तु यदि इस संविधान को जो रियासतें स्वीकार न करना चाहें उन्हें भारतीय अधिराज्य से स्वतन्त्र रहने की छूट होगी। इसमें यह भी उल्लेख था कि यदि कोई रियासत इस संविधान को स्वीकार करना चाहे तो उसे अंग्रेजों के साथ एक नई सन्धि करनी होगी।

इसके अतिरिक्त **युद्धकालीन व्यवस्था** के विषय में इस प्रस्ताव में कहा गया था कि युद्ध के दौरान भारत के प्रतिरक्षा-विभाग पर ब्रिटिश सरकार का नियन्त्रण रहेगा, परन्तु भारत की सैनिक नैतिक तथा आर्थिक साधनों को संगठित करने की जिम्मेदारी भारत सरकार पर होगी।

इस प्रस्ताव के अन्त में यह भी कहा गया था कि, **"ब्रिटिश सरकार चाहती है कि भारतीय जनता के विभिन्न वर्गों के नेता अपने देश, ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल तथा मित्र राष्ट्रों के विचार-विमर्श में शीघ्र तथा प्रभावशाली ढंग से भाग लें तथा इस प्रकार एक महान् कार्य के सम्पादन में वे रचनात्मक तथा सक्रिय सहयोग प्रदान कर सकेंगे, जो भारत की स्वाधीनता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।"**

आलोचना
(CRITICISM)

क्रिप्स के प्रस्ताव वास्तव में 1940 ई. के अगस्त प्रस्तावों का परिवर्द्धित संस्करण थे। इनके सन्दर्भ में डॉ. सीतारमैय्या ने लिखा है, **"इनमें प्रत्येक दल को प्रसन्न करने वाली बातें थीं। कांग्रेस को प्रसन्न करने के लिए इनकी पूर्व भूमिका में औपनिवेशिक स्वराज्य तथा ऐसी विधान परिषद् का उल्लेख था जिसे प्रारम्भ में ही ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से पृथक हो जाने का अधिकार दिया गया था। मुस्लिम लीग के लिए सबसे बड़ी बात यह थी कि किसी भी प्रान्त को भारतीय संघ से अलग हो जाने का हक था। नरेशों को भी ऐसी ही आजादी प्रदान की गई थी।"** किन्तु फिर भी क्रिप्स प्रस्ताव भारतीयों को सन्तुष्ट न कर सके। पं. नेहरू ने लिखा है, "मैंने इन प्रस्तावों को जितना अधिक पढ़ा है इसमें निहित विचारों से उतनी ही अधिक निराशा हुई।"[1] महात्मा गांधी ने तो सर क्रिप्स से यह तक कह दिया, **"यदि आपके प्रस्ताव यही थे तो आपने आने का कष्ट क्यों किया? यदि भारत के सम्बन्ध में आपकी यही योजना है तो आपको मेरा परामर्श है कि आप अगले ही हवाई जहाज से इंग्लैण्ड लौट जाएं।"**

1 *The Discovery of India*, p. 481.

इस प्रस्ताव में सर्वाधिक आपत्तिजनक धारा यह थी कि इसमें प्रान्तों व रियासतों को यह अधिकार दिया गया था कि वे इस प्रस्तावित संघ में सम्मिलित हों या न हों। ऐसा मुस्लिम लीग को प्रसन्न करने के लिए किया गया था, किन्तु इसमें भारतीय एकता एवं अखण्डता समाप्त हो जाती। अतः यह प्रस्ताव अन्य दलों को स्वीकार हो ही नहीं सकता था।

क्रिप्स की इस योजना से मुस्लिम लीग आंशिक रूप से सन्तुष्ट थी, क्योंकि इसके द्वारा मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग को एक कदम और आगे बढ़ा दिया गया था, किन्तु कांग्रेस इस योजना से सन्तुष्ट न थी क्योंकि उनकी पूर्ण स्वाधीनता की मांग को स्वीकार नहीं किया गया था। गांधीजी ने इसे **'उत्तरतिथीय चैक'** (Post dated Cheque) कहा[1] जिसमें किसी ने **'टूटने वाले बैंक पर'** और जोड़ दिया। स्वयं वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो ने भी इसका विरोध किया क्योंकि इसमें कहा गया था कि गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी एक मन्त्रिपरिषद् के समान कार्य करेगी। इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री चर्चिल ने भी इस योजना का समर्थन नहीं किया, क्योंकि वह भी वास्तविक सत्ता भारतीयों के हाथों में नहीं देना चाहता था।

अतः क्रिप्स योजना असफल हो गयी। क्रिप्स ने इस योजना की असफलता का पूर्ण उत्तरदायित्व कांग्रेस पर डाल दिया तथा विश्व को, भारतीय राजनीति में बढ़ती हुई साम्प्रदायिकता का, ज्ञान कराने के लिए रेडियो पर भाषण दिया। अपने भाषण में क्रिप्स ने कहा कि कांग्रेस की मांगों को स्वीकार करने का अर्थ मुसलमानों और हरिजनों पर हिन्दुओं के प्रभुत्व की स्थापना करना होगा। अतः इंग्लैण्ड की सरकार ने क्रिप्स योजना का पूरा राजनीतिक लाभ उठाया। यह दिखाकर कि भारत में स्वतन्त्रता की स्थापना करने के मार्ग में नेताओं के पारस्परिक मतभेद, महत्वाकांक्षा व साम्प्रदायिकता आड़े थी, इंग्लैण्ड की सरकार ने चीन व अमरीकी सरकारों द्वारा डाले जा रहे दबावों से मुक्ति पाने का प्रयत्न किया। मौलाना आजाद ने इस विषय में लिखा है, **"भारत और क्रिप्स में जो लम्बी बातचीत चली वह विश्व को मात्र यह प्रदर्शित करने के लिए थी कि कांग्रेस भारत की वास्तविक प्रतिनिधि संस्था नहीं है तथा भारतीयों की पारस्परिक फूट ही समस्या न सुलझने का वास्तविक कारण है।"**[2] इसी प्रकार के विचार डॉ. मजूमदार ने भी प्रस्तुत किए हैं। उनके शब्दों में, **"चर्चिल ने क्रिप्स मिशन राष्ट्रवादियों की मांगों को स्वीकार करने के लिए नहीं, अपितु अपने मन्त्रिमण्डल के कुछ सदस्यों तथा अमरीका के राजनीतिज्ञों को सन्तुष्ट करने के लिए भारत भेजना स्वीकार किया था। इस मिशन के द्वारा वह यह प्रमाणित करना चाहता था, कि भारतीय समस्या इतनी जटिल है कि उसे हल नहीं किया जा सकता।"**[3]

भारत छोड़ो आन्दोलन
(QUIT INDIA MOVEMENT)

कारण (Causes)—क्रिप्स योजना के असफल हो जाने तथा क्रिप्स के द्वारा कांग्रेस को असफलता के लिए उत्तरदायी ठहराए जाने के परिणामस्वरूप भारतीयों को अत्यन्त निराशा हुई। **इस योजना से यह स्पष्ट हो गया कि साम्प्रदायिकता को आड़ बनाकर इंग्लैण्ड की सरकार**

1 P. Sitaramaiya, *The History of Congress*, Vol. II, p. 360.
2 Azad, *India Wins Freedom*, p. 70.
3 "Churchill agreed to the Cripps Mission, not because he wanted to accommodate the nationalist demands, but with a view to soothe feelings of a section of his own cabinet and of the U. S. A. and to prove generally that the Indian problem was insoluble." —A. K. Majumdar, *Advent of Independence*, p. 172.

भारत को स्वतन्त्रता प्रदान नहीं करेगी। अतः भारतीय जनता में असन्तोष की भावना तीव्र होने लगी। महात्मा गांधी को भी यह विश्वास होने लगा कि उनकी सत्याग्रह की अहिंसात्मक नीति सम्भवतः भारत को अंग्रेजों से मुक्त न करा सकेगी। अतः गांधीजी, जो अव तक द्वितीय विश्व-युद्ध में अंग्रेजों को सहायता दिए जाने के पक्ष में थे, अपने विचारों व नीतियों में परिवर्तन करने के लिए विवश हुए तथा उन्होंने अंग्रेजों से '**भारत छोड़ने**' की अपील की। गांधीजी ने अपने उद्गारों को व्यक्त करते हुए 'हरिजन' में लिखा, "**अंग्रेजो, भारत को जापान के लिए मत छोड़ो अपितु भारत को भारतीयों के लिए व्यवस्थित रूप में छोड़ जाओ।**" उन्होंने पुनः लिखा, "**भारत को भगवान के भरोसे छोड़ दो, यदि यह असम्भव है तो उसे अराजकता के भंवर में छोड़ दो।**" गांधीजी का यह भी विचार था कि यदि भारत स्वतन्त्र हो जाएगा तो भारत को जापान से कोई खतरा नहीं रहेगा क्योंकि जापान की दुश्मनी इंग्लैण्ड से है, न कि भारत से। अतः गांधीजी चाहते थे कि युद्ध काल में ही भारत को स्वाधीनता प्रदान कर दी जाए। भारतीयों में बढ़ते हुए असन्तोष का कारण मात्र क्रिप्स योजना की असफलता व जापान के भारत के आक्रमण का निरन्तर वढ़ता हुआ संकट ही नहीं वरन् बर्मा और मलेशिया से भागे भारतीयों के प्रति अंग्रेजों का दुर्व्यवहार, युद्ध के कारण आवश्यक वस्तुओं का उपलव्ध न होना, मूल्यों में असाधारण वृद्धि, व पूर्वी-बंगाल में भय व आतंक का शासन भी थे। पं. जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है, "**सभी परम्पराएं और छल-कपट जो साधारणतया शासन के कार्यों को ढंके रहते हैं, दूर कर दिए गए हैं और केवल, नग्न शक्ति सत्ता का प्रतीक बन गयी।**"[1]

अतः गांधीजी ने पुनः आन्दोलन प्रारम्भ करने का निर्णय लिया। 7 जून, 1942 ई. को महात्मा गांधी ने 'हरिजन' में लिखा, "**मैंने बहुत प्रतीक्षा की कि विदेशी शासन को हटाने के लिए देश अहिंसात्मक शक्ति पैदा करे, परन्तु अब मेरा विचार बदल गया है, मैं सोचता हूं कि अब और प्रतीक्षा नहीं कर सकता, और प्रतीक्षा का अर्थ होगा विनाश की प्रतीक्षा। इसलिए मैंने फैसला किया है कि कुछ खतरों पर भी लोग अब गुलामी का विरोध करें।**" गांधीजी, सम्भवतः क्रिप्स आयोग के असफल रहने के परिणामस्वरूप उत्पन्न जनआक्रोश का उपयोग करना चाहते थे। अतः 14 जुलाई, 1942 ई. को वर्धा में कांग्रेस की कार्य समिति ने 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पारित किया। इस कार्य समिति में कांग्रेस के सभी प्रमुख नेताओं ने भाग लिया। कांग्रेस की अखिल भारतीय समिति की बैठक 7 अगस्त, 1942 ई. को बम्बई में हुई। इसमें कुछ संशोधन के साथ कांग्रेस कार्य समिति ने प्रस्ताव को 8 अगस्त को पारित कर दिया। इस प्रस्ताव में कहा गया था, "**भारत में ब्रिटिश शासन का तुरन्त अन्त होना चाहिए। यह भारत तथा मित्र देशों की सफलता के लिए आवश्यक है। इस शासन के जारी रहने से भारत का निरन्तर पतन हो रहा है और देश अपनी रक्षा के लिए कमजोर होता जा रहा है। फासीवाद के विरुद्ध सफलता पुराने उद्देश्यों, नीतियों व उपायों से चिपके रहने से नहीं हो सकती। भारत की स्वतन्त्रता से ही ब्रिटेन और मित्र राष्ट्रों को आंका जा सकता है। स्वतन्त्र भारत इस सफलता को अवश्य प्राप्त कर सकेगा क्योंकि यह अपने सभी साधनों को स्वतन्त्रता के लिए तथा फासीवाद, नाजीवाद और साम्राज्यवाद के आक्रमणों के विरुद्ध लगा देगा। पराधीन भारत ब्रिटिश साम्राज्य का चिह्न बना हुआ है, अतः अखिल भारतीय कांग्रेस समिति अत्यधिक जोरदार शब्दों में अंग्रेजों को भारत से हट जाने की मांग दोहराती है तथा इसे मानने के लिए ब्रिटेन व मित्र राष्ट्रों से पुनः अपील करती है। इस मांग के स्वीकार न किए जाने पर समिति विवश होकर अत्यधिक व्यापक पैमाने**

1 Nehru, *The Discovery of India*, p. 502.

पर गांधी के नेतृत्व में अहिंसात्मक संघर्ष चलाने की आज्ञा प्रदान करती है। यह भारतीयों से अपील करती है कि इस आन्दोलन का आधार अहिंसा हो और प्रत्येक व्यक्ति अपना मार्ग दर्शन करे।'' इसी अवसर पर पं. जवाहरलाल नेहरू ने कहा, **''हमने स्वयं को अग्नि में धकेल दिया है, या तो हम सफलतापूर्वक इससे बाहर निकल आएंगे अथवा इसी में समाप्त हो जाएंगे।''** गांधीजी ने अपने उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए कहा कि यह आन्दोलन कांग्रेस का अन्तिम प्रयास है, जिससे या तो भारतीयों को स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाएगी या वे मिट जाएंगे। गांधीजी ने आन्दोलन प्रारम्भ करनें से पूर्व अपने उद्देश्यों व मांगों की सूचना सूचना-पत्र द्वारा वायसराय को दे दी तथा स्वयं भी वायसराय से मिलने का प्रयास किया, किन्तु इससे पहले कि गांधीजी वायसराय से मिलते, 9 अगस्त, 1942 ई. को गांधीजी तथा कांग्रेस के लगभग सभी प्रमुख नेताओं को बन्दी बना लिया गया। सरकार ने इस समय गांधीजी, नेहरूजी, पट्टाभि सीतारमैय्या, अवुल कलाम आजाद, आसफअली, आचार्य कृपलानी, डॉ. सैयद महमूद, जी. वी. पन्त, डॉ. प्रफुल्ल घोष, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को वन्दी वनाया था। **कांग्रेस को भी गैर-कानूनी संस्था घोषित कर दिया गया।**

आन्दोलन प्रारम्भ
(THE MOVEMENT BEGINS)

सरकार के इस कार्य की सूचना मिलने पर भारतीयों के सब्र का वांध टूट गया तथा जनता ने सरकार के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। समस्त प्रमुख कांग्रेसी नेताओं के अचानक गिरफ्तार कर लिए जाने के कारण जन साधारण व गिरफ्तारी से बच गए कांग्रेसी नेताओं के पास इस आन्दोलन के लिए कोई निर्धारित कार्यक्रम न था। जनता को केवल यह याद था कि महात्मा गांधी ने **'करो या मरो'** (Do or die) का मन्त्र दिया है, अतः सम्पूर्ण भारत में विद्रोह प्रारम्भ हो गए, तथा यह आन्दोलन असंगठित रूप से प्रारम्भ हो गया, **किन्तु शीघ्र ही गिरफ्तारी से बच गए कांग्रेसी नेता जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया तथा अरुणा आसफ अली ने आन्दोलन को संचालित करने का सराहनीय प्रयत्न किया तथा एक पुस्तिका प्रकाशित की जिसमें अहिंसा पर जोर देते हुए इस आन्दोलन से सम्बन्धित 12-सूत्री कार्यक्रम था।** इसमें सम्पूर्ण देश में हड़ताल करने, सार्वजनिक सभाएं करने, नमक वनाने तथा लगान न देने के लिए कहा गया था। सरकार ने इस पत्रिका को भी जब्त करने का प्रयास किया। सरकारी दमन के पश्चात् भी सम्पूर्ण देश में जगह-जगह हड़तालें हुईं, प्रदर्शन किए गए, जलूस निकाले गए। मजदूरों ने हड़तालों को सफल वनाने के विशेष प्रयत्न किए। 11 अगस्त, 1942 ई. को वम्वई में पुलिस ने जनता पर गोलियां चलायीं, जिससे अनेक लोग मारे गए अथवा घायल हुए, अतः आन्दोलन हिंसात्मक स्वरूप धारण करने लगा। जनता ने **'अंग्रेजो भारत छोड़ो'** के नारे लगाते हुए सरकारी इमारतों, नगर निगमों के भवनों, डाकखानों व रेलवे स्टेशनों पर आक्रमण किए तथा आग लगाने के प्रयत्न किए। जेलों को तोड़ दिया गया तथा उत्तर प्रदेश, बिहार व मद्रास के कुछ स्थानों पर अस्थायी सरकार की भी स्थापना की गयी। सरकार ने आन्दोलनकारियों पर और अधिक अत्याचार किए तो आन्दोलनकारियों की ओर से भी जगह-जगह बमों का प्रयोग किया जाने लगा। सितम्बर, 1942 ई. से फरवरी, 1943 ई. तक यह आन्दोलन हिंसात्मक रूप में सारे भारत में चलता रहा, यद्यपि इसकी तीव्रता उत्तर प्रदेश, मध्य प्रान्त व महाराष्ट्र में अन्य स्थानों की अपेक्षा कहीं अधिक थी। समस्त अत्याचारों को सहन करते हुए यह आन्दोलन चलता रहा। डॉ. अम्बा प्रसाद ने **'दि इण्डियन**

रिवोल्ट ऑफ 1942' में लिखा है कि इस आन्दोलन में पुलिस ने 538 बार गोलियां चलायीं तथा कम से कम 7,000 व्यक्ति मारे गए तथा 60,229 व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया। गैर-सरकारी सूत्रों के अनुसार मरने वालों की संख्या 10,000 से 40,000 के मध्य थी। सरकार ने गांधीजी पर इस हिंसात्मक आन्दोलन का नेतृत्व प्रदान करने व अव्यवस्था फैलाने का आरोप लगाया, किन्तु गांधीजी ने वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो को पत्र लिखकर इस आरोप को निराधार बताया तथा कहा कि सरकार की दमन नीति ने ही जनसाधारण को हिंसा के रास्ते पर अग्रसर किया है। गांधीजी ने आन्दोलन के हिंसात्मक होने का प्रायश्चित करने के उद्देश्य से 10 फरवरी, 1943 ई. से 21 दिन का उपवास प्रारम्भ किया, जिसकी देश में तथा विदेशों में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। मुस्लिम लीग के अतिरिक्त सभी दलों ने सरकार से, गांधीजी की अस्वस्थता को देखते हुए, उन्हें रिहा करने का अनुरोध किया, किन्तु सरकार ने इस ओर ध्यान न दिया, किन्तु किसी प्रकार गांधीजी ने 21 दिन का उपवास सकुशल समाप्त किया। बाद में सरकार ने गांधीजी को मई, 1944 ई. में उनकी अस्वस्थता को देखते हुए छोड़ दिया, किन्तु तब तक आन्दोलन अति क्षीण हो चुका था तथा विश्वयुद्ध में इंग्लैण्ड की विजय दृष्टिगत हो रही थी, अतः गांधीजी ने तत्कालीन राजनीतिक स्थिति को देखते हुए यह आन्दोलन समाप्त कर देना ही श्रेयष्कर समझा। शीघ्र ही सभी कांग्रेसी नेताओं को छोड़ दिया गया।

इस आन्दोलन में जयप्रकाश नारायण व अरुणा आसफ अली ने विशेष भूमिका निभायी तथा विद्यार्थियों, किसानों व मजदूरों ने भी प्रशंसनीय कार्य करते हुए स्वतन्त्रता के लिए सरकार का विरोध किया। मुस्लिम लीग ने इस आन्दोलन में भाग नहीं लिया क्योंकि उसके नेता जिन्ना का विचार था कि इस आन्दोलन के द्वारा कांग्रेस भारत में हिन्दुओं का राज्य स्थापित करना चाहती है। कम्युनिस्ट दल ने रूस के इंग्लैण्ड की ओर जाने के वाद सरकार का समर्थन तथा 'भारत छोड़ो आन्दोलन' की आलोचना की। अकालियों व ईसाइयों ने भी इस आन्दोलन का विरोध किया। हरिजन नेता डॉ. अम्बेडकर भी इसके विरोधी थे। पारसियों ने इस आन्दोलन का समर्थन किया।

असफलता के कारण
(CAUSES OF ITS FAILURE)

'भारत छोड़ो आन्दोलन अपने प्रमुख उद्देश्य, अंग्रेजों को भारत के निष्कासित करने में, असफल रहा।' इसकी असफलता का प्रमुख कारण संगठन का अभाव था। कांग्रेस के प्रमुख नेता अचानक गिरफ्तार कर लिए गए थे। अतः वे जनता के समक्ष किसी निर्धारित कार्यक्रम को न रख सके। स्वयं गांधीजी को यह अपेक्षा नहीं थी कि उन्हें अचानक गिरफ्तार कर लिया जाएगा। गांधीजी का विचार था कि सरकार उनसे बातचीत करेगी तथा यदि बातचीत असफल हो गयी तब कुछ कार्यवाही की जाएगी, किन्तु इस कार्यवाही की रूपरेखा किसी कांग्रेसी नेता को ज्ञात न थी। पं. नेहरू ने लिखा है कि यद्यपि गांधीजी सरकार के विरुद्ध कार्यवाही करने की बात करते थे, परन्तु उन्होंने यह निश्चित रूप से नहीं बताया कि वह क्या करना चाहते थे। अतः स्पष्ट है कि **भारत छोड़ो आन्दोलन के कार्यक्रम के विषय में स्वयं गांधीजी स्पष्ट नहीं थे, जबकि एक जन आन्दोलन होने के कारण कार्यक्रम की एक स्पष्ट रूपरेखा नेताओं व जनसाधारण को ज्ञात होना आवश्यक थी।** यही कारण था कि आन्दोलन के प्रारम्भ होने पर जनसाधारण को यह ज्ञात ही नहीं था कि उन्हें आखिर करना क्या है। प्रमुख नेता जेलों में थे तथा शेष नेता भी एकमत न थे, अतः जनता व नेताओं के मध्य समन्वय स्थापित न हो

सका और आन्दोलन हिंसात्मक हो गया। सरकार के पास दमनकारी शक्तियों का अभाव न था।

महत्व
(SIGNIFICANCE)

यद्यपि 'भारत छोड़ो आन्दोलन' अपने प्राथमिक लक्ष्य को तत्काल प्राप्त न कर सका, किन्तु इस आन्दोलन को असफल नहीं कहा जा सकता। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में इस आन्दोलन का विशेष स्थान है क्योंकि इसने भारत की स्वतन्त्रता की पृष्ठभूमि तैयार कर दी तथा अंग्रेजों को भारतीयों की स्वतन्त्रता की प्रवल भावनाओं से अवगत कराया। यह आन्दोलन कुछ नेताओं के द्वारा किया हुआ आन्दोलन न था बल्कि सभी नेताओं के जेलों में होने के वावजूद जनता द्वारा किया गया जन-आन्दोलन था, जिसने विदेशी सत्ता के प्रति अपने आक्रोश को व्यक्त किया तथा विदेशी सत्ता की भारत में जड़ों को हिला दिया। जनसाधारण में व्याप्त आक्रोश को देखकर साम्राज्यवादी समझ गए कि भारत को अधिक समय तक अब अपने साम्राज्य का अंग बनाए रखना सम्भव नहीं है। जनता की राष्ट्रवादी भावनाओं को अधिक दिनों तक शक्ति से दवाए रखना अव अंग्रेजों के लिए सम्भव न था। यह आन्दोलन जनसाधारण में जागृति उत्पन्न करने में असाधारण रूप में सफल रहा। इसी कारण जयप्रकाश नारायण ने इसकी तुलना फ्रांस व रूस में हुई क्रान्तियों से की। डॉ. ईश्वरीप्रसाद ने इस आन्दोलन के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, **"इस आन्दोलन की अग्नि में औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग भस्म हो गयी, भारत अब पूर्ण स्वतन्त्रता से कम कुछ भी स्वीकार करने को तैयार न था। अंग्रेजों का भारत छोड़ना लगभग निश्चित हो गया। यह अंग्रेजी साम्राज्यवाद के लिए तीव्र आघात था।"** डॉ. ईश्वरीप्रसाद ने पुनः लिखा है, **"यह अगस्त क्रान्ति निरंकुशता तथा अत्याचार के विरुद्ध जनता का विद्रोह था। इसकी तुलना फ्रांस में बास्तील के पतन तथा रूस में अक्टूबर क्रान्ति से की जा सकती है। यह जनता में उत्पन्न एक नवीन विश्वास का द्योतक थी।"**[1] इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से असफल होने के पश्चात् भी 'भारत छोड़ो आन्दोलन' भारत को एक नई राजनीतिक दिशा प्रदान करने में सफल रहा।

सुभाषचन्द्र बोस एवं आजाद हिन्द फौज
(SUBASH CHANDRA BOSE AND THE INDIAN NATIONAL ARMY)

सुभाषचन्द्र वोस का जन्म 23 जनवरी, 1897 ई. को कटक में हुआ था। सुभाष के पिता जानकी नाथ और माता प्रभावती थीं। उनके पिता अत्यन्त धनी व्यक्ति थे जो पेशे से वकील थे। सुभाष का बचपन वड़े सुख व लाड़-प्यार से बीता। सुभाष के पिता पर अंग्रेजी सभ्यता का प्रभाव था तथा सुभाष को भी वे उसी तरह अंग्रेजी सभ्यता का पालन करते हुए देखना चाहते थे। इसी कारण उन्हें बचपन में ऐसे विद्यालयों में शिक्षा प्रदान करायी गयी जहां सामान्यतया अंग्रेजों के वच्चे ही अध्ययन करते थे। सुभाष को यह विद्यालय व वहां का अंग्रेजी वातावरण कभी पसन्द नहीं आया। **सुभाष जिस समय शिक्षा ग्रहण कर रहे थे उसी समय बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन चल रहा था। इस आन्दोलन ने बालकं सुभाष के हृदय को**

---

1 "The 'August Revolution' was a revolt of the people against tyranny and oppression and can be compared with the fall of Bastille in the history of France or the 'October Revolution' of Russia. It was symbolic of a new confidence and a new stature that the people had attained."
—Dr. Ishwari Prasad, *History of Modern India*, p. 458.

व्यापक रूप से प्रभावित किया। सुभाषचन्द्र बोस पर विवेकानन्द का भी अत्यधिक प्रभाव हुआ था। उन्हीं के प्रभाव के कारण उन्हें निर्धनों से विशेष प्रेम हो गया था तथा वे सदैव उनकी समस्याओं का समाधान करने का प्रयत्न करते थे। यही नहीं गांवों में महामारी फैलने पर वे गरीबों की सहायता करने के लिए गांव-गांव भी जाते थे।

सुभाषचन्द्र बोस अत्यन्त मेधावी छात्र थे। 1913 ई. में उन्होंने प्रथम श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की, तत्पश्चात् उन्होंने प्रसिद्ध प्रेसीडेंसी कालेज में दाखिला ले लिया तथा 1915 ई. में उन्होंने एफ. ए. की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् वे इसी कालेज से वी. ए. उत्तीर्ण करने के लिए अध्ययन करने लगे। इसी दौरान उनके एक अंग्रेज अध्यापक सी. एस. ओटन ने कक्षा में पढ़ाते हुए एक दिन कहा कि **"यदि अंग्रेज भारत में न आते तो भारतीय सदैव असभ्य ही रहते।"** सुभाष इस बात को सहन न कर सके, परिणामस्वरूप उन्हें कॉलेज से निष्कासित कर दिया गया। लगभग 18 महीने तक कालेज से बाहर रहने के वाद सर आशुतोष मुकर्जी की कृपा से उन्हें पुनः कॉलेज में दाखिला मिल गया। 1918 ई. में सुभाष ने बी. ए. की परीक्षा भी उच्च अंकों के साथ उत्तीर्ण की।

सुभाष के वी. ए. कर लेने के पश्चात् उनके पिता की इच्छा थी कि वे इंग्लैण्ड जाकर आई. सी. एस. (I. C. S.) की परीक्षा उत्तीर्ण कर उच्च अधिकारी वनें, किन्तु सुभाष ऐसा करना नहीं चाहते थे। वे आजीवन अविवाहित रहकर देश की सेवा करना तथा देश को स्वतन्त्र कराना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने अपने मित्र को लिखा, **"देश में चारों ओर अंग्रेज अत्याचार कर रहे हैं। पिताजी की राय है, मैं आई. सी. एस. परीक्षा पास करके एक बड़ा अधिकारी बनूं पर मैं अधिकारी वनकर अपने ही लोगों पर अत्याचार करना नहीं चाहता। मैं क्या करूं? कुछ समझ में नहीं आ रहा है।"** सुभाष के न चाहते हुए भी अन्ततः उन्हें इंग्लैण्ड जाना पड़ा। जहां उन्होंने 1920 ई. में आई. सी. एस. (I. C. S.) परीक्षा उत्तीर्ण की, किन्तु देश प्रेम की भावना के कारण अंग्रेजी शासन के अधीन नौकरी करना स्वीकार न किया। भारत लौटकर मात्र 24 वर्ष की आयु में सक्रिय राजनीति में वे भाग लेने लगे। **उनके राजनीतिक गुरु देशबन्धु चितरंजन दास थे।**

1921 ई. में प्रिंस ऑफ वेल्स (इंग्लैण्ड का राजकुमार) के भारत आगमन पर कांग्रेस ने उनका विरोध किया। कलकत्ता में प्रिंस ऑफ वेल्स के आगमन पर सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में विशाल जुलूस निकला। **अंग्रेजी सरकार उनके इस कार्य से अत्यन्त क्रोधित हुई व उन पर सरकार विरोधी खबरें छापने का आरोप लगा कर उन्हें 1921 ई. में पहली बार छह माह की कैद की सजा दे दी गयी।** सुभाष में संगठन की अद्भुत क्षमता थी तथा उनके भाषण अत्यन्त ओजस्वी होते थे जिन्होंने सम्पूर्ण वंगाल में देशभक्ति को निरन्तर सुदृढ़ किया। अंग्रेजी सरकार उनसे भयभीत रहती थी, इसी कारण उन्हें दस बार जेल में डाला गया व जीवन के लगभग 8 वर्ष उन्हें जेल में ही व्यतीत करने पड़े।

1923 ई. में चितरंजन दास द्वारा स्वराज्य दल की स्थापना किए जाने पर सुभाषचन्द्र बोस को इस दल के महामन्त्री का कार्य सौंपा गया। सुभाषचन्द्र बोस के प्रयत्नों से कलकत्ता नगर निगम के चुनावों में स्वराज्य दल को सफलता मिली। इसी समय सुभाषचन्द्र वोस ने कार्यवाहक अध्यक्ष के रूप में कार्य करते हुए अनेक क्रान्तिकारी कार्य किए। उन्होंने कलकत्ता की सड़कों के नाम अंग्रेजी के नाम से बदल कर भारतीय महापुरुषों के नाम पर कर दिए।

सुभाषचन्द्र वोस कांग्रेस को शक्तिशाली बनाना चाहते थे, पर महात्मा गांधी के विचारों से वे कभी सहमत न हो सके। फिर भी गांधीजी के अनेक आन्दोलनों में उन्होंने भाग लिया था। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान जव महात्मा गांधी ने नमक कानून तोड़ा तो सुभाषचन्द्र बोस ने भी नमक कानून तोड़ा व गिरफ्तार हुए, किन्तु 1934 ई. में महात्मा गांधी द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन को वापिस लिया गया तो उन्होंने महात्मा गांधी की कटु आलोचना की।

1938 ई. में कांग्रेस का अधिवेशन हरिपुरा में हुआ। इसमें अध्यक्ष पद के लिए सुभाषचन्द्र बोस ने गांधीजी की इच्छा के विरुद्ध अपना नामांकन कराया व पट्टाभिं सीता-रमैय्या को हरा कर कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए, किन्तु महात्मा गांधी से वैचारिक मतभेद को देखते हुए उन्होंने अप्रैल, 1939 ई. में कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया व **'फारवर्ड ब्लाक'** (Forward Block) नामक दल बनाया।

सुभाषचन्द्र वोस ने अपने नवगठित फारवर्ड ब्लाक दल के लिए निम्नलिखित **प्रमुख सिद्धान्त** निर्धारित किए :

(i) पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए निरन्तर साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करना।
(ii) प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार दिलाना।
(iii) भारत में समाजवादी राज्य की स्थापना करना।
(iv) देश की आर्थिक उन्नति के लिए उत्पादन को वढ़ाना।
(v) प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान करना।
(vi) भाषा एवं संस्कृति की स्वतन्त्रता।

सुभाषचन्द्र वोस की गतिविधियों व क्रान्तिकारी विचारधारा के कारण सरकार की उन पर कड़ी नजर रहती थी। उनकी गतिविधियों को देखते हुए सरकार ने सुभाषचन्द्र वोस को जुलाई, 1940 ई. में गिरफ्तार कर लिया व कलकत्ता जेल में रखा। इस पर उन्होंने सरकार को पत्र लिखा, **"मुझे स्वतन्त्र कर दो, अन्यथा मैं जीवित रहने से इन्कार कर दूंगा। इस बात का निश्चय करना मेरे हाथ में है कि मैं जीवित रहूं या मैं मर जाऊं।"** इसके साथ ही उन्होंने अनशन करना प्रारम्भ कर दिया। अन्ततः सरकार को विवश होकर उन्हें मुक्त करना पड़ा। सुभाष ने इस समय कहा **"मैं अपने देशवासियों से कहना चाहता हूं की दासता से बड़ा कोई अभिशाप नहीं है, यह हमें कभी नहीं भूलना चाहिए।"**[1] इसके साथ ही सुभाष ने पुनः जन आन्दोलन का कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। अतः सरकार ने उन्हें उनके ही घर में नजरवन्द कर दिया।

नजरवन्द किए जाने से पूर्व सुभाषचन्द्र वोस की भेंट वीर सावरकर से हुई थी। वीर सावरकर ने सुभाषचन्द्र वोस की क्षमता को पहचाना तथा उन्हें छोटे-छोटे आन्दोलनों में अपनी शक्ति व्यय करने के स्थान पर कोई ठोस कार्य करने के लिए कहा। **उन्होंने सुभाषचन्द्र बोस को राय दी कि उन्हें देश से बाहर जाकर अन्य देशों से सहायता लेकर भारत की स्वतन्त्रता के प्रयास करने चाहिए।** सुभाषचन्द्र वोस को वीर सावरकर का यह परामर्श पसन्द आया तथा वे रूस से सहायता मांगने के लिए रूस जाना चाहते थे, किन्तु उससे पूर्व ही उन्हें नजर- बन्द कर दिया गया।

किन्तु सुभाषचन्द्र वोस ने भारत से वाहर जाने की अपनी कोशिश जारी रखी। 17 जनवरी, 1941 ई. की रात (16 व 17 जनवरी के वीच की रात) को एक दाढ़ी वाले मुसलमान के भेष में वे घर से निकल भागे। घर से गोमोह रेलवे स्टेशन (कलकत्ता से 340

1 **"To my Countrymen, I say, forget not that the greatest curse for a man is to remain slave."**

कि. मी.) तक उन्हें उनके भतीजे शिशिर बोस ने कार से पहुंचाया। गोमोह से सुभाष रेल द्वारा पेशावर पहुंचे। इस समय उन्होंने अपना नाम **जियाउद्दीन** रखा था। सुभाषचन्द्र बोस 18 जनवरी की शाम को पेशावर पहुंचे व अपने एक साथी भगतराय के साथ कार से काबुल के लिए चल पड़े। रास्ते में अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए वे 25 जनवरी को काबुल पहुंचे, जहां रात को वे एक सराय में रुके। **उल्लेखनीय है कि भारत में अंग्रेजों को सुभाष के भाग जाने की खबर उस दिन मिली जिस दिन वे काबुल पहुंचे थे।**[1]

यहां पर यह उल्लेख किया जाना भी आवश्यक है कि जिस दिन सुभाषचन्द्र बोस कलकत्ता से भागे थे उनके हृदय में दुविधा थी। वे जाने से पहले अपनी मां (जो उनके साथ ही उनके मकान में थीं) से आशीर्वाद लेना चाहते थे, किन्तु मामले की गम्भीरता को देखते हुए वे मां से बिना कुछ कहे ही चले गये। सुभाषचन्द्र वोस ने लिखा है कि **"मेरे पास एक ही रास्ता बचा था। अपनी मां का आशीर्वाद लिए बिना ही घर छोड़ना मेरे लिए आवश्यक था। अतः मैंने अपनी मां के प्यार को अपने देश के लिए कर्तव्य की वेदी पर बलिदान कर दिया।"**[2]

काबुल में सुभाषचन्द्र बोस का स्वागत इटली के एक मन्त्री अलवर्टो कुरोनी (Alberto Quarroni) ने किया। सुभाषचन्द्र वोस के लिए इटली की सरकार ने ओरलेण्डो मजोटा (Orlando Mazzota) के नाम से एक पासपोर्ट भी तैयार कराया, ताकि आगे की यात्रा सुभाषचन्द्र वोस आसानी से कर सकें। सुभाषचन्द्र वोस ने इटली के मन्त्री अलवर्टो कुरोनी को अपनी योजना से अवगत करांया। **सुभाषचन्द्र बोस ने कहा कि उनका तात्कालिक उद्देश्य स्वतन्त्र भारत की सरकार की स्थापना करना है जिसे :**

(i) इटली, जर्मनी व जापान की सरकारें मान्यता प्रदान करें।
(ii) जर्मनी, इटली व जापान से आर्थिक व हथियारों की सहायता लेना जिसका भुगतान भारत के स्वतन्त्र होने पर किया जाएगा।

यदि उपरोक्त वातों के लिए धुरी शक्तियां (Axis Powers) तैयार हो जाएंगी तो स्वतन्त्र भारत की सरकार तुरन्त काम करना शुरू कर देगी तथा यह सरकार अंग्रेजी साम्राज्य के पतन व उन्हें भारत से निष्कासित करने के लिए निम्नलिखित कार्य करेगी :

(i) रेडियो व पर्चों के द्वारा अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध तीव्र प्रचार करना।
(ii) भारत में क्रान्तिकारियों को संगठित कर उन्हें मदद करना।
(iii) अंग्रेजी सेना में कार्यरत भारतीय सैनिकों को विद्रोह करने के लिए प्रेरित करना।
(iv) द्वितीय विश्वयुद्ध में मध्यपूर्व में लड़ रही अंग्रेजी सेना के लिए भारत से खाद्य व हथियारों की आपूर्ति को रोकना।
(v) उचित समय आने पर भारत में हथियार पहुंचा कर वहां क्रान्ति करना।

इटली के मन्त्री अलवर्टो कुरोनी ने सुभाषचन्द्र बोस की योजना को सराहा व सहायता करने का आश्वासन दिया। तत्पश्चात् 18 मार्च, 1941 ई. को सुभाषचन्द्र वोस रूस से सहायता लेने के उद्देश्य से काबुल से मास्को पहुंचे, किन्तु इसी वीच जर्मनी द्वारा रूस पर

1 "There was only one course open to me. I must leave home without seeking my mothers blessings. I sacrificed my mother's love at the altar of my duty to the mother land." —Quoted from Capt. G. S. Singh's—*Indian National Army—Role in India's Struggle for Freedom*, pp. 21-22.

2 "In India, the authorities came to know of the bird having flitted the cage only when Subhas failed to appear in a local court at Calcutta. This incidentally was the date on which Bose reached Kabul." —*The Indian National Army*, p. 18.

आक्रमण कर दिए जाने के कारण रूस मित्र राष्ट्रों से मिल गया, अतः रूस से सहायता मिलने की सुभाषचन्द्र वोस की आशा पर तुषारापात हो गया, किन्तु मास्को में सुभाषचन्द्र वोस की भेंट जर्मनी के राजदूत से हुई व 28 मार्च, 1941 ई. को हवाई जहाज से वह वर्लिन पहुंचे जहां उनका भव्य स्वागत हुआ। वर्लिन में ही उनकी मुलाकात कु. एमिली शेन्केल (Miss Emily Schenkel) से हुई जिन्होंने सुभाषचन्द्र बोस की सेक्रेटरी के रूप में कार्य करना स्वीकार किया।

सुभाषचन्द्र वोस ने अपनी योजना से जर्मन सरकार को भी अवगत कराया, जिसका जर्मन सरकार ने स्वागत किया।[1] **तव सुभाषचन्द्र बोस ने फ्री इण्डिया सेन्टर (Free India Centre) की स्थापना की तथा इसके निम्नलिखित उद्देश्य घोषित किए गए :**

(i) भारतीयों को यह समाचार देना किं सैन्य राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया गया है।
(ii) भारत की आजादी के लिए एक स्वतन्त्र सेना की स्थापना करना।
(iii) भारत के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए योजना वनाने हेतु एक पृथक् इकाई की स्थापना करना।

इस फ्री इण्डिया सेन्टर की प्रथम बैठक 2 नवम्बर, 1941 ई. को हुई जिसमें निम्नलिखित निर्णय लिए गये :

(i) सुभाषचन्द्र बोस इस संस्था के अध्यक्ष होंगे व उन्हें भविष्य में **'नेताजी'** के नाम से पुकारा जाएगा।
(ii) स्वतन्त्र भारत के राष्ट्रीय गान के रूप में रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा रचित **'जन गण मन'** नामक गीत को स्वीकार किया गया।
(iii) रोमन लिपि में हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग किया जाएगा।
(iv) अभिवादन के लिए **'जय हिन्द'** का प्रयोग किया जाएगा।

इसी बीच जापान ने सिंगापुर पर अधिकार करके अंग्रेजी साम्राज्यवाद को गम्भीर आघात पहुंचाया। इसमें हजारों भारतीय सैनिकों को जापान द्वारा वन्दी बना लिया गया, अतः सुभाषचन्द्र वोस ने तत्काल जापान के लिए प्रस्थान किया।

टोकियो सम्मेलन
(TOKYO CONFERENCE)

वीसवीं शताब्दी के प्रथम एवं द्वितीय दशक के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रास विहारी वोस भारत से भागकर जापान में जाकर वस गये थे तथा वहीं रहते हुए भारतीय क्रान्तिकारियों की मदद करते थे। उन्हीं के प्रयत्नों से 28 मार्च से 30 मार्च, 1942 तक टोकियो में एक सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए **एक सेना को संगठित करने का निर्णय किया गया।** इसके साथ ही एक **'इण्डिया इण्डिपेण्डेन्स लीग'** की स्थापना की गई। इस सम्मेलन में यह भी निर्णय लिया गया कि जून, 1942 ई. में वैंकाक (थाईलैण्ड) में पुनः एक सम्मेलन आयोजित किया जाएगा।

1 सुभाषचन्द्र वोस ने 'आजाद हिन्द रेडियो' को भी प्रारम्भ किया। इस पर पहली वार 7 जनवरी, 1942 ई. को कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। —कैप्टेन गुरुवचन सिंह, इण्डियन नेशनल आर्मी, पृ. 53.

बैंकाक सम्मेलन
(BANGKOK CONFERENCE)

23 जून, 1942 ई. को बैंकाक का सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। इस सम्मेलन में एशिया के विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था।[1] इस सम्मेलन की अध्यक्षता रास बिहारी बोस ने की। इस सम्मेलन में 'इण्डिया इण्डिपेण्डेन्स लीग' के लिए कुछ सुझाव एवं सिद्धान्त निर्धारित किए गये। **जिनमें प्रमुख निम्नवत थे :**

(i) एकता, विश्वास तथा त्याग (Unity, faith and Sacrifice) इस लीग का नारा (Motto) होगा।
(ii) भारत अविभाज्य है।
(iii) लीग का प्रत्येक कार्य धर्म निरपेक्ष होगा।

आजाद हिन्द फौज का गठन—इसी बीच जापान में कप्तान मोहन सिंह ने फरवरी 1942 ई. में आजाद हिन्द फौज की स्थापना कर ली थी। कप्तान मोहनसिंह पहले ब्रिटिश भारतीय सेना में था, जिसे जापानियों ने वन्दी बनाया था। जापान में एक सिख साधु ज्ञानी प्रीतम सिंह व जापानी अफसर मेजर फूजीहारा के समझाने पर वह अंग्रेजों के विरुद्ध हो गया था। सिंगापुर में वन्दी बनाये गये भारतीय सैनिकों को जापान ने कप्तान मोहनसिंह को सौंप दिया था, जिसने उनकी सहायता से यह फौज वनायी थी। इस सेना का उद्देश्य सिर्फ भारत की मुक्ति के लिए संघर्ष करना था।

टोकियो एवं बैंकाक सम्मेलन में भी भारतीय स्वतन्त्रता के लिए एक सेना का गठन करने का निर्णय लिया गया था। इस सन्दर्भ में अयोध्यासिंह ने लिखा है, **"भारतीय सैनिकों और पूर्व एशिया के भारतीय नागरिकों को लेकर भारतीय राष्ट्रीय सेना बनाई जाए। कप्तान मोहनसिंह भारत के इस मुक्ति सेना के प्रधान सेनापति होंगे। 'इण्डिया इंडिपेण्डेन्स लीग' आजाद हिन्द फौज के लिए जरूरी धन, जन और सामान का इन्तजाम करेगी।"**

आजाद हिन्द फौज को प्रारम्भ में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। अतः आजाद हिन्द फौज को सशक्त बनाने के लिए रास विहारी वोस ने उसके संचालन का कार्य सुभाषचन्द्र वोस को सौंपने का निर्णय लिया। 2 जुलाई, 1943 ई. को सुभाषचन्द्र वोस ने आजाद हिन्द फौज का नेतृत्व सम्हाला तथा उन्हें **'स्वाधीनता लीग'** का अध्यक्ष बनाया गया तथा उन्हें **'नेताजी'** कहा गया। आजाद हिन्द फौज का नेतृत्व सम्हालते समय घोषणा की कि वे स्वतन्त्र भारत की अस्थायी सरकार की स्थापना तथा आजाद हिन्द फौज का संगठन करेंगे। इस समय उन्होंने पुनः घोषणा की, **"ईश्वर के नाम पर मैं पवित्र शपथ लेता हूं कि मैं भारत और उसके 38 करोड़ लोगों को स्वतन्त्र कराऊंगा और मैं इस पवित्र युद्ध को अपने जीवन की अन्तिम सांस तक जारी रखूंगा।"** उन्होंने पुनः कहा मैं स्वयं को अपने अड़तीस करोड़ देशवासियों का सेवक समझता हूं। मैं अपने कर्तव्यों का पालन इस प्रकार करूंगा ताकि प्रत्येक के हित मेरे हाथों में सुरक्षित रहें व वे मुझ पर विश्वास कर सकें।[2]

21 अक्टूबर, 1943 ई. को सुभाषचन्द्र वोस ने **'अस्थाई सरकार'** की स्थापना की जिसमें सुभाषचन्द्र वोस इस सरकार के सर्वोच्च अधिकारी व सेना के सुप्रीम कमाण्डर वने। वित्त

---
1 इस सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रमुख देश थे—वर्मा, मलाया, चीन, जापान, थाईलैण्ड, हांगकांग, फिलीपीन।
2 "I regard myself as the servant of thirty-eight crores of my countrymen who profess defferent religious faiths. I am determined to discharge my duties in such a manner that the interests of these thirty-eight crores may be safe in my hands and that every single Indian will have reason to put complete trust in me."

विभाग श्री ए. सी. चटर्जी, प्रचार एस. ए. अय्यर तथा स्त्रियों का विभाग लक्ष्मी स्वामीनाथन को सौंपा गया। आजाद हिंद फौज को शक्तिशाली वनाने के लिए सुभाषचन्द्र वोस को धन की आवश्यकता थी। अतः उन्होंने जनता से आर्थिक सहायता करने की अपील की। जनता ने अत्यन्त उदारता से उनकी आर्थिक सहायता की, किन्तु उच्च वर्ग ने उनकी विशेष सहायता नहीं की। सुभाषचन्द्र वोस ने ऐसे लोगों को चेतावनी भी दी कि जो लोग अंग्रेजों का साथ देंगे उनके लिए स्वतन्त्र भारत में कोई स्थान नहीं होगा।[1]

सुभाषचन्द्र वोस द्वारा स्थापित अस्थाई सरकार को जापान, जर्मनी, चीन, इटली, कोरिया, फिलीपीन व आयरलैण्ड, आदि अनेक देशों की सरकारों ने मान्यता दे दी। जापान सरकार ने अण्डमान निकोवार द्वीप भी इस अस्थाई सरकार को सौंप दिए। दिसम्वर, 1943 ई. में वहां तिरंगा झंडा फहराया गया तथा इस सरकार की राजधानी रंगून को वनाया गया।

सुभाषचन्द्र वोस ने आजाद हिन्द फौज का स्वयं निरीक्षण करके उसका पुनर्गठन किया। इस सेना के तीन ब्रिगेंड सुभाष, गांधी व नेहरू ब्रिगेड थे। स्त्रियों ने भी इस सेवा के कार्यों में भाग लिया व **'झांसी की रानी रेजीमेन्ट'** तैयार की।

सुभाषचन्द्र वोस ने **'दिल्ली चलो'** का नारा दिया तथा आजाद हिन्द फौज ने 4 फरवरी, 1944 ई. को रंगून से प्रस्थान किया तथा वर्मा में अंग्रेजों को हराने के पश्चात् भारत में प्रवेश किया। एक अन्य मोर्चे पर आजाद हिन्द फौज ने चीन की पहाड़ियों पर ब्रिटिश सेना को पराजित किया तथा कोहिमा पर अधिकार कर लिया। कुछ समय पश्चात् ही आजाद हिन्द फौज इम्फाल तक पहुंच गयी तथा 7 अप्रैल, 1944 ई. को वहां आक्रमण करने की योजना वनायी गयी, किन्तु भारी वर्षा के कारण ऐसा करना सम्भव न रहा। 22 सितम्वर, 1944 ई. को सुभाषचन्द्र वोस ने **'शहीद दिवस'** मनाया तथा घोषणा की **"हमारी मातृभूमि स्वतन्त्रता की खोज में है। तुम मुझे अपना खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा।"**[2] किन्तु दुर्भाग्यवश उनका यह स्वप्न पूरा न हो सका। विश्वयुद्ध में परिस्थितियां तेजी से इंग्लैण्ड के हित में होती जा रही थीं। 7 मई, 1945 ई. को जर्मनी ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। 13 अगस्त, 1945 ई. को अमेरिका द्वारा जापान में हिरोशिमा व नागासाकी स्थानों पर परमाणु वम गिराये जाने से जापान ने भी पराजय स्वीकार कर ली। अंग्रेजों ने पुनः खोए हुए प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। इसी समय सुभाषचन्द्र वोस ने सैगोन से टोकियो के लिए प्रस्थान किया, किन्तु दुर्भाग्यवश 18 अगस्त, 1945 ई. को **थाई होकू** (Thaihoku) हवाई अड्डे के पास दिन में लगभग 2.40 वजे उनका वायुयान दुर्घटनाग्रस्त हो गया जिसमें उनकी मृत्यु हो गयी।

सुभाषचन्द्र वोस की मृत्यु के विषय में लोगों में मतभेद है। अनेक लोगों का मानना है कि वास्तव में इस दुर्घटना में उनकी मृत्यु नहीं हुई थी, किन्तु यह विचार उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि प्रथम तो देश के स्वतन्त्र हुए विना ही सुभाषचन्द्र वोस जीवित रहते हुए भी कहीं छिपे रहते यह उनके व्यक्तित्व के अनुकूल नहीं है। सुभाषचन्द्र वोस को भारत से इतना प्यार था कि यदि वे जीवित होते तो निश्चित रूप से पुनः भारत की स्वतन्त्रता के लिए वे पुनः संघर्ष करते। इसके अतिरिक्त जिस समय उनका वायुयान दुर्घटनाग्रस्त हुआ था उनके

1 **"But remember this, when the war is over and India becomes independent, you shall have no room in free India."**

2 **"I demand of you blood, it is the blood alone that can avenge the blood that the enemy has split. It is blood alone that can pay the price of freedom, Give me blood and I promise you freedom."**

साथ कर्नल हबीब थे जो कि जीवित वच गये थे। कर्नल हवीव के अनुसार दुर्घटना के पश्चात् सुभाष जीवित थे, किन्तु लगभग 6 घण्टे पश्चात् रात्रि 9 बजे अस्पताल में उनकी मृत्यु हो गयी। हवीब के अनुसार मृत्यु से पहले सुभाषचन्द्र वोस ने कहा, **"हबीब मेरा अन्त निकट है। अपने देश को स्वतन्त्र कराने के लिए मैंने जीवन भर संघर्ष किया है। मैं अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए मर रहा हूं। जाओ और मेरे देशवासियों से भारत की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष जारी रखने को कहो। भारत स्वतन्त्र होगा, शीघ्र ही।"**[1] ये सुभाषचन्द्र बोस के अन्तिम शब्द थे। आजाद हिन्द फौज के सैनिक देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत थे, किन्तु अनेक विद्वानों ने भारतीयों द्वारा जापान तथा फासीवादी ताकतों से सहायता लेकर भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्त करने के तरीके की आलोचना की है, किन्तु आजाद हिन्द फौज के महत्व को नकारना निश्चित रूप से उसके सेनानियों के प्रति अन्याय करना होगा। हमें यह याद रखना चाहिए कि विश्वयुद्ध के दौरान व भारत छोड़ो आन्दोलन के असफल हो जाने पर आजाद हिन्द फौज व सुभाषचन्द्र वोस ने ही भारतीयों को आशा की किरण दिखाई थी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आजाद हिन्द फौज ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा।

सुभाषचन्द्र बोस भारत के एक अमर सपूत थे। उनकी असामयिक मृत्यु ने सम्पूर्ण विश्व को शोक के सागर में डुबो दिया था। राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था, **"सुभाषचन्द्र बोस की मृत्यु देश के लिए एक अत्यन्त दुःखद घटना है। ऐसे लोग वहुत कम पैदा होते हैं, किन्तु जब उनकी मृत्यु होती है तो उससे उत्पन्न हुआ रिक्त स्थान आसानी से भरता नहीं है।"**[2]

हिटलर ने भी सुभाषचन्द्र वोस की प्रशंसा करते हुए कहा था, **"नेताजी का महत्व मुझसे भी अधिक है। में केवल 8 करोड़ लोगों का नेता हूं जवकि वह 40 करोड़ लोगों के। प्रत्येक दृष्टिकोण से वह मुझसे बेहतर नेता व बेहतर सेनापति हैं। मैं तथा जर्मनी उनके आगे नतमस्तक हैं।"**[3]

सुभाषचन्द्र बोस के असाधारण कार्यों के कारण ही कुछ इतिहासकारों ने उन्हें **'भारतीय नेपोलियन'** कहा है।[4]

मुकदमा
(I. N. A. TRIALS)

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर आजाद हिन्द फौज के कुछ अफसरों पर मुकदमा चलाया गया तो सम्पूर्ण भारत में इसका विरोध हुआ। **शाहनवाज खां, प्रेम सहगल तथा गुरुबख्श सिंह ढिल्लों** पर कोर्ट मार्शल का मुकदमा लाल किला दिल्ली में चला। इस कोर्ट के अंध्यक्ष (President) मेजर जनरल ब्लेक्शलैण्ड (Blaxlend), सदस्य-ब्रिगेडियर बार्क (Bourke), ले. कर्नल स्टाट (Stott), ले. कर्नल स्टीवेन्सन (Stevenson), ले. कर्नल नासिर अली खान मेजर

1 "Habib, my end is coming very soon. I have fought all my life for my country's freedom. I am dying for my country's freedom. Go and tell my countrymen to continue the fight for India's freedom. India will be free and before long." Quoted from P. D. Saggi's *Life and Work of Netaji Subhash Chandra Bose*, p. 72.

2 "The death of Subhash Chandra Bose was a great calamity to the Country such men are seldom born and when they go away, the gap that they leave is not easily hilled." —*Rajendra Prasad.*

3 "The value of your Netaji is even more than mine. I am a leader of only 80 million German while is the leader of 400 million Indians. In all respects he is a better leader and a better General than myself. I salute him and Germany salutes him." —*Hitler*

4 P. D. Saggi *op. cit.* p. i.

प्रीतम सिंह व मेजर वनवारी लाल थे। इन मुकदमों में सरकारी वकील सर एन. पी. इंजीनियर (तत्कालीन एडवोकेट जनरल) व ले. कर्नल पी. वाल्श थे। जवकि आजाद हिन्द फौज के अफसरों की ओर से पैरवी करने के लिए न केवल भारत के प्रसिद्ध वकीलों ने वरन् पं. जवाहर लाल नेहरू व जिन्ना ने वर्षों वाद पुनः वकीलों का काला गाउन पहना। इनके अतिरिक्त अन्य प्रमुख सफाई वकील थे—सर तेज वहादुर सप्रू, कैलाश नाथ काट्जू, रायबहादुर वद्रीदास, आसिफ अली, पी. एन. सेन, इत्यादि। **आजाद हिन्द फौज के तीनों ही अफसरों पर ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध करने तथा कुछ व्यक्तियों की हत्या करने का आरोप लगाया गया था।**[1]

सफाई पक्ष के वकीलों की वजनदार दलीलों के पश्चात् भी इन तीनों अधिकारियों को मृत्युदण्ड की सजा सुनाई गई। इस खवर से सम्पूर्ण भारत में आक्रोश उत्पन्न हो गया तथा विवश होकर वायसराय को अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग कर उन्हें मुक्त करने के आदेश देने पड़े। सम्भवतः सरकार को यह विश्वास होने लगा था कि शक्ति के द्वारा अव और दमन करना सम्भव न था, क्योंकि भारतीय सेना भी इन तीनों व्यक्तियों को मुक्त कर दिये जाने के पक्ष में थी। अतः सरकार को यह स्पष्ट हो गया था कि शक्ति का प्रयोग करने पर सेना भी विद्रोह कर सकती थी। आजाद हिन्द फौज का भारतीय सैनिकों पर प्रभाव पड़ने के कारण ही सम्भवतः ऐसा हुआ था।

शाहनवाज खां, प्रेम सहगल व गुरुवख्श सिंह के मुक्त होने पर उनका हार पहना कर भव्य स्वागत किया गया। इस अवसर पर कहा जाता है कि इंगलैण्ड के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री चर्चिल ने अपनी नाराजगी व्यक्त करते हुए कहा था कि वास्तव में उनके गले में हार नहीं वरन् फांसी का फन्दा होना चाहिए था।

शाहनवाज खां, ढिल्लों व सहगल की रिहाई के समर्थन में जनसाधारण में उत्पन्न सरकार विरोधी आक्रोश से आजाद हिन्द फौज की लोकप्रियता एवं भारतीयों पर प्रभाव स्पष्ट हो जाता है।

यहां उल्लेखनीय है कि उपरोक्त अधिकारियों के अतिरिक्त भी आजाद हिन्द फौज के कुछ सैनिकों पर मुकदमा चलाया गया था जिनमें प्रमुख थे—ले. कर्नल वदरुद्दीन, मेजर राममोहन सिंह, कैप्टन शिंगारा सिंह तथा फतेह मोहम्मद, आदि। इन लोगों को तीन साल से सात वर्षों तक की सजा दी गई थी, किन्तु 1947 ई. में भारत के स्वतन्त्र होने पर इन्हें मुक्त किया गया।

जल एवं वायु सेना के विद्रोह
(REVOLTS OF NAVY AND AIR FORCE)

आजाद हिन्द फौज के प्रभाव के परिणामस्वरूप, भारतीय सेना में भी अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की भावना प्रबल होने लगी। सर्वप्रथम जनवरी, 1946 ई. में एकसमान (अंग्रेज व भारतीय अधिकारी) अधिकारों की मांग को लेकर वायु सेना के सैनिकों ने वम्वई में विद्रोह किया। अगले ही माह फरवरी, 1946 ई. में नौ-सेना ने भी विद्रोह कर दिया। नौ-सेना के जहाज 'तलवार' पर भारतीय सैनिकों ने यह विद्रोह प्रारम्भ किया था। भारतीय तथा अंग्रेज अधिकारियों को मिलने वाली सुविधाओं में वहुत अन्तर थां, यहां तक कि भारतीय सैनिकों को भोजन भी अच्छा प्राप्त नहीं

1 उल्लेखनीय है इन अफसरों पर जिन लोगों की हत्या का आरोप लगाया गया था वे सव भारतीय थे। शाहनवाज खां पर—आया सिंह, खजिन शाह व मो. हुसैन; सहगल पर—हरि सिंह, धर्म सिंह, दुली चन्द; गुरुवख्श सिंह पर—धर्म सिंह, [illegible] की हत्या का आरोप लगाया गया था।

होता था। खराब भोजन की शिकायत करने व अंग्रेज अधिकारियों द्वारा अपमानित किए जाने पर 'तलवार' जहाज के सैनिकों ने विद्रोह कर दिया व 18 फरवरी, 1946 ई. को हड़ताल पर चले गए। इस प्रकार बम्बई में खड़े इस जहाज की हड़ताल शीघ्र ही भारत के अन्य भागों में फैल गयी। करांची व मद्रास में जहाज़ों से इंग्लैण्ड के झण्डे हटा दिये गये तथा कांग्रेस, मुस्लिम लीग एवं कम्युनिस्ट दल के झण्डे फहराए गए तथा इन्कलाब जिन्दाबाद, जय हिन्द, हिन्दू-मुस्लिम एक हों, ब्रिटिश साम्राज्यवाद मुर्दाबाद के नारे लगाए गए। बम्बई में जनता ने भी इन सैनिकों का पूर्ण समर्थन किया। सरकार ने इस विद्रोह के दमन हेतु सेना भेजी, किन्तु उन्होंने हथियार उठाने से इन्कार कर दिया। अतः अंग्रेज सैनिकों को बुलाया गया तथा दोनों ओर से खूब गोलियां चलीं। कम्युनिस्ट दल ने इन सैनिकों की अत्यन्त सहायता की। 22 फरवरी, 1946 ई. को इस विद्रोह के समर्थन में हड़ताल हुई, जिसमें 20 लाख से भी अधिक श्रमिकों ने भाग लिया। पुलिस व सेना ने श्रमिकों व जनता पर गोलियां चलायीं। इन परिस्थितियों में विद्रोही सैनिकों पर कांग्रेस के नेता के रूप में वल्लभ भाई पटेल व मुस्लिम लीग ने दबाव डालकर यह विद्रोह समाप्त करा दिया। हड़ताल कमेटी के अध्यक्ष की हड़ताल समाप्त करने से पूर्व की गयी घोषणा उल्लेखनीय है। उसने कहा, **''हम भारत के समक्ष आत्म-समर्पण कर रहे हैं, ब्रिटेन के सामने नहीं।''** कांग्रेस के नेताओं ने इन सैनिकों को आश्वासन दिया था कि उन पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं होने दिया जाएगा, किन्तु हड़ताल समाप्त करने के कुछ समय पश्चात् ही अनेक व्यक्तियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

यद्यपि यह विद्रोह असफल ही समाप्त हो गया, किन्तु इसने तथा इसको मिलने वाले जन समर्थन ने स्पष्ट कर दिया कि भारत में ब्रिटिश शासन अब अधिक दिनों तक चलने वाला नहीं है। भारतीय अब और अधिक शोषण के लिए तैयार नहीं हैं।

विभाजन की भूमिका, विभाजन एवं स्वतन्त्रता-प्राप्ति
(PRELUDE TO DIVISION, THE DIVISION AND THE INDEPENDENCE)

क्रिप्स आयोग के असफल वापस इंग्लैण्ड लौट जाने, भारत छोड़ो आन्दोलन के प्रारम्भ किए जाने से पूर्व ही कांग्रेस के समस्त प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारी तथा जनता द्वारा किए गए आन्दोलन का सरकार द्वारा दमन किए जाने से, भारत की राजनीतिक स्थिति में कोई परिवर्तन न आ सका। जनसाधारण में आक्रोश पूर्ववत् व्याप्त था, किन्तु भारतीय नेता व जनता को अपने अगले कदम का ज्ञान न था। कांग्रेस के विरोधी दलों को प्रोत्साहन देना भी प्रारम्भ कर दिया था। इस स्थिति से मुस्लिम लीग ने लाभ उठाया व जिन्ना की पाकिस्तान बनाने की मांग और भी सशक्त हो गयी। इस प्रकार उत्पन्न राजनीतिक गतिरोध को दूर करने का मद्रास प्रान्त के प्रमुख एवं यथार्थवादी नेता, सी. राजगोपालाचारी ने प्रयत्न किया। सी. राजगोपालाचारी ने एक प्रस्ताव 1942 ई. में कांग्रेस के समक्ष रखा जिसमें भारत के विभाजन का प्रस्ताव था, किन्तु कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। भारत में उत्पन्न साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने के लिए राजगोपालाचारी ने पुनः एक प्रस्ताव 1943 ई. में तैयार किया तथा गांधीजी से स्वीकृत कराके 1944 ई. में उसे प्रकाशित कराया। **यह प्रस्ताव, सी. आर. प्रस्ताव या सी. आर. फार्मूला (C. R. formula) के नाम से विख्यात है। इसमें निम्नलिखित प्रमुख बातें थीं :**

(i) मुस्लिम लीग भारतीय स्वतन्त्रता की मांग का समर्थन करेगी।

(ii) द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् एक आयोग उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्वी भारत में उन क्षेत्रों को निर्धारित करेगा जहां मुसलमान स्पष्ट बहुमत में हैं। उस क्षेत्र में जनता द्वारा यह निर्णय किया जाएगा कि वे भारत में रहना चाहते हैं अथवा पृथक् होना।

(iii) देश के विभाजन की स्थिति में आवश्यक विषयों—प्रतिरक्षा, व्यापार, आवागमन तथा संचार, आदि के लिए समझौता किया जाएगा।

(iv) ये सभी शर्तें तभी स्वीकृत होंगी जब अंग्रेज भारत को मुक्त कर देंगे।

इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए, सी. राजगोपालाचारी के अनुरोध पर, गांधीजी ने अनेक नेताओं के विरोध के पश्चात् भी, जिन्ना से 9 सितम्बर, 1944 ई. से 27 सितम्बर, 1944 ई. के मध्य अनेक वार विचार-विमर्श किया, **किन्तु जिन्ना ने सी. आर. प्रस्तावों को निम्नलिखित कारणों से स्वीकार नहीं किया :**

(i) जिन्ना पाकिस्तान में सम्पूर्ण वंगाल, असम, सिन्ध, पंजाव, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त तथा बलूचिस्तान तथा पूर्वी एवं पश्चिमी पाकिस्तान को जोड़ने के लिए रास्ता भी चाहते थे।

(ii) जनमत में मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों को भी इस प्रान्त में मत देने का अधिकार था। जिन्ना ने सिर्फ मुसलमानों से मत जानने पर बल दिया।

(iii) जिन्ना ने संयुक्त रक्षा, व्यापार, संचार सम्बन्धी आयोग का विरोध किया।

(iv) **जिन्ना पहले भारत का विभाजन चाहते थे, तत्पश्चात् स्वतन्त्रता, किन्तु कांग्रेस विभाजन की बात स्वतन्त्रता के प्राप्त कर लेने के बाद करने में इच्छुक थी।** अतः जिन्ना ने यह कहकर इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया कि इसमें **'गाड़ी को घोड़े के आगे'** लगाया गया है। इसके अतिरिक्त, गांधीजी मुसलमानों के लिए अलग राष्ट्र के पक्ष में न थे। वह विभाजन के लिए तो तैयार थे, किन्तु उसी प्रकार जैसे किसी संयुक्त परिवार के सदस्यों में सम्पत्ति का बंटवारा होता है। जिन्ना मुसलमानों के लिए स्वतन्त्र राष्ट्र की स्थापना करना चाहते थे।

उपर्युक्त आपत्तियों के कारण जिन्ना ने सी. आर. प्रस्तावों को ठुकरा दिया। सरकार भी मुसलमानों को अपने पक्ष में रखने के लिए, जिन्ना को पाकिस्तान की मांग के लिए प्रेरित कर रही थी। अतः जिन्ना प्रभावशाली होता जा रहा था। इसी समय गांधीजी के जिन्ना से बातचीत करने के प्रयास से उसका महत्व और भी बढ़ गया तथा वह अपनी पाकिस्तान की मांग के लिए और भी अड़ गया। **अनेक आधुनिक विद्वानों का विचार है कि पाकिस्तान की स्थापना के लिए जिन्ना उत्तरदायी नहीं था और न ही वह पाकिस्तान बनाना चाहता था, किन्तु इस बात को स्वीकार नहीं किया जा सकता।** यदि जिन्ना पाकिस्तान नहीं बनाना चाहता था तो और क्या चाहता था? प्रत्येक विचार-विमर्श के समय उसने पाकिस्तान की मांग को सर्वोपरि माना। 1946 ई. में हुए चुनावों में मुस्लिम लीग की सफलता के पश्चात् तो उसकी यह मांग और मजबूत हो गयी। जहां तक पाकिस्तान की स्थापना का प्रश्न है, यह सही है कि उसके लिए सिर्फ जिन्ना ही उत्तरदायी नहीं था। अंग्रेजी सरकार की नीतियां, तत्कालीन परिस्थितियां, आदि अन्य अनेक ऐसे कारण थे, जिन्होंने भारत के विभाजन में सहायता की।

शिमला सम्मेलन/वेवल योजना
(SHIMLA CONFERENCE/ WAVELL PLAN)

1943 ई. में लॉर्ड लिनलिथगो के कार्यकाल की समाप्ति पर लॉर्ड वेवल भारत के नए वायसराय बने। उन्होंने भारत की स्थिति को सुधारने के लिए मई, 1944 ई. में महात्मा गांधी को रिहा किए जाने के आदेश दिए। भारतीयों में व्याप्त जन आक्रोश, अमरीका, आदि देशों

के राजनीतिक दबाव तथा विश्वयुद्ध की स्थिति तथा इस सम्भावना से कि जापान के विरुद्ध युद्ध एक-दो वर्ष और चलेगा तथा उसमें भारतीयों का सहयोग आवश्यक है, आदि विचारों को ध्यान में रखते हुए लार्ड वेवल ने 14 जून, 1945 ई. को **वेवल योजना** (Wavell Plan) की घोषणा की, जिसका उद्देश्य भारत में संवैधानिक गतिरोध को दूर करना था। इस योजना पर विचार करने के लिए लॉर्ड वेवल ने 25 जून, 1945 ई. को एक सम्मेलन शिमला में बुलाया, जिसमें कांग्रेस व मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त अकाली नेता मास्टर तारासिंह भी थे। इसके साथ ही वेवल ने सभी कांग्रेसी नेताओं को रिहा करने के भी आदेश दिए। यह सम्मेलन 14 जुलाई, 1945 ई. तक चला। **वेवल योजना की प्रमुख बातें निम्न थीं :**

(i) भारत सरकार भारत के प्रमुख सम्प्रदायों की सहमति के बिना कोई परिवर्तन नहीं करेगी। यदि भारतीय पहले जापान के विरुद्ध युद्ध में सहयोग देने के लिए तथा तत्पश्चात् भारत के पुनर्निर्माण के लिए राजी हों तो, सरकार आवश्यक कदम उठाने के लिए तैयार है तथा वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् में भी उसके अतिरिक्त सभी भारतीयों को रखने के लिए राजी है।

(ii) वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् में मुसलमानों व सवर्ण हिन्दुओं की संख्या बराबर होगी।

(iii) ब्रिटिश सरकार का लक्ष्य भारत को स्वशासन की ओर अग्रसर करना है।

(iv) वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् अस्थायी राष्ट्रीय सरकार की भांति होगी।

(v) इन प्रस्तावों का भारत के भावी संविधान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

यह सम्मेलन 14 जुलाई, 1945 ई. को असफल समाप्त हो गया। यद्यपि कांग्रेस ने कार्यपरिषद् में हिन्दुओं व मुसलमानों की बराबर संख्यां को इसलिए स्वीकार कर लिया कि इससे भारत को स्वतन्त्रता जल्दी मिल जाती, किन्तु जिन्ना ने कहा कि कार्यकारी परिषद् में समस्त मुसलमान प्रतिनिधि मुस्लिम लीग के द्वारा ही मनोनीत होने चाहिए, क्योंकि मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने वाली वही एक संस्था है। **इस बात को स्वीकार करने का अर्थ यह था कि इससे कांग्रेस का राष्ट्रीय स्वरूप समाप्त हो जाता तथा उसका स्वरूप एक हिन्दू-संस्था के रूप में प्रमाणित हो जाता।** इसके साथ ही कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद भी वायसराय की कार्यकारी परिषद् के सदस्य नहीं बन सकते थे। कांग्रेस भी एक-दो राष्ट्रीय मुसलमानों को कार्यकारी परिषद् में अपने प्रतिनिधि के रूप में भेजना चाहती थी, किन्तु जिन्ना इस बात को मानने के लिए तैयार न हुए। **इसी समय इंग्लैण्ड की राजनीतिक स्थिति में भी परिवर्तन हो रहा था।** चर्चिल इंग्लैण्ड का प्रधानमन्त्री था तथा लेबर दल अलग हो चुका था। चर्चिल को आगामी चुनावों में भी सफल होने की आशा थी तथा वह मुस्लिम लीग के सहयोग के बिना भारत में अस्थायी सरकार बनाने के पक्ष में न था, अतः वेवल ने, भारत सचिव के परामर्श को मानकर, 14 जुलाई, 1945 ई. को शिमला सम्मेलन की समाप्ति की घोषणा कर दी। इस सम्मेलन की असफलता के लिए वायसराय वेवल भी उत्तरदायी था। **जिन्ना को 'वीटो' जैसा अधिकार देकर, इस सम्मेलन में विचार-विमर्श करना तथा फिर यह अपेक्षा करना कि सम्मेलन सफल हो जाएगा, सम्भव न था।** यदि जिन्ना व मुस्लिम लीग को इतना महत्व देना था तो पहले ही जिन्ना व कांग्रेस के नेताओं से वेवल को विचार-विमर्श कर लेना चाहिए था। यद्यपि यह सम्मेलन असफल समाप्त हो गया, किन्तु इससे जिन्ना के प्रभाव में असीमित वृद्धि हुई तथा हिन्दू-मुसलमानों की समानता भी मुस्लिम लीग को प्राप्त हो गयी। अतः भारत के विभाजन के आसार और प्रबल हो गए।

1946 ई. के चुनाव
(ELECTION OF 1946)

इंग्लैण्ड में जुलाई, 1946 ई. में आम चुनाव हुए। इन चुनावों में मजदूर दल की विजय हुई तथा एटली इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री बने। **वायसराय लॉर्ड वेवल के प्रस्ताव पर इंग्लैण्ड की सरकार ने भारत में भी प्रान्तीय व केन्द्रीय विधान सभाओं के लिए आगामी सर्दियों के मौसम में चुनाव कराने का निर्णय लिया।** भारत में इन चुनावों में कांग्रेस को भारी सफलता मिली, किन्तु राष्ट्रवादी मुसलमानों की करारी हार हुई। मुसलमानों के लिए आरक्षित स्थानों पर लगभग सभी जगह मुस्लिम लीग की विजय हुई। चुनाव के पश्चात् 11 प्रान्तों में से 7 में कांग्रेस के मन्त्रिमण्डल बने। पंजाब में खिजर हयात खां ने कांग्रेस तथा अकाली दल की सहायता से मन्त्रिमण्डल बनाया। बंगाल व सिन्ध में मुस्लिम लीग की सरकार बनी तथा उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में खान अब्दुल गफ्फार खां के नेतृत्व में खुदाई खिदमतगारों ने मन्त्रिमण्डल बनाया। **इन चुनावों से एक बात बिल्कुल साफ हो गयी कि भारतीय मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने वाली वास्तविक संस्था मुस्लिम लीग ही थी तथा कांग्रेस का मुसलमानों पर विशेष प्रभाव न था। अतः पाकिस्तान बनने की सम्भावना और भी बढ़ गयी।**

कैबिनेट मिशन योजना
(CABINET MISSION PLAN)

1946 ई. में महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन हुए जिनका प्रभाव भारत पर पड़ना भी स्वाभाविक था। **चर्चिल के स्थान पर मजदूर दल के नेता एटली इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री बने। भारत के प्रति एटली का दृष्टिकोण चर्चिल से भिन्न था।** इसके अतिरिक्त, भारत मन्त्री के पद पर भी मजदूर दल के सदस्य पैथिक लौरेन्स नियुक्त हो गए थे। **एटली तथा लौरेन्स के समक्ष भारत के विषय में दो विकल्प थे।** प्रथम तो यह, जैसा कि चर्चिल का भी विचार था कि शक्ति का प्रयोग करते हुए भारत में ब्रिटिश शासन कायम रखा जाए तथा दूसरा यह कि सरकार को अब भारत की स्वतन्त्रता की मांग को स्वीकार कर लेना चाहिए। **प्रधानमन्त्री एटली दूसरे विकल्प में ही विश्वास करते थे।** एटली की इस विचारधारा का कारण, तत्कालीन भारत की स्थिति थी। स्थिति को देखते हुए दूरदर्शी एटली यह समझ चुके थे शक्ति के द्वारा भारत में अंग्रेजी शासन भविष्य में अधिक दिनों तक चलाए रखना सम्भव नहीं है। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान आजाद हिन्द फौज द्वारा अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ना तथा भारत में नौसेना व वायुसेना के द्वारा विद्रोह किया जाना ऐसी घटनाएं थीं जो एटली को उक्त विचारधारा अपनाने के लिए विवश कर रही थीं। इन घटनाओं से स्पष्ट हो गया था कि भारतीय सैनिक अपने भारतीय बन्धुओं पर गोली चलाने के आदेश का पालन सम्भवतः अब नहीं करेंगे। अंग्रेजी सरकार भारतीय सैनिकों पर विश्वास कर सकती थी तथा सम्पूर्ण भारत में अंग्रेजों से बनी सेना को स्थापित नहीं किया जा सकता था। गांधीजी का विचार था कि यदि अत्याचार सहने वाला तैयार नहीं है तो अत्याचार करने वाला अत्याचार नहीं कर सकता, सत्य प्रमाणित हुआ। जब भारतीय सैनिकों ने अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठायी तो अंग्रेजों को झुकने के लिए विवश होना पड़ा। वायसराय के संवैधानिक परामर्शदाता वी. पी. मेनन ने लिखा है, **"लॉर्ड वेवल का यह विश्वास था कि कांग्रेस के साथ संघर्ष में वह आमतौर पर सरकारी अधिकारियों, पुलिस व सेना की सहायता पर निर्भर रह सकता है, परन्तु भारतीय सेना को अपने देशवासियों को कुचलने में अधिक समय तक नहीं अजमाया जा सकता। वह जानता था कि ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता**

जाएगा, भारतीय अधिकारियों, सैनिकों व पुलिस की वफादारी संदिग्ध होती जाएगी।" आजाद हिन्द फौज के अधिकारियों पर मुकदमों के समय जिस प्रकार से भारतीयों द्वारा उनका समर्थन किया गया था, उससे भी एटली परिचित था। इसके अतिरिक्त, भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान लगभग समस्त प्रमुख कांग्रेसी नेताओं के जेलों में डाल दिए जाने तथा सरकारी दमन के पश्चात् भी ब्रिटिश शासन के प्रति उनका जनआक्रोश स्पष्ट हो गया था। किसानों व मजदूर वर्ग ने भी सरकार के विरुद्ध आन्दोलनों में महत्वपूर्ण भाग लिया था। तेलंगाना, तेभाग और और प्रन्नप्रा वालायर के किसानों के संघर्ष ऐतिहासिक हैं। इसके अतिरिक्त पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बिहार और महाराष्ट्र में भी किसान आन्दोलन जोरों से चले थे। **मजदूर आन्दोलनों का रूप भी दिन-प्रतिदिन तीव्र होता जा रहा था।** 1946-47 ई. में सम्पूर्ण भारत में जगह-जगह पर हड़तालें हुईं व प्रदर्शन किए गए। 1946 ई. में रेलवे हड़ताल ने भी उग्र रूप धारण कर लिया था। इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के समय भारत में जनता के विभिन्न वर्ग स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़े थे, इनमें मजदूर, किसान, छात्र, कारीगर, दस्तकार, लघुस्तरीय व्यापारी, आदि अपने-अपने तरीकों से साम्राज्यवाद व साम्राज्यवादियों का विरोध कर रहे थे। 1946 ई. में हुए चुनावों में कांग्रेस की भारी जीत ने भी भारतीयों की अपेक्षाओं को व्यक्त कर दिया था। इसके अतिरिक्त द्वितीय विश्वयुद्ध में यद्यपि इंग्लैण्ड विजयी हुआ था, किन्तु इस युद्ध के इंग्लैण्ड पर गम्भीर आर्थिक व राजनीतिक प्रभाव हुए थे। इंग्लैण्ड की अर्थव्यवस्था लड़खड़ा रही थी तथा राजनीतिक रूप से भी उसका स्थान विश्व में सर्वोच्च नहीं रहा था। कुल मिलाकर इंग्लैण्ड की स्थिति अच्छी नहीं थी, **अतः एटली ने समस्त बातों को ध्यान में रखते हुए 15 मार्च, 1946 ई. को एक महत्वपूर्ण घोषणा की, जिसमें उसने भारतीयों के आत्मनिर्णय के व संविधान निर्माण के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया।** भारतीयों को ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में रहने अथवा न रहने की भी छूट दी गयी। इस घोषणा में एटली ने यह भी कहा, **"हम अल्पसंख्यकों के अधिकारों के बारे में सजग हैं..........परन्तु हम उन्हें बहुसंख्यकों की प्रगति रोकने के लिए वीटो नहीं दे सकते।"** कांग्रेस द्वारा इस घोषणा का स्वागत किया गया। जिन्ना को इससे घोर निराशा हुई। पहली बार जिन्ना को यह अनुभव हुआ कि इंग्लैण्ड की सरकार उसकी सहमति के विना भी सत्ता के हस्तान्तरण के लिए तैयार है।

15 मार्च, 1946 ई. को ही प्रधानमन्त्री एटली ने यह भी घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार भारत के साम्प्रदायिक एवं राजनीतिक गतिरोध को दूर करने के लिए **'कैबिनेट मिशन'** (Cabinet Mission) भारत भेजेगी, जिसके सदस्य भारत मन्त्री लौरेन्स, सर क्रिप्स तथा ए. वी. एलेक्जेण्डर होंगे। ये तीनों सदस्य 23 मार्च, 1946 ई. को भारत पहुंचे तथा भारत के विभिन्न दलों व नेताओं से विचार-विमर्श किया। साम्प्रदायिकता के मामले पर कांग्रेस व मुस्लिम लीग में समझौता न होने के कारण 'कैबिनेट मिशन' ने स्वयं ही एक योजना प्रस्तुत करते हुए कहा, **हमने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग पर विचार किया है। हमारा विचार है कि इससे साम्प्रदायिक समस्या हल नहीं होगी। न्यायोचित दृष्टि से हम पंजाब, बंगाल और असम के उन जिलों को, जिनमें हिन्दुओं का बहुमत है, पाकिस्तान में शामिल करना उचित नहीं समझते। भारत भौगोलिक दृष्टि से अखण्ड है, अतः हम पाकिस्तान की मांग को अस्वीकार करते हैं।"** कैबिनेट मिशन के सदस्यों का मानना था कि पाकिस्तान की मांग स्वीकार करने का अर्थ जनता की इच्छा के विरुद्ध पंजाब व बंगाल का विभाजन होगा। पंजाब के सिख भी दो भागों में बंट जाएंगे। इसके अतिरिक्त, पश्चिमी व पूर्वी पाकिस्तान में वहुत दूरी होगी,

जो प्रशासकीय असुविधा का कारण बनेगी। **अतः संयुक्त भारत के लिए कैबिनेट मिशन-द्वारा निम्नलिखित योजना प्रस्तुत की गयी :**

(i) भारतीय संघ की स्थापना की जाए जिसमें भारतीय राज्य एवं प्रान्त सम्मिलित हों। इस संघ पर प्रतिरक्षा, वैदेशिक सम्वन्ध तथा संचार-व्यवस्था का उत्तरदायित्व होगा। शेष विषयों पर प्रान्तों व राज्यों का अधिकार होगा।

(ii) संविधान निर्माण के लिए संविधान सभा का गठन किया जाएगा, जिसमें जनसंख्या के आधार पर प्रत्येक प्रान्त को स्थान दिए जाएंगे। मतदाताओं के तीन वर्ग—आम, मुसलमान, व सिख (सिर्फ पंजाब में) होंगे।

(iii) प्रान्तों को तीन समूहों में रखा जाएगा—वर्ग 'ए' में मद्रास, बम्वई, संयुक्त प्रान्त, विहार, मध्य प्रान्त, और उड़ीसा; वर्ग 'बी' में पंजाव, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त, सिन्ध; तथा वर्ग 'सी' में बंगाल और असम। तीनों वर्गों के प्रान्तों के प्रतिनिधि अपने वर्ग तथा प्रान्त के लिए संविधान का निर्माण करेंगे।

(iv) इस प्रकार तैयार किए गए संविधान को ब्रिटिश सरकार लागू करेगी।

(v) सत्ता हस्तान्तरण के पश्चात् भारतीय राज्यों (रियासतों) से सम्बन्धित सर्वोच्च शक्ति न ब्रिटेन के पास रहेगी और न भारत के पास।

(vi) सभी दलों की सहायता से एक अन्तरिम सरकार बनायी जाएगी, जिसमें सभी विभाग भारतीय नेताओं के अधीन होंगे।

महत्व
(SIGNIFICANCE)

कैबिनेट मिशन की इस योजना में कुछ महत्वपूर्ण गुण थे। **सबसे अच्छी बात तो यह थी, जैसा कि कांग्रेस भी चाहती थी, कि इसके द्वारा पाकिस्तान की मांग को स्वीकार नहीं किया गया था।** इस प्रकार भारत की राजनीतिक एकता को सुरक्षित रखा गया था। इसी कारण गांधीजी, जो पाकिस्तान बनाने के घोर विरोधी थे, ने इसकी प्रशंसा की तथा 'हरिजन' में लिखा, "**कैबिनेट मिशन के प्रस्तावों में वे बीज मौजूद हैं, जो इस देश को ऐसा महान बना देंगे, जिसमें कष्ट और दुःख का नाम न होगा।**' दूसरी ओर प्रान्तों को साम्प्रदायिक आधार पर वर्गों में विभाजित करके मुस्लिम लीग को भी प्रसन्न करने का प्रयत्न किया गया था। इस योजना के द्वारा संविधान सभा को लोकतन्त्रीय आधार प्रदान करते हुए उसमें भारतीय सदस्यों का प्रवेश निर्धारित किया गया था। इस योजना के द्वारा साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को कम करने, रियासतों की जनता के अधिकारों को मान्यता प्रदान करने तथा पहली बार भारतीयों को अपने भविष्य के निर्माण का अवसर प्रदान किया गया। इस प्रकार, इस योजना के द्वारा कांग्रेस व मुस्लिम लीग की नीतियों के मध्य का मार्ग निकालकर दोनों को ही प्रसन्न करने का प्रयत्न किया गया था।

इस योजना की वामपन्थी नेताओं ने कटु आलोचना की। कम्युनिस्ट दल के नेता पी. सी. जोशी ने इसकी आलोचना करते हुए कहा, "**भारत को अपने सबसे बड़े औपनिवेशिक आधार के रूप में बनाए रखने की ब्रिटेन की शाही योजना है।**" कैबिनेट मिशन योजना का सबसे प्रमुख दोष यह था कि इसमें प्रान्तों के खण्ड बनाए जाने के लिए कहा गया था। इस विषय में कांग्रेस व मुस्लिम लीग एकमत न थे। इसके अतिरिक्त यद्यपि पाकिस्तान की मांग पूर्णतया स्वीकार नहीं की गयी थी, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से इसे स्वीकार कर पंजाब के सिखों

को, इस योजना ने, चिन्ता में डाल दिया था। उन्होंने भी अपनी यह मांग रखी, कि यदि पाकिस्तान बनाया जाएगा तो वे स्वतन्त्र सिख राज्य की स्थापना करेंगे। बाद में कांग्रेस द्वारा आश्वासन दिए जाने पर सिख शान्त हो गए थे। इसके अतिरिक्त इस योजना से केन्द्र सदैव निर्बल रहता व भारत कभी शक्तिशाली राज्य के रूप में न उभर पाता। प्रान्तों को स्वतन्त्र रूप से संविधान बनाने की छूट मिलने से भारत में ही अलग-अलग प्रान्तों में अलग-अलग शासन-व्यवस्था स्थापित होती जिससे असुविधा होती।

25 जून, 1946 ई. **को कांग्रेस कार्यसमिति ने जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में कैबिनेट मिशन योजना को स्वीकार कर लिया।** मुस्लिम लीग ने भी पाकिस्तान न बनाए जाने के कारण क्षोभ प्रकट करते हुए इसे स्वीकार कर लिया। अतः जुलाई, 1946 ई. में कैबिनेट मिशन योजना के अनुसार चुनाव कराए गए। संविधान सभा के लिए हुए चुनावों में कांग्रेस ने 210 में से 199 स्थान प्राप्त किए तथा ब्रिटिश प्रान्तों के लिए 296 स्थानों में से कांग्रेस ने 211 तथा लीग ने 73 स्थान प्राप्त किए। चुनावों में कांग्रेस की अपार सफलता से जिन्ना को घोर निराशा हुई तथा उसने कैबिनेट मिशन योजना को 29 जुलाई, 1946 ई. में अस्वीकार करते हुए सीधी कार्यवाही की धमकी दी, जो हिन्दुओं व सिखों के विरुद्ध होनी थी। कांग्रेस के चुनावों में विजयी होने के कारण, वायसराय वेवल ने कांग्रेस के अध्यक्ष पं. जवाहरलाल नेहरू को अन्तरिम सरकार बनाने के लिए 12 अगस्त, 1946 ई. को आमन्त्रित किया। वेवल व पं. नेहरू ने मुस्लिम लीग के सदस्यों को भी सरकार में सम्मिलित करने का प्रयास किया, किन्तु जिन्ना इस बात के लिए तैयार न थे। पं. नेहरू ने 16 अगस्त को सरकार बनाने का फैसला किया, अतः जिन्ना ने उसी दिन अर्थात् 16 अगस्त, 1946 ई. को **'सीधी कार्यवाही'** करने की घोषणा की। परिणामस्वरूप पंजाब और बंगाल में अपार जन-धन की हानि हुई। 16 अगस्त की स्थिति का वर्णन करते हुए मौलाना आजाद ने 'इण्डिया विन्स फ्रीडम' में लिखा है, "**16 अगस्त भारत के इतिहास का एक काला दिन था। आकस्मिक रूप से उत्पन्न आतंक, हत्या और खून-खराबों में पूरा शहर (कलकत्ता) डूब गया। सैकड़ों लोगों की जानें गयीं, हजारों व्यक्ति घायल हुए तथा करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट हो गयी। नगर में गुण्डों का राज था।**"[1] इस हत्याकाण्ड में हिन्दुओं की अपार क्षति हुई, किन्तु फिर भी 24 अगस्त, 1946 ई. को अन्तरिम सरकार की स्थापना की घोषणा की गयी, जिसमें निम्नलिखित सदस्य शामिल किए गए—पं. नेहरू, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, पटेल, एम. आसफ अली, सी. राजगोपालाचारी, शरद चन्द्र बोस, डॉ. मथायी, सरदार बल्देव सिंह, शफाअत अहमद खां, जगजीवन राम, के. एच. भामा व सैयद अली जौहर। वायसराय के प्रयत्नों से मुस्लिम लीग भी 15 अक्टूबर, 1946 ई. को अन्तरिम सरकार में अपने प्रतिनिधि भेजने को राजी हो गयी। **बी. पी. मेनन ने लिखा है कि मुस्लिम लीग सरकार में इसलिए शामिल हुई थी क्योंकि उसकी दृष्टि में मुसलमानों व अन्य सम्प्रदायों का हित कांग्रेस के हाथों में छोड़ना ठीक न था।**[2] सम्भवतः जिन्ना को यह विश्वास न था कि वायसराय उसकी सहमति के बिना भी कांग्रेस को सरकार बनाने की अनुमति दे सकता है व कांग्रेस सरकार बना सकती है, किन्तु जब ऐसा हो गया तो विवश होकर सरकार में मुस्लिम लीग को शामिल करने में ही जिन्ना ने अपनी व अपने दल की भलाई समझी। यद्यपि मुस्लिम लीग के सदस्य सरकार में सम्मिलित हो गए, किन्तु कांग्रेस से उनकी

1 Azad, *India Wins Freedom*, p. 159.
2 V. P. Menon, *The Transfer of Power in India*, p. 318.

कभी न पटी। वी. पी. मेनन ने लिखा है, **"मुस्लिम लीग अन्तरिम सरकार में इसलिए सम्मिलित हुई थी ताकि कांग्रेस की स्थिति मजबूत न हो सके। अतः दोनों में कोई सहयोग उत्पन्न नहीं हो सकता था।"**[1] वित्त विभाग मुस्लिम लीग के लियाकत अली के पास होने से दूरी बढ़ती चली गयी। भारत में जगह-जगह साम्प्रदायिक उपद्रव भी हो रहे थे। कलकत्ता के पश्चात् नोआखाली में भी हिन्दुओं को अपार हानि का सामना करना पड़ा। प्रतिक्रिया स्वरूप, हिन्दुओं ने अहमदाबाद, बिहार व गढ़मुक्तेश्वर में मुसलमानों पर अत्याचार किए। शीघ्र ही दंगे भारत के अन्य भागों में भी फैल गए। ब्रिटिश सरकार ने यद्यपि इससे पूर्व अनेक दंगों को दबाया था, किन्तु इस समय अन्तरिम सरकार के कार्यकाल में, ब्रिटिश नौकरशाही ने इस दिशा में कोई प्रयत्न न किया।

वायसराय ने 9 दिसम्बर, 1946 ई. को संविधान सभा बुलाने का निर्णय लिया, किन्तु जिन्ना ने इसमें शामिल होने से इन्कार कर दिया। कांग्रेस ने मुस्लिम लीग से अनुरोध किया कि या तो वह संविधान सभा में भाग ले, अथवा सरकार से अपने सदस्यों को वापस ले। **दोनों दलों में समझौता कराने के लिए भारत सचिव ने एक सम्मेलन लन्दन में बुलाया, जो 3 से 6 दिसम्बर तक चला।** इसमें प्रधानमन्त्री एटली, वेवल, जवाहरलाल नेहरू व जिन्ना ने भाग लिया, परन्तु यह सम्मेलन भी असफल ही समाप्त हो गया। संविधान सभा का अधिवेशन 9 दिसम्बर को प्रारम्भ हुआ, किन्तु ुसमें मुस्लिम लीग के 73 सदस्यों ने भाग लिया। अतः पं. नेहरू ने मुस्लिम लीग के सरकार में कार्यरत सदस्यों से त्यागपत्र देने को कहा। इससे साम्प्रदायिक दंगे और भड़क उठे।

लॉर्ड एटली की घोषणा
(DECLARATION OF LORD ATLEE)

भारत की तत्कालीन स्थिति को देखते हुए ब्रिटिश प्रधानमन्त्री एटली[2] ने 20 फरवरी, 1947 ई. को एक घोषणा की, जिसमें कहा गया कि ब्रिटिश सरकार जून, 1948 ई. तक भारतीयों को भारत की सत्ता सौंप देगी तथा तब तक यदि एक संविधान का निर्णय न किया गया तो ब्रिटिश सरकार को किसी को भी सत्ता सौंप देने का अधिकार होगा। मुस्लिम लीग ने इसका अर्थ यह लगाया कि यदि वह जून, 1948 ई. तक संविधान सभा का बहिष्कार करती रहेगी तो संविधान का निर्माण न हो सकेगा तथा इंग्लैण्ड की सरकार विवश होकर उन प्रान्तों को सत्ता सौंप देगी, जहां मुसलमानों का बहुमत है और इस प्रकार सरकार पाकिस्तान देने के लिए तैयार हो जाएगी। इसी कारण उन्होंने कांग्रेस का और भी विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। अतः इस घोषणा के विषय में हडसन ने लिखा, **"20 फरवरी, 1947 ई. की घोषणा भारतीय राजनीति के सन्दर्भ में पाकिस्तान के लिए किसी न किसी रूप में खुली छूट थी।"** इसके साथ ही वेवल के स्थान पर माउण्टबेटन[3] को भारत का वायसराय नियुक्त किए जाने की घोषणा भी की गयी।[4]

1 V.P. Menon; *Ibid.*, p. 318.
2 एटली का पूरा नाम क्लीमेण्ट रिचर्ड एटली था।
3 माउण्टबेटन को उसके मित्र प्यार से डिकी (Dickic) कहते थे।
4 वेवल के स्थान पर माउण्टबेटन को वायसराय नियुक्त किए जाने का कारण यह था कि एटली का विचार था कि वेवल का नेहरू व कांग्रेस के अन्य नेताओं, जिन्ना, सिख तथा अन्य प्रमुख व्यक्तियों पर प्रभाव समाप्त हो गया था। इस विषम परिस्थिति का (एटली का विचार था) माउण्टबेटन ही सामना कर सकता था, क्योंकि माउण्टबेटन पहले भी भारत में रह चुका था तथा वह सभी प्रमुख नेताओं व राजाओं को जानता था।
—Larry Collins and D. Lapierre, ***Mountbatten and the Partition of India***, pp. 8-9.

माउण्टबेटन की योजना व भारत का विभाजन
(MOUNTBATTEN PLAN AND THE DIVISION OF INDIA)

24 मार्च, 1947 ई. को माउण्टबेटन ने भारत के वायसराय के पद को ग्रहण किया। माउण्टबेटन को ब्रिटिश शक्ति को भारत से समेटने के कार्य के लिए भेजा गया था, अतः उन्हें कुछ विशेष शक्तियां भी दी गई थीं। इन शक्तियों के प्रयोग व अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व से माउण्टबेटन अपने इस कार्य को करने में सफल रहे।

माउण्टवेटन को भारत में कार्यभार सम्हालते ही पता चल गया कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग में समझौता होना अत्यन्त कठिन है। माउण्टवेटन विभिन्न दलों के नेताओं, प्रान्तीय गवर्नरों से विचार-विमर्श, तथा साम्प्रदायिक दंगों को दृष्टिगत रखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि शक्ति हस्तान्तरण के कार्य को, एटली की घोषणा में बतायी गयी अवधि, जून, 1948 ई. तक नहीं रोका जा सकता अपितु यह कार्य 1947 ई. के अन्त तक हो जाना चाहिए। माउण्टवेटन ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि भारत की भौगोलिक एकता को कायम रखना सम्भव नहीं है। **माउण्टवेटन को ज्ञात था कि पाकिस्तान बनाने की योजना उचित नहीं है और न ही इससे साम्प्रदायिकता की समस्या को दूर किया जा सकता है।** इससे हिन्दू व मुसलमानों के सुदीर्घ काल के हितों की हानि होगी तथा भारत की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा भी कम हो जाएगी, किन्तु फिर भी माउण्टबेटन ने भारत के विभाजन का निर्णय लिया। **गांधीजी व कांग्रेस के अन्य नेता किसी शर्त पर भारत के विभाजन को मानने के लिए तैयार न थे।** गांधीजी के भारतीय विभाजन को न मानने के कारण, माउण्टवेटन ने पं. जवाहरलाल नेहरू व सरदार वल्लभ भाई पटेल को पाकिस्तान बनाने की आवश्यकता के विषय में समझाने का प्रयास किया। प्रारम्भ में ये दोनों नेता भी इस वात को मानने के लिए कदापि तैयार न थे किन्तु अन्ततः विभिन्न कारणों से इन्होंने भारत के विभाजन को दुःखी मन से स्वीकार कर लिया। भारत में निरन्तर साम्प्रदायिक दंगे हो रहे थे। अंग्रेज, हिन्दू व मुसलमानों को लड़ाकर शासन करना चाहते थे। माउण्टवेटन ने भी यह स्पष्ट कर दिया था कि ऐसी परिस्थितियों में अंग्रेजों को भारत में रुके रहने के लिए विवश होना पड़ेगा। भारत में निरन्तर गृह-युद्ध की स्थिति उत्पन्न होती जा रही थी। वी. पी. मेनन ने भी पं. नेहरू व सरदार पटेल को समझाया कि गृह-युद्ध की अपेक्षा विभाजन स्वीकार कर लेना अच्छा है। **सरदार पटेल को भी यह विश्वास होने लगा, कि यदि विभाजन न किया गया तो भारत एक नहीं अनेक टुकड़ों में बंट सकता है। अन्तरिम सरकार के समय कांग्रेस ने मुस्लिम लीग के साथ शासन करने की व्यावहारिक समस्याओं का सामना किया था, अतः सरदार पटेल यह सोचने पर विवश हुए कि यदि शरीर का एक अंग खराब हो जाए तो उससे शीघ्र छुटकारा पाना ही उचित है।** भारत की रक्षा के लिए, मुस्लिम लीग को कुछ भाग देकर उससे छुटकारा पाना ही उचित था। इसके साथ ही साथ अंग्रेजों ने निरन्तर मुसलमानों को ही प्रोत्साहित किया था, क्योंकि मुस्लिम लीग कांग्रेस-विरोधी संस्था थी। अतः भारतीय नेता सोचते थे कि अंग्रेज मुस्लिम लीग को सन्तुष्ट किए विना मानने वाले नहीं हैं। **जिन्ना भी पाकिस्तान के अतिरिक्त किसी बात को मानने के लिए तैयार न थे,**[1] तथा वह अंग्रेजों के प्रोत्साहन से लाभ उठा रहे थे। कांग्रेसी नेता अपनी मांगों को स्वीकार कराने के लिए जिन्ना की सदैव खुशामद करते थे, जिससे वह और भी अभिमानी व हठी हो गए। मौलाना आजाद, सरदार पटेल व अन्य नेताओं ने गांधीजी को

1 **"He was, whatever was said intent on his Pakistan."**

Bipin Chandra, *op. cit.*, p. 497

जिन्ना से बार-बार मिलने से रोका भी था, किन्तु गांधीजी ने सदैव यह कहकर इस वात को टाल दिया कि उनका संघर्ष जिन्ना से नहीं वरन् अंग्रेजों से है। जिन्ना ने कांग्रेस की इस नीति से लाभ उठाया। जिन्ना को यह भ्रम हो गया था कि उसे सन्तुष्ट किए बिना कांग्रेस को कोई सफलता मिलना कठिन है। अतः पं. नेहरू व सरदार पटेल समझ गए कि जिन्ना अपनी मांग से हटने वाला नहीं है तथा भारत की सुरक्षा व स्वतन्त्रता के लिए माउण्टवेटन की वात मान लेना ही ठीक है। माउण्टवेटन ने स्वयं पं. जवाहरलाल नेहरू को समझाया कि मुस्लिम लीग व कांग्रेस में पारस्परिक सहयोग सम्भव नहीं है। अतः पाकिस्तान बनने को स्वीकार कर, शेष भारत को संगठित व शक्तिशाली बनाना ही, ठीक है। नेहरू को भी आभास हो रहा था कि विभाजन के अतिरिक्त, राजनीतिक गतिरोध को दूर करने का, कोई अन्य रास्ता नहीं है। उन्होंने इस वात को स्वीकारते हुए कहा, **"यह स्थितियों की विशेषताएं हैं तथा यह महसूस किया जा रहा है कि जिस मार्ग का हम अनुसरण कर रहे हैं, उसके द्वारा गतिरोध दूर नहीं किया जा सकता। हमें देश का विभाजन स्वीकार करना पड़ा।"** पं. गोविन्द वल्लभ पन्त ने भी कहा, **"आज हमें पाकिस्तान व आत्महत्या में से एक को चुनना है।"** मौलाना आजाद व गांधीजी भारत के विभाजन के लिए किसी मूल्य पर तैयार न थे, किन्तु पं. नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, माउण्टवेटन तथा वी. पी. मेनन के समझाने पर, अन्ततः गांधीजी भी, भारत के विभाजन के लिए, दुःखी मन से तैयार हो गए। माइकेल ब्रेचर ने लिखा है, **"कांग्रेसी नेताओं के सम्मुख सत्ता के प्रति आकर्षण भी था। इन नेताओं ने अपने राजनीतिक जीवन का अधिकतर भाग अंग्रेजी सत्ता का विरोध करने में ही विताया था और अब वे स्वाभाविक रूप से सत्ता के प्रति आकर्षित हो रहे थे। कांग्रेसी नेता सत्ता को चख चुके थे और विजय की घड़ी में इससे अलग होने के इच्छुक न थे।"**[1]

इस प्रकार माउण्टवेटन ने कूटनीति का परिचय देते हुए कांग्रेस के नेताओं को मानसिक रूप से भारत के विभाजन के लिए तैयार किया, तत्पश्चात् उसने अपने व्यक्तिगत सहायकों को एक योजना बनाने के लिए कहा। उल्लेखनीय है कि वायसराय के संवैधानिक सलाहकार वी. पी. मेनन को योजना बनाने के कार्य में सम्मिलित नहीं किया गया था। लॉर्ड माउण्टवेटन की यह नीति उनकी एक भूल थी क्योंकि जिन्हें यह कार्य सौंपा गया था, वे पाकिस्तान बनाने में विश्वास रखने वाले लोग थे। अतः उनकी बनायी योजना कांग्रेस को कैसे मान्य होगी, माउण्टवेटन को यह सोचना चाहिए था। माउण्टवेटन की इस योजना का तीव्र विरोध किया गया। नेहरू व जिन्ना दोनों ने ही इसकी आलोचना की। कांग्रेस, पंजाव और बंगाल के विभाजन पर जोर दे रही थी, किन्तु जिन्ना इसे मानने को तैयार न थे। साथ ही पांच-छः प्रान्तों व तटस्थ क्षेत्र (वफर जोन) की मांग भी अब मुस्लिम लीग करने लगी थी। माउण्टबेटन की इस योजना की नेहरू द्वारा कटु आलोचना किए जाने तथा उसमें निहित दोषों की ओर पत्र द्वारा माउण्टवेटन को अवगत कराने पर, माउण्टबेटन ने इस योजना को रद्द कर दिया तथा दूसरी योजना बनाने के लिए वी. पी. मेनन से कहा। योजना तैयार होने पर माउण्टवेटन ने पं. नेहरू, जिन्ना, पटेल, लियाकत अली खां व सरदार बल्देव सिंह से विचार-विमर्श किया। इस योजना में पाकिस्तान बनाना मान लिया गया था, अतः **सिख नेता ने स्वतन्त्र सिख राज्य बनाए जाने की मांग की, किन्तु माउण्टबेटन शीघ्रतापूर्ण इस योजना को लागू करना चाहते थे,**[2]

---

1 Michael Breacher, *Jawaharlal Nehru*, p. 145.

2 **"The rationale for the early date for transfer of power was securing congress to dominion status. The additional benefit was that the British could escape responsibility for the rapidly deteriorating communal situation."**

—**Bipin Chandra, *op. cit.*, p. 498.**

अतः उन्होंने सिख नेताओं की बात को अस्वीकार कर दिया। तत्पश्चात् वायसराय माउण्टबेटन प्रधानमन्त्री से विचार करने लन्दन गए तथा 31 मई, 1947 ई. को भारत वापस आए। 2 जून, 1947 ई. को उन्होंने पं. नेहरू, पटेल, आचार्य कृपलानी, जिन्ना, लियाकत अली खां, अब्दुल निश्तर तथा बल्देव सिंह से विचार-विमर्श किया। पं. नेहरू ने पूर्णतया सहमत न होते हुए भी, भारतीय हित को ध्यान में रखते हुए, सहमति प्रदान की। कांग्रेस कार्यसमिति ने भी इस योजना को स्वीकार कर लिया। कम्युनिस्ट व अन्य वामपक्षी दलों ने इस योजना की कटु आलोचना की क्योंकि इसके द्वारा भारत का विभाजन किया जाना था। जिन्ना भी इस योजना से सन्तुष्ट न थे, किन्तु जब उन्हें चर्चिल का यह सन्देश मिला कि यदि यह योजना उन्होंने स्वीकार न की तो पाकिस्तान का विचार समाप्त हो जाएगा, तो उन्होंने भी इस योजना को मान लिया। 3 जून, 1947 ई. **को इस नयी योजना के विषय में माउण्टबेटन, नेहरू, जिन्ना व बल्देव सिंह ने आकाशवाणी से घोषणा की।** इस प्रकार भारत स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर होने लगा। **इस योजना की प्रमुख धाराएं निम्नलिखित थीं :**

(i) संविधान सभा द्वारा पारित संविधान भारत के उन भागों पर लागू नहीं होगा, जो इसे मानने को तैयार न होंगे।
(ii) पंजाब व बंगाल की विधान सभाएं मुस्लिम व गैर-मुस्लिम जिलों के आधार पर दो भागों में विभाजित की जाएंगी।
(iii) उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में जनमत द्वारा यह ज्ञात किया जाएगा कि वह भारत के किस भाग के साथ रहना चाहते हैं।
(iv) आसाम के सिलहट जिले में भी इसी प्रकार के जनमत के द्वारा निर्णय किया जाएगा।
(v) सर्वश्रेष्ठता की शक्ति भारतीय राजाओं को पुनः दे दी जाएगी।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति

इस योजना के आधार पर 4 जुलाई, 1947 ई. को इंग्लैण्ड की संसद द्वारा '**भारतीय स्वतन्त्रता विधेयक**' पारित किया गया। 16 जुलाई को लॉर्ड सभा ने इसे पारित किया तथा 18 जुलाई को सम्राट के इस पर हस्ताक्षर हो गए। इस प्रकार '**भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम**' पारित हुआ। इस अधिनियम के पारित होने के विषय पर प्रकाश डालते हुए नार्मन डी. पामर ने लिखा है, "**ब्रिटिश संसद के इतिहास में शायद ही कोई इतना महत्वपूर्ण विधेयक इतने कम समय व इतने कम वाद-विवाद के पास हुआ हो।**"[1] इस अधिनियम की प्रमुख धाराएं निम्न थीं :

(i) 15 अगस्त, 1947 ई. को भारत दो अधिराज्यों—भारत व पाकिस्तान में विभाजित कर दिया जाएगा। सिन्ध, उत्तर-पूर्वी सीमा प्रान्त, पश्चिमी पंजाब, बलूचिस्तान तथा असम का सिलहट जिला पाकिस्तान में तथा शेष भारत में रहेगा। 14 अगस्त को पाकिस्तान व 15 अगस्त को भारतीय अधिनियम की स्थापना होगी।
(ii) दोनों अधिराज्यों की विधान सभाओं को अपने-अपने संविधान बनाने का अधिकार दिया गया।
(iii) नवीन संविधानों के निर्माण तक शासन 1935 ई. के अधिनियम के अनुसार चलता रहेगा।

---

1 "Seldom in the history of British Parliament and a measure of such epochal significance between put through so speedily and with so little debate."
—Norman D. Palmer, *Major Governments of Asia*, p. 298.

(iv) 15 अगस्त, 1947 ई. से भारत सचिव व इण्डिया ऑफिस को समाप्त कर दिया जायेगा।

(v) 15 अगस्त, 1947 ई. से ब्रिटिश सरकार का दोनों अधिराज्यों पर कोई नियन्त्रण नहीं रहेगा।
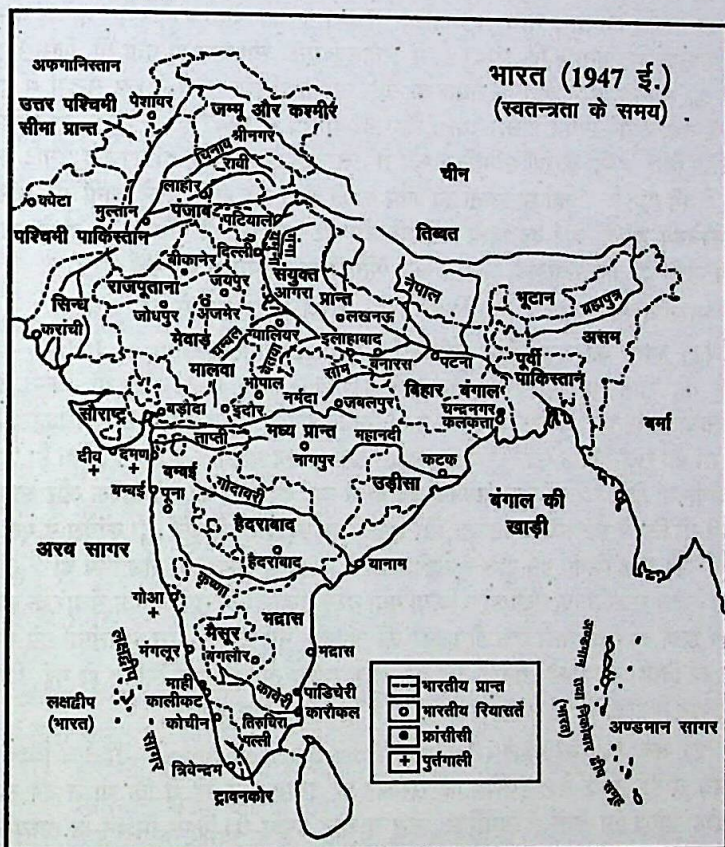
(vi) भारतीय रियासतों को भारत अथवा पाकिस्तान किसी भी देश में सम्मिलित होने का अधिकार दिया गया।

इस प्रकार 14 अगस्त, 1947 ई. को आधी रात को 12 वजे जैसे ही 15 अगस्त की तिथि प्रारम्भ हुई, पं. जवाहर लाल नेहरू ने केन्द्रीय विधान सभा में घोषणा की, "कितने ही वर्ष पूर्व हमने भाग्य से भेंट करने का निश्चय कर लिया था अब वह समय आ गया है जब हम इसको पूरा करेंगे। आधी रात की इस घड़ी में जब दुनिया सो रही है भारत जागकर स्वतन्त्र जीवन प्राप्त करेगा। यह वहुत अच्छी वात हैं कि इस पवित्र क्षण में हम भारत और उसकी जनता की सेवा और उससे भी बढ़कर मानवता की सेवा की सौगन्ध लेते हैं।"

इस प्रकार निरन्तर संघर्ष एवं भारतीय नेताओं व राष्ट्रवादियों के असीमित त्याग से हमारा देश स्वतन्त्र हुआ। यद्यपि 15 अगस्त, 1947 ई. को भारत राजनीतिक रूप से स्वतन्त्र हो गया, किन्तु सामाजिक व आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करना अभी शेष था।

भारत के स्वतन्त्र होने के कारण
(CAUSES OF THE INDIAN INDEPENDENCE)

लम्बे समय तक भारत पर शासन करने के पश्चात् अन्ततः अंग्रेजों ने भारत से चले जाने का निर्णय किया व भारत 15 अगस्त, 1947 ई. को स्वतन्त्र हो गया। अनेक बार यह प्रश्न मस्तिष्क में आता है कि 1947 ई. में अचानक ऐसी क्या बात हो गयी थी, जिससे अंग्रेज भारत को स्वतन्त्र करने के लिए तैयार हो गए। अनेक इतिहासकारों ने इस सन्दर्भ में प्रकाश डाला है तथा अपने-अपने विचार व्यक्त किए हैं। वास्तव में 1947 ई. में भारत को स्वतन्त्रता मिलने के लिए अनेक कारण सम्मिलित रूप से उत्तरदाई थे जैसा कि डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के इस कथन से भी स्पष्ट है, **"जहां स्वतन्त्रता की प्राप्ति काफी सीमा तक हमारे अपने त्यागों और बलिदानों के फलस्वरूप हुई है, वहां वह विश्व शक्तियों और घटनाओं का भी परिणाम है। इसके साथ ही ब्रिटिश जाति के लोकतन्त्रात्मक आदर्शों और ऐतिहासिक परम्पराओं की पूर्ति भी है।"**

भारतीय स्वतन्त्रता के लिए निम्नलिखित कारण प्रमुख रूप से उत्तरदायी थे :

(1) भारत का राजनीतिक एकीकरण (Political integration of India)—यद्यपि अंग्रेजों की नीति **'फूट डालो एवं राज करो'** (Divide and Rule) की थी, किन्तु अपनी साम्राज्यवादी नीति के कारण अनजाने में ही उन्होंने सम्पूर्ण भारत को अपने अधिकार में कर के भारत का राजनीतिक एकीकरण कर दिया। इसी कारण माइकल ब्रीचर ने लिखा है, **"भारत की स्वाधीनता ब्रिटिश राज्य द्वारा अचेतन अवस्था में लाई गई चेष्टा का स्वाभाविक और आवश्यक परिणाम थी जिसमें स्वाभाविक चेतनता और सार्वजनिक उद्देश्यों की पूर्ति हुई। कांग्रेस ने एक लम्बे अरसे में यही काम किया। इस दृष्टि से ब्रिटिशराज में ही इसके विनाश के बीज छिपे थे।"**[1] अंग्रेजों द्वारा न केवल राजनीतिक एकीकरण किया गया वरन् उन्होंने एक सार्वजनिक संचार के साधन, एक ही डाक व्यवस्था तथा एक ही प्रकार की आर्थिक नीतियों के द्वारा भारतीयों को परस्पर निकट ला दिया। इस प्रकार सम्पूर्ण देश की शक्ति राष्ट्रीय आन्दोलन में निहित हो गई, जिसको शासन सह न सका व भारत को स्वतन्त्र करने के लिए बाध्य हुआ।

(2) अन्य देशों का दबाव (Pressure from other countries)—द्वितीय विश्व-युद्ध के समय से ही अनेक देश इंग्लैण्ड की सरकार पर दबाव डाल रहे थे कि भारत को स्वतन्त्र कर दिया जाए। इन देशों में अमेरिका, रूस व चीन प्रमुख थे। क्रिप्स मिशन के अध्यक्ष सर स्टेफर्ड क्रिप्स ने इसी कारण ब्रिटिश संसद में कहा था, **"अमेरिका और रूस जैसी अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के दबाव के कारण भारत पर आधिपत्य रखना असम्भव हो गया है।"** इसी प्रकार चीन के चांग-काई-शेक के द्वारा भारत की यात्रा ने अंग्रेजों को स्पष्ट कर दिया था कि भारत को अब अधिक समय तक गुलाम बनाकर नहीं रखा जा सकता। इस प्रकार विश्व के प्रमुख देशों के बढ़ते हुए दबाव को देखते हुए इंग्लैण्ड भारत को स्वतन्त्र करने के लिए बाध्य हुआ।

(3) भारत में राष्ट्रवाद (Nationalism in India)—अंग्रेजों ने भारत पर जब शासन करना प्रारम्भ किया था, तब भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। अतः भारत में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल नहीं थी किन्तु जैसे-जैसे भारत का राजनीतिक एकीकरण होता गया भारत में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल होती चली गयी। इस भावना को बढ़ाने में शिक्षा के विकास, पुनर्जागरण, प्रेस तथा अनेक भारतीय नेताओं ने प्रमुख भूमिका निभाई। इस प्रकार राष्ट्रीयता की भावनाओं के विकास के साथ ही भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का जन्म हुआ। विभिन्न चरणों

1 ब्रीचर माइकल, नेहरू—ए पॉलिटिकल बायोग्राफी, पृ. 373.

से गुजरते हुए यह आन्दोलन गांधीजी के नेतृत्व में आया। महात्मा गांधी ने इस आन्दोलन को जन-आन्दोलन का रूप दे दिया। यह आन्दोलन भारत के जन-जन तक पहुंच कर इतना शक्तिशाली हो चुका था कि अंग्रेजों को यह स्पष्ट हो गया कि अव भारत पर अधिक समय तक वे शासन नहीं कर सकते हैं। 1946 ई. में हुए सेना के विद्रोह ने यह विल्कुल ही स्पष्ट कर दिया। अंग्रेजों ने भारत में शक्ति के वल पर शासन किया था। उनके शासन का आधार ही सेना पर आधारित था। अंतः सेना के विद्रोह कर देने पर अंग्रेजों के लिए यह सम्भव न था कि वे भारत पर शासन कर सकते। वी. पी. मेनन ने लिखा है, **"इन घटनाओं ने अंग्रेजों की आंखें खोल दीं और उन्होंने समझ लिया कि भारतीय राष्ट्रवाद को अब सेना में घुसने से नहीं रोका जा सकता।"**

(4) इंग्लैण्ड की कमजोर स्थिति (Feeble England)—इंग्लैण्ड एक अत्यन्त शक्तिशाली राष्ट्र था तथा अपनी साम्राज्यवादी नीति के द्वारा नवीन उपनिवेश स्थापित करके वह अपने व्यापार को और अधिक बढ़ाना चाहता था, किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध ने स्थिति में पूर्णतया परिवर्तन कर दिया। यद्यपि मित्र राष्ट्रों की इस युद्ध में विजय हुई थी, किन्तु इस युद्ध के कारण इंग्लैण्ड को अपार हानि का सामना करना पड़ा था। सैनिक व आर्थिक दृष्टि से इंग्लैण्ड की स्थिति जर्जर हो गई थी। ऐसी स्थिति में इंग्लैण्ड के लिए भारत पर अधिकार रखना सम्भव न था। जैसा कि माइकेल ब्रीचर ने भी लिखा है, **"इंग्लैण्ड की कमजोर स्थिति भारत के पक्ष में इतना सबल तथ्य था कि 1945 ई. में यदि अनुदार दल सत्तारूढ़ होता तो वह भी भारतीय स्वतन्त्रता के प्रश्न को टाल नहीं सकता था।"**[1] वैसे भी अब भारत पर अधिकार रखना इंग्लैण्ड के लिए लाभप्रद न था। आर्थिक दृष्टि से कमजोर हो जाने के वाद तथा भारत के असन्तोष को देखते हुए अब गुलाम भारत उनके लिए विशेष लाभप्रद न था। अंग्रेजों ने आर्थिक लाभ के लिए ही भारत पर अधिकार किया था, किन्तु अब ऐसा न होने पर भारत पर अधिकार बनाए रखने का कोई औचित्य नहीं था।

लार्ड माउण्टबेटन ने स्वयं भी भारत छोड़ने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि इंग्लैण्ड द्वारा भारत को स्वतन्त्र किए जाने के दो प्रमुख कारण थे।[2]

(i) इंग्लैण्ड की यह सदैव से नीति थी कि जब भारत इस योग्य हो जाए तो उसे स्वतन्त्रता प्रदान कर दी जाए।

(ii) हमारे पास शासन जारी रखने के साधन नहीं थे, क्योंकि हमने 1939 ई. से इण्डियन सिविल सर्विस (I. C. S.) में भर्ती बन्द कर दी थी। इसके अतिरिक्त पुलिस ने भी भर्ती बन्द कर दी गई थी।[3]

अतः उपरोक्त परिस्थितियों में हम चाहते तो भी अपना शासन भारत पर कायम रखना सम्भव न था।

(5) एशिया में जागरण (Renaissance in Asia)—20वीं सदी के मध्य तक आते-आते सम्पूर्ण एशिया में चेतना जाग्रत हो चुकी थी। एशिया के अनेक देश साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे। भारतीयों को इन देशों से प्रेरणा मिल रही थी। अंग्रेजों के लिए सम्पूर्ण एशिया में हो रहे जागरण को रोक पाना कठिन हो रहा था।

---

1 Collins and Lapierre, *Mountbatten and the Partition of India*, p. 14.

2 नयी भर्ती इसलिए नहीं हो रही थी कि नवयुवकों पर अंग्रेजों को विश्वास नहीं था। वे कभी भी विद्रोह कर सकते थे।

3 ब्रेचर, पूर्वोक्त, पृ. 373.

(6) **साम्यवाद का खतरा (Danger of Communism)**—विश्व में बढ़ते हुए साम्यवादी प्रभाव से अंग्रेज भयभीत होने लगे थे। अंग्रेजों को भय था कि यदि भारत को शीघ्र स्वतन्त्रता न प्रदान की गई तो भारत पर साम्यवादी विचारधारा छा जाएगी क्योंकि भारतीय जनता का झुकाव साम्यवाद की ओर होने लगा था। भारत पर साम्यवादी प्रभाव हो जाने पर इंग्लैण्ड की स्थिति विश्व में अत्यन्त शर्मनाक हो जाती व वह अपने मित्रों को मुंह दिखाने के काबिल न रहता। सौभाग्यवश, अंग्रेजों ने इस खतरे को भांप लिया तथा भारत को साम्यवादी होने से बचाने के लिए उसे स्वतन्त्र कर देना उचित समझा। इस तथ्य की पुष्टि एटली के इस कथन से भी होती है, **"यदि हम सावधान न होते, तो हम भारत को केवल विद्रोह की आग में ही झोंककर नहीं छोड़ देते बल्कि साम्यंवादी राजनैतिक शक्तियां भी वहां हावी हो जातीं। इस स्थिति को ठीक करने के लिए कार्यवाही अति आवश्यक थी।"**

(7) **इंग्लैण्ड में मजदूर दल की सरकार**—1945 ई. में इंग्लैण्ड में आम चुनाव हुए। इन चुनावों से पूर्व मजदूर दल ने आश्वासन दिया था कि यदि वह शक्ति में आया तो भारतीयों की समस्याओं का समाधान किया जाएगा। सौभाग्यवश इन चुनावों में मजदूर दल को सफलता मिली व इंग्लैण्ड में मजदूर दल की सरकार बनी। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि इंग्लैण्ड की जनता भी चाहती है कि भारतीयों को अब स्वतन्त्र कर दिया जाना चाहिए क्योंकि मजदूर दल ने, जैसा कि लिखा जा चुका है, भारत को स्वतन्त्र करने का आश्वासन दिया था। उल्लेखनीय है कि मजदूर दल के नेता एटली ने अपना वायदा निभाया व भारत को स्वतन्त्र करने की प्रक्रिया प्रारम्भ की। मौलाना आजाद ने एटली की प्रशंसा करते हुए अपनी पुस्तक 'इण्डिया विन्स फ्रीडम' में लिखा है, **"हमारे विरोध के पश्चात् भी इंग्लैण्ड द्वारा भारत पर कुछ वर्षों तक शासन और किया जा सकता था। फ्रांस यद्यपि इंग्लैण्ड से भी निर्बल था, किन्तु वह हिन्द-चीन पर 10 वर्षों तक शासन करता रहा, किन्तु एटली ऐसे व्यक्ति नहीं थे जो भारतीय स्थिति का ब्रिटिश स्वार्थों के लिए उपयोग करते। इसलिए इस बात का श्रेय मजदूर सरकार को दिया जाना चाहिए जिसने सत्ता हस्तान्तरण कार्य शीघ्रता और सम्मानपूर्वक किया।"**[1] एक अन्य स्थान पर उन्होंने लिखा, "भारत को तेजी से और सौजन्यपूर्ण तरीके से अंग्रेजों द्वारा छोड़ने के लिए मजदूर सरकार बधाई की पात्र थी।"

उपरोक्त सभी कारणों ने भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सहायता की, किन्तु जिस समय भारतीयों को स्वतन्त्रता देने की घोषणा की गई भारत के विभाजन के प्रश्न पर कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग में मतभेद था। डॉ. जी. एस. छाबड़ा ने लिखा है कि लम्बे समय तक अंग्रेज भारतीयों को आपस में विभाजित कर शासन करने में सफल रहे थे। कांग्रेस साम्प्रदायिकता का विरोध प्रारम्भ से कर रही थी और इसी का लाभ उठाकर अंग्रेज हिन्दू व मुसलमानों तथा कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग में मतभेद उत्पन्न करते थे। भारतीय इसलिए अंग्रेजों के इन कार्यों को सहते रहे क्योंकि भारत का विभाजन अधिकांश भारतीयों को पसन्द न था, किन्तु जब पाकिस्तान बनाए जाने का निर्णय ले ही लिया गया तो अब ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बने रहने का कोई औचित्य नहीं था। इसी समय लॉर्ड माउण्टबेटन व उनकी पत्नी[2] ने कांग्रेस व लीग को समझौता करने के लिए प्रेरित किया। परिस्थितियोंवश कांग्रेस व मुस्लिम लीग ने इस समझौते (माउण्टबेटन योजना) को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार भारत की स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त हो गया।

1 मौलाना आजाद, इण्डिया विन्स फ्रीडम, पृ. 128.
2 माउण्टबेटन की पत्नी का नाम एडविना माउण्टबेटन था।

भारत के विभाजन के कारण
(CAUSES OF THE PARTITION OF INDIA)

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन जो भारत की स्वतन्त्रता के लिए प्रारम्भ हुआ था, की परिणति, भारत की स्वतन्त्रता के साथ-साथ भारत के विभाजन के रूप में भी हुई। 14 अगस्त, 1947 ई. को भारत के विभिन्न क्षेत्रों को मिला कर एक पृथक् देश पाकिस्तान का निर्माण हो गया। भारत का विभाजन क्यों हुआ ? इस सन्दर्भ में विद्वानों द्वारा पृथक्-पृथक् मत व्यक्त किए गये हैं। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने सामान्यतया इसका उत्तरदायित्व अंग्रेजों की **'फूट डालो और राज करो'** की नीति पर ठहराया है जबकि यूरोपीय लेखकों ने विभाजन का कारण भारतीयों में एकता का अभाव तथा हिन्दू एवं मुसलमानों के पारस्परिक वैमनस्य बताया है। मुस्लिम लीग की दृष्टि से पाकिस्तान की स्थापना **'अपने आदर्शों एवं संस्कृति को गढ़ने के लिए नवीन राष्ट्र की आकांक्षा से प्रेरित थी जो, पृथक् राज्य के अतिरिक्त अन्य किसी बात से सन्तुष्ट नहीं हो सकती थी।** कुछ लेखकों ने विभाजन की जिम्मेदारी हिन्दुओं की अलगाववादी नीति पर तो कुछ ने इसका पूर्ण श्रेय जिन्ना को दिया है। इस सन्दर्भ में माउण्टबेटन का यह कथन उल्लेखनीय है, **"यदि जिन्ना की अपनी बीमारी के कारण दो वर्ष पूर्व ही मृत्यु हो गई होती तो मेरा विचार है कि हम भारत को एकीकृत रख सकते थे। वह एक अकेला ऐसा व्यक्ति था जिसने इसे (एकीकरण) को असम्भव बना दिया।"**[1] इसके विपरीत वामपन्थी लेखक मानते हैं कि मुसलमानों पूंजीपति वर्ग तथा मुसलमान मध्यं वर्ग ने अपने राजनीतिक लाभों को प्राप्त करने के उद्देश्य से धर्म का सहारा लिया जिसकी परिणति पाकिस्तान की स्थापना के रूप में हुई।

यदि भारत के विभाजन के समय की विभिन्न परिस्थितियों का अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होता है कि वास्तव में भारत के विभाजन के लिए किसी एक कारण को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। भारत के विभाजन के लिए मुख्य रूप से निम्नलिखित कारण उत्तरदायी थे :

1. **भौगोलिक कारण** (Geographical Reason)—भारत के विभाजन व पाकिस्तान के निर्माण में भौगोलिक कारणों ने भी अपनी भूमिका निभाई। भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र थे तथा ये परस्पर सटे हुए थे। इसी कारण इन क्षेत्रों को जोड़कर एक पृथक् मुस्लिम राज्य की कल्पना का जन्म हो सका।[2]

2. **मुस्लिम साम्प्रदायिकता का विकास** (Growth of Muslim Communalism)—1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में हिन्दू व मुसलमानों ने संयुक्त रूप से अंग्रेजी शासन का विरोध किया था, किन्तु समय के साथ-साथ मुसलमानों में साम्प्रदायिकता का विकास हुआ तथा उनको यह अनुभव होने लगा कि उनके व हिन्दुओं के हित अलग-अलग हैं। मुसलमान यह भी सोचने लगे कि भारत में हिन्दू अधिक संख्या में थे तथा शैक्षणिक दृष्टि से भी मुसलमान पिछड़े हुए थे। ऐसी स्थिति में यदि अंग्रेज भारत छोड़कर चले गये तो वे हिन्दुओं पर आश्रित हो जाएंगे। इस बात की पुष्टि जिन्ना के उस वक्तव्य से होती है जो उसने माउण्टबेटन से

1 "If Mr. Jinnah had died of this illness about two years earlier, I think, we would have kept the country unified. He was the one man who really made it impossible."
—Collins & Lapierre, *Mountbatten and the Partition of India*, p. 42.

2 प्रारम्भ में पाकिस्तान की कल्पना उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्तों को मिलाकर ही की गई थी। पूर्वी बंगाल (वर्तमान बंग्लादेश) की बात को 1944 में जोड़ा गया।

कहा था। जिन्ना के शब्दों में, **"मेरा विचार है कि विभाजन आवश्यक है। हम उन (हिन्दुओं) पर विश्वास नहीं कर सकते। देखिए उन्होंने 1938-39 में हमारे साथ क्या किया। जब आप चले जाएंगे, हम सदैव के लिए उनकी कृपा पर आश्रित हो जाएंगे तथा हमारे लिए कोई स्थान नहीं बचेगा। हमारा दमन किया जाएगा तथा यह नितान्त भयानक होगा।"**[1]

इस प्रकार साम्प्रदायिकता की भावनाएं प्रबल होती चली गईं। इस सन्दर्भ में स्मिथ ने लिखा है, "एक बार शक्ति हासिल करने के यन्त्र के रूप में साम्प्रदायिकता की खोज हो गई जो भारतीय राजनीति में घुसकर यह इसे दीमक की तरह खोखला करती चली गई।"[2] इस प्रकार मुसलमानों के हृदयों में यह बैठा दिया गया कि उनके हित पृथक् राज्य बनने में ही हैं। 1930 ई. में मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन में इकबाल ने कहा, **"एक एकीकृत उत्तर-पश्चिमी भारतीय मुस्लिम राज्य का निर्माण मुझे मुसलमानों, विशेष रूप से उत्तर-पश्चिमी भारत के मुसलमानों की अन्तिम नियति मालूम पड़ती है।"** इसी प्रकार **अलीगढ़ प्रोफेसर योजना** में कहा गया था कि भारतीय मुसलमान अपने आप में एक राष्ट्र हैं और वे हिन्दू, अंग्रेज या अन्य किसी जाति के प्रभाव में नहीं रह सकते। अतः इस प्रस्ताव में भारत के विभाजन की मांग की गई थी।[3] इस प्रकार निरन्तर बढ़ती हुई साम्प्रदायिक भावनाओं के परिणामस्वरूप पाकिस्तान का निर्माण होना स्वाभाविक ही था।

3. हिन्दुत्व का पुनरुत्थान (Revival of Hinduism)—उन्नीसवीं सदी में अनेक ऐसे समाज एवं धर्म सुधारकों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने भारतवासियों को प्राचीन भारत के गौरवमयी अतीत की याद दिलाई तथा जनता को हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के लिए कार्य करने की प्रेरणा दी। यद्यपि इन समाज सुधारकों का मूल उद्देश्य भारत की स्थिति को सुधारना था, किन्तु इससे मुसलमान हिन्दुओं को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे। **अनेक राजनीतिक नेताओं ने भी हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के लिए कार्य किए।** उदाहरणार्थ, तिलक ने **'गणेश चतुर्थी'** तथा **'शिवाजी त्यौहार'**, अरविन्द ने 'काली पन्थ' व लाला लाजपत राय ने आर्य समाज में नवीन जान फूंकी। यद्यपि ये कार्य इस्लाम विरोधी नहीं थे तथा मूलतः भारतीयों में नवीन प्रेरणा एवं विश्वास जागृत करने की दृष्टि से किए गये थे, किन्तु इन्होंने हिन्दू व मुसलमानों में पृथकतावादी नीतियों की अप्रत्यक्ष रूप से सहायता की। इनके कारण हिन्दू व मुसलमानों में संयुक्त रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए संघर्ष करने के आसार कम हो गये।

4. ब्रिटिश शासन की नीति (British Policy)—1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में जिस प्रकार हिन्दू व मुसलमानों ने संयुक्त रूप से अंग्रेजों से संघर्ष किया था, उससे अंग्रेजों को यह स्पष्ट हो गया था कि यदि उन्हें भारत में अपना राज्य कायम रखना है तो हिन्दू व मुसलमानों का परस्पर अलग होना आवश्यक है। **अतः उन्होंने 'फूट डालो और राज करो' की नीति का पालन करना प्रारम्भ कर दिया। उनकी इस नीति के परिणामस्वरूप हिन्दू व मुसलमानों की दूरी निरन्तर बढ़ती गयी।** प्रारम्भ में उन्होंने सर सैयद अहमद खां को अपने प्रभाव में लेकर साम्प्रदायिकता की भावना को भड़काने का प्रयास किया, किन्तु इसमें जब वांछित सफलता

1 "I am afraid we must (be partitioned). We can't trust them. Look what they did to us in 1938-39. When you go, we'll permanently be at their mercy of the elected Hindu majority and we shall have no place. We shall be oppressed and it will be quite terrible." —Collins & Lapierre, *op. cit.*, p. 43.

2 W. C. Smith, *Modern Islam in India*, p. 183.

3 Gwyer & Appadurai, *Speeches and Documents of the Indian Constitution*, Vol. II, p. 462.

न मिली तो 1905 ई. में बंगाल का विभाजन किया गया। इससे भी सन्तुष्ट न होने पर 1909 ई. में अधिनियम पारित करके साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति (Communal Electoral System) को लागू करने की घोषणा की गई। लार्ड मिण्टो के इस कार्य ने साम्प्रदायिकता को बढ़ाने में अत्यधिक मदद की व हिन्दू तथा मुसलमानों के बीच की दूरी को बहुत बढ़ा दिया। इसी कारण डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है, "**पाकिस्तान के वास्तविक जन्मदाता इकबाल या जिन्ना नहीं वरन् लार्ड मिण्टो थे,**" इसी प्रकार पी. ई. राबर्ट्स ने लिखा है, "**साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति ने विभिन्न समुदायों में भेद उत्पन्न कर दिया और उनके हितों का मेल असम्भव बना दिया।**"[1] इस सन्दर्भ में स्मिथ का कथन भी उल्लेखनीय है, "अलग-अलग प्रतिनिधित्व के जरिए मताधिकार प्राप्त मुसलमानों और दूसरे वर्ग के लोगों को, साम्प्रदायिक दृष्टि से वोट देने के लिए, साम्प्रदायिक दृष्टि से सोचने के लिए, केवल साम्प्रदायिक किस्म के चुनाव-भाषण सुनने के लिए, प्रतिनिधियों का केवल साम्प्रदायिकता के आधार पर मूल्यांकन करने के लिए विवश किया गया।"[2] इस प्रकार अंग्रेजी सरकार ने ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कर दीं कि भारतीय मुसलमान पूर्णतया अंग्रेजों पर निर्भर हो जाएं। मुस्लिम लीग को समय-समय पर सहायता कर अंग्रेजी सरकार ने मुस्लिम लीग व कांग्रेस के बीच की दूरी को बढ़ाया। यहां तक कि पाकिस्तान की मांग का भी अंग्रेजी सरकार ने कभी खुलकर विरोध नहीं किया बल्कि अनेक अधिकारी अप्रत्यक्ष रूप से इस मांग के समर्थक थे। इस बात की पुष्टि थाम्सन के इस कथन से भी होती है, "**कतिपय सरकारी पदाधिकारी पाकिस्तान के विचार के प्रति बड़े उत्साही थे।**"[3] इस प्रकार अंग्रेजों ने हिन्दू-मुसलमानों के बीच खाई पैदा करके भारत के विभाजन का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

5. **कांग्रेस की मुस्लिम लीग के प्रति नीति** (Policy of Congress towards Muslim Leage)—भारत के विभाजन के लिए कांग्रेस की कुछ नीतियां भी उत्तरदायी थीं। कांग्रेस ने सदैव मुस्लिम लीग के प्रति तुष्टीकरण की नीति को अपनाया व उसकी गलत मांगों को भी स्वीकार किया, जिससे साम्प्रदायिकता की भावना बढ़ती चली गई। **उदाहरण के तौर पर, 1916 ई. में कांग्रेस ने मुस्लिम लीग से समझौता करके पृथक् निर्वाचन प्रणाली को स्वीकार कर लिया।** इसी प्रकार साम्प्रदायिक निर्णय (1932 ई.) के समय भी कांग्रेस ने गलत नीति अपनाई जिससे अलगाववाद को बढ़ावा मिला। इसी तरह अन्तरिम सरकार में भी मुस्लिम लीग को सम्मिलित करके कांग्रेस ने भारी भूल की, क्योंकि मुस्लिम लीग के मन्त्रियों ने अन्तरिम सरकार का चलना दूभर कर दिया। इससे यह निष्कर्ष निकला कि कांग्रेस व मुस्लिम लीग संयुक्त रूप से शासन नहीं कर सकते, अतः पाकिस्तान की मांग को बल मिला। इसी कारण डॉ. लाल बहादुर ने लिखा है, "**कांग्रेस ने लीग के प्रति तुष्टीकरण की नीति को अपनाया। इस प्रकार न चाहते हुए भी उसे निरन्तर बढ़ते हुए दावे के लिए प्रेरित किया। मुसलमानों को खुश करने की उत्सुकता में इसने अपने सिद्धान्तों की बलि दे दी।**"[4]

6. **जिन्ना की हठधर्मी** (Obstenacy of Jinnah)—पाकिस्तान बनाने का मूल विचार यद्यपि जिन्ना का नहीं था, किन्तु एक बार इसे मान लेने के पश्चात् जिन्ना पाकिस्तान से कम

1 "The Principle of class representation.........created a distinction between the different classes of the community and made the fusion of their interests impossible." —*History of British India*, p. 572.
2 W. C. Smith, *Modern Islam in India*, p. 183.
3 Thompson, *Enlist India for freedom*, p. 59.
4 *Muslim Leagre*, p. 57.

कुछ भी मानने को तैयार न थे। अंग्रेजी नीतियों ने भी जिन्ना को बढ़ावा दिया। जिन्ना की इस हठधर्मिता के कारण भारतीय समस्या का हल ढूंढ़ना असम्भव हो गया। इस सन्दर्भ में तत्कालीन वायसराय लार्ड माउण्ट बेटन का यह कथन उल्लेखनीय है, "मुझे इस बात का घमण्ड था कि मैं लोगों को सही व उचित कार्य करने के लिए तैयार कर सकता हूं.......... परन्तु जिन्ना के मामले में कुछ भी करना सम्भव न था। उसने अपना मन बना (पाकिस्तान के लिए) लिया था और कोई भी शक्ति उसे हिला नहीं सकती थी .... मैं स्वीकार करता हूं कि जिन्ना के मामले में मैं असफल रहा।"[1] एक अन्य स्थान पर माउण्टबेटन ने कहा, **"मैंने कभी नहीं सोचा था कि एक होशियार, अच्छी तरह शिक्षित, इंग्लैण्ड में शिक्षा प्राप्त व्यक्ति अपना मस्तिष्क बन्द कर सकता है। तब मुझे अनुभव हुआ कि जब तक वह जिन्दा है तब तक कुछ नहीं हो सकता। वह एक अकेला व्यक्ति था जिसने यह किया।"**[2] इस प्रकार जिन्ना की हठधर्मिता के कारण भारत का विभाजन करना आवश्यक हो गया।

7. **साम्प्रदायिक दंगे** (Communal Riots)—जिन्ना की हठधर्मिता के कारण भारत का विभाजन आवश्यक हो गया था। **उसके साथ-साथ समय-समय पर जिस प्रकार साम्प्रदायिक दंगे भारत में हुए उनसे भी यह स्पष्ट होने लगा कि भारत का विभाजन आवश्यक था।** 16 अगस्त, 1946 ई. को जिस प्रकार 'प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस' को बड़ी संख्या में लोग मारे गये उसने कांग्रेस को भी यह सोचने पर विवश कर दिया कि वास्तव में मुस्लिम लीग के साथ समझौता होना व उसका स्थायी होना असम्भव था। इसकी पुष्टि आचार्य कृपलानी के इस कथन से भी होती है, **"इन भयानक दृश्यों को देखकर इस समस्या के सम्बन्ध में मेरे विचारों पर बहुत प्रभाव पड़ा है और अन्य लोगों के समान मैं भी यह सोचने पर विवश हूं कि विभाजन ही इस समस्या का एकमात्र विकल्प है।"** अंग्रेजों का मानना था कि यदि भारत का विभाजन नहीं किया गया तो भारत में गृह युद्ध प्रारम्भ हो जाएगा, क्योंकि उनके विचार से जिस प्रकार जिन्ना ने 'प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस' (Direct Action Day) को शक्ति प्रदर्शन किया था, उससे स्पष्ट था कि जिन्ना गृह युद्ध कराने में भी सक्षम था।[3] माउण्टबेटन का विचार था कि इस समस्या का समाधान केवल जिन्ना के पास ही था[4], अतः उसकी बात स्वीकार करना आवश्यक था।

इस प्रकार साम्प्रदायिक झगड़ों ने कांग्रेस व अंग्रेजी सरकार को भारत के विभाजन को स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया।

8. **पाकिस्तान के स्थायित्व में सन्देह** (Stability of Pakistan was Doubtful)—कांग्रेस के अनेक नेताओं का विचार था कि पाकिस्तान बनने के पश्चात् भी टिक नहीं सकेगा व पुनः भारत में उसका विलय हो जाएगा, अतः इन नेताओं ने पाकिस्तान के निर्माण को समस्या के अस्थाई हल के रूप में स्वीकार किया, किन्तु दुर्भाग्यवश यह आशा कभी पूर्ण न हो सकी।

9. **सत्ता हस्तान्तरण की धमकी** (Threat of Transfer of Power)—1947 ई. तक आते-आते अंग्रेजी सरकार को यह स्पष्ट हो चुका था कि भारत पर अब अधिक समय तक अधिकार बनाए रखना उनके लिए सम्भव न था। अतः ब्रिटिश प्रधानमन्त्री एटली ने 20 फरवरी,

1 Collins and Lapierre, *op. cit.*, p. 42.
2 "I had never visualized that are intelligent man, well educated, trained in England, was capable of closing his mind.........Then I realized that while he was alive, nothing could be done, the other could be persuaded, but not Jinnah. He was a one man band and the one man did it live that." —*Ibid*, p. 44.
3 "I think he has the capacity to cause civil war." —*Mountbatten*
4 "The key to the whole thing obviously was Jinnah." —*Mountbatten*

1947 ई. को यह घोषणा की थी कि जून, 1948 ई. तक सत्ता भारतीयों को सौंप दी जाएगी। अंग्रेजों की इस घोषणा से भारतीय नेता यह सोचने पर विवश हुए कि यदि शीघ्र ही भारतीय समस्या का हल न निकला तो अंग्रेजी सरकार अपने विवेक से कार्य कर सत्ता हस्तान्तरित कर देगी जो कि भारत के लिए हानिकारक हो सकता था तथा गृह युद्ध होने पर भारत दो से अधिक भागों में विभक्त हो सकता था, अतः कांग्रेसी नेता माउण्टबेटन समझौते को स्वीकार कर भारत के विभाजन के लिए तैयार हो गये।

10. **कांग्रेस की विचारधारा** (Policy of Congress)—कांग्रेस प्रारम्भ में भारत का विभाजन किए जाने की घोर विरोधी थी। माउण्टबेटन ने लिखा है कि, **"विभाजन के विचार से नेहरू भयभीत हो गये थे"**[1] महात्मा गांधी ने भी विभाजन का घोर विरोध किया था। महात्मा गांधी ने माउण्टबेटन से कहा था, **"कुछ भी हो जाए उन्हें भारत के विभाजन के विषय में सपने में भी नहीं सोचना चाहिए।"**[2] किन्तु तत्कालीन परिस्थिति को देखकर अन्ततः कांग्रेसी नेता अपने विचारों में परिवर्तन लाने के लिए विवश हुए व उन्हें अनुभव हो गया कि विभाजन के अतिरिक्त और अन्य कोई रास्ता न था। सरदार पटेल ने भी इस तथ्य को स्वीकारते हुए कहा, "मैंने यह अनुभव किया कि यदि हम विभाजन को स्वीकार न करते तो भारत अनेक टुकड़ों में विभक्त हो जाता और बिल्कुल वर्बाद हो जाता .... मैंने अनुभव किया कि हमारे देश में एक के बजाय अनेक पाकिस्तान बन जाएंगे।"

कांग्रेस को अन्तरिम सरकार में मुस्लिम लीग के साथ कार्य करने का अत्यन्त कटु अनुभव हुआ था। कांग्रेस को स्पष्ट हो गया था कि मुस्लिम लीग के साथ सरकार चलाना सम्भव न था। इस सन्दर्भ में प्रो. विपिन चन्द्रा ने लिखा है, **"अन्तरिम सरकार के वास्तविक रूप में ढह जाने ने पाकिस्तान बनाने को अपरिहार्य बना दिया।"**[3]

कुछ विद्वानों जिनमें मौलाना अबुल कलम आजाद भी शामिल हैं का विचार है कि वास्तव में भारत का विभाजन आवश्यक नहीं था, किन्तु नेहरू व पटेल ने माउण्टबेटन के इस विचार को स्वीकार कर भारत के विभाजन को मान लिया। माइकल ब्रेचर ने इस विषय में लिखा है, **"कांग्रेसी नेताओं के सम्मुख सत्ता के प्रति आकर्षण भी था। इन नेताओं ने अपने राजनीतिक जीवन का अधिकांश भाग ब्रिटिश विरोध में बिताया था और अब वे स्वाभाविक रूप से सत्ता के प्रति आकर्षित हो रहे थे।"**[4] किन्तु ब्रेचर के इस विचार को स्वीकार नहीं किया जा सकता। वास्तव में नेहरू व पटेल ने तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए विभाजन के लिए अपनी स्वीकृति दी थी। उस समय, उनके विचार में, इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं था। कांग्रेस ने शेष भारत को सुरक्षित रखने के लिए विवश होकर विभाजन को स्वीकार किया। पं. गोविन्द वल्लभ पन्त ने तो यहां तक कहा, **"आज हमें पाकिस्तान व आत्महत्या में से एक को चुनना है।"**

11. **माउण्टबेटन का प्रभाव** (Influence of Mountbatten)—भारतीय समस्या को सुलझाने के लिए विशेष रूप से माउण्टबेटन को भारत का वायसराय बनाकर भेजा गया था। उन्हें भारत आते समय उनकी पसन्द के कर्मचारी प्रदान किये गये थे। **भारत आने के**

---

1 "Nehru was horrified by the idea of partition." —*Mountbatten*
2 "Mahatma Gandhi told me that what ever happened, I must not dream of partitioning India." —*Mountbatten*
3 "The Virtual collapse of the interim Government also made Pakistan appear to be an unaviodable reality." —Bipin Chandra, *op. cit.* p. 500.
4 Michael Breacher, *Jawahar Lal Nehru*, p. 145.

कुछ समय पश्चात् ही माउण्टबेटन को स्पष्ट हो गया था कि भारत का विभाजन आवश्यक है, क्योंकि उसने देख लिया था कि कांग्रेस व मुस्लिम लीग में जिन्ना के होते हुए कोई समझौता होना असम्भव है। उसने स्थिति को गम्भीरता को देखते हुए यह भी अनुमान लगा लिया था कि सत्ता के हस्तान्तरण के लिए जून, 1948 ई. तक इन्तजार करना सम्भव नहीं था। माउण्टबेटन के ही शब्दों में ही भारत में स्थिति इतनी विस्फोटक हो चुकी थी मानो किसी ज्वालामुखी पर खड़े हों।[1] अतः उसने कांग्रेसी नेताओं को विभाजन के लिए तैयार होने हेतु समझाया। **माउण्टबेटन की इस कार्य में लेडी माउण्टबेटन (एडविना) ने भी बहुत सहायता की।** माउण्टबेटन दम्पति के प्रभावशाली व्यक्तित्व व सूझ-बूझ के परिणामस्वरूप कांग्रेसी नेता भारत के विभाजन के लिए तैयार हो गए। माउण्टबेटन ने यह भी स्पष्ट किया कि यदि वे विभाजन के लिए तैयार नहीं होगे तो भारत पर अंग्रेजी राज्य कायम रहेगा। लार्ड माउण्टबेटन के भारतीय नेताओं पर प्रभाव का उल्लेख करते हुए मौलाना अबुल कलाम आजाद ने लिखा है, **"लार्ड माउण्टबेटन के भारत आगमन के एक माह के अन्तराल में ही पाकिस्तान बनाये जाने के दृढ़ विरोधी पं. नेहरू यदि विभाजन के समर्थक नहीं तो कम से कम तटस्थ हो गए। मेरा विचार है कि इस परिवर्तन का एक प्रमुख कारण लेडी माउण्टबेटन का व्यक्तित्व था।"**[2]

इस प्रकार उपरोक्त सभी कारणों ने इस प्रकार की परिस्थितियां उत्पन्न कर दीं कि भारत के विभाजन के अतिरिक्त भारतीय समस्या का कोई अन्य विकल्प न रहा। इस प्रकार भारत 15 अगस्त, 1947 ई.[3] को स्वतन्त्र हुआ, किन्तु उससे एक दिन पूर्व भारत का विभाजन हो गया था।

रियासतों का विलय एवं सरदार वल्लभ भाई पटेल (1875—1950 ई.)
(INTEGRATION OF STATES AND VALLABHA BHAI PATEL)

सरदार वल्लभ भाई पटेल का जन्म 31 अक्टूबर, 1875 ई. को गुजरात के **करमसद** नामक गांव में हुआ था। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् सरदार वल्लभ भाई पटेल ने वकालत का व्यवसाय अपनाया। वे एक उच्च श्रेणी के वकील थे तथा वकालत में उन्होंने खूब नाम कमाया। कुछ समय वकालत करने के पश्चात् वे इंग्लैण्ड से बैरिस्टर की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने में सफल रहे।

सरदार पटेल का राजनीतिक जीवन 1918 ई. में प्रारम्भ हुआ। 1918 ई. में वे महात्मा गांधी के सम्पर्क में आए तथा जीवन भर उन्हीं के आदर्शों पर चलते रहे। गुजरात में उन्होंने

---

1 "The reason for speed was not to go and muck up Pakistan. It was because the thing was breaking up under my hands. The reason was that neither side would cooperate will each other. I could feel the damn thing simmering. It's like standing on the edge of a volcano and feeling the moment of explosion."
—Collins & Lapierre, *op. cit.*, p. 50

2 With in a month of Lord Mountbatten's arrival in India, Jawahar Lal Nehru, the firm oppontent of partition had become, if not a supported at least acquiescent to the idea.......... I think one factor responsible for the change was the personality of Lady Mountabatten.

3 यहां पर यह जानना आवश्यक है कि अंग्रेजों ने भारत को 15 अगस्त को ही स्वतन्त्रता प्रदान क्यों की? माउण्टबेटन के अनुसार उसने 15 अगस्त इसलिए निर्धारित किया, क्योंकि दो वर्ष पूर्व इसी दिन द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान ने आत्म समर्पण किया था। इस प्रकार अंग्रेजों के लिए 15 अगस्त एक महत्वपूर्ण तिथि थी।

किसानों को संगठित करने का कार्य प्रारम्भ किया तथा 1928 ई. में ही बारदोली में किसानों ने जो सत्याग्रह किया, उसका उन्होंने नेतृत्व किया। इस सत्याग्रह को सरदार पटेल ने सफलता प्रदान करायी। **महात्मा गांधी ने इस अवसर पर 'सरदार' की उपाधि प्रदान की।** इस सत्याग्रह के कारण उनका यश सम्पूर्ण भारत में फैल गया तथा वे राष्ट्रीय नेता वन गए।

सरदार पटेल को 1931 ई. में करांची के कांग्रेस-सम्मेलन का अध्यक्ष चुना गया था। सरदार पटेल सत्याग्रह आन्दोलन में कई बार जेल गए तथा यातनाएं सहीं। कांग्रेस के अध्यक्ष और महामन्त्री होने के कारण उन्होंने इस संस्था में सामयिक परिवर्तन भी किए। कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों को जो सफलता मिली तथा अनुशासन व कर्तव्यपरायणता जो तत्कालीन कांग्रेसी नेताओं में दृष्टिगत हुई उसका श्रेय बहुत हद तक सरदार पटेल को ही है क्योंकि 1937 ई. के चुनावों में उन्होंने कांग्रेस की चुनाव पद्धति को संगठित किया तथा अनेक प्रान्तों में कांग्रेस के मन्त्रिमण्डल वनने पर उनके ऊपर पार्लियामेण्टरी वोर्ड की स्थापना की। इस पार्लियामेण्टरी बोर्ड (Parliamentary Board) के अध्यक्ष सरदार पटेल ही थे। इसी कारण कहा जाता है कि **गांधीजी और जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में चलने वाली कांग्रेस के वल्लभ भाई पटेल कर्णधार थे।**

सरदार पटेल ने 1942 ई. के भारत छोड़ो आन्दोलन में भी भाग लिया। अंग्रेजी सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया तथा अहमदनगर की जेल में रखा। 1945 ई. में जेल से छूटने पर उन्होंने घोषणा की कि अब हमारा नारा '**भारत छोड़ो**' नहीं वरन् '**एशिया छोड़ो**' (Quit Asia) होगा। इसके पश्चात् उन्होंने शिमला सम्मेलन में अन्तरिम सरकार में भी भाग लिया। 1946 ई. में बनी अन्तरिम सरकार में सरदार पटेल को उपप्रधानमन्त्री (Deputy Prime Minister) नियुक्त किया गया।

सरदार पटेल ने मुस्लिम लीग की '**प्रत्यक्ष कार्यवाही**' तथा तोड़-फोड़ की नीति के कारण उत्पन्न अराजकता व दुर्व्यवस्था का कुशलतापूर्वक सामना किया। पं. नेहरू के नेतृत्व में अन्तरिम सरकार का गठन होने पर सरदार पटेल को गृहमन्त्री का पद दिया गया। गृहमन्त्री के रूप में सरदार पटेल ने असाधारण योग्यता का परिचय देते हुए रियासतों का भारत में विलय किया। अंग्रेजी सरकार भारत छोड़ते समय देशी रियासतों को सर्वोच्चता (Paramountcy) का अधिकार सौंप गई थी, अतः 562 रियासतें स्वतन्त्र होने का स्वप्न देखने लगी थीं। सरदार पटेल ने दृढ़ नीति का पालन करते हुए उनको भारत में मिलाया। इस प्रकार वह देश की एकता को बनाए रखने में सफल हुए। **उनके इसी कार्य के कारण उन्हें 'लौह पुरुष' (Iron Man) कहा गया।**

सरदार वल्लभ भाई पटेल महान् संगठनकर्ता तथा प्रशासक थे। सरदार अनुशासनवादी एवं व्यावहारिक व्यक्ति थे। के. एम. मुन्शी ने सरदार पटेल की प्रशंसा करते हुए लिखा है, **"सरदार पटेल की महान् प्रबन्धक शक्ति, राष्ट्रीय शक्ति के मुख्य स्तम्भ, सामान्य प्रशासन को सक्षम बनाने में उनकी सामर्थ्य, उनका साहसी नेतृत्व, मनुष्यों की भावनाओं को समझने की शक्ति और ब्रिटिश शासन के प्रति उनकी समझौता करने की प्रवृत्ति ने उन्हें भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की प्रमुख शक्ति बना दिया था।"**

15 दिसम्बर, 1950 ई. को सरदार पटेल की मृत्यु हो गयी।

रियासतों का विलय
(INTEGRATION OF THE STATES)

भारत में कुल 562 राज्य (रियासतें) थे। 1858 ई. के पश्चात् से इन राज्यों के अंग्रेजी सरकार से जो सम्बन्ध थे उन्हें **'सर्वोच्चता'** (Paramountcy) कहा जाता है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से ये रियासतें आन्तरिक मामलों में स्वतन्त्र थीं, किन्तु वास्तविक रूप में उन पर अंग्रेजी शासन का नियन्त्रण था।

1946 ई. में केबिनेट मिशन योजना (Cabinet Mission Plan) के अन्तर्गत यह घोषणा की गयी कि 'सर्वोच्चता' समाप्त कर दी जाएगी तथा यह अधिकार भारतीय सरकार को नहीं दिया जाएगा। इस घोषणा से रियासतें पूर्ण स्वतन्त्र होने का स्वप्न देखने लगीं। इस प्रकार अंग्रेजों ने भारतीयों के लिए अत्यन्त जटिल समस्या उत्पन्न कर दी। 5 जुलाई, 1947 ई. को सरदार पटेल की अध्यक्षता में **'स्टेट विभाग'** की स्थापना की गयी। सरदार पटेल ने देखा कि 562 राज्यों में से 100 राज्य प्रमुख थे, जैसे हैदराबाद, कश्मीर, बड़ौदा, ग्वालियर, मैसूर, आदि। इसके विपरीत कुछ रियासतें बहुत ही छोटी थीं। इन रियासतों में निरंकुश राजतन्त्र था तथा शासक राजा के दैवीय अधिकारों (Divine Rights of the king) में विश्वास रखते थे। सरदार पटेल के विशेष प्रयत्नों से पाकिस्तान में शामिल होने वाली रियासतों के अतिरिक्त शेष सभी रियासतें भारत में शामिल हो गयीं। केवल जूनागढ़, कश्मीर व हैदराबाद की रियासतें इस विलय के लिए तैयार न थीं।

रियासतों का भारत विलय करना सरल कार्य न था। इस कार्य में दो प्रमुख बाधाएं थीं—प्रथम, जिन्ना द्वारा स्वयं को पूर्ण स्वतन्त्र घोषित करना व भारत तथा पाकिस्तान दोनों से सम्बन्ध रखना, किन्तु सरदार पटेल ने असाधारण योग्यता का परिचय दिया। उन्होंने रियासतों से अपील की कि वे भारत की अखण्डता को वनाए रखने में उनकी सहायता करें। उन्होंने मैत्री व सद्भावना का हाथ बढ़ाया व भारत में सम्मिलित हो जाने के लिए कहा।

सरदार पटेल ने दो प्रकार की पद्धतियों को प्रोत्साहित किया—वाह्य विलय तथा आन्तरिक संगठन। वाह्य विलय में छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर अथवा पड़ोसी प्रान्तों को मिलाकर एक बड़ा राज्य बनाना तथा आन्तरिक संगठन के आधार पर इन राज्यों में प्रजातान्त्रिक प्रणाली को लागू करना। उदाहरणार्थ, दिसम्बर, 1947 ई. में उड़ीसा और छत्तीसगढ़ के 39 राज्यों का उड़ीसा तथा सी. पी. में विलय हुआ। इसी प्रकार फरवरी 1948 ई. में बम्बई प्रदेश के साथ 17 दक्षिणी राज्यों का विलय हुआ।[1]

जूनागढ़, हैदराबाद व कश्मीर की रियासतों का भारत में विलय करने के लिए सरदार पटेल को सेना की सहायता लेनी पड़ी।

जूनागढ़ एक छोटी-सी रियासत थी। इस रियासत की उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि इसका नवाब मुसलमान तथा प्रमुखतयां जनता हिन्दू थी। जूनागढ़ के नवाब ने पाकिस्तान में सम्मिलित होने का निर्णय किया जिसका वहां की जनता ने विरोध किया। जनता की सहायता के लिए सरदार पटेल ने सेना भेजी। भारतीय सेना के जूनागढ़ पहुंचने पर नवाव पाकिस्तान भाग गया। जूनागढ़ में 1948 ई. में जनमत संग्रह कराया गया, जो सौभाग्यवश भारत के पक्ष में गया। इस प्रकार जूनागढ़ का भारत में विलय हो गया।

1 जैन, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 428.

हैदराबाद का निजाम भी भारत में सम्मिलित होने के पक्ष में न था। हैदराबाद की जनता भारत में मिलना चाहती थी, अतः उन्होंने निजाम के विरुद्ध प्रदर्शन करना प्रारम्भ कर दिया। इस पर निजाम ने हिन्दुओं पर भयंकर अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया। कासिम रिजवी के नेतृत्व में नवाब के रजाकारों ने सारी रियासत में आतंक फैला दिया तथा लूट-पाट की। अन्ततः जनता की रक्षा करने के लिए सरदार पटेल ने 13 सितम्बर, 1948 ई. को भारतीय सेना हैदराबाद भेजी। अन्ततः हैदराबाद के निजाम को भारत में शामिल होने के लिए विवश होना पड़ा।

जूनागढ़ व हैदराबाद की समस्या से कहीं अधिक जटिल कश्मीर का विलय करने की समस्या थी। कश्मीर में मुसलमान बहुसंख्यक थे तथा इसकी सीमा पाकिस्तान से मिलती थी, अंतः जिन्ना भी कश्मीर को पाकिस्तान में मिलाना चाहते थे। कश्मीर के शासक ने भी स्पष्ट रूप से घोषणा नहीं की कि वह पाकिस्तान अथवा भारत किसमें मिलना चाहता है। इस बात का लाभ उठाते हुए जिन्ना ने 22 अक्टूबर, 1947 ई. को कबाइली लुटेरों के रूप में पाकिस्तानी सेना को कश्मीर भेजा। इस पर कश्मीर का शासक भयभीत हो गया व उसने भारत से सैनिक सहायता मांगी। सरदार पटेल इसी अवसर की तलाश में थे। उन्होंने कहा कि भारत कश्मीर की रक्षा करेगा, किन्तु रियासत से भविष्य का निर्णय जनमत से किया जाएगा। भारतीय सेना ने कबाइली लुटेरों को मार भगाया। 31 दिसम्बर, 1947 ई. को भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ से अपील की कि वह पाकिस्तान को उत्तर-पश्चिमी लुटेरों को भारत पर आक्रमण करने से रोके। 1 जनवरी, 1949 ई. को भारत पाकिस्तान के मध्य युद्ध विराम सन्धि हुई। संयुक्त राष्ट्र संघ इस मामले में कुछ न कर सका।

इस प्रकार सभी रियासतों का भारत में विलय करने में सरदार पटेल सफल रहे। यह उनकी असाधारण उपलब्धि थी, जिसने भारत की अखण्डता की रक्षा की।

डॉ. अम्बेडकर तथा भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएं
(Dr. AMBEDKAR AND THE SALIENT FEATURES OF INDIAN CONSTITUTION)

प्रत्येक देश को अपना पृथक् संविधान तैयार करने का अधिकार होता है। भारतीय संविधान पर विचार करने के लिए 9 दिसम्बर, 1946 ई. को सच्चिदानन्द सिन्हा की अध्यक्षता में भारत की संविधान सभा का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। विचार-विमर्श के उपरान्त संविधान सभा ने संविधान की रूपरेखा तैयार करने के लिए एक समिति का गठन किया जिसे **संविधान प्रारूप समिति** (Constitution Drafting Committee) कहा गया। इस समिति के अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर थे। इस समिति ने अपनी संस्तुतियां 21 फरवरी, 1948 ई. को संविधान सभा को प्रस्तुत कीं। इस प्रस्ताव को विचार-विमर्श के पश्चात् 26 नवम्बर, 1949 ई. को संविधान सभा ने पारित कर दिया। संविधान सभा का अन्तिम अधिवेशन 24 जनवरी, 1950 ई. को हुआ, जिसमें यह निर्णय लिया गया कि भारत में नवीन संविधान 26 जनवरी, 1950 ई. से लागू किया जाए। इस प्रकार 26 जनवरी, 1950 को नवीन संविधान के अनुसार भारत को लोकतन्त्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया।

डॉ. अम्बेडकर द्वारा तैयार किए गए संविधान के प्रारूप की अग्रलिखित प्रमुख विशेषताएं थीं :

(i) **प्रस्तावना (Preamble)**—भारतीय संविधान की प्रस्तावना अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्रदान करने की बात कही गयी है। भारतीय संविधान की भूमिका में लिखा हुआ है, **"हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुसत्ता सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने तथा इसके सब नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और पूजा की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए उनके मन में व्यक्ति की गरिमा, राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई. को इस संविधान को अपनाते हैं।"**

(ii) **धर्म-निरपेक्ष एवं समाजवादी गणराज्य** (Secular Socialist Republic)—नवीन संविधान के द्वारा भारत में धर्म-निरपेक्ष समाजवादी गणराज्य की स्थापना की गयी। इस प्रकार समस्त सम्प्रदायों के लोगों को समान अधिकार व अवसर प्रदान किए गए। भारत में धर्म अथवा सम्प्रदाय के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता है, यही कारण है कि अल्पसंख्यकों में से भी राष्ट्रपति पद पर कुछ लोग कार्य कर सके। समाजवाद पर भी भारतीय संविधान में जोर दिया गया है।

(iii) **लिखित एवं विशाल संविधान** (Written and Lengthiest Constitution)—भारतीय संविधान की एक विशेषता इसका लिखा हुआ होना तथा विश्व का सबसे लम्बा संविधान होना है। विश्व में कुछ देशों के संविधान लिखे हुए नहीं हैं जिससे समय-समय पर समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। भारत के संविधान का लिखित स्वरूप होने के कारण भारत में यह समस्या नहीं है।

भारतीय संविधान के विषय में सर आइवर जैनिंग्स ने लिखा है, **"यह विश्व का सबसे अधिक लम्बा एवं सबसे ब्यौरेवार संविधान है।"** भारतीय संविधान के विशाल होने का कारण यह है कि भारतीय संविधान का स्वरूप संघात्मक है तथा उसे कनाडा के संघात्मक ढांचे के आधार पर बनाया गया है। इसमें राष्ट्रीय सरकार के संगठन के अतिरिक्त संघ में सम्मिलित इकाइयों के संगठन का भी वर्णन है। भारतीय संविधान के विशाल होने का एक अन्य कारण इसका 1935 ई. के अधिनियम के अनुसार बनाया जाना भी है। इस विषय में श्रीनिवासन ने लिखा है, **"हमारा नया संविधान 1935 ई. के भारतीय अधिनियम के समान ही न केवल एक संविधान है अपितु एक विस्तृत कानून संहिता भी है जिसमें देश की सारी वैधानिक और शासन सम्बन्धी समस्याओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।"**[1]

(iv) **अनेक देशों के संविधानों के आधार पर निर्मित** (Based on the Constitution of other Countries)—भारतीय संविधान पूर्णतया मौलिक नहीं है। भारतीय संविधान के निर्माता भारत के लिए उच्च कोटि का संविधान बनाना चाहते थे, अतः इन्होंने विभिन्न देशों के संविधानों की अच्छी बातों को ग्रहण कर लिया। इस विषय में डॉ. एम. पी. शर्मा का कथन उल्लेखनीय है, **"हमारे संविधान के निर्माताओं ने यह दावा कभी नहीं किया कि वे कोई अद्भुत मौलिक संविधान की रचना करेंगे। वे एक अच्छा तथा सुचारु रूप से काम चलाने वाला**

1 "The new Constitution of India is like the Act of 1935, not merely a Constitution but also a detailed legal code dealing with all important aspects of the constitution and administrative system of the country."
—Srinivasan, *Democratic Government in India*, p. 143.

संविधान बनाना चाहते हैं।''[1] भारतीय संविधान पर कनाडा, अमरीका, आयरलैण्ड, जर्मनी व आस्ट्रेलिया के संविधानों का प्रभाव है।

(v) **राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ाने वाला** (Strengthens the Feelings of Nationalism)—भारतीय संविधान की एक मुख्य विशेषता इसके भारत में राष्ट्रीयता व एकता की भावना को वढ़ाना है। एकता बनाए रखने के लिए सम्पूर्ण भारत में एक सर्वोच्च न्यायालय, अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा केन्द्र को शक्तिशाली बनाया तथा एक राज भाषा घोषित की गयी। भारत में दोहरी नागरिकता के स्थान पर एक ही नागरिकता की भी स्थापना की गयी।

(vi) **मूल अधिकार** (Fundamental Rights)—वे अधिकार जो संविधान द्वारा नागरिकों को दिए जाते हैं, मूल अधिकार कहलाते हैं। इसका उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को अपनी उन्नति का अवसर प्रदान करना तथा सरकार को मनमानी करने से रोकना है। मूल अधिकारों में प्रमुख समता का अधिकार, अभिव्यक्ति का अधिकार, शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने का अधिकार, धर्म का पालन करने का अधिकार हैं। प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को वोट देने का अधिकार भी संविधान के द्वारा प्रदान किया गया है।

(vii) **राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्त** (Directive Principles of States)—भारत में जनहित सरकार की स्थापना के लिए संविधान में सरकार के लिए निर्देश दिए गए हैं जिन्हें निदेशक सिद्धान्त कहते हैं। मूल अधिकार तो न्यायालय के द्वारा प्राप्त किए जा सकते हैं, किन्तु निदेशक सिद्धान्तों को न्यायालय के द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता। सरकार द्वारा स्वत: ही इसका पालन किया जाता है। निदेशक सिद्धान्तों के अनुसार, ''राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की जिसमें, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय.....व लोककल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा।'' इन सिद्धान्तों के अनुसार सरकार के लिए यह आवश्यक है कि वह यह देखे कि प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से जीविका के साधनों, समान कार्य के लिए समान वेतन उपलब्ध है तथा जनता को काम दिलाने की उचित व्यवस्था है अथवा नहीं। इन सिद्धान्तों के अन्तर्गत सरकार से यह भी अपेक्षा की गयी है कि वह अपंगों, वृद्धों व बीमार व्यक्तियों की उचित आर्थिक सहायता करे।

(viii) **कल्याणकारी राज्य** (A Welfare State)—भारतीय संविधान के द्वारा भारत में एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना किए जाने की व्यवस्था की गयी। इसी व्यवस्था के अन्तर्गत भारतीयों को अवसर की समानता, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी। कल्याणकारी राज्य की स्थापना के उद्देश्य से ही निदेशक सिद्धान्त (Directive Principles) बनाए गए थे।

(ix) **संसदीय सरकार की स्थापना** (Parliamentary form of Govt.)—भारतीय संविधान के द्वारा केन्द्र व राज्यों में संसदीय सरकारों की व्यवस्था की गयी है। इस व्यवस्था को लागू करने के कारण पर प्रकाश डालते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा था, **''इस पद्धति में कार्यपालिका के उत्तरदायित्व का दैनिक एवं निश्चित अवधि के उपरान्त मूल्यांकन होता रहता है।''** कार्यपालिका का निश्चित अवधि के उपरान्त मूल्यांकन जनता के द्वारा आम चुनावों के समय होता है तथा दैनिक मूल्यांकन जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा होता है। इस प्रकार संसदीय पद्धति भारतीय संविधान में इंग्लैण्ड के संविधान से ली गयी है।

1 **"It was not the purpose of our Constitution makers to produce an original of unique Constitution what they wanted was a good and workable one."**
—***Dr. M. P. Sharma***

(x) संघीय शासन की स्थापना (Federal Government in India)—भारतीय संविधान की एक प्रमुख विशेषता उसका संघीय स्वरूप है। संविधान में भारत को राज्यों का संघ कहा गया है। संविधान में केन्द्र में संघीय सरकार का शासन है तथा राज्यों में राज्य सरकारों का विशेष परिस्थितियों में राज्य सरकारें केन्द्र सरकार के निर्देश मानने के लिए बाध्य हैं। केन्द्र व केन्द्रीय संसद, राज्य में राज्य की विधान सभा तथा समवर्ती क्षेत्रों में केन्द्र व राज्य दोनों ही कानून बना सकते हैं।

(xi) स्वतन्त्र न्यायपालिका तथा अन्य संस्थान (Independent Judiciary and Other Institutions)—नवीन संविधान के द्वारा न्यायपालिका की स्वतन्त्रता पर विशेष बल दिया गया। न्यायपालिका को कार्यपालिका से इसी कारण पृथक् रखने का यथासम्भव प्रयास किया गया तथा सम्पूर्ण भारत में समान कानून लागू किए गए। न्यायपालिका के समान ही स्वतन्त्र चुनाव आयोग (Election Commission) की स्थापना की गयी ताकि निष्पक्ष चुनाव कराए जा सकें। इसी प्रकार लोक सेवा आयोग की स्थापना कर योग्यता के आधार पर निष्पक्ष नियुक्तियां किए जाने की व्यवस्था हुई।

(xii) भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य (India's Commonwealth Membership)—भारत ने स्वतन्त्र होने के पश्चात् भी राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहने की इच्छा व्यक्त की। पं. जवाहरलाल नेहरू ने इस प्रस्ताव को संविधान सभा के समक्ष प्रस्तुत किया, जिसे अन्ततः स्वीकार कर लिया गया तथा 17 मई, 1949 ई. को घोषणा की गयी, **"यह सभा उस घोषणा का समर्थन करती है जो कि लन्दन में 27 अप्रैल, 1949 ई. को राष्ट्रमण्डलीय प्रधानमन्त्रियों के सम्मेलन की समाप्ति के बाद की गयी, जिसमें भारत के प्रधानमन्त्री ने राष्ट्रमण्डल की सदस्यता को जारी रखने के बारे में अपनी सहमति प्रदान कर दी है।"**

प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. क्रिप्स मिशन के महत्व का मूल्यांकन कीजिए।
2. भारत छोड़ो आन्दोलन के क्या कारण थे?
3. भारत छोड़ो आन्दोलन के महत्व पर प्रकाश डालिए।
4. कैबिनेट मिशन योजना की विवेचना कीजिए।
5. माउण्टबेटन योजना पर प्रकाश डालिए।
6. भारत के विभाजन के कारणों की विवेचना कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. क्रिप्स मिशन भारत भेजने के कारणों का वर्णन कीजिए।
2. क्रिप्स मिशन की असफलता के कारण बताइए।
3. सी. आर. फार्मूला का मूल्यांकन कीजिए।
4. वेवल योजना पर प्रकाश डालिए।
5. भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम की प्रमुख धाराएं बताइए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मुक्ति दिवस किस वर्ष मनाया गया था मुस्लिम-लीग के द्वारा :
   (अ) 1935 ई. (ब) 1937 ई. (स) 1939 ई. (द) 1941 ई.

2. 'अगस्त प्रस्ताव' किस वर्ष प्रस्तावित किए गए थे :

(अ) 1935 ई. (ब) 1937 ई. (स) 1939 ई. (द) 1942 ई.

3. महात्मा गांधी ने भारत छोड़ो आन्दोलन किस वर्ष प्रारम्भ किया :

(अ) 1940 (ब) 1942 (स) 1944 (द) 1946

4. वेवल योजना किस शहर से प्रारम्भ हुई :

(अ) शिमला (ब) कलकत्ता (स) दिल्ली (द) लखनऊ

5. 'सीधी कार्यवाही' करने की घोषणा किसने की थी :

(अ) गांधी (ब) जिन्ना

(स) पटेल (द) गोविन्द वल्लभ पन्त

[उत्तर—1. (स), 2. (द), 3. (ब), 4. (अ), 5. (ब)।]

निम्नलिखित वाक्यों में सत्य/असत्य दर्शाइए :

1. अगस्त प्रस्ताव लॉर्ड लिनलिथगो ने प्रस्तावित किया था।
2. क्रिप्स प्रस्तावों को गांधीजी ने 'उत्तर तिथीय चैक' कहा था।
3. भारत छोड़ो आन्दोलन में महात्मा गांधी ने 'करो या मरो' का नारा दिया।
4. माउण्टबेटन को प्यार से उनके मित्र डिकी कहकर बुलाते थे।
5. पाकिस्तान को भी 15 अगस्त को स्वतन्त्र किया गया।

[उत्तर—1. सत्य, 2. सत्य, 3. सत्य, 4. सत्य, 5. असत्य।]

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :

1. "मैं इंग्लैण्ड का प्रधानमन्त्री ब्रिटिश साम्राज्य को छिन्न-भिन्न करने के लिएं नहीं बना हूं।" उक्त विचार .... ने व्यक्त किए थे।
2. क्रिप्स मिशन की अध्यक्षता .... क्रिप्स ने की थी।
3. क्रिप्स प्रस्ताव को कांग्रेस ने .... कर दिया।
4. भारत छोड़ो आन्दोलन के समय सभी प्रमुख नेता .... कर लिए गए।
5. केबिनेट मिशन के अध्यक्ष .... थे।

[उत्तर—1. चर्चिल, 2. स्टेफर्ड, 3. अस्वीकार, 4. गिरफ्तार, 5. लारेन्स।]

परिशिष्ट I

भारतीय इतिहास के प्रमुख राजवंश

[PROMINENT DYNASTIES OF INDIAN HISTORY]

(1526 ई.—1761 ई.)

मुगल वंश

बाबर (1526 ई.—1530 ई.)
↓
हुमायूं (1530 ई.—1556 ई.)
↓
अकबर (1556 ई.—1605 ई.)
↓
जहांगीर (1605 ई.—1627 ई.)
↓
शाहजहां (1628 ई.—1658 ई.)
↓
औरंगजेब (1658 ई.—1707 ई.)
↓
बहादुरशाह I (मुअज्जम) (1707 ई.—1712 ई.)
↓
जहांदारशाह (1712 ई.—1713 ई.)
↓
फर्रुखसियर (1713 ई.—1719 ई.)
↓
मुहम्मद शाह (1719 ई.—1748 ई.)
↓
अहमदशाह (1748 ई.—1754 ई.)
↓
आलमगीर II (1754 ई.—1759 ई.)

↓

शाह आलम II (1759 ई.—1806 ई.)

↓

अकबर II (1806 ई.—1837 ई.)

↓

बहादुर शाह II (1837 ई.—1858 ई.)

↓

मराठा

शिवाजी (1674 ई.—1680 ई.)

शम्भाजी (1680 ई.—1689 ई.)

राजाराम (1689 ई.—1700 ई.)

शाहू (1707 ई.—1749 ई.)

पेशवा

बालाजी विश्वनाथ (1713 ई.—1720 ई.)

↓

बाजीराव प्रथम (1720 ई.—1740 ई.)

↓

बालाजी बाजीराव (1740 ई.—1761 ई.)

↓

माधवराव प्रथम (1761 ई.—1772 ई.)

परिशिष्ट II

भारतीय इतिहास की प्रमुख तिथियां

[SOME IMPORTANT DATES OF MODERN INDIAN HISTORY]

वर्ष		घटनाएं
1526 ई.	:	पानीपत का युद्ध। इब्राहिम लोदी पर बाबर की विजय, मुग़ल-शासन की स्थापना
1527 ई.	:	खनवा का युद्ध, राणा सांगा पराजित।
1530 ई.	:	बाबर की मृत्यु, हुमायूं सिंहासनारूढ़।
1539 ई.	:	चौसा का युद्ध, हुमायूं पराजित।
1540 ई.	:	शेरशाह सिंहासनारूढ़।
1542 ई.	:	हुमायूं के पुत्र अकबर का जन्म।
1545 ई.	:	शेरशाह की मृत्यु।
1555 ई.	:	हुमायूं का भारत पर पुनः अधिकार।
1556 ई.	:	हुमायूं की मृत्यु, पानीपत का द्वितीय युद्ध, अकबर सिंहासनारूढ़।
1576 ई.	:	हल्दीघाटी का युद्ध।
1597 ई.	:	राणा प्रताप की मृत्यु।
1600 ई.	:	ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना।
1602 ई.	:	अबुल फजल का वध।
1605 ई.	:	अकबर की मृत्यु, जहांगीर सिंहासनारूढ़।
1606 ई.	:	खुसरो का विद्रोह।
1608 ई.	:	हॉकिन्स भारत पहुंचा।
1611 ई.	:	नूरजहां व जहांगीर का विवाह।
1615 ई.	:	टॉमस रो भारत आया।
1627 ई.	:	जहांगीर की मृत्यु, शिवाजी का जन्म।
1628 ई.	:	शाहजहां सिंहासनारूढ़।
1632 ई.	:	मुमताज महल की मृत्यु।
1658 ई.	:	औरंगजेब सिंहासनारूढ़।
1666 ई.	:	शाहजहां की मृत्यु।
1680 ई.	:	शिवाजी की मृत्यु।
1687 ई.	:	औरंगजेब द्वारा गोलकुण्डा का अधिकार।

1689 ई.	:	शम्भाजी की मृत्यु।
1707 ई.	:	**औरंगजेब की मृत्यु**, मुगलों का पतन प्रारम्भ।
1708 ई.	:	गुरु गोविन्द सिंह की मृत्यु।
1722 ई.	:	हैदर अली का जन्म।
1739 ई.	:	नादिरशाह का आक्रमण।
1740 ई.	:	मराठों का अरकाट पर आक्रमण, अलीवर्दी खां बंगाल का सूबेदार बना।
1742 ई.	:	डूप्ले फ्रांसीसी बस्ती पाण्डीचेरी का गवर्नर नियुक्त।
1744 ई.	:	प्रथम फ्रांसीसी कर्नाटक युद्ध प्रारम्भ।
1746 ई.	:	मारीशस के गवर्नर ला बार्डिने ने मद्रास जीता।
1748 ई.	:	ए-ला शाप्ल की सन्धि तथा मद्रास अंग्रेजों को लौटाया गया। अहमदशाह मुगल सम्राट वना।
1749 ई	:	शाहू की मृत्यु : राजाराम तथा ताराबाई का पोता राजाराम छत्रपति बना।
1750 ई.	:	द्वितीय आंग्ल-फ्रांसीसी कर्नाटक युद्ध प्रारम्भ।
1754 ई.	:	आलमगीर द्वितीय सम्राट बना।
1756 ई.	:	बंगाल के नवाब अलीवर्दी खां की मृत्यु, सिराजुद्दौला नवाब बना, **ब्लैक होल की घटना**।
1757-63 ई.	:	तीसरा आंग्ल-फ्रांसीसी कर्नाटक युद्ध।
1757 ई.	:	**प्लासी का युद्ध**, मीर जाफर बंगाल का नवाब बना। क्लाइव, फोर्ट विलियम का गवर्नर बना।
1758 ई.	:	मराठों का पंजाब पर आक्रमण।
1759 ई.	:	सम्राट आलमगीर के पुत्र अलीगौहर का विद्रोह; बिहार पर आक्रमण। गाजीउद्दीन द्वारा सम्राट का वध।
1760 ई.	:	मीर कासिम बंगाल का नवाब बना।
1761 ई.	:	मराठों और अहमदशाह अब्दाली के बीच **पानीपत का तीसरा युद्ध**; अंग्रेजों से पाण्डीचेरी जीती; अलीगौहर, शाहआलम द्वितीय के नाम से सम्राट बने, माधव राव पेशवा बने।
1763 ई.	:	मीर कासिम के स्थान पर मीर जाफर पुनः बंगाल के नवाब बने।
1764 ई.	:	**बक्सर का युद्ध**।
1765 ई.	:	नज्मुद्दौला बंगाल का नवाब; क्लाइव की दूसरी गवर्नरी (1765-67); बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी कम्पनी को मिली।
1767-69 ई.	:	प्रथम आंग्ल-मैसूर युद्ध।
1770 ई.	:	बंगाल में भीषण अकाल।
1771 ई.	:	मराठों ने सम्राट शाहआलम को दिल्ली सिंहासन पर पुनः बिठाया।
1772 ई.	:	**वारेन हेस्टिंग्ज बंगाल का गवर्नर नियुक्त**।
1773 ई.	:	रेग्युलेटिंग ऐक्ट पारित हुआ।
1774 ई.	:	रुहेला युद्ध; वारेन हेस्टिंग्ज प्रथम गवर्नर-जनरल (1774-85); कलकत्ता में उच्चतम न्यायालय स्थापित।

1775-82 ई.	:	प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध।
1780-84 ई.	:	द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध।
1782 ई.	:	हैदर अली की मृत्यु।
1784 ई.	:	**पिट का इण्डिया अधिनियम।**
1786 ई.	:	कार्नवालिस गवर्नर-जनरल बना (1786-93); 1805 में पुनः नियुक्त।
1790-92 ई.	:	तृतीय आंग्ल-मैसूर युद्ध।
1793 ई.	:	बंगाल में स्थायी भूमिकर व्यवस्था; चार्टर ऐक्ट पारित।
1795 ई.	:	निजाम तथा मराठों के बीच खारड़ा का युद्ध।
1798 ई.	:	अहमदशाह अब्दाली के पोते जमान शाह का भारत पर आक्रमण। वेलेजली भारत का गवर्नर-जनरल बना।
1799 ई.	:	चतुर्थ आंग्ल-मैसूर युद्ध; टीपू की मृत्यु; रणजीतसिंह ने लाहौर जीता।
1800 ई.	:	नाना फड़नवीस की मृत्यु।
1801 ई.	:	वेलेजली ने कर्नाटक पर अधिकार किया।
1802 ई.	:	अंग्रेजों तथा बाजीराव द्वितीय के बीच सन्धि।
1803-5 ई.	:	द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध।
1805 ई.	:	कम्पनी, भरतपुर के दुर्ग को जीतने में असफल; वेलेजली लौटा।
1806 ई.	:	वैल्लौर का सैनिक विद्रोह।
1809 ई.	:	कम्पनी और रणजीतसिंह के बीच अमृतसर की सन्धि।
1813 ई.	:	चार्टर अधिनियम पारित।
1814-16 ई.	:	**नेपाल से युद्ध।**
1817 ई.	:	पिण्डारियों के विरुद्ध अभियान; तृतीय आंग्ल-मराठा युद्ध।
1819 ई.	:	एलफिन्स्टन बम्बई और मुनरो मद्रास के गवर्नर बने।
1824-26 ई.	:	आंग्ल-बर्मा युद्ध।
1828 ई.	:	विलियम बैंटिंक भारत का गवर्नर-जनरल।
1829 ई.	:	**सती प्रथा समाप्त।**
1830 ई.	:	राजा राममोहन राय इंग्लैण्ड गये; वहीं मृत्यु (1833)।
1833 ई.	:	नवीन चार्टर पारित; कम्पनी का व्यापारिक अधिकार समाप्त।
1834 ई.	:	कुर्ग पर अंग्रेजी अधिकार।
1835 ई.	:	**अंग्रेजी, भारतीय प्रशासन की सरकारी भाषा बनी।**
1838 ई.	:	कम्पनी, रणजीतसिंह तथा शाहशुजा के बीच त्रिदलीय सन्धि।
1839 ई.	:	रणजीतसिंह की मृत्यु।
1839-42 ई.	:	प्रथम आंग्ल-अफगान युद्ध।
1843 ई.	:	सिन्ध की विजय।
1845-46 ई.	:	प्रथम आंग्ल-सिक्ख युद्ध।
1848 ई.	:	डलहौजी (1848-56) की गवर्नर-जनरल के रूप में नियुक्ति।
1848-49 ई.	:	दूसरा आंग्ल-सिक्ख युद्ध तथा पंजाब का विलय।
1848 ई.	:	व्यपगत के सिद्धान्त के अन्तर्गत सतारा का विलय।
1852 ई.	:	दूसरा आंग्ल-बर्मा युद्ध।

1853 ई.	:	प्रथम रेलवे लाइन खुली (थाना व बम्बई के बीच), नागपुर का विलय, नया चार्टर ऐक्ट।
1854 ई.	:	झांसी का विलय।
1855 ई.	:	संथाल विद्रोह।
1856 ई.	:	अवध का विलय।
1857 ई.	:	बम्बई, मद्रास और कलकत्ता विश्वविद्यालय स्थापित, प्रथम महान स्वतन्त्रता संग्राम का आरम्भ।
1858 ई.	:	विद्रोह की समाप्ति, विक्टोरिया साम्राज्ञी घोषित की गयी, 1858 ई. का अधिनियम पारित।
1861 ई.	:	भारतीय परिषद् अधिनियम : फौजदारी और दीवानी कार्य संहिता तथा भारतीय उच्च न्यायालय अधिनियम पारित।
1863 ई.	:	अफगानिस्तान के अमीर दोस्त मुहम्मद की मृत्यु।
1869 ई.	:	स्वेज नहर खुली।
1872 ई.	:	पंजाब में कूका विद्रोह।
1873 ई.	:	बिहार में अकाल।
1875 ई.	:	प्रिन्स ऑफ वेल्ज की भारत यात्रा।
1876 ई.	:	साम्राज्ञी विक्टोरिया कैसर-ए-हिन्द घोषित।
1877 ई.	:	लिटन द्वारा दिल्ली दरबार आयोजित।
1876-78 ई.	:	दक्कन में भीषण अकाल।
1878-80 ई.	:	द्वितीय आंग्ल-अफगान युद्ध।
1878 ई.	:	भारतीय भाषा समाचार-पत्र अधिनियम।
1880-84 ई.	:	लार्ड रिपन वायसराय के रूप में।
1881 ई.	:	प्रथम फैक्टरी अधिनियम।
1882 ई.	:	स्कूल शिक्षा के लिए हंटर आयोग की नियुक्ति।
1883 ई.	:	इलबर्ट बिल का विवाद।
1885 ई.	:	कांग्रेस की स्थापना व बम्बई में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन। बंगाल कृषक अधिवेशन पारित। तीसरा आंग्ल- बर्मा युद्ध।
1889 ई.	:	प्रिन्स ऑफ वेल्ज की दूसरी भारत यात्रा।
1892 ई.	:	अंग्रेजी संसद द्वारा भारतीय परिषद अधिनियम पारित।
1893 ई.	:	मुस्लिम ऐंग्लो-ओरिएण्टल डिफेन्स एसोसिएशन ऑफ अपर इण्डिया का गठन।
1895 ई.	:	तिलक ने शिवाजी उत्सव मनाया।
1896-97 ई.	:	भीषण अकाल।
1897 ई.	:	चापेकर बन्धुओं द्वारा पूना में दो अंग्रेजों की हत्या।
1898 ई.	:	कर्जन वायसराय बना।
1900 ई.	:	भारत में भीषण अकाल।
1904 ई.	:	यंग हस्बैण्ड का ल्हासा को शिष्टमण्डल
1905 ई.	:	भारत लोकसेवक मण्डल का गठन।

1906 ई. : बंगाल का विभाजन लागू। **मुस्लिम लीग की स्थापना।**

1907 ई. : आंग्ल-रूसी मित्रता। लाजपतराय तथा अजीतसिंह निर्वासित किए गए।

1908 ई. : खुदीराम बोस को फांसी, तिलक को 6 वर्ष का कारावास।

1909 ई. : भारतीय परिषद् अधिनियम पारित,
मदनलाल ढींगरा ने लन्दन में एक अंग्रेज की हत्या की,
सी. पी. सिन्हा वायसराय के कार्यकारी पार्षद नियुक्त हुए।

1911 ई. : दिल्ली में अभिषेक दरबार।

1912 ई. : **दिल्ली राजधानी बनायी गयी। लार्ड हार्डिंग पर बम फेंका गया।**

1913 ई. : गांधीजी का दक्षिणी अफ्रीका में सत्याग्रह सफल,
सानफ्रांसिस्को में भारतीय गदर दल का गठन।

1914 ई. : तिलक जेल से छूटे। 4 अगस्त को प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ।
कामागाटामारु जलपोत कलकत्ता लौटा।

1915 ई. : गोखले तथा फिरोजशाह मेहता की मृत्यु।
मिसेज ऐनी बेसेण्ट द्वारा होमरूल लीग का मद्रास में गठन।

1916 ई. : बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित हुआ।
तिलक ने पूना में होमरूल लीग बनाई।

1917 ई. : गांधीजी ने चम्पारन में आन्दोलन किया,
मिसेज बेसेण्ट की नजरबन्दी,
मॉण्टेग्यू की उत्तरदायी सरकार के विषय में घोषणा।

1918 ई. : भारतीय श्रमिक संघ (Trade Union) आन्दोलन आरम्भ।

1919 ई. : रौलट ऐक्ट पारित,
जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड,
मॉण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार अधिनियम पारित।

1920 ई. : भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय बना,
जलियांवाला काण्ड पर हण्टर आयोग की रिपोर्ट प्रकाशित,
गांधीजी का प्रथम असहयोग आन्दोलन।

1921 ई. : एम. एन. राय. द्वारा ताशकन्द में भारतीय साम्यवादी दल का गठन।

1922 ई. : **मालाबार में मोपला विद्रोह,**
चौरी-चौरा काण्ड तथा महात्मा गांधी का आन्दोलन वापस लेना।

1924 ई. : कानपुर में अखिल भारतीय साम्यवादी दल का गठन।

1927 ई. : **साइमन आयोग की नियुक्ति।**

1928 ई. : नेहरू रिपोर्ट में भारतीय संविधान के सिद्धान्तों का प्रतिपादन।

1929 ई. : शारदा ऐक्ट : हिन्दू महिलाओं तथा युवकों के 14 तथा 18 वर्ष से कम आयु में विवाह निषिद्ध,
साम्यवादियों के विरुद्ध मेरठ में षड्यन्त्र का अभियोग,
भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त का विधान सभा में बम फेंकना,
कांग्रेस द्वारा स्वतन्त्रता लेने का निश्चय करना।

1930 ई. : कांग्रेस का सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रस्ताव पारित करना, गांधीजी का नमक कानून तोड़ना तथा डाण्डी यात्रा।

1931 ई. : गांधी-इरविन समझौता।

1932 ई. : साम्प्रदायिक निर्णय (Communal Award) की घोषणा।

1935 ई. : भारत सरकार अधिनियम पारित।

1937 ई. : नए चुनाव तथा नवीन प्रान्तीय सरकारें।

1939 ई. : कांग्रेस के प्रधान पद पर सुभाष-गांधी विवाद, सुभाष बाबू का त्याग-पत्र,
द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ, कांग्रेसी सरकारों ने त्याग-पत्र दिए।

1940 ई. : मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान का प्रस्ताव पारित किया,
अंग्रेजों का अगस्त प्रस्ताव,
कांग्रेस का व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन (अक्टूबर से दिसम्बर)।

1941 ई. : रवीन्द्रनाथ टैगोर की मृत्यु।

1942 ई. : रंगून पर जापान ने बम वर्षा की तथा सिंगापुर जीता, क्रिप्स प्रस्ताव, कांग्रेस का भारत छोड़ो प्रस्ताव तथा आन्दोलन।

1943 ई. : सुभाष टोकियो पहुंचे तथा स्वतन्त्र भारत की सरकार का गठन तथा भारतीय राष्ट्रीय सेना बनायी।

1945 ई. : यूरोप में युद्ध समाप्त, वेवल ने शिमला कान्फ्रेंस बुलायी।

1946 ई. : बम्बई में नौसेना विद्रोह,
मन्त्रिमण्डल शिष्टमण्डल भारत में,
संविधान सभा के चुनाव,
जवाहरलाल अन्तरिम सरकार के प्रधानमन्त्री,
दिल्ली में संविधान सभा का अधिवेशन।

1947 ई. : एटली द्वारा जून 1948 ई. से पूर्व भारत छोड़ने की घोषणा
लॉर्ड माउण्टबेटन द्वारा 15 अगस्त, 1947 को भारतीयों को राजसत्ता दे देने की घोषणा,
भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम पारित,
भारत स्वतन्त्र हुआ।

1948 ई. : महात्मा गांधी की हत्या।

1949 ई. : भारत का नवीन संविधान स्वीकृत।

1950 ई. : नया संविधान कार्यान्वित।

परिशिष्ट III

बंगाल के गवर्नर, गवर्नर-जनरल, भारत के गवर्नर-जनरल, गवर्नर-जनरल तथा वायसराय, गवर्नर-जनरल तथा क्राउन के प्रतिनिधि

[GOVERNOR AND GOVERNOR-GENERALS OF BENGAL, GOVERNOR-GENERALS OF INDIA, GOVERNOR-GENERALS AND THE VICEROYS, GOVERNOR-GENERALS AND THE REPRESENTATIVES OF THE CROWN]

बंगाल के गवर्नर
(GOVERNORS OF BENGAL)

क्लाइव (Clive)	1757-60 ई.
हॉलवैल (Holwell)	1760 ई.
वेन्सिटार्ट (Vensittart)	1760-65 ई.
क्लाइव (Clive)	1765-67 ई.
वेरेल्स्ट (Verelst)	1767-69 ई.
कार्टियर (Cartier)	1769-72 ई.
वारेन हेस्टिंग्ज (Warren Hastings)	1772-74 ई.

बंगाल के गवर्नर-जनरल
(GOVERNOR-GENERALS OF BENGAL)
(1773 के रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के अनुसार)

वारेन हेस्टिंग्ज (Warren Hastings)	1774-85 ई.
कॉर्नवालिस (Cornwallis)	1786-93 ई.
सर जॉन शोर (Sir John Shore)	1793-98 ई.
रिचर्ड वेलेजली (Richard Wellesley)	1798-1805 ई.
कॉर्नवालिस (Cornwallis)	1805 ई.

अर्ल ऑफ मिण्टो (Earl of Minto)	1807-13 ई.
हेस्टिंग्ज (Hastings)	1813-23 ई.
लॉर्ड एमहर्स्ट (Lord Amherst)	1823-28 ई.
विलियम बटरवर्थ बेली (William Butterworth Bayley)	1828 ई.
लॉर्ड विलियम बैंटिंक (Lord William Bentinck)	1828-33 ई.

भारत के गवर्नर-जनरल
(GOVERNOR-GENERALS OF INDIA)
(1833 के चार्टर ऐक्ट के अधीन)

लॉर्ड विलियम बैंटिंक (Lord William Bentinck)	1833-35 ई.
सर चार्ल्स मैटकाफ (Sir Charles Metcalfe)	1835-36 ई.
अर्ल ऑफ ऑकलैण्ड (Earl of Auckland)	1836-42 ई.
अर्ल एलनबरो (Earl Ellenborough)	1842-44 ई.
विलियम विलबरफोर्स बर्ड (William Wilberforce Bird)	1844 ई.
सर हेनरी हार्डिंग (Sir Henry Harding)	1844-48 ई.
अर्ल ऑफ डलहौजी (Earl of Dalhousie)	1848-56 ई.
लार्ड केनिंग (Lord Canning)	1856-58 ई.

गवर्नर-जनरल तथा वायसराय
(GOVERNOR-GENERALS AND VICEROYS)

लॉर्ड केनिंग (Lord Canning)	1858-62 ई.
लॉर्ड एल्गिन प्रथम (Lord Elgin I)	1862-63 ई.
सर विलियम टी. डेनिसन (Sir William T. Denison)	1863 ई.
सर जॉन लारेन्स (Sir John Lawrence)	1864-68 ई.
अर्ल ऑफ मेयो (Earl of Mayo)	1869-72 ई.
अर्ल ऑफ नार्थब्रुक (Earl of Northbrook)	1872-76 ई.
लिटन प्रथम (Lytton I)	1876-80 ई.
रिपन (Ripon)	1880-84 ई.
अर्ल ऑफ डफरिन (Earl of Duffrin)	1884-88 ई.
लेन्सडाउन (Lansdowne)	1888-94 ई.
अर्ल ऑफ एल्गिन द्वितीय (Earl of Elgin II)	1894-98 ई.
लॉर्ड कर्जन (Lord Curzon)	1898-1905 ई.
अर्ल ऑफ मिण्टो (Earl of Minto)	1905-10 ई.
बैरन हार्डिंग (Baron Harding)	1910-16 ई.
बैरन चेम्सफोर्ड (Baron Chelmsford)	1916-21 ई.
अर्ल ऑफ रीडिंग (Earl of Reading)	1921-25 ई.
लॉर्ड लिटन द्वितीय (Lord Lytton II)	1925 ई.
लॉर्ड इरविन (Lord Irwin)	1926-31 ई.
वैलिंगडन (Wellingdon)	1931-34 ई.
लिनलिथगो (Linlithgow)	1934-36 ई.

गवर्नर-जनरल तथा क्राउन के प्रतिनिधि

(GOVERNOR-GENERAL AND THE REPRESENTATIVE OF THE CROWN)

(1935 के अधिनियम के अधीन)

लिनलिथगो (Linlithgow)	1936-37 ई.
लिनलिथगो (Linlithgow)	1938-44 ई.
लॉर्ड वेवल (Lord Wavell)	1944-47 ई.
लॉर्ड माउंण्टबैटन (Lord Mountbatten)	1947-48 ई.
चक्रवर्ती राजगोपालाचारी (C. Rajgopalachari)	1948-50 ई.

परिशिष्ट IV

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों के वर्ष, स्थान अध्यक्ष एवं प्रमुख बातें

[YEAR, PLACE HIGHLIGHTS AND THE PRESIDENTS OF THE ANNUAL CONFERENCES OF INDIAN NATIONAL CONGRESS]

वर्ष	स्थान	अध्यक्ष एवं प्रमुख बातें
1885 ई.	बम्बई	डब्लू. सी. बनर्जी (W. C. Bannerji) भारतीय प्रशासन के मूल्यांकन हेतु रायल कमीशन की नियुक्ति की संस्तुति।
1886 ई.	कलकत्ता	दादाभाई नौरोजी (Dadabhai Naoroji) प्रतिनिधित्व प्रणाली की स्थापना हेतु एक कमेटी नियुक्त किए जाने का वायसराय से अनुरोध।
1887 ई.	मद्रास	बदरुद्दीन तायबजी (Badruddin Tyabji) गवर्नर-जनरल तथा प्रान्तीय कौंसिलों के विस्तार पर बल।
1888 ई.	इलाहावाद	जार्ज यूल (George Yule) सिविल सर्विस परीक्षा को भारत व इंग्लैण्ड में बारी-बारी से कराए जाने पर बल।
1889 ई.	वम्बई	सर विलियम वैडरबर्न (Sir W. Wederburn) काउन्सिल सुधारों पर विशेष बल।
1890 ई.	कलकत्ता	फिरोजशाह मेहता (Feroz Shah Mehta) न्यायिक व पुलिस सुधार, जंगलात कानून के पुनर्वलोकन पर बल।
1891 ई.	नागपुर	पी. आनन्द चारलू (P. Ananda Charlu) जूरी व्यवस्था सम्पूर्ण भारत में लागू किए जाने की मांग।
1892 ई.	इलाहावाद	डब्लू. सी. बनर्जी (W. C. Bannerji) जूरी व्यवस्था सम्पूर्ण भारत में लागू किए जाने की मांग।
1893 ई.	लाहौर	दादाभाई नौरोजी (Dadabhai Naoroji)

		पृथक् चिकित्सा शिक्षा (Medical Education) व्यवस्था की मांग।
1894 ई.	मद्रास	**एल्फ्रेड वेब** (Alfred Webb) प्रेस के दमन का विरोध, सूत पर कर बढ़ाने का विरोध।
1895 ई.	पूना	**सुरेन्द्र नाथ बनर्जी** (S. N. Bannerji) सेना व प्रशासन के खर्चे कम करने की मांग।
1896 ई.	कलकत्ता	**आर. एम. सयानी** (R. M. Sayani) कृषि सम्बन्धी सुधारों की मांग।
1897 ई.	अमरावती	**सी. शंकरन नायर** (C. Sankaran Nair) सूखा राहत की मांग।
1898 ई.	मद्रास	**आनन्द मोहन बोस** (Anand Mohan Bose) मद्रास व बम्बई के गवर्नर की कौंसिल में भारतीयों की नियुक्ति की मांग।
1899 ई.	लखनऊ	**रोमेश चन्द्र दत्त** (Romesh Chandra Dutt) भारत में स्वर्ण मानक (Gold Standard) लागू किए जाने का विरोध।
1900 ई.	लाहौर	**एन. जी. चन्द्रावरकार** (N. G. Chandravarkar) विश्वविद्यालयी समितियों में निर्वाचन की मांग।
1901 ई.	कलकत्ता	**दिन्शौ एडुलजी वाचा** (Dinshaw Edulji Wacha) पुलिस सुधारों तथा गरीबी हटाने पर बल।
1902 ई.	अहमदाबाद	**सुरेन्द्रनाथ बनर्जी** (S. N. Bannerji) गरीबी के उन्मूलन पर बल।
1903 ई.	मद्रास	**लाल मोहन घोष** (Lal Mohan Ghosh) भारतीयों की समस्याएं दूर करने पर बल।
1904 ई.	बम्बई	**सर हेनरी कॉटन** (Sir Henry Cotton) भारतीय प्रशासन में भारतीयों के अधिक भाग लेने की मांग।
1905 ई.	बनारस	**गोपाल कृष्ण गोखले** (Gopal Krishna Gokhale) बंगाल के विभाजन का विरोध।
1906 ई.	कलकत्ता	**दादाभाई नौरोजी** (Dadabhai Naoroji) स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार।
1907 ई.	सूरत	**रास बिहारी बोस** (Rash Behari Bose) कांग्रेस का उदार व उग्र दलों में विभाजन।
1908 ई.	मद्रास	**रास बिहारी बोस** (Rash Behari Bose) स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर बल।
1909 ई.	लाहौर	**मदन मोहन मालवीय** (Madan Mohan Malaviya) बंगाल के विभाजन को समाप्त किए जाने का विरोध।
1910 ई.	इलाहाबाद	**सर विलियम वेडरबर्न** (Sir William Wederburn) स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन।

1911 ई.	कलकत्ता	**पं. बिशन नारायन धर** (Pandit B. N. Dhar) पृथक् चुनाव पद्धति का विरोध।
1912 ई.	बंकीपोर	**आर. एन. मधोल्कर** (R. N. Madholkar) स्थानीय संस्थाओं में पृथक् चुनाव पद्धति का विरोध।
1913 ई.	करांची	**सैय्यद मुहम्मद बहादुर** (S. M. Bahadur) भारतीय प्रेस अधिनियम का विरोध।
1914 ई.	मद्रास	**भूपेन्द्रनाथ बसु** (Bhupendranath Basu) प्रान्तीय स्वायत्तता पर बल।
1915 ई.	बम्बई	**सर सत्येन्द्र प्रसन्न सिन्हा** (Sir S. P. Sinha) आयात, निर्यात तथा एक्साइज करों में पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग।
1916 ई.	लखनऊ	**अम्बिका चरन मजूमदार** (Ambika Charan Mazumdar) स्वदेशी विचारों का अनुमोदन।
1917 ई.	कलकत्ता	**एनीबेसेण्ट** (Mrs. Annie Besant) एनीबेसेण्ट द्वारा भारत को "Radiant splendour of Asia and the light and blessing of the world" कहा गया।
1918 ई.	दिल्ली	**मदन मोहन मालवीय** (Madan Mohan Malaviya) स्त्रियों को वोट देने के अधिकार की मांग।
1919 ई.	अमृतसर	**पं. मोतीलाल नेहरू** (Pandit Moti Lal Nehru) रौलेट एक्ट का विरोध, भारत को स्वायत्त शासन के योग्य घोषित।
1920 ई.	नागपुर	**सी. विजयाराघवनचारी** (C. Vijayaraghavanchari) असहयोग आन्दोलन का समर्थन।
1921 ई.	अहमदाबाद	**देशबन्धु चितरंजनदास** (D. Chitta Ranjan Das) असहयोग आन्दोलन का समर्थन।
1922 ई.	गया	**देशबन्धु चितरंजनदास** (D. Chitta Ranjan Das) गांधी की नीतियों का विरोध।
1923 ई.	काकिनाड	**मौलाना मुहम्मद अली** (M. Mohammed Ali) गांधी की नीतियों का विरोध।
1924 ई.	बेलगाम	**महात्मा गांधी** (Mahatma Gandhi) विदेशी वस्तुओं का विरोध, छुआछूत का विरोध।
1925 ई.	कानपुर	**श्रीमती सरोजिनी नायडू** (Smt. Sarojini Naidu) भारतीय भाषा के प्रयोग का प्रस्ताव पारित।
1926 ई.	गौहाटी	**श्रीनिवास आयंगर** (S. Srinivasa Iyengar) हिन्दू-मुसलमान एकता पर बल।
1927 ई.	मद्रास	**डॉ. एम. ए. अन्सारी** (Dr. M. A. Ansari) पूर्ण स्वतन्त्रता का विचार।
1928 ई.	कलकत्ता	**पं. मोतीलाल नेहरू** (Pt. Moti Lal Nehru)

		बारदोली सत्याग्रह की सफलता पर सरदार पटेल को बधाई।
1929 ई.	लहौर	**पं. जवाहरलाल नेहरू** (Pt. Jawahar Lal Nehru) पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग।
1930 ई.	—	कोई अधिवेशन नहीं हुआ।
1931 ई.	करांची	**सरदार वल्लभभाई पटेल** (S. Vallabha Bhai Patel) भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव की मृत्यु पर शोक।
1932 ई.	—	अधिवेशन नहीं हुआ।
1933 ई.	कलकत्ता	घोषित अध्यक्ष **मदन मोहन मालवीय** किन्तु अध्यक्षता की **श्रीमती नेली सेन गुप्ता** (Mrs. Nellie Sen Gupta) स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष का समर्थन।
1934 ई.	बम्बई	**डॉ. राजेन्द्रप्रसाद** (Dr. Rajendra Prasad) कांग्रेस से रिटायर न होने के लिए गांधीजी से अनुरोध।
1935 ई.	लखनऊ	**पं. जवाहर लाल नेहरू** (Pt. Jawahar Lal Nehru) जन-सम्पर्क करने के लिए जोर।
1936 ई.	—	अधिवेशन नहीं हुआ।
1937 ई.	फैजपुर	**पं. जवाहर लाल नेहरू** (Pt. Jawahar Lal Nehru) 1935 ई. के अधिनियम को अस्वीकार, युद्ध के खतरों से आगाह कराया।
1938 ई.	हरिपुरा	**सुभाष चन्द्र बोस** (Subhash Chandra Bose) भारतीय संविधान की रचना के लिए संवैधानिक सभा की मांग।
1939 ई.	त्रिपुरी	**सुभाष चन्द्र बोस** (Subhash Chandra Bose) 15 में से 12 कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्यों ने त्यागपत्र दिया।
1940 ई.	रामगढ़	**मौ. अबुल कलाम आजाद** (M. Abul Kalam Azad) युद्ध से स्वयं को अलग रखने की घोषणा।
1941 ई.	—	कोई अधिवेशन नहीं हुआ।
1942 ई.	—	कोई अधिवेशन नहीं हुआ।
1943. ई.	—	कोई अधिवेशन नहीं हुआ।
1944 ई.	—	कोई अधिवेशन नहीं हुआ।
1945 ई.	—	कोई अधिवेशन नहीं हुआ।
1946 ई.	मेरठ	**आचार्य जे. बी. कृपलानी** (Acharya J. B. Kripalani) कांग्रेस द्वारा प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों का समर्थन।
1947 ई.	—	कोई अधिवेशन नहीं हुआ।
1948 ई.	जयपुर	**डॉ. पी. सीतारमैय्या** (Dr. P. Sitaramayya) भाषाई प्रान्तों पर विचार करने के लिए एक कमेटी का गठन।
1949 ई.	—	कोई अधिवेशन नहीं हुआ।
1950 ई.	नासिक	**पुरुषोत्तमदास टण्डन** (Purushottam Das Tandon) देश सेवा को प्राथमिकता देने पर विचार।

परिशिष्ट V

ब्रिटिशकालीन आयोग/समितियां

[COMMISSIONS/COMMITTEES DURING THE BRITISH PERIOD]

	आयोग	वर्ष	अध्यक्ष	गवर्नर-जनरल/ वायसराय	उद्देश्य
1.	इनाम आयोग	1852 ई.	इनाम	डलहौजी	भूमि सम्बन्धी विवेचना
2.	दुर्भिक्ष आयोग	1880 ई.	रिचर्ड स्ट्रेची	लिटन	अकाल पीड़ितों की स्थिति एवं अकाल निवारण हेतु विचार
3.	हण्टर आयोग	1882 ई.	विलियम हण्टर	रिपन	शिक्षा का विकास
4.	एटकिन्सन आयोग	1886 ई.	चार्ल्स एटकिन्सन	डफरिन	नागरिक सेवा में भारतीयों की संख्या में वढ़ोत्तरी पर विचार
5.	अफीम आयोग	1893 ई.	—	लैंसडाउन	अफीम के सेवन को रोकने हेतु
6.	हरशेल समिति	1893 ई.	हरशेल	लैंसडाउन	टकसाल सम्बन्धी सुझाव
7.	दुर्भिक्ष आयोग	1898 ई.	जेम्स लयल	एल्गिन	प्रथम दुर्भिक्ष आयोग की रिपोर्ट पर विचार
8.	दुर्भिक्ष आयोग	1901 ई.	एंथनी मेक्डोनाल्ड	कर्जन	द्वितीय दुर्भिक्ष आयोग की रिपोर्ट पर सुझाव
9.	सिंचाई आयोग	1901 ई.	वोल्विन स्कॉट	कर्जन	सिंचाई व्यवस्था को सुधारने हेतु वित्तीय विचार
10.	विश्वविद्यालय आयोग	1902 ई.	थामस रैले	कर्जन	भारतीय विश्वविद्यालयों की स्थिति पर विचार
11.	फ्रेजर आयोग	1902 ई.	फ्रेजर	कर्जन	पुलिस प्रशासन की कार्य पद्धति पर विचार
12.	शाही आयोग	1912 ई.	इसलिंग्टन	हार्डिंग्ज	नागरिक सेवा में भारतीयों की हिस्सेदारी पर विचार
13.	मेक्लेगन समिति	1914 ई.	मेक्लेगन	हार्डिंग्ज	सहकारी वित्तीय व्यवस्था से सम्बन्धित सुझाव
14.	कलकत्ता विश्व-विद्यालय आयोग (सेडलर आयोग)	1917 ई.	माइकल सेडलर	चेम्सफोर्ड	कलकत्ता विश्वविद्यालय में दोषों की जांच
15.	शाही आयोग	1923 ई.	लॉर्ड ली	रीडिंग	नागरिक सेवा में व्याप्त दोषों को दूर करने हेतु
16.	भारतीय छंटनी समिति	1923 ई.	लॉर्ड इंचकैप	रीडिंग	शिक्षा सम्बन्धी विचार हेतु

17.	भारतीय सेण्ड-हर्स्ट समिति	1925 ई.	एण्ड्रयू स्कीन	रीडिंग	भारतीय सेना का भारतीयकरण पर सुझाव हेतु
18.	वटलर समिति	1927 ई.	हरकोर्ट वटलर	इरविन	देशी राज्यों व अंग्रेजी सरकार के सम्वन्धों पर विचार।
19.	साइमन आयोग	1927 ई.	जॉन साइमन	इरविन	1919 ई. के अधिनियम की समीक्षा हेतु
20.	लिनलिथगो आयोग	1928 ई.	लिनलिथगो	इरविन	कृषि सम्वन्धी समस्याओं पर विचार
21.	लिण्डसे आयोग	1929 ई.	लिण्डसे	इरविन	भारत में मिशनरी शिक्षा के विकास हेतु
22.	भारतीय वैधानिक आयोग	1929 ई.	फिलिप हर्टोग	इरविन	शिक्षा की स्थिति की समीक्षा करने हेतु
23.	व्हाइटले आयोग	1929 ई.	जे. एच. व्हाइटले	इरविन	श्रमिकों की स्थिति पर विचार।
24.	सप्रू समिति	1934 ई.	तेज बहादुर सप्रू	विलिंगटन	वेरोजगारी की समस्या की समीक्षा हेतु
25.	भारतीय परिसीमन समिति	1935 ई.	लॉरी हेमण्ड	विलिंगटन	निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था हेतु
26.	राष्ट्रीय योजना समिति	1938 ई.	जवाहरलाल नेहरू	लिनलिथगो	आर्थिक योजना
27.	क्रिप्स आयोग	1942 ई.	स्टेफर्ड क्रिप्स	लिनलिथगो	भारत के राजनीतिक गतिरोध को दूर करने हेतु
28.	कैविनेट आयोग	1946 ई.	पैंथिक लारेन्स	वेवल	भारतीयों को सत्ता हस्तान्तरित करने पर विचार हेतु
29.	दुर्भिक्ष जांच आयोग	1943 ई.	सर चार्ल्स वुड	वेवल	वंगाल के अकाल के कारणों पर विचार हेतु
30.	सार्जेण्ट योजना	1944 ई.	जॉन सार्जेण्ट	वेवल	शिक्षा के विकास हेतु।